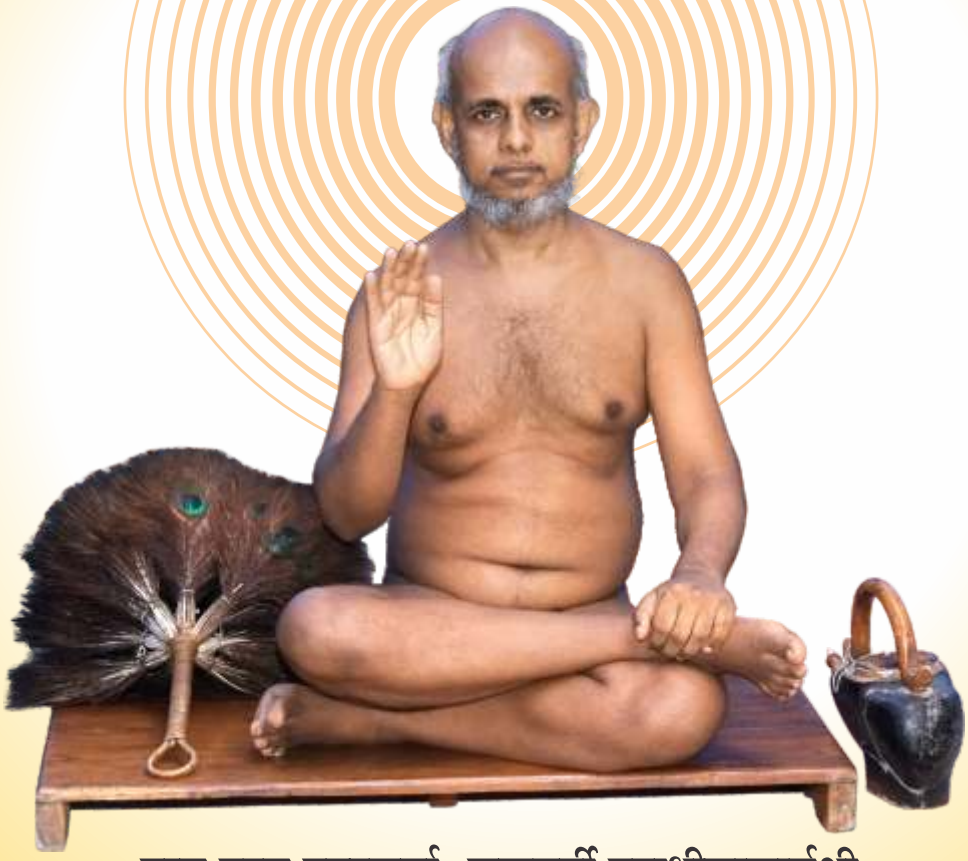

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि) भाग – 2

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज

अनुवादिका
डा. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

सम्पादक
पं. दिनेशभाई शहा

प्रकाशक
वीतरागवाणीप्रकाशक, निर्मला निवास, मुंबई

(परम्परानायक)

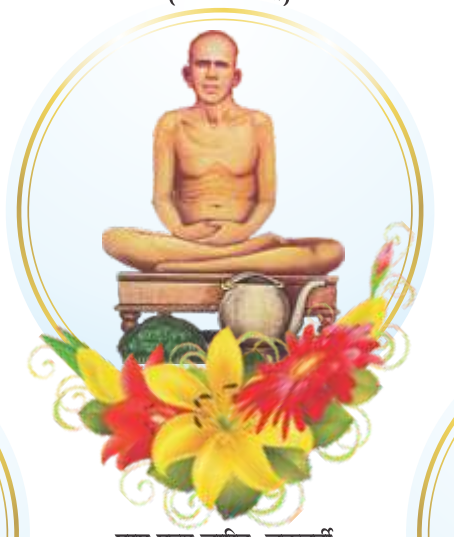

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि

हिन्दी अनुवाद

भाग २

— अनुवादिका —

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार कर्मकाण्ड की
पं. टोडरमलजी कृत भाषाटीका

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि)

का

हिन्दी अनुवाद

भाग २

— अनुवादिका —

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

— सम्पादक —

पं. दिनेशभाई शहा

एम.ए., एल.एल.बी.

— प्रकाशक —

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०० ०२२.

टेलि. : २४०७ ३५८१

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका-कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि
हिन्दी टीका

प्रथम संस्करण १५ सितम्बर २००९ १६०० प्रत

— प्राप्तिस्थान —

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०० ०२२.

टेलि. : २४०७ ३५८१

e mail - ujwaladinesh@yahoo.com

मूल्य रु. १५०/-
(भाग १ और २)

अहो नेमिचन्द्राचार्य का करुणाभाव अपार ।
चामुण्डराय के प्रश्न पर लिखा गोम्मटसार ॥
कर्णाटकभाषा में चामुण्डराय टीकाकार ।
केशववर्णी संस्कृत टीका है तदनुसार ॥
महाबुद्धिमान टोडरमल सद्दृष्टि के धार ।
ढूंढारी में ग्रंथ लिखा करी के अतिविस्तार ॥
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नाम सुना बहुबार ।
पढ़ने को ललचायी मैं साहस करी अपार ॥
पति के साथ कर दिया ग्रंथ पठन को पार ।
पढ़ते गये, करते गये चर्चा बारम्बार ॥
टोडरमलजी पंडित मिले हमें परोक्ष गुरुवर ।
ज्ञानखजाना खोल दिया लूटे हम जीभर ॥
पढ़ा पढ़ाया ग्रंथ को मैंने अनेकों बार ।
तब हमरी बुद्धि हुयी छापे इसे दुबार ॥
मन्दबुद्धि मैं, अनुवाद का विषय अति गम्भीर ।
टोडरमलजी के शब्दों ने दिया परंतु धीर ॥
'उज्ज्वल' मेरी मति हुयी मैंने पाया सार ।
'कर्मकाण्ड' सब जीव पढ़े मोक्षमार्ग सु धार ॥

— डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

— विषयसूचि —

५. स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार ४२७

मूलप्रकृतियों के स्थानसमुत्कीर्तन ४२८

उत्तरप्रकृतियों के स्थानसमुत्कीर्तन ४३२

मोहनीय के बंधस्थान ४३५

मोहनीय के उदयस्थान ४४७

मोहनीय के सत्त्वस्थान ४७७

नामकर्म के इकतालीस जीवपद ४८६

नामकर्म के बंधस्थान एवं भंग ४८८

नामकर्म के उदयस्थान ५६४

नामकर्म के सत्त्वस्थान ५८६

बंध, उदय, सत्त्व के त्रिसंयोगी भंग . ५९५

६. आस्रवाधिकार ६८८

आस्रव के भेद ६८८

आस्रव के स्थान एवं भंग ६९३

७. भावचूलिकाधिकार ७१२

जीव के भाव, उनके भेद ७१२

भावों के स्थान, भंग ७२०

एकांत मिथ्यामतों के भेद ७६४

८. त्रिकरणचूलिका ७७५

अध:करण ७७५

अपूर्वकरण ७८५

अनिवृत्तिकरण ७८८

९. कर्मस्थितिरचनाधिकार ७९०

आबाधाकाल ७९०

स्थितिरचना ७९३

सत्तारूप द्रव्य एवं त्रिकोणयंत्र ८१७

स्थितिभेद ८२४

स्थितिबंधाध्यवसाय वर्णन ८२६

अनुभागबंधाध्यवसाय वर्णन ८४३

अर्थसंदृष्टि अधिकार

प्रकृतिसमुत्कीर्तन ८७५

प्रकृतिबंध वर्णन ८७७

स्थितिबंध वर्णन ८७८

अनुभागबंध वर्णन ८९४

प्रदेशबंध वर्णन ८९७

योगस्थान वर्णन ९१४

प्रकृतिसमूह वर्णन ९५६

बंधाध्यवसाय ९५९

उदय वर्णन ९६५

सत्ता वर्णन ९६६

त्रिचूलिकाधिकार ९६७

स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार ९६९

आस्रवाधिकार ९७०

भावाधिकार ९७१

कर्मस्थितिरचनाधिकार ९७५

स्थितिबंधाध्यवसायस्थान ९८९

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

(उत्तरार्ध)

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषा टीका

का

हिन्दी अनुवाद

स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार ॥५॥

॥ मंगलाचरण ॥

बंध उदय सत्ता सहित कर्म थानकरि नष्ट ।
नेमिचंद जयवंत जगि भये केवली स्पष्ट ॥५॥

त्रिचूलिका-अधिकार कहकर श्रीमत् नेमिचन्द्र-सिद्धांत चक्रवर्ती अपने इष्टदेव को नमस्कार पूर्वक आगे जो कार्य करते हैं, उसकी प्रतिज्ञा करते हैं –

णमिऊण णेमिणाहं सच्चजुहिट्ठिरणमंसियंघिजुगं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं ठाणसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥४५१॥

नत्वा नेमिनाथं सत्ययुधिष्ठिरनमस्कृतांघ्रियुगं ।
बंधोदयसत्त्वयुक्तं स्थानसमुत्कीर्तनं वक्ष्ये ॥४५१॥

टीका – प्रत्यक्ष वंदन करनेवाले सत्य-युधिष्ठिर नामक पांडव द्वारा – नमस्काररूप किये हैं चरणयुगल जिनके, ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकर को नमन करके बंध, उदय, सत्तासंयुक्त - स्थानसमुत्कीर्तन को कहूंगा । वह किस कारण ? पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकार में जो प्रकृतियां बतायी हैं, उनके बंधादिक क्रम से होते हैं या बिना क्रम से होते हैं – ऐसा प्रश्न होनेपर इसतरह होता है – ऐसा जानने के लिये स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार कहते हैं ।

स्थान किसे कहते हैं ? एक जीव के एक काल में जितनी प्रकृतियां पायी जाती

हैं, उनके समूह का नाम स्थान है, उसका व्याख्यान इस अधिकार में है ॥४५१॥

वहां प्रथम ही मूलप्रकृतियों के बंध, उदय, उदीरणा, सत्त्व के भेदसहित उस स्थानसमुत्कीर्तन को गुणस्थानों में छह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

छसु सगविहमट्ठविहं कम्मं बंधंति तिसु य संत्तविहं ।
छव्विहमेकट्ठाणे तिसु एक्कमबंधगो एक्को ॥४५२॥

षट्सु सप्तविधमष्टविधं कर्म बध्नंति त्रिषु च सप्तविधं ।
षड्विधमेकस्थाने त्रिषु एकमबंधकमेकं ॥४५२॥

टीका – मिश्र बिना अप्रमत्त तक छह गुणस्थानों में आयु बिना सात प्रकार के अथवा आयुसहित आठ प्रकार के कर्म बंधते हैं । मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण – इन तीन में आयु बिना सात प्रकार के ही कर्म बंधते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय में आयु और मोह बिना छह प्रकार के ही कर्म बंधते हैं । उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगी में एक वेदनीयकर्म ही बंधता है । अयोगी में बंध नहीं है ॥४५२॥

चत्तारि तिण्णि तिय चउ पयडिट्ठाणाणि मूलपयडीणं ।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि कमे होंति ॥४५३॥

चत्वारि त्रीणी-त्रीणि चत्वारि प्रकृतिस्थानानि मूलप्रकृतीनाम् ।
भुजाकाराल्पतराणि च अवस्थितान्यपि क्रमेण भवन्ति ॥ ४५३ ॥

१	६	७
६	७	८

टीका – इसतरह मूलप्रकृतियों के बंधस्थान सामान्यपने आठ, सात, छह, एक प्रकृतिरूप चार हैं । वहां उपशमश्रेणी से उतरते हुये भुजाकारबंध तीन हैं । उपशांतमोह में एक का बंध था, वहां से सूक्ष्मसाम्पराय में आया तब छह का बंध किया इसलिए एक तो यह भुजाकारबंध हुआ; पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय में छह का बंध था, वहां से अनिवृत्तिकरण में आया तब सात का बंध हुआ, वहां एक भुजाकारबंध हुआ । पुनश्च अपूर्वकरण में सात का बंध था, नीचे के गुणस्थान में आठ का बंध हुआ, वहां एक भुजाकार हुआ – ऐसे तीन भुजाकार होते हैं ।

पुनश्च ऊपर-ऊपर गुणस्थान चढ़ने में अल्पतरबंध तीन हैं । आठ कर्म के बंध से सात का बंध होगा वहां एक अल्पतर होता है; सात से छह का बंध होनेपर एक अल्पतर होता है; छह से एक का बंध होनेपर एक अल्पतर होता है — इसतरह तीन अल्पतरबंध हैं ।

८	७	६
७	६	१

पुनश्च अपने ही स्थान में पहले समय में जितने कर्मों का बंध होता है, उतने ही कर्मो का अनंतर समय में बंध हो, वहां अवस्थितबंध चार हैं । पहले आठ कर्मों का बंध था और पश्चात् आठ का ही बंध हो, वहां एक अवस्थितबंध हुआ । सात के पश्चात् सात का हो, वहां एक हुआ; छह के पश्चात् छह का हो, वहां एक हुआ; एक के पश्चात् एक हो, वहां एक हुआ — इसतरह अवस्थितबंध चार हैं ।

८	७	६	१
८	७	६	१

उपशांतमोह से उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय को छोड़कर अनिवृत्तिकरणादि को प्राप्त नहीं होता इसलिए एक के बंध के पश्चात् सात का बंध अथवा एक के बंध के पश्चात् आठ के बंधरूप — ये दो भुजाकारबंध नहीं पाये जाते । तथा अप्रमत्त से या अनिवृत्तिकरण से बीच के गुणस्थान छोड़कर उपशांतमोह को प्राप्त नहीं होता, इसलिए आठ के बंध के पश्चात् एक के बंधरूप और सात के बंध के पश्चात् एक के बंधरूप — ऐसे दो अल्पतरबंध भी नहीं होते ।

यहां प्रश्न — यदि उपशांतमोह से मरकर असंयत गुणस्थानवर्ती देव होगा, वहां एक से सात के बंधरूप या एक से आठ के बंधरूप होकर भुजाकारबंध हो सकते हैं, वे क्यों न कहे ?

उसका समाधान — अबद्धायु का तो मरण नहीं है इसलिए एक से सात के बंधरूप भुजाकार का अभाव है और बद्धायु का मरण होगा तो देव असंयत गुणस्थानवर्ती होगा, वहां देवों में आयु के छह महिने अवशेष रहने पर ही आयु का बंध होता है, इसलिए एक से आठ के बंधरूप भुजाकार का अभाव है; इसलिए नहीं कहे ।

वहां जो पहले थोड़ी प्रकृतियों का बंध करके पश्चात् बहुत प्रकृतियों को बांधता है, उसको भुजाकारबंध कहते हैं तथा पहले बहुत प्रकृतियों का बंध करके पश्चात्

थोड़ी प्रकृतियों को बांधता है उसको अल्पतरबंध कहते हैं । पहले थोड़ी या बहुत जितनी प्रकृतियों को बांधता था, पश्चात् अनंतर समय में उतनी ही प्रकृतियों को बांधता है, उसको अवस्थितबंध कहते हैं । कुछ भी न बांधकर पश्चात् बांधता है, उसको अवक्तव्यबंध कहते हैं । यह अवक्तव्यबंध मूलप्रकृतियों में नहीं पाया जाता, उत्तरप्रकृतियों में ही पाया जाता है ।

इसतरह इनका स्वरूप जानना ॥४५३॥

अट्ठुदओ सुहुमोत्ति य मोहणेण विण हु संतखीणेसु ।
घादिदराणं चउक्कस्सुदओ केवलिदुगे णियमा ॥४५४॥

अष्टोदयः सूक्ष्म इति च मोहेन विना हि शांतक्षीणयोः ।
घातीतराणां चतुष्कस्योदयः केवलिद्विके नियमात् ॥४५४॥

टीका – सूक्ष्मसाम्पराय तक आठों मूलप्रकृतियों का उदय है; उपशांतमोह और क्षीणमोह में मोह बिना सात का उदय है । सयोगी, अयोगी में नियम से चार अघातिकर्मों का ही उदय है ॥४५४॥

घादीणं छदुमट्ठा उदीरगा रागिणो हि मोहस्स ।
तदियाऊण पमत्ता जोगंता होंति दोण्हंपि ॥४५५॥

घातिनां छद्मस्था उदीरका रागिणो हि मोहस्य ।
तृतीयायुषोः प्रमत्ता योग्यंता भवंति द्वयोरपि ॥४५५॥

टीका – चारों घातिकर्मों की उदीरणा करनेवाले क्षीणमोह तक छद्मस्थ जीव हैं, वहां भी मोहनीय की उदीरणा करनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय तक सरागी ही हैं । वेदनीय और आयु की उदीरणा करनेवाले प्रमत्त तक प्रमादी जीव ही हैं । नाम और गोत्र की उदीरणा करनेवाले सयोगी तक हैं ॥४५५॥

मिस्सूणपमत्तंते आउस्सद्धा हु सुहुमखीणाणं ।
आवलिसिट्ठे कमसो सग पण दो चेवुदीरणा होंति ॥४५६॥

मिश्रोनप्रमत्तांते आयुषः अद्धा हि सूक्ष्मक्षीणयोः ।
आवलिशिष्टे क्रमशः सप्त पंच द्वे चैवोदीरणा भवंति ।।४५६।।

टीका – भुज्यमान आयु का आवली मात्र काल अवशेष रहनेपर नियम से मिश्र गुणस्थान से अन्य गुणस्थान को *(पहले या चौथे)* प्राप्त होता है, इसलिए मिश्र बिना प्रमत्त तक पांच गुणस्थानों में आयु में आवली मात्र काल अवशेष रहनेपर आयु बिना सात की उदीरणा होती है ।

[***विशेषार्थ*** *: भुज्यमान्य आयु की उदीरणा मरण के एक आवली पूर्व तक होती है, अंतिम आवली में नहीं होती, वह भी छठवें गुणस्थान तक ही होगी, पश्चात् नहीं । तीसरे गुणस्थान में मरण नहीं होता इसलिए उसको छोड़कर शेष पांच गुणस्थानों में घटित होता है ।*]

सूक्ष्मसाम्पराय में उतना ही काल अवशेष रहनेपर आयु, मोहनीय, वेदनीय बिना पांच की ही उदीरणा है ।

[***विशेषार्थ*** *: छठवें गुणस्थान में आयु तथा वेदनीय की उदीरणा की व्युच्छित्ति होती है, अन्य छह कर्मों की उदीरणा होती है । सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम आवली के एक समय पूर्व तक उदीरणा चलती है ।*]

क्षीणमोह में उतना ही काल अवशेष रहनेपर नाम, गोत्र इन दोनों की उदीरणा है ।।४५६।।

[***विशेषार्थ*** *: ~~नाम, गोत्र~~ तीन घातिकर्मों, की उदीरणा क्षीणमोह के अंतिम आवली के एक समय पूर्व तक होती है, पश्चात् नहीं ।*]

संतोत्ति अट्ठ सत्ता खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि ।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य चत्तारि हवंति सत्ताणि ।।४५७।।

शांत इति अष्ट सत्ताः क्षीणे सप्तैव भवंति सत्त्वानि ।
योगिनि अयोगिनि च चत्वारि भवंति सत्त्वानि ।।४५७।।

टीका – उपशांतमोह तक आठों मूलप्रकृतियों का सत्त्व है । क्षीणमोह में मोहनीय बिना सात ही का सत्त्व है । सयोगी, अयोगी में चार अघातिकर्मों का ही सत्त्व है ॥४५७॥

आगे उत्तरप्रकृतियों के स्थानसमुत्कीर्तन कहते हैं –

तिण्णि दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरणमोहणामाणं ।
एत्थेव य भुजगारा सेसेसेयं हवे ठाणं ॥४५८॥

त्रीणि दश अष्ट स्थानानि दर्शनावरणमोहनाम्नां ।
अत्रैव च भुजाकाराः शेषेष्वेकं भवेत् स्थानं ॥४५८॥

टीका – दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्म के बंधस्थान अनुक्रम से तीन, दस और आठ जानना; इसलिए भुजाकारबंध भी इन्हीं में हैं, क्योंकि शेष में से ज्ञानावरण और अंतराय के पांच प्रकृतियों के बंधरूप एक-एक स्थान तथा गोत्र, आयु, वेदनीय के एक-एक प्रकृति के बंधरूप एक-एक स्थान ही है ॥४५८॥

णव छक्क चदुक्कं च य बिदियावरणस्स बंधठाणाणि ।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि य जाणाहि ॥४५९॥

नव षट्कं चतुष्कं च द्वितीयावरणस्य बंधस्थानानि ।
भुजाकाराल्पतराणि च अवस्थितान्यपि च जानीहि ॥४५९॥

टीका – दर्शनावरण का नौ प्रकृति का एक स्थान; स्त्यानगृद्धित्रिक बिना छह प्रकृतिरूप एक स्थान तथा निद्रा, प्रचला बिना चार प्रकृतिरूप एक स्थान – ये तीन बंधस्थान हैं । उनके भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित बंध हैं । 'अपि' शब्द से अवक्तव्यबंध भी है, वही कहते हैं –

उपशमश्रेणी से उतरनेवाला अपूर्वकरण के दूसरे भाग में चार प्रकृतिरूप दर्शनावरण को बांधकर उस अपूर्वकरण के प्रथम भाग में छह प्रकृतिरूप बांधता है – एक तो यह भुजाकार हुआ । प्रमत्तसंयत, देशसंयत, असंयत, मिश्र में छह प्रकृतिरूप बांधता

है और पश्चात् मिथ्यादृष्टि होकर अथवा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि सासादन में आकर नौ प्रकृतिरूप बांधता है — एक यह भुजाकार हुआ — इस तरह भुजाकारबंध दो हैं ।

पुनश्च प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि अनिवृत्तिकरण के अंत समय में नौ प्रकृतिरूप बंध करनेवाला है, अनंतर समय में असंयत, देशसंयत या अप्रमत्तसंयत होकर छह प्रकृतिरूप बंध करता है वहां एक अल्पतर हुआ; पुनश्च उपशमक और क्षपक अपूर्वकरण के पहले भाग के अंत समय में छह प्रकृतिरूप बंध करनेवाला, दूसरे भाग के प्रथम समय में चार प्रकृतिरूप बंध करता है — वहां एक अल्पतर हुआ — ऐसे अल्पतरबंध दो हैं ।

मिथ्यादृष्टि और सासादन नौ प्रकृतिरूप, मिश्र से अपूर्वकरण के प्रथम भाग तक छह प्रकृतिरूप और अपूर्वकरण के द्वितीय भाग से सूक्ष्मसाम्पराय तक चार प्रकृतिरूप बंध करनेवाला, अनंतर समय में उतनी ही प्रकृतिरूप बंध करता है — ऐसे अवस्थितबंध तीन हैं ।

उपशांतमोह में कुछ भी दर्शनावरण को नहीं बांधनेवाला, उतरने में सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में चार प्रकृतिरूप अथवा बद्धायुष्क मरकर देव-असंयत होकर छह प्रकृतिरूप बांधता है — ऐसे अवक्तव्यबंध दो हैं ॥४५९॥

इस कहे हुये अर्थ को प्रकट करते हैं —

णव सासणोत्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति ।
चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरिमोत्ति ॥४६०॥

नव सासन इति बंधः षट् चैव अपूर्वप्रथमभाग इति ।
चतस्रो भवंति ततः सूक्ष्मकषायस्य चरम इति ॥४६०॥

टीका – दर्शनावरण को नौ प्रकृतिरूप सासादन तक ही बांधता है । ऊपर अपूर्वकरण के प्रथम भाग तक छह प्रकृतिरूप बांधता है । उसके ऊपर सूक्ष्मसाम्पराय के अंतसमय तक चार प्रकृतिरूप बांधता है ॥४६०॥

[***विशेषार्थ*** : *ये दर्शनावरण के बंधस्थान हैं ।*]

खीणोत्ति चारि उदया पंचसु णिद्दासु दोसु णिद्दासु ।
एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पंचुदया ॥४६१॥

क्षीण इति चतस्र उदयाः पंचसु निद्रासु द्वयोर्निद्रयोः ।
एकस्यामुदयं प्राप्तायां क्षीणद्विचरम इति पंचोदयाः ॥४६१॥

टीका – दर्शनावरण के उदयस्थान जाग्रत जीव में मिथ्यात्व से क्षीणमोह के अंतसमय तक चक्षुदर्शनावरण आदि चार प्रकृतिरूप जानना । निद्रावान जीव में प्रमत्तसंयत तक स्त्यानगृद्धि आदि पांचों में से एक का उदय होनेपर और ऊपर क्षीणमोह के द्विचरम समय तक निद्रा, प्रचला में से एक का उदय होनेपर पांच प्रकृतिरूप जानना । ऊपर दर्शनावरण के उदय का अभाव है ॥४६१॥

[***विशेषार्थ*** *: जाग्रत अवस्था में चार का उदय है, निद्रित अवस्था में एक किसी निद्रा के उदय होनेपर पांच का उदय है ।*]

मिच्छादुवसंतोत्ति य अणियट्टीखवगपढमभागोत्ति ।
णवसत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदूवरिमे ॥४६२॥

मिथ्यात्वादुपशांत इति च अनिवृत्तिक्षपकप्रथमभाग इति ।
नवसत्ता क्षीणस्य द्विचरम इति छ षट्चतुरुपरिमे ॥४६२॥

टीका – दर्शनावरण के सत्त्वस्थान मिथ्यात्व से उपशांतमोह तक और क्षपकश्रेणी में अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग तक नौ प्रकृतिरूप ही है । ऊपर क्षीणमोह के द्विचरम समय तक छह प्रकृतिरूप ही है, क्योंकि स्त्यानगृद्धि आदि तीन अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में ही नष्ट होते हैं । क्षीणमोह के अंतसमय में निद्रा, प्रचला बिना चार प्रकृतिरूप ही है । सयोगी, अयोगी में उसके सत्त्व का अभाव है ॥४६२॥

बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच ।
चदुतियदुगं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥४६३॥

द्वाविंशतिरेकविंशतिः सप्तदश त्रयोदशैव नव पंच ।
चतुस्त्रिकद्विकं चैकं बंधस्थानानि मोहस्य ॥४६३॥

टीका – मोहनीय के बंधस्थान बाइस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पांच, चार, तीन, दो, एक प्रकृतिरूप दस जानना ॥४६३॥

बावीसमेक्कवीसं सत्तर सत्तार तेर तिसु णवयं ।
थूले पणचदुतियदुगमेक्कं मोहस्स ठाणाणि ॥४६४॥

द्वाविंशतिरेकविंशतिः सप्तदशसप्तदश त्रयोदश त्रिषु नवकं ।
स्थूले पंचचतुष्कत्रिकद्विकमेकं मोहस्य स्थानानि ॥४६४॥

टीका – मोहनीय के उन बंधस्थानों में मिथ्यात्व में बाइस प्रकृतिरूप स्थान है; सासादन में इक्कीस प्रकृतिरूप है; मिश्र, असंयत में सत्रह प्रकृतिरूप है; देशसंयत में तेरह प्रकृतिरूप है; प्रमत्तसंयतादि तीन में प्रत्येक में नौ-नौ प्रकृतिरूप है । अनिवृत्तिकरण में पांच, चार, तीन, दो, एक प्रकृतिरूप पांच स्थान हैं ॥४६४॥

उगुवीसं अट्ठारस चोद्दस चोद्दस य दस य तिसु छक्कं ।
थूले चदुतिदुगेक्कं मोहस्स य होंति धुवबंधा ॥४६५॥

एकोनविंशतिरष्टादश चतुर्दश चतुर्दश च दश च त्रिषु षट्कं ।
स्थूले चतुस्त्रिद्विकैकं मोहस्य च भवंति ध्रुवबंधाः ॥४६५॥

टीका – मिथ्यात्व से अनिवृत्तिकरण के भाग तक जो स्थान कहे, उनमें क्रम से उन्नीस, अठारह, चौदह, चौदह, दस, छह, छह, छह, चार, तीन, दो, एक तो ध्रुवबंधी-प्रकृति पायी जाती हैं । जिनका बंध होगा ही होगा उन्हें ध्रुवबंधी कहते हैं ॥४६५॥

सगसंभवधुवबंधे वेदेक्के दोजुगाणमेक्के य ।
ठाणो वेदजुगाणं भंगहदे होंति तब्भंगा ॥४६६॥

स्वकसंभवध्रुवबंधे वेदे एका द्वियुगयोरेका च ।
स्थानं वेदयुगानां भंगहते भवंति तद्भंगाः ॥४६६॥

टीका – ऊपर बतायी हुयी अपनी-अपनी ध्रुवबंधी प्रकृतियों में यथासंभव तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-शोक युगल में से एक और रति-अरति युगल में से एक-एक मिलानेपर स्थान होता है । वेदों के प्रमाण को युग्म के प्रमाण से गुणा करनेपर जो-जो प्रमाण हो, उतने-उतने एक-एक स्थान में प्रकृति के बदलने से भंग जानना । वही कहते हैं –

मिथ्यात्व गुणस्थान के बंधकूट में एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा ये उन्नीस तो ध्रुवबंधी और तीन वेदों में से एक वेद, दो युगलों में से एक-एक – ऐसे बाइस-प्रकृतिरूप स्थान है । यहां कूट के आकार की ऐसी रचना होती है, इसलिए यहां कूट संज्ञा दी है ।

२	भ	जु
२	२	
१	१	१
१६		
१		

वहां तीन वेदों को हास्य-रति के युग्म से गुणा करनेपर छह हुये, इसलिए इस स्थान में छह भंग जानना । कैसे ? उन्नीस ध्रुवबंधी, पुरुषवेद, हास्य-रति ऐसा एक भंग; पुरुषवेद की जगह स्त्रीवेद होनेपर दूसरा भंग; वहां नपुंसकवेद होनेपर तीसरा भंग, पुनश्च हास्य-रति की जगह शोक-अरति होनेपर ऐसे ही तीन भंग और होंगे – इसतरह छह भंग जानना । बाइस का बंध छह प्रकार से होता है । इसी तरह अन्यत्र भी प्रकृति बदलने से भंग जानना ।

पुनश्च सासादन के बंधकूट में सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा ये अठारह तो ध्रुवबंधी हैं और इनमें पुरुषवेद, स्त्रीवेद दो में से एक वेद और दोनों युगलों में से एक-एक मिलानेपर इक्कीस-प्रकृतिरूप स्थान होता है । वहां दो वेदों को दो युग्म से गुणा करनेपर चार भंग होते हैं ।

२	भ	जु
२	२	
०	१	१
१६		
०		

मिश्र के बंधकूट में बारह कषाय, भय, जुगुप्सा ये चौदह ध्रुवबंधी, इनमें पुरुषवेद और दो युगलों में से एक-एक मिलानेपर सत्रह प्रकृतिरूप स्थान होता है । वहां एक वेद को दो युग्म से गुणा करनेपर दो भंग होते हैं ।

२
२ | २
१
१२

असंयत में भी मिश्रवत् चौदह ध्रुवबंधी, पुरुषवेद, दो युग्म मिलकर सत्रह-प्रकृतिरूप स्थान और दो भंग जानना ।

पुनश्च देशसंयत के बंधकूट में आठ कषाय, भय, जुगुप्सा ये दस ध्रुवबंधी, इनमें पुरुषवेद और दो युगलों में से एक-एक मिलानेपर तेरह-प्रकृतिरूप स्थान होता है । वहां एक वेद को दो युग्म से गुणा करनेपर दो भंग होते हैं ।

२
२| २
१
८

पुनश्च प्रमत्तसंयत के बंधकूट में चार कषाय, भय, जुगुप्सा ये छह ध्रुवबंधी, इनमें पुरुषवेद और दो युगलों में से एक-एक मिलानेपर नौ-प्रकृतिरूप स्थान होता है । वहां एक वेद को दो युग्म से गुणा करनेपर दो भंग होते हैं । यहां अरति, शोक बंध से व्युच्छित्तिरूप हुये ।

२
२| २
१
४

पुनश्च अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण के बंधकूट में चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा ये ध्रुवबंधी छह, इनमें पुरुषवेद, हास्य, रति मिलकर नौ-प्रकृतिरूप स्थान होता है । यहां भंग एक ही है ।

२
२
१
४

यहां *(आठवें गुणस्थान के सातवें भाग में)* हास्य, रति, भय, जुगुप्सा बंध से व्युच्छित्तिरूप हुये ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण के बंधकूट में चार कषाय ध्रुवबंधी, उनमें पुरुषवेद मिलकर पांच-प्रकृतिरूप स्थान होता है । यहां पुरुषवेद व्युच्छित्तिरूप हुआ । वहां भंग एक । पुनश्च उसीके दूसरे भाग में कषायचतुष्क ध्रुवबंधी — [४] चार-प्रकृतिरूप स्थान होता है । वहां भंग एक । वहां क्रोध व्युच्छित्तिरूप हुआ । पुनश्च तीसरे भाग में तीन कषाय ध्रुवबंधीरूप स्थान [३] होता है । वहां भंग एक । यहां मान व्युच्छित्तिरूप हुआ । पुनश्च चौथे भाग में दो कषाय ध्रुवबंधी दो-प्रकृतिरूप स्थान होता है [२], वहां भंग एक । यहां माया व्युच्छित्तिरूप हुयी । पुनश्च पांचवें भाग में लोभ ध्रुवबंधी प्रकृतिरूप — [१] एक-प्रकृतिरूप स्थान होता है । वहां भंग एक जानना ॥४६६॥

१
४

ऐसे भंग कहे उनकी संख्या कहते हैं —

छब्बावीसे चदु इगिवीसे दो हो हवंति छट्ठोत्ति ।
एक्केक्कमदो भंगो बंधट्ठाणेसु मोहस्स ॥४६७॥

षट् द्वाविंशतौ चत्वार एकविंशतौ द्वौ द्वौ भवंति षष्ट-इति ।
एकैकोतो भंगों बंधस्थानेषु मोहस्य ॥४६७॥

टीका – मिथ्यात्व से अनिवृत्तिकरण तक मोहनीय के बंधस्थानों में भंग बाइस-प्रकृतिरूप स्थान में छह, इक्कीस-प्रकृतिरूप में चार, ऊपर प्रमत्त तक दो-दो, ऊपर सर्व स्थानों में एक-एक जानना ॥४६७॥

दस वीसं एक्कारस तेत्तीसं मोहबंधठाणाणि ।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि य सामण्णे ॥४६८॥

दशसु विंशतिरेकादश त्रयस्त्रिंशत् मोहबंधस्थानानि ।
भुजाकाराल्पतराणि च अवस्थितान्यपि च सामान्ये ॥४६८॥

टीका – पहले मोहनीय के बंधस्थान दस कहे उनके भंगों की विवक्षा न करते हुये भुजाकारबंध बीस हैं, अल्पतरबंध ग्यारह हैं, अवस्थितबंध तैंतीस हैं ॥४६८॥

इनका लक्षण कहते हैं –

अप्पं बंधंतो बहुबंधे बहुगादु अप्पबंधेवि ।
उभयत्थ समे वंधे भुजगारादी कमे होंति ॥४६९॥

अल्पं बध्नंतो बहुबंधे बहुकादल्पबंधेऽपि ।
उभयत्र समे बंधे भुजाकारादयः क्रमेण भवंति ॥४६९॥

टीका – अल्प अर्थात् थोड़ी प्रकृतियों को बांधनेवाला पश्चात् अनंतर समय में बहुत प्रकृतियों को बांधता है, तब भुजाकारबंध होता है । पुनश्च बहुत प्रकृतियों को बांधनेवाला पश्चात् अनंतर समय में थोड़ी प्रकृतियों को बांधता है, तब अल्पतरबंध होता है । इन दोनों में थोड़ी या बहुत प्रकृतियों को बांधनेवाले तथा चकार से दोनों अवक्तव्य बंधों में भी जितनी प्रकृतियां पहले बांधता था, उतनी ही पश्चात् द्वितीयादि समयों में बांधता है, तब अवस्थितबंध होता है ।

आगे सामान्य अवक्तव्य भंगों की संख्या कहते हैं –

सामण्णअवत्तव्वो ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे ।
एक्कं च होदि एत्थवि दो चेव अवट्ठिदा भंगा ॥४७०॥

सामान्यावक्तव्यः अवतरमाणेः एको मरणे ।
एकश्च भवत्यत्रापि द्वौ चैवावस्थितौ भंगौ ॥४७०॥

टीका – सामान्यपने से भंगों की विवक्षा न करते हुये अवक्तव्यबंध उपशमश्रेणी उतरने में एक है और एक वहां मरण होनेपर होता है – ऐसे दो हैं । *(० → १; ० → १७)*

पुनश्च द्वितीयादि समयों में वैसे ही बंध होनेपर अवस्थितबंध भी यहां दो होते हैं । अब इन भुजाकारादि बंधों के उपजने का विधान कहते हैं –

उपशमश्रेणी उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती एक लोभ संज्वलन को बांधनेवाला है, उतरकर माया, लोभ दो को बांधता है अथवा बद्धायु वहां मरकर देव-असंयत होकर सत्रह को बांधता है – ऐसे एक प्रकृतिरूप स्थान में दो भुजाकार हुये। *(१ → २; १ → १७)*

पुनश्च उन दोनों को बांधनेवाला उतरकर मानसहित तीन को बांधता है, अथवा मरकर देव-असंयत होकर सत्रह को बांधता है – ऐसे दो-प्रकृतिरूप स्थान में भी दो भुजाकार हुये । *(२ → ३; २ → १७)*

पुनश्च उन तीनों को बांधनेवाला नीचे उतरकर चार संज्वलन को बांधता है अथवा मरकर देव-असंयत होकर सत्रह को बांधता है – ऐसे तीन-प्रकृतिरूप स्थान में भी दो भुजाकार हुये । *(३ → ४; ३ → १७)*

पुनश्च चार को बांधनेवाला उतरकर नीचे के भाग में पुरुषवेद सहित पांच को बांधता है अथवा मरकर देव-असंयत होकर सत्रह को बांधता है – ऐसे चार-प्रकृतिरूप बंधस्थान में दो भुजाकार हुये । *(४ → ५; ४ → १७)*

पुनश्च पांच को बांधनेवाला उतरकर अपूर्वकरण में नौ को बांधता है अथवा मरकर देव-असंयत होकर सत्रह को बांधता है – ऐसे पांच-प्रकृतिरूप बंधस्थान में दो भुजाकार हुये । *(५ → ९; ५ → १७)*

पुनश्च अपूर्वकरण, अप्रमत्त, प्रमत्त गुणस्थान में नौ को बांधते हुये क्रम से उतरकर देशसंयत होकर तेरह बांधता है अथवा असंयत होकर या मरकर देव-असंयत होकर सत्रह बांधता है; अथवा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि *(छठवें में से गिरकर)* सासादन होकर इक्कीस बांधता है अथवा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व में जाकर बाइस बांधता है – ऐसे नौ-प्रकृतिरूप बंधस्थान में चार भुजाकार हुये । *(९ → १३; ९ → १७; ९ → २१; ९ → २२)*

पुनश्च तेरह प्रकृतियों को बांधनेवाला, असंयत या देव-असंयत होकर सत्रह बांधता है अथवा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि सासादन में जाकर इक्कीस बांधता है अथवा प्रथमोपशम या वेदक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व में जाकर बाइस बांधता है – ऐसे तेरह-प्रकृतिरूप बंधस्थान में तीन भुजाकार हुये । *(१३ → १७; १३ → २१; १३ → २२)*

पुनश्च सत्रह प्रकृतियों को बांधनेवाला प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि सासादन में जाकर इक्कीस बांधता है अथवा प्रथमोपशम या वेदक सम्यग्दृष्टि तथा मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यात्व में जाकर बाइस प्रकृतियों का बंध करता है – ऐसे सत्रह-प्रकृतिरूप बंधस्थान में दो भुजाकार हुये । *(१७ → २१; १७ → २२)*

पुनश्च इक्कीस प्रकृतियों को बांधनेवाला मिथ्यात्व में जाकर बाइस का बंध करता है – ऐसे इक्कीस-प्रकृतिरूप बंधस्थान में एक भुजाकार हुआ । *(२१ → २२)*

इसतरह भुजाकार बंध बीस जानना ।

अब अल्पतरबंध कहते हैं –

अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि तीन करण करते हुये अनिवृत्तिकरण के अंतसमय में बाइस प्रकृतियों का बंध करते हुये, अनंतर समय में प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि होकर अथवा सादि मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि होकर, दोनों ही अप्रत्याख्यानावरण का उदय होनेपर असंयत होकर सत्रह बांधते हैं अथवा प्रत्याख्यानावरण का उदय होनेपर देशसंयत होकर तेरह बांधते हैं अथवा संज्वलन का उदय होनेपर अप्रमत्तसंयत होकर नौ बांधते हैं – ऐसे बाइस-प्रकृतिरूप बंधस्थान में तीन अल्पतर हैं । *(२२ → १७; २२ → १३; २२ → ९)*

पुनश्च वेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत सत्रह का बंध करते हुये देशसंयत होकर तेरह का बंध करता है अथवा अप्रमत्तसंयत होकर नौ का बंध करता है – ऐसे सत्रह के बंधस्थान में दो अल्पतर हैं । *(१७ → १३; १७ → ९)*

पुनश्च तेरह को बांधनेवाला अप्रमत्त होकर नौ बांधता है *(१३ → ९)* । नौ बांधनेवाला अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में पांच बांधता है *(९ → ५)* । पांच बांधनेवाला दूसरे भाग में चार बांधता है *(५ → ४)* । चार बांधनेवाला तीसरे भाग में तीन बांधता है *(४ → ३)* । तीन बांधनेवाला चौथे भाग में दो बांधता है *(३ → २)* । दो बांधनेवाला पांचवें भाग में एक बांधता है *(२ → १)* । इसतरह इन स्थानों में एक-एक ऐसे छह अल्पतर हैं ।

इसप्रकार सर्व अल्पतरबंध ग्यारह जानना ।

पुनश्च पूर्वोक्त दो अवक्तव्य, बीस भुजाकार, ग्यारह अल्पतर इनमें जितनी प्रकृतियों का बंध कहा उतनी ही प्रकृतियों का बंध द्वितीयादि समयों में जहां हो, वहां अवस्थितबंध कहते हैं, इसलिए अवस्थितबंध तैंतीस जानना ॥४७०॥

आगे विशेष भुजाकारादि की संख्या कहते हैं –

सत्तावीसहियसयं पणदालं पंचहत्तरिहियसयं ।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि विसेसेण ॥४७१॥

सप्तविंशाधिकशतं पंचचत्वारिंशत्पंचसप्तत्यधिकशतं ।
भुजाकाराल्पतराणि च अवस्थितान्यपि विशेषेण ॥४७१॥

टीका – विशेषपने से भंगों की अपेक्षा भुजाकारबंध एक सौ सत्ताइस हैं, अल्पतर पैंतालीस हैं, अवस्थित एक सौ पचहत्तर हैं । उन भुजाकारों का कथन करते हैं –

मिथ्यात्व में बाइस का बंध, उससे अधिक मोहनीय का बंध नहीं है इसलिए वहां तो शून्य है ।

[***विशेषार्थ*** *: बाइस-प्रकृतिरूप स्थान में भुजाकारबंध नहीं पाया जाता ।*]

सासादन में बंधयोग्य प्रकृतियां इक्कीस वहां भंग चार, इसकारण सासादन से मिथ्यात्व में आनेपर एक-एक भंग की अपेक्षा मिथ्यात्व में बाइस-प्रकृतिरूप बंध के छह भंगों द्वारा भुजाकार चौबीस हुये ।

इसीतरह मिश्र में सत्रह के बंध में दो भंग, यहां से मिथ्यात्व में आनेपर मिथ्यात्व में बाइस के बंध में छह भंगों की अपेक्षा भुजाकार बारह हुये ।

असंयत में सत्रह का बंध दो प्रकार का *(दो भंग)*, यहां से सासादन में आनेपर इक्कीस का बंध चार प्रकार का, उनकी अपेक्षा आठ भुजाकार तथा असंयत से मिथ्यात्व में आनेपर वहां बाइस का बंध छह प्रकार का, उनकी अपेक्षा बारह भुजाकार – ऐसे बीस हुये ।

देशसंयत में तेरह का बंध दो प्रकार का, यहां से मिश्र या असंयत में अथवा मरकर देव-असंयत में आनेपर वहां सत्रह का बंध दो प्रकार का, उनकी अपेक्षा चार भुजाकार; तथा सासादन में आनेपर वहां इक्कीस का बंध चार प्रकार का, उनकी अपेक्षा आठ भुजाकार; तथा मिथ्यात्व में आनेपर वहां बाइस का बंध छह प्रकार का, उनकी अपेक्षा बारह भुजाकार – ऐसे चौबीस हुये ।

प्रमत्तसंयत में नौ का बंध दो प्रकार का, यहां से देशसंयत में आनेपर वहां तेरह का बंध दो प्रकार का उनकी अपेक्षा चार भुजाकार; तथा मिश्र या असंयत में आनेपर वहां सत्रह का बंध दो प्रकार का, उसकी अपेक्षा चार भुजाकार; तथा सासादन में आनेपर वहां इक्कीस का बंध चार प्रकार का, उनकी अपेक्षा आठ भुजाकार; तथा मिथ्यात्व में आनेपर वहां बाइस का बंध छह प्रकार का, उनकी अपेक्षा बारह भुजाकार – ऐसे सर्व अट्ठाइस हुये ।

अप्रमत्त में नौ का बंध एक प्रकार का, यहां से मरकर देव-असंयत होनेपर वहां सत्रह का बंध दो प्रकार का, उनकी अपेक्षा दो भुजाकार हैं । प्रमत्त में आनेपर वहां नौ का बंध है ही, इसलिए उनकी अपेक्षा भुजाकार नहीं कहा ।

अपूर्वकरण में नौ का बंध, वहां भी इसीप्रकार दो भुजाकार हैं । अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में पांच का बंध एक प्रकार का, यहां से अपूर्वकरण में आनेपर वहां नौ का बंध एक प्रकार का, उसकी अपेक्षा एक भुजाकार और मरकर देव-असंयत होनेपर

वहां सत्रह का बंध दो प्रकार का, उनकी अपेक्षा दो भुजाकार – ऐसे तीन हुये ।

अनिवृत्तिकरण के दूसरे भाग में चार का बंध, यहां से प्रथम भाग में आनेपर पांच का बंध करता है, उसकी अपेक्षा एक भुजाकार और मरकर देव-असंयत होनेपर वहां सत्रह का बंध दो प्रकार का, उनकी अपेक्षा दो भुजाकार – ऐसे तीन हुये । इसीतरह तीसरे भाग में तीन का बंध, यहां से दूसरे भाग में आनेपर चार के बंध की अपेक्षा एक और देव-असंयत की अपेक्षा दो – ऐसे तीन हुये । चौथे भाग में दो का बंध, यहां से तीसरे भाग में आनेपर तीन के बंध की अपेक्षा एक भुजाकार और देव-असंयत में सत्रह के बंध की अपेक्षा दो – ऐसे तीन हुये । पांचवें भाग में एक का बंध, यहां से चौथे भाग में आनेपर दो के बंध की अपेक्षा एक और देव-असंयत में सत्रह के बंध की अपेक्षा दो – ऐसे तीन भुजाकार हुये ।

ऐसे सर्व मिलकर भुजाकारबंध एक सौ सत्ताइस हैं ॥४७१॥

यहां इन ही को कहते हैं –

णभ चउवीसं बारस वीसं चउरट्ठवीस दो ट्ठो य ।
थूले पणगादीणं तिय तिय मिच्छादिभुजगारा ॥४७२॥

नभश्चतुर्विंशं द्वादश विंशं चतुरष्टविंशं द्वौ द्वौ च ।
स्थूले पंचकादीनां त्रयस्त्रयो मिथ्यादिभुजाकाराः ॥४७२॥

टीका – भंगों की विवक्षा से विशेष भुजाकार मिथ्यात्व में नास्ति, सासादन में चौबीस, मिश्र में बारह, असंयत में बीस, देशसंयत में चौबीस, प्रमत्त में अट्ठाइस, अप्रमत्त में दो, अपूर्वकरण में दो, स्थूल जो अनिवृत्तिकरण उसमें पांच आदि के बंध में तीन-तीन भुजाकार उनके पांचों भागों में पंद्रह, सर्व मिलकर एक सौ सत्ताइस भुजाकारबंध हैं ॥४७२॥

अप्पदरा पुण तीसं णभ णभ छट्ठोण्णि दोण्णि णभ एक्कं ।
थूले पणगादीणं एक्केक्कं अंतिमे सुण्णं ॥४७३॥

अल्पतराः पुनस्त्रिंशन्नभोनभः षट् द्वौ द्वौ नभ एक : ।
स्थूले पंचकादीनामेकैकः अंतिमे शून्यं ।।४७३।।

टीका – अब अल्पतरबंध कहते हैं – मिथ्यात्व में बाइस का बंध छह प्रकार का, यहां से मिश्र, असंयत में जानेपर वहां सत्रह का बंध दो प्रकार का, यहां एक-एक प्रकार में छह-छह प्रकार के बाइस के बंध की अपेक्षा, बारह अल्पतर; देशसंयत में जानेपर वहां तेरह का बंध दो प्रकार का, उनकी अपेक्षा बारह अल्पतर; तथा अप्रमत्त में जानेपर वहां नौ का बंध एक प्रकार का, उसकी अपेक्षा छह अल्पतर – ऐसे तीस हुये ।

मिथ्यादृष्टि जीव सासादन, प्रमत्त बिना अप्रमत्त तक जाता है, इसलिए सासादन के इक्कीस के बंध की अपेक्षा चार प्रकार और प्रमत्त के नौ के बंध की अपेक्षा दो प्रकार के अल्पतर यहां नहीं कहे । पुनश्च सासादन से गिरकर मिथ्यादृष्टि ही होता है इसलिए इक्कीस के बंध संबंधी भुजाकारबंध पाया जाता है, परंतु सासादनवाला ऊपर नहीं चढ़ता इसलिए अल्पतर का अभाव है, इसलिए शून्य कहा । पुनश्च मिश्र में से गिर जाये तो मिथ्यात्व में आता है, वहां भुजाकारबंध ही पाया जाता है और यदि चढ़े तो असंयत में जाता है । यहां मिश्र में जो सत्रह का बंध था, वही असंयत में रहा, वहां अवस्थितबंध पाया जाता है, इसलिए मिश्र में अल्पतरबंध नहीं है, शून्य है ।

पुनश्च असंयत में दो प्रकार का सत्रह का बंध, यहां से देशसंयत में जानेपर वहां तेरह का बंध दो प्रकार का, उनकी अपेक्षा चार अल्पतर और अप्रमत्त में जानेपर वहां नौ का बंध एक प्रकार का, उसकी अपेक्षा दो अल्पतर – ऐसे छह । पुनश्च देशसंयम में तेरह का बंध दो प्रकार का, यहां से अप्रमत्त में जानेपर, वहां नौ का बंध एक प्रकार का, उसकी अपेक्षा दो अल्पतर हैं । पुनश्च प्रमत्त में नौ का बंध दो प्रकार का, यहां से अप्रमत्त में जानेपर वहां नौ का बंध एक प्रकार का, उसकी अपेक्षा दो अल्पतर हैं ।

यहां प्रश्न – चूंकि प्रमत्त और अप्रमत्त में नौ ही का बंध पाया जाता है, इसलिए यहां तो समान संख्या है, इसकारण अवस्थित पाया जाता है, अल्पतर कैसे कहते हो ?

उसका समाधान — प्रमत्त में अरति, शोक के बंध की व्युच्छित्ति हुयी, उस अपेक्षा अल्पतरबंध भंगविवक्षा में पाया जाता है ।

पुनश्च अप्रमत्त से अपूर्वकरण में जानेपर, यहां दोनों में समान नौ का बंध वहां अल्पतर नहीं होता, इसलिए शून्य है ।

अपूर्वकरण में नौ का बंध एक प्रकार का और अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में पांच का बंध एक प्रकार का उसकी अपेक्षा एक अल्पतर है ।

अनिवृत्तिकरण में पांच का बंध एक प्रकार का, वहां चार का बंध एक प्रकार का होनेपर उसकी अपेक्षा एक अल्पतर; तथा चार का बंध एक प्रकार का, वहां तीन का बंध एक प्रकार का होनेपर उसकी अपेक्षा एक अल्पतर; तथा तीन का बंध एक प्रकार का, वहां दो का बंध एक प्रकार का होनेपर उसकी अपेक्षा एक अल्पतर; तथा दो का बंध एक प्रकार का, वहां एक का बंध एक प्रकार का होनेपर उसकी अपेक्षा एक अल्पतर है ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण के पांचवें भाग में एक का बंध, यहां से सूक्ष्मसाम्पराय में जानेपर वहां बंध का अभाव है, वहां अवक्तव्यबंध पाया जाता है, अल्पतर नहीं, इसलिए शून्य है ।

[***विशेषार्थ*** *: सूक्ष्मसाम्पराय में से अनिवृत्तिकरण में आनेपर अवक्तव्यबंध होता है ।*]

इसतरह अल्पतरबंध पैंतालीस हैं ।

एक सौ सत्ताइस भुजाकार कहे, पैंतालीस अल्पतर कहे, तीन अवक्तव्य कहेंगे । इन सभी में जितनी-जितनी प्रकृतियों का पहले समय बंध होता है, उतनी ही प्रकृतियों का जहां द्वितीयादि समयों में बंध होता हो, वहां अवस्थितबंध कहते हैं; इसलिए अवस्थितबंध एक सौ पचहत्तर हैं । *(१२७ + ४५ + ३ = १७५)* ॥४७३॥

भेदेण अवत्तव्वा ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे ।
दो चेव होंति एत्थवि तिण्णेव अवट्ठिदा भंगा ॥४७४॥

भेदेन अवक्तव्या अवतरति एकको मरणे ।
द्वौ चैव भवतोऽत्रापि त्रय एवावस्थिता भंगाः ॥४७४॥

टीका – पुनश्च भंगविवक्षा होनेपर विशेष द्वारा अवक्तव्यबंध कहते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मोहनीय के बंध से रहित है । वहां से उतरकर अनिवृत्तिकरण को प्राप्त कर लोभ संज्वलन को बांधता है – एक तो यह अवक्तव्यबंध है तथा चढ़ते और उतरते समय बद्धायु सूक्ष्मसाम्पराय मरकर देव-असंयत होकर दो प्रकार से सत्रह प्रकृतियों को बांधता है, उनकी अपेक्षा दो अवक्तव्य – ऐसे तीन अवक्तव्यबंध हैं । यहां भी द्वितीयादि समयों में समान प्रकृतियों का बंध होनेपर तीन अवस्थितबंध होते हैं, जो ऊपर कहे ही थे ॥४७४॥

इसतरह मोहनीय के सामान्य-विशेष भुजाकारादि चार प्रकार के बंध बताकर, अब मोहनीय ही के उदयस्थान कहते हैं –

दश णव अट्ठ य सत्त य छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च ।
उदयट्ठाणा मोहे णव चैव य होंति णियमेण ॥४७५॥

दश नवाष्ट च सप्त च षट् पंच चत्वारि द्वे एकं च ।
उदयस्थानानि मोहे नव चैव च भवंति नियमेन ॥४७५॥

टीका – दस, नौ, आठ, सात, छह, पांच, चार, दो, एक प्रकृतिरूप मोहनीय के उदयस्थान नियम से नौ हैं ॥४७५॥

मिच्छं मिस्सं सगुणो वेदगसम्मेव होदि सम्मत्तं ।
एक्का कसायजादी वेददुजुगलाणमेक्कं च ॥४७६॥

मिथ्यं मिश्रं स्वगुणे वेदकसम्ये एव भवति सम्यक्त्वं ।
एका कषायजातिर्वेदद्वियुगलयोरेकं च ॥४७६॥

टीका – मोहनीय की उदयप्रकृतियों में से मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियां मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) अपने-अपने गुणस्थानों में उदयरूप होती हैं; और सम्यक्त्वमोहनीय है, वह वेदक सम्यग्दृष्टि के असंयतादि चार गुणस्थानों में

उदयरूप होती है । इसतरह गुणस्थानों में उदय नियम को दिखाकर उदय के कूटादिक कहते हैं । अनंतानुबंधी आदि चारों कषायों की क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चार जाति, उनमें से एक जाति का उदय पाया जाता है ।

[***विशेषार्थ*** *: क्रोध या मान या माया या लोभ का उदय पाया जाता है । मिथ्यात्व गुणस्थान में अनंतानुबंधी आदि चारों प्रकार के क्रोध का या चारों प्रकार के मान का या माया का या लोभ का उदय पाया जाता है ।*]

तीन वेदों में से एक वेद का उदय पाया जाता है, हास्य-शोक युगल और रति-अरति युगल इन दो युगलों में से एक-एक का उदय पाया जाता है ॥४७६॥

भयसहियं च जुगुच्छा सहियं दोहिंवि जुदं च ठाणाणि ।
मिच्छादिअपुव्वंते चत्तारि हवंति णियमेण ॥४७७॥

भयसहितं च जुगुप्सासहितं द्वाभ्यामपि युतं च स्थानानि ।
मिथ्याद्यपूर्वांते चत्वारि भवंति नियमेन ॥४७७॥

टीका – पुनश्च एक जीव के एक काल में भय ही का उदय हो अथवा जुगुप्सा ही का उदय हो अथवा दोनों का उदय हो अथवा दोनों का उदय न हो, इसलिए इनकी अपेक्षा चार कूट करना । कूट के आकार ऐसी रचना करना —

अनंतानुबंधीसहित मिथ्यात्व के कूट

२ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	० २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १

वहां सबसे नीचे एक मिथ्यात्व का एक अंक लिखना । ऊपर अनंतानुबंधी आदि चार-चार कषाय लिखनेरूप यथासंभव क्रोधादि कषायों के चार जगह चार-चार के अंक, जहां जिसका उदय हो वहां वह जानना । उसके ऊपर तीन वेदों में से एक वेद के तीन जगह एक-एक के अंक लिखना, जिसका उदय हो, वही वहां

जानना । उसके ऊपर दो युगलों में से एक-एक प्रकृति का उदय, उनके दो जगह दो-दो के अंक लिखना, वहां जिन हास्य-रति का अथवा शोक-अरति का उदय हो, वे ही वहां जानना । उसके ऊपर प्रथम कूट में भय, जुगुप्सा दोनों जानना, दूसरे कूट में मात्र भय जानना, तीसरे कूट में मात्र जुगुप्सा जानना, चौथे कूट में दोनों के अभावरूप शून्य जानना । उनके चारों कूटों में क्रम से दो, एक, एक, बिंदी लिखना — ऐसे चार कूट करना ।

प्रथम कूट में दस प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना, दूसरे और तीसरे कूट में नौ-नौ प्रकृतिरूप उदयस्थान तथा चौथे कूट में आठ प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना । ये चारों कूट अनंतानुबंधीसहित मिथ्यात्व गुणस्थान के जानना । इन चारों कूटों में से मिथ्यात्व को दूर करनेपर चारों कूट सासादन के जानना ।

सासादन के कूट

२ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४	० २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४

पुनश्च इनमें मिथ्यात्व की जगह सम्यग्मिथ्यात्व लिखना और कषाय चार-चार लिखे थे वहां तीन-तीन ही लिखना क्योंकि ऊपर के *(१ ले, २ रे गुणस्थान के)* कूटों में एक जीव के एक काल में जो क्रोध का उदय है, वह अनंतानुबंधी आदि चाररूप है, अब इन कूटों में अनंतानुबंधी बिना तीनरूप ही है । ऐसे ही मानादि का उदय जानना । ये चार कूट मिश्र गुणस्थान के जानना ।

मिश्र के कूट

२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १

पुनश्च इनमें सम्यग्मिथ्यात्व की जगह सम्यक्त्वमोहनीय लिखनेपर चार कूट वेदक सम्यक्त्व युत असंयत गुणस्थान के जानना ।

वेदक असंयत के कूट

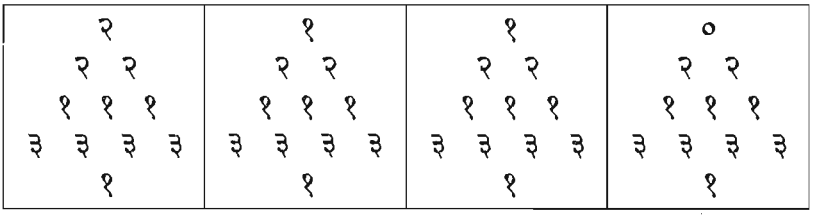

पुनश्च इनमें जहां तीन-तीन कषाय लिखे हैं, वहां दो-दो कषाय लिखना, क्योंकि अप्रत्याख्यान का भी उदय नहीं है — सो ये चार कूट देशसंयत के होते हैं ।

वेदक देशसंयत के कूट

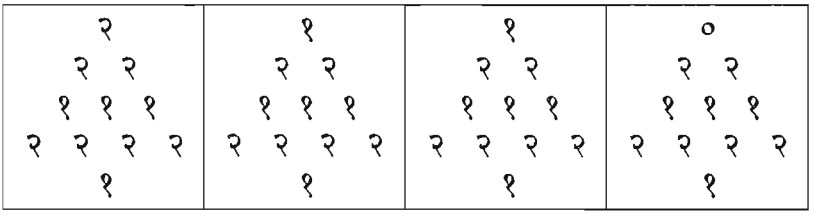

पुनश्च इनमें से प्रत्याख्यान घटाना, दो-दो कषाय लिखे थे, वहां एक-एक कषाय लिखना, ये चारों कूट प्रमत्त के होते हैं ।

वेदक प्रमत्त के कूट

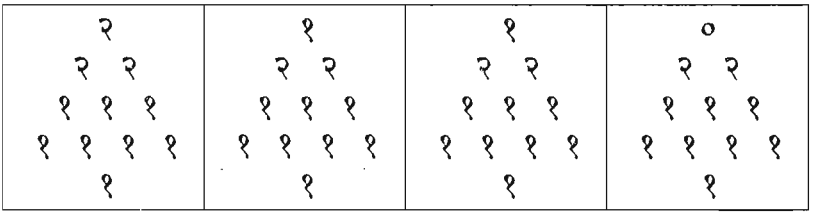

पुनश्च प्रमत्तवत् चारों कूट अप्रमत्त के हैं ।

वेदक अप्रमत्त के कूट

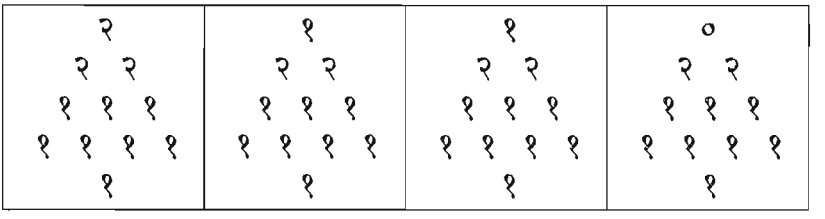

इनमें से सम्यक्त्व प्रकृति घटानेपर ये चारों कूट अपूर्वकरण के होते हैं ।

अपूर्वकरण के कूट

२ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	० २ २ १ १ १ १ १ १ १

इसतरह मिथ्यात्व से अपूर्वकरण तक नियम से चार-चार कूट हैं । यहां *(आठवें गुणस्थान में)* हास्यादि छह की उदय व्युच्छित्ति हुयी, इसलिए अनिवृत्तिकरण के पहले भाग में संज्वलन चार कषायों में से एक कषाय, तीन वेदों में से एक वेद के उदयरूप एक ही कूट है । इनमें से वेद को घटानेपर दूसरे भाग में संज्वलन चार कषायों में से एक के उदयरूप एक ही कूट है । इनमें से क्रोध को घटानेपर तीसरे भाग में तीन संज्वलन कषायों में से एक के उदयरूप एक ही कूट है । इनमें से मान को घटानेपर चौथे भाग में दो संज्वलन कषायों में से एक के उदयरूप एक ही कूट है । पुनश्च इनमें से माया को घटानेपर पांचवें भाग में बादर संज्वलन लोभ के उदयरूप एक ही कूट है ।

अनिवृत्तिकरण के कूट

प्रथम भाग	द्वितीय भाग	तृतीय भाग	चतुर्थ भाग	पंचम भाग
१ १ १ १ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १	१ १	१

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय में सूक्ष्म लोभ के उदयरूप एक ही कूट है ।

सूक्ष्मसाम्पराय कूट

१

इसतरह कूटाकार द्वारा उदय कहा है ॥४७७॥

आगे मिथ्यात्व में तथा असंयतादि चार गुणस्थानों में विशेष पाया जाता है, वह कहते हैं —

अणसंजोजिदसम्मे मिच्छं पत्ते ण आवलित्ति अणं ।
उवसमखइये सम्मं णहि तत्थवि चारि ठाणाणि ॥४७८॥

अनसंयोजितसामान्ये मिथ्यं प्राप्ते न आवलीति अनं ।
उपशमक्षायिके सम्यं नहि तत्रापि चत्वारि स्थानानि ॥४७८॥

टीका – अनंतानुबंधी की जिसके विसंयोजना हुयी ऐसा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व कर्म के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होता है, उसके आवली काल तक अनंतानुबंधी का उदय नहीं है; क्योंकि मिथ्यात्व को प्राप्त होकर पहले समय में जो समयप्रबद्ध बांधता है उसका एक आवली काल तक अपकर्षण द्वारा उदयावली में प्राप्त करने का सामर्थ्य नहीं है और अनंतानुबंधी का बंध मिथ्यात्व में है । पहले अनंतानुबंधी थी, उसका विसंयोजन किया इसलिए उस जीव के आवली काल प्रमाण अनंतानुबंधी का उदय नहीं है, उसकी अपेक्षा मिथ्यात्व में अनंतानुबंधी रहित चार कूट और जानना ।

अनंतानुबंधी रहित मिथ्यात्व के कूट

२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १

इनमें से पहले कूट में नौ प्रकृतिरूप, दूसरे-तीसरे में आठ प्रकृतिरूप और चौथे में सात प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना ।

पुनश्च उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व में सम्यक्त्वमोहनीय का उदय नहीं है, वेदक सम्यक्त्व में ही है; इसलिए असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त के पहले जो सम्यक्त्वमोहनीय सहित चार-चार कूट किये हैं, वे वेदक सम्यक्त्वी की अपेक्षा जानना । उन सब कूटों में से सम्यक्त्वमोहनीय को घटानेपर उपशम और क्षायिक की अपेक्षा असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त में चार-चार कूट और होते हैं ।

वेदक रहित असंयत कूट

२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३

वेदक रहित देशसंयत कूट

२ २ २ १ १ १ २ २ २ २	१ २ २ १ १ १ २ २ २ २	१ २ २ १ १ १ २ २ २ २	० २ २ १ १ १ २ २ २ २

वेदक रहित प्रमत्त कूट

२ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	० २ २ १ १ १ १ १ १ १

वेदक रहित अप्रमत्त कूट

२ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	० २ २ १ १ १ १ १ १ १

पुव्विल्लेसुवि मिलिदे अड चउ चत्तारि चदुसु अट्ठेव ।
चत्तारि दोण्णि एक्कं ठाणा मिच्छादिसुहुमंते ॥४७९॥

पूर्व्येष्वपि मिलितेषु अष्ट चत्वारि चत्वारि चतुर्षु अष्टैव ।
चत्वारि द्वे एकं स्थानानि मिथ्यादिसूक्ष्मांते ॥४७९॥

टीका – उन पश्चात् कहे हुये कूटों में पहले कहे हुये कूट मिलानेपर मिथ्यात्व में आठ; सासादन-मिश्र में चार-चार, असंयतादि चार में आठ-आठ; अपूर्वकरण में चार; अनिवृत्तिकरण में दो; सूक्ष्मसाम्पराय में एक ~~कूट~~ स्थान जानना ॥४७९॥

इनमें अपुनरुक्त स्थान कहते हैं –

दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ ।
ठाणा छादि तियं च य चदुवीसगदा अपुव्वोत्ति ॥४८०॥

दशनवनवादि चतुस्त्रिक त्रिस्थानं नवाष्ट सप्तसप्तादि चतुष्कं ।
स्थानानि षडादि त्रिकं च च चतुर्विंशगता अपूर्व इति ॥४८०॥

टीका – मिथ्यात्व में दस प्रकृतिरूप आदि चार उदयस्थान हैं – वे दस प्रकृतिरूप, नौ प्रकृतिरूप, आठ प्रकृतिरूप, सात प्रकृतिरूप हैं । सासादन और मिश्र में नौ आदि तीन-तीन स्थान हैं – वे नौ, आठ, सात प्रकृतिरूप हैं । असंयत में नौ आदि चार स्थान हैं – वे नौ, आठ, सात, छह प्रकृतिरूप हैं । देशसंयत में आठ आदि चार स्थान हैं – वे आठ, सात, छह, पांच प्रकृतिरूप हैं । प्रमत्त और अप्रमत्त में सात आदि चार स्थान हैं – वे सात, छह, पांच, चार प्रकृतिरूप हैं । अपूर्वकरण में छह आदि तीन स्थान हैं – वे छह, पांच, चार प्रकृतिरूप हैं – वे सर्व स्थान प्रत्येक चौबीस-चौबीस भंगों से संयुक्त हैं ।

इन मिथ्यात्वादि पांच गुणस्थानों में अपुनरुक्त स्थान कहे, उनमें किसी की संख्या समान होनेपर भी प्रकृति भेद अपेक्षा अपुनरुक्तपना है ।

जैसे, नौ-नौ प्रकृतिरूप स्थान बहुत कहे तथापि उनमें प्रकृति अन्य-अन्य पायी जाती है, इसलिए अपुनरुक्तता ही जानना । क्योंकि मिथ्यात्व में स्थान हैं वे मिथ्यात्व सहित हैं, सासादन में मिथ्यात्व रहित हैं, मिश्र में सम्यग्मिथ्यात्व सहित हैं, असंयत में सम्यक्त्वमोहनीय सहित हैं, देशसंयत में अप्रत्याख्यान रहित हैं । इसतरह प्रकृतिभेद से अपुनरुक्तता जानना ।

एक्क य छक्केयारं एयारेयारसेव णव तिण्णि ।
एदे चउवीसगदा चदुवीसियार दुगठाणे ॥४८१॥

एकं च षट्कमेकादश एकादशैकादशैव नव त्रीणि ।
एतानि चतुर्विंशतिगतानि चतुर्विंशैकादश द्विकस्थाने ॥४८१॥

टीका – सर्व गुणस्थानों में मिलकर दस प्रकृतिरूप तो एक स्थान है, वह मिथ्यात्व में ही है । नौ प्रकृतिरूप छह स्थान हैं । पहले के कूटों में दो, पश्चात् के कूटों में एक – ऐसे मिथ्यात्व में तीन तथा सासादन, मिश्र, असंयत में पहले के कूटों में एक, एक, एक – ऐसे छह स्थान हैं ।

पुनश्च आठ प्रकृतिरूप, सात प्रकृतिरूप, छह प्रकृतिरूप ग्यारह-ग्यारह स्थान हैं । वहां मिथ्यात्व में पहले के कूटों में एक, पश्चात् के कूटों में दो – ऐसे तीन; सासादन, मिश्र में दो-दो; असंयत में पहले के कूटों में दो, पश्चात् के कूटों में एक – ऐसे तीन; देशसंयत में पहले के कूटों में एक – ऐसे आठ-प्रकृतिरूप ग्यारह स्थान जानना ।

पुनश्च मिथ्यात्व में पश्चात् के कूटों में एक; सासादन, मिश्र में एक-एक; असंयत में पहले के कूटों में एक पश्चात् के कूटों में दो ऐसे तीन; देशसंयत में पहले के कूटों में दो, पश्चात् के कूटों में एक ऐसे तीन; प्रमत्त, अप्रमत्त के पहले के कूटों में एक-एक – ऐसे सात प्रकृतिरूप ग्यारह स्थान जानना ।

पुनश्च असंयत के पश्चात् के कूटों में एक, देशसंयत में एक पहले के, दो पश्चात् के ऐसे तीन; प्रमत्त, अप्रमत्त में दो पहले के, एक पश्चात् के कूटों में – ऐसे तीन-तीन; अपूर्वकरण में एक – ऐसे छह-प्रकृतिरूप ग्यारह स्थान जानना ।

पुनश्च पांच प्रकृतिरूप नौ स्थान हैं, वे इसप्रकार हैं – देशसंयत में पश्चात् के कूट में एक; प्रमत्त, अप्रमत्त में एक पहले के दो पश्चात् के कूटों में ऐसे तीन-तीन; अपूर्वकरण में दो जानना ।

पुनश्च चार प्रकृतिरूप तीन स्थान हैं । वे प्रमत्त, अप्रमत्त के पश्चात् के कूटों में एक-एक और अपूर्वकरण में एक जानना ।

ऐसे ये सर्व स्थान कहे उन एक-एक स्थान में चौबीस-चौबीस भंग हैं ।

जैसे, दस प्रकृतिरूप स्थान में क्रोधादि चार कषायों का उदय एक-एक वेद में होता है ऐसे बारह भंग हुये । वे बारह भंग हास्य, रति सहित और बारह भंग अरति, शोक सहित – ऐसे चौबीस भंग हुये ।

ऐसे ही अन्य स्थानों में चौबीस-चौबीस भंग जानना ।

पुनश्च दो प्रकृतिरूप एक स्थान है, उसके चौबीस भंग हैं । एक प्रकृतिरूप एक स्थान है, उसके ग्यारह भंग हैं ॥४८१॥

इन दो प्रकृतिरूप स्थानों के भंगों का विधान कहते हैं –

उदयट्ठाणं दोण्हं पणबंधे होदि दोण्हमेकस्स ।
चदुविहबंधट्ठाणे सेसेसेयं हवे ठाणं ॥४८२॥

उदयस्थानं द्वयोः पंचबंधे भवति द्वयोरेकस्य ।
चतुर्विधबंधस्थाने शेषेष्वेकं भवेत्स्थानं ॥४८२॥

टीका – अनिवृत्तिकरण में पांच प्रकृतियों का जहां बंध पाया जाता है ऐसा एक भाग और चार प्रकृतियों का जहां बंध पाया जाता है वहां भी कुछ काल तक वेदों का उदय है इसलिए वह एक भाग, ऐसे इन दोनों में तीन वेद और चार संज्वलन में से एक के उदय से दो प्रकृतिरूप स्थान पाया जाता है । वहां चार-चार कषाय एक-एक वेद में पाये जाते हैं इसलिए बारह भंग हुये । दोनों भागों में चौबीस भंग हुये ।

पुनश्च पक्षांतर से अर्थात् कनकनंदी आचार्य के आम्नाय की अपेक्षा जहां चार प्रकृतियों का बंध पाया जाता है, उसके अंत समय में वेद के उदय का अभाव ही है इसलिए उसमें; तथा तीन, दो, एक प्रकृति का जहां बंध पाया जाता है उनमें; तथा जहां बंध नहीं पाया जाता उसमें क्रम से चार, तीन, दो, एक, एक संज्वलन कषाय में से एक-एक का उदय पाया जाता है; इसलिए भंग अनुक्रम से चार, तीन, दो, एक, एक जानना ।

इसतरह एक प्रकृतिरूप स्थानों में ग्यारह भंग जानना ॥४८२॥

इसी अर्थ को प्रकट करने के लिये चार सूत्र कहते हैं –

अणियट्टिकरणपढमा संढित्थीणं च सरिस उदयद्धा ।
तत्तो मुहुत्तअंते कमसो पुरिसादिउदयद्धा ॥४८३॥

अनिवृत्तिकरणप्रथमात् षंढरुस्त्रियोश्च सदृशी उदयाद्धा ।
ततो मुहुर्तांतः क्रमशः पुरुषाद्युदयाद्धा ॥४८३॥

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग के प्रथम समय से लेकर नपुंसकवेद, स्त्रीवेद के उदय का काल परस्पर समान है अस्तोक है । उससे पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का उदयकाल अनुक्रम से यथासंभव अंतर्मुहुर्त से अधिक-अधिक जानना ॥४८३॥

पुरिसोदएण चडिदे बंधुदयाणं च जुगवदुच्छित्ती ।
सेसोदयेण चडिदे उदयदुचरिमम्हि पुरिसबंधछिदी ॥४८४॥

पुरुषोदयेन चटिते वंधोदययोश्च युगपदुच्छित्तिः ।
शेषोदयेत चटिते उदयद्विचरमे पुरुपवंधच्छित्तिः ॥४८४॥

टीका – पुरुषवेद के उदयसहित जो श्रेणी चढ़ता है, उसके पुरुषवेद के बंध की व्युच्छित्ति और उदय की व्युच्छित्ति दोनों युगपत् होती है अथवा 'चकार' से बंध की व्युच्छित्ति उदय के द्विचरम समय में होती है । तथा शेष स्त्रीवेद, नपुंसकवेद के उदयसहित जो श्रेणी चढ़ता है, उसके पुरुषवेद के बंध की व्युच्छित्ति उन वेदों के उदय के द्विचरम समय में होती है ॥४८४॥

पणबंधगम्मि बारस भंगा दो चेव उदयपयडीओ ।
दोउदये चदुबंधे बारेव हवंति भंगा हु ॥४८५॥

पंचवंधके द्वादश भंगा द्वे चैव उदयप्रकृति ।
द्वयुदये चतुर्बंधे द्वादशैव भवंति भंगा हि ॥४८५॥

१	१	१	
१	१	१	१

टीका – पांच प्रकृतियों का जहां बंध पाया जाता है ऐसे अनिवृत्तिकरण में दो उदयप्रकृति हैं । वहां चार कषाय, तीन वेदों द्वारा भंग बारह हैं । इसीतरह चार प्रकृतियों का जहां बंध पाया जाता है, ऐसे अनिवृत्तिकरण में भी दो के उदयरूप स्थान में बारह भंग हैं ॥४८५॥

कोहस्स य माणस्स य मायालोहाणियट्टिभागम्हि ।
चदुतिदुगेक्कं भंगा सुहुमे एक्को हवे भंगो ॥४८६॥

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभानिवृत्तिभागे ।
चतुस्त्रिद्विकैकभंगाः सूक्ष्मे एको भवेद्भंगः ॥४८६॥

टीका – क्रोध, मान, माया, लोभ के उदयरूप अनिवृत्तिकरण के चार भाग जिनमें चार, तीन, दो, एक प्रकृतियों का बंध पाया जाता है, उनमें कषाय बदलने की अपेक्षा ही चार, तीन, दो, एक भंग है तथा सूक्ष्मसाम्पराय मोहनीय के बंध रहित है, वहां सूक्ष्म लोभ के उदयरूप स्थान में एक भंग है – ऐसे ग्यारह हुये ॥४८६॥

अनिवृत्तिकरण						सू. साम्प.
बंध ५ उदय २ भंग १२	बंध ४ उदय २ भंग १२	बंध ४ उदय १ भंग ४	बंध ३ उदय १ भंग ३	बंध २ उदय १ भंग २	बंध १ उदय १ भंग १	बंध ० उदय १ भंग १

अनिवृत्तिकरण उदय

४	४	४	बं ४	बं ३	बं २	बं १
५	५	५				
न	स्त्री	पु	क्रोध	बं ४	बं ३	बं २
				मान	बं ४	बं ३
					माया	बं ४
						लोभ

आगे सर्व उदयस्थानों की और उनके प्रकृतियों की संख्या कहते हैं –

बारससयतेसीदी ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा ।
पणसीविसदसगेहिं पयडिवियप्पेहिं ओघम्मि ॥४८७॥

द्वादशशतत्र्यशीति स्थानविकल्पैर्मोहिता जीवाः ।
पंचाशीतिशतसप्तभिः प्रकृतिविकल्पैरोघे ॥४८७॥

टीका – ओघ अर्थात् गुणस्थानों में मोहनीय के सर्व उदयस्थान इसप्रकार हैं – दस प्रकृतिरूप एक; नौ प्रकृतिरूप छह; आठ, सात, छह रूप ग्यारह-ग्यारह; पांचरूप नौ; चाररूप तीन; दोरूप एक – सर्व मिलकर तिरपन हुये । वहां एक-एक के चौबीस-चौबीस भंग, इसलिए चौबीस से तिरपन को गुणा करनेपर बारह सौ बहत्तर हुये तथा एक प्रकृतिरूप स्थान के ग्यारह भंग – ऐसे सर्व बारह सौ तिरासी हुये ।

अब उन स्थानों की जो प्रकृतियां हैं उनकी अपेक्षा कहते हैं –

दस प्रकृतिरूप एक स्थान की दस प्रकृतियां; नौरूप छह की चौवन; आठरूप ग्यारह की अट्ठासी; सातरूप ग्यारह की सतहत्तर; छहरूप ग्यारह की छासठ; पांचरूप नौ की पैंतालीस; चाररूप तीन की बारह; दोरूप एक की दो; सर्व मिलकर तीन सौ चौवन प्रकृतियां हुयी । वहां चौबीस भंगों से गुणा करनेपर चौरासी सौ छानबे तथा एक प्रकृतिरूप के ग्यारह भंग मिलानेपर पचासी सौ सात ८५०७, सर्व प्रकृति अपेक्षा भेद होते हैं ।

इन स्थानभेदों द्वारा और प्रकृतिभेदों द्वारा, त्रिकालसंबंधी त्रिलोक के चराचर जीव मोहित हैं ॥४८७॥

उदयप्रकृति	१०	९	८	७	६	५	४	२	
स्थान	१	६	११	११	११	९	३	१	स्थान ५३
कुलप्रकृति	१०	५४	८८	७७	६६	४५	१२	२	कुलप्रकृति ३५४

[*विशेषार्थ* : ५३ स्थान × २४ भंग = १२७२
१ प्रकृति के + ११
= १२८३

३५४ प्रकृति × २४ भंग = ८४९६
१ प्रकृति के + ११
= ८५०७]

आगे अपुनरुक्त स्थानों की संख्या और उनकी प्रकृति कहते हैं –

एक्क य छक्केयारं दससगचदुरेक्कयं अपुणरुत्ता ।
एदे चदुवीसगदा बार दुगे पंच एक्कम्मि ॥४८८॥

एकं च षट्कैकादश दशसप्ततुरेकमपुनरुक्तानि ।
एतानि चतुर्विंशगतानि द्वादश द्विके पंच एकस्मिन् ॥४८८॥

टीका –दस प्रकृतिरूप एक स्थान, नौरूप छह स्थान, आठरूप ग्यारह स्थान, सातरूप दस ही स्थान – पहले ग्यारह कहे थे उनमें से पहले के कूटों में सम्यक्त्वमोहनीय सहित वेदक सम्यक्त्ववाले के प्रमत्त, अप्रमत्त के सात प्रकृतिरूप दो स्थान कहे, वे दोनों स्थान समान हैं, इसलिए इनमें एक स्थान पुनरुक्त हुआ; इसलिए दस ही कहे । पुनश्च छह प्रकृतिरूप सात ही स्थान – पहले ग्यारह कहे थे, उनमें से वेदक सहित पहले के कूटों में छह प्रकृतिरूप दो कूट प्रमत्त के किये और दो अप्रमत्त के किये, उनकी समानता पायी जाती है, इसलिए इनमें से दो ही गिने, दो पुनरुक्त कहे । तथा वेदक रहित पश्चात् के कूटों में छह प्रकृतिरूप स्थान युक्त एक कूट प्रमत्त का किया एक अप्रमत्त का किया; ये दोनों कूट अपूर्वकरण के छह प्रकृतिरूप कूट के समान हैं; इसलिए दो कूट पुनरुक्त कहे थे । इसतरह चार कूटों के चार पुनरुक्त स्थान घटा दिये हैं ।

पुनश्च पांच प्रकृतिरूप चार ही स्थान हैं पहले नौ कहे थे उनमें से वेदक सहित पहले के कूटों में एक प्रमत्त का कहा था, एक अप्रमत्त का कहा था, वे दोनों समान हैं इसलिए इनमें से एक पुनरुक्त कहा । वेदक रहित पश्चात् के कूटों में एक देशसंयत का, दो-दो प्रमत्त-अप्रमत्त के और दो अपूर्वकरण के इन सात में से दो-दो प्रमत्त, अप्रमत्त के और दो अपूर्वकरण के समान हैं, इसलिए चार पुनरुक्त कहे हैं – ऐसे पांच पुनरुक्त स्थान घटा दिये हैं ।

पुनश्च चार प्रकृतिरूप एक ही स्थान है – पहले तीन कहे थे उनमें वे तीनों ही समान हैं, इसलिए दो पुनरुक्त घटा दिये हैं । जिनमें प्रकृतियों की समानता पायी जाती हैं ऐसे पुनरुक्त स्थान घटानेपर इसप्रकार स्थान रहे, उनका जोड़ देनेपर

चालीस हुये । वे एक-एक स्थान चौबीस-चौबीस भंगों से संयुक्त हैं । इसलिए चौबीस से गुणा करनेपर नौ सौ साठ हुये । इनमें दो प्रकृतिरूप स्थान के चौबीस भंग कहे थे उनमें बारह पुनरुक्त छोड़कर बारह गिने और एक प्रकृतिरूप स्थान के ग्यारह भंग कहे थे उनमें से छह पुनरुक्त भंग छोड़कर पांच गिने ऐसे सत्रह उनमें और मिलाना ॥४८८॥ *(९६० + १२ + ५ = ९७७)*

णवसयसत्तत्तरिहिं ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा ।
इगिदालूणत्तरिसयपयडिवियप्पेहिं णायव्वा ॥४८९॥

नवशतसप्तसप्ततिभिः स्थानविकल्पैर्मोहिता जीवाः ।
एकचत्वारिंशदेकोनसप्ततिशतप्रकृतिविकल्पैर्ज्ञातव्याः ॥४८९॥

टीका – ऐसे नौ सौ सतहत्तर भेद हुये उनकी प्रकृति कहते हैं – दसरूप एक स्थान की दस, नौरूप छह स्थानों की चौवन, आठरूप ग्यारह स्थानों की अट्ठासी, सातरूप दस स्थानों की सत्तर, छहरूप सात स्थानों की बयालीस, पांचरूप चार स्थानों की बीस, चाररूप एक स्थान की चार इनका जोड़ देनेपर दो सौ अट्ठासी हुयी । इनको भंग चौबीस से गुणा करनेपर उनहत्तर सौ बारह हुये **६९१२** । उनमें दो प्रकृतिरूप के बारह-बारह भंग एक-एक प्रकृति के गिने इसलिए चौबीस, तथा एक प्रकृतिरूप पांच ऐसे उनतीस मिलानेपर उनहत्तर सौ इकतालीस **६९४१** भेद हुये । इन स्थानभेदों और प्रकृतिभेदों द्वारा त्रिकाल संबंधी त्रिलोकवासी चराचर संसारी जीव मोहित हैं ॥४८९॥

आगे मोह के उदयरूप स्थान और उनकी प्रकृतियां गुणस्थानों में उपयोगादि की अपेक्षा कहते हैं –

उदयट्ठाणं पयडिं सगसगउवजोगजोगआदीहिं ।
गुणयित्ता मेलविदे पदसंखा पयडिसंखा य ॥४९०॥

उदयस्थानं प्रकृतिं स्वकस्वकोपयोगयोगादिभिः ।
गुणयित्वा मेलपिते पदसंख्या प्रकृतिसंख्या च ॥४९०॥

टीका – 'पुव्विल्लेसुवि मिलिदे' इत्यादि गाथा *(गाथा ४७९)* द्वारा कही हुयी स्थानों की संख्या और उन स्थानों में प्रकृतियों की संख्या, उनको अपने-अपने गुणस्थानों में पाये जानेवाले उपयोग, योग तथा आदि शब्द से संयम, देशसंयम, लेश्या, सम्यक्त्व इनके द्वारा गुणित करके पश्चात् सबका जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, उतनी वहां मोह की स्थानसंख्या और प्रकृतिसंख्या जानना ॥४९०॥

वही कहते हैं –

मिच्छदुगे मिस्सतिये पमत्तसत्ते जिणे य सिद्धे य ।
पण छस्सत्त दुगं च य उवजोगा होंति दो चेव ॥४९१॥

मिथ्याद्विके मिश्रत्रये प्रमत्तसप्तके जिने च सिद्धे च ।
पंच षट् सप्त द्विकं च च उपयोगा भवंति द्वौ चैव ॥४९१॥

टीका – मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानों में उपयोग हैं वे तीन अज्ञान और दो दर्शन ऐसे पांच हैं । मिश्रादिक तीन में तीन ज्ञान, तीन दर्शन – ऐसे छह हैं । प्रमत्तादि सात में चार ज्ञान, तीन दर्शन – ऐसे सात हैं । सयोगी, अयोगी जिन में और सिद्ध में केवलज्ञान, केवलदर्शन – ये दो हैं ।

वहां मिथ्यात्व में पहले के कूटों द्वारा एक तो दसप्रकृतिरूप, दो नौ-नौरूप और एक आठरूप ये चार स्थान हैं । उनकी प्रकृतियों का जोड़ छत्तीस हुआ । पुनश्च पश्चात् के कूटों द्वारा नौरूप एक, आठ-आठरूप दो और सातरूप एक – ऐसे चार स्थान, उनकी बत्तीस प्रकृतियां इनको मिलानेपर आठ स्थान, अड़सठ प्रकृतियां – उनको पांच उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर चालीस स्थान, तीन सौ चालीस प्रकृतियां होती हैं ।

पुनश्च सासादन में एक नौरूप, दो आठ-आठ रूप, एक सातरूप ऐसे चार स्थान, बत्तीस प्रकृतियां, उनको पांच उपयोगों से गुणा करनेपर बीस स्थान, एक सौ साठ प्रकृतियां होती हैं ।

मिश्र में एक नौरूप, दो आठ-आठरूप और एक सातरूप – ऐसे चार स्थान, उनकी बत्तीस प्रकृतियां, इनको छह उपयोगों से गुणा करनेपर चौबीस स्थान, एक सौ बानबे प्रकृतियां होती हैं ।

असंयत में पहले के कूटों द्वारा एक नौरूप दो आठ-आठ रूप और एक सातरूप – ऐसे चार स्थान, उनकी बत्तीस प्रकृतियां और पश्चात् के कूटों द्वारा एक आठरूप, दो सात-सात रूप और एक छहरूप – ऐसे चार स्थान, उनकी अट्ठाइस प्रकृतियां इनको मिलानेपर आठ स्थान, साठ प्रकृतियां, उनको छह उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान, तीन सौ साठ प्रकृतियां होती हैं ।

पुनश्च देशसंयत में पहले के कूटों द्वारा एक आठरूप, दो सात-सातरूप, और एक छहरूप – ऐसे चार स्थान, अट्ठाइस प्रकतियां तथा पश्चात् के कूटों द्वारा एक सातरूप, दो छह-छह रूप और एक पांचरूप – ऐसे चार स्थान, चौबीस प्रकृतियां, इनको मिलानेपर आठ स्थान, बावन प्रकृतियां, उनको छह उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान, तीन सौ बारह प्रकृतियां होती हैं ।

पुनश्च प्रमत्त में और अप्रमत्त में पहले के कूटों द्वारा एक सातरूप, दो छह छह रूप, एक पांचरूप – ऐसे चार स्थान, चौबीस प्रकृतियां तथा पीछे के कूटों द्वारा एक छहरूप, दो पांच-पांचरूप, एक चाररूप – ऐसे चार स्थान, बीस प्रकृतियां मिलानेपर आठ स्थान, चौवालीस प्रकृतियां, उनको सात उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर छप्पन-छप्पन स्थान, तीन सौ आठ-तीन सौ आठ प्रकृतियां होती हैं ।

अपूर्वकरण में छहरूप एक और पांच-पांचरूप दो और चाररूप एक – ऐसे चार स्थान, बीस प्रकृतियां, उनको सात उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर अट्ठाइस स्थान, एक सौ चालीस प्रकृतियां होती हैं ।

इन सबका जोड़ देनेपर **४०, २०, २४, ४८, ४८, ५६, ५६, २८** तीन सौ बीस स्थान हुये, उनको चौबीस भंगों से गुणा करनेपर छिहत्तर सौ अस्सी स्थान हुये। पुनश्च प्रकृतियां **३४०, १६०, १९२, ३६०, ३१२, ३०८, ३०८, १४०** सर्व मिलकर इक्कीस सौ बीस हुयी । उनको चौबीस भंगों से गुणा करनेपर पचास हजार आठ सौ अस्सी प्रकृतियां हुयी ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण में दो प्रकृतिरूप एक स्थान, उसको सात उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर सात स्थान, चौदह प्रकृतियां होती हैं । उनको बारह भंगों से गुणा करनेपर चौरासी स्थान, एक सौ अड़सठ प्रकृतियां होती हैं । पुनश्च अवेद भागरूप

अनिवृत्तिकरण में एक प्रकृतिरूप एक स्थान उसको सात उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर सात स्थान, सात प्रकृतियां, उनको चार भंगों द्वारा गुणा करनेपर अट्ठाइस स्थान, अट्ठाइस प्रकृतियां होती हैं ।

सूक्ष्मसाम्पराय में एक प्रकृतिरूप एक स्थान, उसको सात उपयोगों द्वारा गुणा करनेपर सात स्थान, सात प्रकृतियां, यहा भंग एक ही है । ऐसे इनका जोड़ देनेपर **८४|२८|७** एक सौ उन्नीस स्थान और ~~१३६~~ १२६ **|२८|७** – दो सौ तीन प्रकृतियां होती हैं । इनको पहले कहे हुये अपूर्वकरण तक के स्थान और प्रकृतियों में मिलाते हैं ॥४९१॥ *(७६८० + ११९ = ७७९९ स्थान; ५०८८० + २०३ = ५१०८३ प्रकृतियां)*

णवणउदिसगसयाहिय सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९२॥

नवनवतिसप्तशताधिक सप्तसहस्रप्रमाणमुदयस्य ।
स्थानविकल्पा जानीहि उपयोगे मोहनीयस्य ॥४९२॥

टीका – इसतरह उपयोग के आश्रय से मोहनीय के उदयस्थानों के भेद सात हजार सात सौ निन्यानबे जानना **७७९९** ॥४९२॥

एक्कावण्णसहस्सं तेसीदिसमण्णियं वियाणाहि ।
पयडीणं परिमाणं उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९३॥

एकपंचाशत्सहस्रं त्र्यशीतिसमन्वितं विजानीहि ।
प्रकृतीनां परिमाणमुपयोगे मोहनीयस्य ॥४९३॥

टीका – पुनश्च उपयोग के आश्रय से मोहनीय के प्रकृतियों का प्रमाण इक्यावन हजार तिरासी जानना **५१०८३** ॥४९३॥

आगे योग के आश्रय से कहते हैं –

तिसु तेरं दस मिस्से णव सत्तसु छट्ठयम्मि एक्कारा ।
जोगिम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥४९४॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे नव सप्तसु षष्ठे एकादश ।
योगिनि सप्त योगा अयोगिस्थानं भवेत् शून्यम् ॥४९४॥

टीका – योग मिथ्यात्व, सासादन, असंयत में तेरह-तेरह, मिश्र में दस, देशसंयतादि सात में नौ-नौ, प्रमत्त में ग्यारह, सयोगी में सात और अयोगी में शून्य हैं ॥४९४॥

आगे मिश्रयोगयुक्त और केवल पर्याप्तयोगयुक्त गुणस्थानों को विशेष से कहते हैं –

मिच्छे सासण अयदे पमत्तविरदे अपुण्णजोगगदं ।
पुण्णगदं च य सेसे पुण्णगदे मेलिदं होदि ॥४९५॥

मिथ्ये सासने अयते प्रमत्तविरते अपूर्णयोगगतं ।
पूर्णगतं च च शेषे पूर्णगते मिलितं भवति ॥४९५॥

टीका – मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और प्रमत्तसंयत इन चारों में अपर्याप्त योग को प्राप्त और पर्याप्तयोग को प्राप्त मिलाकर स्थानप्रमाण और प्रकृतिप्रमाण होता है । अवशेष गुणस्थानों में केवल पर्याप्तयोग को ही प्राप्त स्थानप्रमाण और प्रकृतिप्रमाण होता है । वही कहते हैं –

मिथ्यात्व में पहले के कूटों द्वारा स्थान चार, प्रकृतियां छत्तीस, उनको तेरह योगों द्वारा गुणा करनेपर बावन स्थान, चार सौ अड़सठ प्रकृतियां होती हैं । अनंतानुबंधी के विसंयोजनरूप अंतर्मुहूर्त में मरण नहीं ।

८
९ | ९
१०
३६

इसलिए पश्चात् के कूटों द्वारा चार स्थान, बत्तीस प्रकृतियों को दस योगों से *(क्योंकि मिश्र योग नहीं होते)* गुणा करनेपर चालीस स्थान, तीन सौ बीस प्रकृतियां होती हैं ।

७
८ | ८
९
३२

सासादन में चार स्थान, बत्तीस प्रकृतियां, उनको वैक्रियिकमिश्र का अलग कहेंगे इसलिए बारह योगों द्वारा गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान और तीन सौ चौरासी प्रकृतियां होती हैं ।

७
८ | ८
९
३२

मिश्र में चार स्थान, बत्तीस प्रकृतियां, उनको दस योगों से गुणा करनेपर चालीस स्थान, तीन सौ बीस प्रकृतियां होती हैं ।

७
८ | ८
९
३२

असंयत में आठ स्थान, साठ प्रकृतियां, उनको कार्माण, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र का अलग कहेंगे; इसलिए दस योगों से गुणा करनेपर अस्सी स्थान, छह सौ प्रकृतियां होती हैं ।

७	६
८ | ८	७ | ७
९	८
३२	२८

देशसंयत में आठ स्थान, बावन प्रकृतियां, उनको नौ योगों से गुणा करनेपर बहत्तर स्थान, चार सौ अड़सठ प्रकृतियां होती हैं ।

६	५
७ | ७	६ | ६
८	७
२८	२४

प्रमत्त में, अप्रमत्त में आठ-आठ स्थान, चौवालीस-चौवालीस प्रकृतियां, यहां आहारकद्विक को अलग बतायेंगे; इसलिए नौ योगों से गुणा करनेपर बहत्तर-बहत्तर स्थान, तीन सौ छानबे-तीन सौ छानबे प्रकृतियां होती हैं ।

५	४
६ | ६	५ | ५
७	६
२४	२०

अपूर्वकरण में चार स्थान, बीस प्रकृतियां, उनको नौ योगों से गुणा करनेपर छत्तीस स्थान और एक सौ अस्सी प्रकृतियां होती हैं ।

४
५ | ५
६
२०

यहां तक जितने स्थान और प्रकृतियां होती हैं, उनको चौबीस भंगों से गुणा करते हैं ।

अनिवृत्तिकरण में सवेद भाग में एक स्थान, दो प्रकृतियां; इनको नौ योगों से गुणा करनेपर नौ स्थान, अठारह प्रकृतियां होती हैं, इनको बारह भंगों से गुणा करते हैं । अवेद भाग में एक स्थान, एक प्रकृति, इनको नौ योगों से गुणा करनेपर नौ स्थान, नौ प्रकृतियां होती हैं, इनको चार भंगों से गुणा करते हैं ।

सूक्ष्मसाम्पराय में एक स्थान, एक प्रकृति; इनको नौ योगों से गुणा करनेपर नौ स्थान, नौ प्रकृतियां होती हैं । इनको एक भंग से गुणा करते हैं ॥४९५॥

आगे जुदे रखे हुये योगों का विशेष दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

सासणंअयदपमत्ते वेगुव्वियमिस्स तं च कम्मयियं ।
ओरालमिस्स हारे अडसोलडवग्ग अट्ठवीससयं ॥४९६॥

सासनायतप्रमत्ते वैगूर्विकमिश्रं तच्च कार्मणं ।
औरालमिश्रमाहारे अष्टषोडशाष्टवर्ग अष्टविंशशतं ॥४९६॥

टीका – सासादन के वैक्रियिकमिश्र योग में आठ का वर्ग चौंसठ, उसप्रमाण स्थान हैं और पांच सौ बारह प्रकृतियां हैं । कैसे ? सासादन में चार कूट किये थे, उनमें तीन वेदों में एक का उदय कहा था, यहां नपुंसकवेद बिना दो ही वेदों में से एक का उदय जानना । इसलिए नौरूप एक, आठ-आठरूप दो और सातरूप एक – उनके चार स्थान और बत्तीस प्रकृतियां; उनको चार कषाय, दो वेद और दो युगलों से हुये सोलह भंगों द्वारा गुणा करनेपर चौंसठ स्थान और पांच सौ बारह प्रकृतियां होती हैं ।

पुनश्च असंयत के वैक्रियिकमिश्र और कार्माण काययोगों में पूर्वोक्त आठ कूटों में स्त्रीवेद बिना दो वेदों में से एक का उदय जानना । इसलिए उन कूटों में आठ स्थान, साठ प्रकृतियां होती हैं । उनको चार कषाय, स्त्रीवेद बिना दो वेद, दो युगलों से हुये सोलह भंगों द्वारा गुणा करनेपर और दो योगों से गुणा करनेपर सोलह के वर्गप्रमाण दो सौ छप्पन स्थान और उन्नीस सौ बीस प्रकृतियां होती हैं ।

पुनश्च असंयत के औदारिकमिश्र काययोग में स्त्रीवेद, नपुंसकवेद दोनों नहीं हैं । इसलिए पूर्वोक्त आठ कूटों में तीन-तीन जगह वेद लिखे थे, वहां एक-एक जगह लिखना । वहां आठ कूटों के आठ स्थान, साठ प्रकृतियां; उनको चार कषाय, एक वेद, दो युगलों से हुये आठ भंगों द्वारा गुणा करनेपर तथा एक योग से गुणा करनेपर आठ के वर्गप्रमाण चौंसठ स्थान और चार सौ अस्सी प्रकृतियां होती हैं ।

पुनश्च प्रमत्तसंयत के आहारक और आहारकमिश्र काययोगरूप दो योगों में भी स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नहीं हैं । इसलिए स्त्रीवेद, नपुंसकवेद रहित आठ कूटों के आठ स्थान, चौवालीस प्रकृतियों को आठ भंगों से *(चार कषाय, दो युगल)* गुणा करनेपर तथा आहारक, आहारकमिश्र योगों से गुणा करनेपर एक सौ अट्ठाइस स्थान और सात सौ चार प्रकृतियां होती हैं ॥४९६॥

आगे उस घटाये हुये वेद का स्वयं ग्रंथकर्ता निषेध करते हैं –

णत्थि णउंसयवेदो इत्थीवेदो णउंसइत्थिदुगे ।
पुव्वुत्तपुण्णजोगग चदुसुट्ठाणेसु जाणेज्जो ॥४९७॥

नास्ति नपुंसकवेदः स्त्रीवेदो नपुंसकस्त्रीद्विकं ।
पूर्वोक्तापूर्णयोग चतुर्षु स्थानेषु ज्ञातव्यं ॥४९७॥

टीका – पूर्वोक्त अपर्याप्त योग को प्राप्त चार स्थानों में से सासादन के वैक्रियिकमिश्र योग में नपुंसकवेद नहीं है, क्योंकि सासादनवाला मरकर नरक में उत्पन्न नहीं होता । असंयत के वैक्रियिकमिश्र और कार्माण योग में स्त्रीवेद नहीं है, क्योंकि असंयतवाला मरकर स्त्री में उत्पन्न नहीं होता । असंयत के औदारिकमिश्र योग में तथा प्रमत्तसंयत के आहारक, आहारकमिश्र दो योगों में स्त्रीवेद, नपुंसकवेद दोनों वेद नहीं हैं – ऐसा जानना ।

यहां मिथ्यात्व से अपूर्वकरण तक जितने स्थान हो, उनको मिलाकर चौबीस भंगों से गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, उसमें अनिवृत्तिकरण के सवेद, अवेद भाग के और सूक्ष्मसाम्पराय के एक सौ तिरपन स्थान मिलाना तथा अपर्याप्त सासादन, असंयत, प्रमत्तसंयत के पश्चात् कहे हुये पांच सौ बारह स्थान मिलाकर सबका जोड़ देना ॥४९७॥

तेवण्णणवसयाहिय बारसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स ॥४९८॥

त्रिपंचाशन्नवशताधिक द्वादशसहस्रप्रमाणमुदयस्य ।
स्थानविकल्पान् जानीहि योगं प्रति मोहनीयस्य ॥४९८॥

टीका – इसतरह योग के आश्रय से मोहनीय के सर्व उदयस्थान तिरपन सहित नौ सौ अधिक बारह हजार *(१२९५३)* जानना ।

प्रकृतियों में भी मिथ्यात्व से अपूर्वकरण तक की सर्व प्रकृतियां मिलाकर उनको चौबीस भंगों से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसमें अनिवृत्तिकरण के सवेद, अवेद

भाग और सूक्ष्मसाम्पराय की दो सौ इकसठ प्रकृतियां मिलाना ॥४९८॥

वहां और क्या करना ? वह कहते हैं –

बिंदिये बिगिपणमयदे खदुणवएक्कं खअट्ठचउरो य ।
छट्ठे चउसुण्णसगं पयडिवियप्पा अपुण्णम्हि ॥४९९॥

द्वितीये द्व्येकपंचकमयते खद्विनवैकं खाष्टचत्वारश्च ।
षष्ठे चतु:शून्यसप्त प्रकृतिविकल्पा अपूर्णे ॥४९९॥

टीका – सासादन के वैक्रियिकमिश्र में प्रकृति-विकल्प दो, एक, पांच अंकरूप पांच सौ बारह *(५१२)*; असंयत के वैक्रियिकमिश्र, कार्माण में बिंदी, दो, नौ, एक अंकरूप उन्नीस सौ बीस *(१९२०)*; चकार से असंयत के औदारिकमिश्र योग में बिंदी, आठ, चार अंकरूप चार सौ अस्सी *(४८०)*; प्रमत्तसंयत के आहारकद्विक योग में चार, शून्य, सात अंकरूप सात सौ चार *(७०४)* हैं । इन सबका जोड़ देकर उन्हीं में मिलाना ॥४९९॥

पणदालछस्सयाहिय अट्ठासीदीसहस्समुदयस्स ।
पयडीणं परिसंखा जोगं पडि मोहणीयस्स ॥५००॥

पंचचत्वारिंशत्षट्शताधिकाष्टाशीतिसहस्रमुदयस्य ।
प्रकृतीनां परिसंख्या योगं प्रति मोहनीयस्य ॥५००॥

टीका – इसतरह योग के आश्रय से मोहनीय के सर्व उदयप्रकृतियों के भेद पैंतालीस सहित छह सौ अधिक अट्ठासी हजार *(८८६४५)* हैं ॥५००॥

आगे संयम के आश्रय से कहते हैं –

तेरससयाणि सत्तरि सत्तेव य मेलिदि हवंतित्ति ।
ठाणवियप्पे जाणसु संजमलंबेण मोहस्स ॥५०१॥

त्रयोदशशतानि सप्तति सप्तैव च मिलिते भवंतीति ।
स्थानविकल्पा जानीहि संयमावलंबेन मोहस्य ॥५०१॥

टीका – संयम के अवलंबन से मोहनीय के उदयस्थानों के भेद मिलानेपर तेरह सौ सतहत्तर हैं, वे जानिये । वही कहते हैं – प्रमत्त, अप्रमत्त में सामायिकादि तीन संयम हैं *(सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि)*, उनसे आठ-आठ स्थानों को गुणा करनेपर चौबीस-चौबीस स्थान होते हैं और उन स्थानों की प्रकृतियां चौवालीस, उनको गुणा करनेपर एक सौ बत्तीस-एक सौ बत्तीस प्रकृतियां होती हैं ।

अपूर्वकरण में सामायिकादि दो संयम, उनसे वहां के चार स्थानों को गुणा करनेपर आठ स्थान होते हैं और बीस प्रकृतियों को गुणा करनेपर चालीस प्रकृतियां होती हैं । इनको तो चौबीस भंगों से गुणा करना ।

अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग में एक स्थान, दो प्रकृतियां उनको दो संयमों से गुणा करनेपर दो स्थान, चार प्रकृतियां होती हैं, इनको बारह भंगों से गुणा करना । अवेद भाग में एक स्थान, एक प्रकृति; इनको दो संयमों से गुणा करनेपर दो स्थान, दो प्रकृतियां होती हैं, इनको चार भंगों से गुणा करना ।

सूक्ष्मसाम्पराय में एक संयम है, वहां एक स्थान, एक प्रकृति ही है, भंग भी एक ही है ।

यहां प्रमत्तादि तीन के छप्पन स्थानों को चौबीस से गुणा करनेपर तेरह सौ चौवालीस और अनिवृत्तिकरणादि के तैंतीस मिलानेपर तेरह सौ सतहत्तर *(१३७७)* उदयस्थानों के भेद होते हैं ॥५०१॥

तेवण्णतिसदसहियं सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
पयडिवियप्पे जाणसु संजमलंबेण मोहस्स ॥५०२॥

त्रिपंचाशत्त्रिशतसहितं सप्तसहस्रप्रमाणमुदयस्य ।
प्रकृतिविकल्पान् जानीहि संयमावलंबेन मोहस्य ॥५०२॥

टीका – संयम के अवलंबन से मोहनीय के उदयप्रकृति के भेद प्रमत्तादि तीन के तीन सौ चार को चौबीस से गुणा करनेपर बहत्तर सौ छानबे *(७२९६)* होते हैं । उनमें अनिवृत्तिकरणादि के सत्तावन मिलानेपर तिरपन सहित तीन सौ अधिक सात हजार जानना *(७३५३)* ॥५०२॥

आगे गुणस्थानों में पायी जानेवाली लेश्या कहते हैं –

मिच्छचउक्के छक्कं देसतिये तिण्णि होंति सुहलेस्सा ।
जोगित्ति सुक्कलेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५०३॥

मिथ्यचतुष्के षट्कं देशत्रये तिस्रो भवंति शुभलेश्याः ।
योगी इति शुक्ललेश्या अयोगिस्थानमलेश्यं तु ॥५०३॥

टीका – मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानों में प्रत्येक में छह लेश्या हैं । देशसंयतादि तीन में तीन शुभ लेश्या ही हैं । ऊपर अपूर्वकरणादि सयोगी तक शुक्ल लेश्या ही है । अयोगी गुणस्थान लेश्यारहित है ॥५०३॥

ऊपर कही हुयी लेश्या के आश्रय से मोहनीय के स्थान और प्रकृतियों की संख्या दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

पंचसहस्सा बेसय सत्ताणउदी हवंति उदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु लेस्सं पडि मोहणीयस्स ॥५०४॥

पंचसहस्राणि द्विशतसप्तनवतिः भवंति उदयस्य ।
स्थानविकल्पा जानीहि लेश्यां प्रति मोहनीयस्य ॥५०४॥

टीका – गुणस्थानों में कही हुयी इन लेश्याओं के आश्रय से मोहनीय के सर्व उदयस्थान पांच हजार दो सौ सत्तानबे *(५२९७)*, हे शिष्य तू जान ॥५०४॥

अट्ठत्तीससहस्सा बेण्णिसया होंति सत्ततीसा य ।
पयडीणं परिमाणं लेस्सं पडि मोहणीयस्स ॥५०५॥

अष्टत्रिंशत्सहस्राणि द्विशतानि भवंति सप्तत्रिंशच्च ।
प्रकृतीनां परिमाणं लेश्या प्रति मोहनीयस्य ॥५०५॥

टीका – लेश्या प्रति मोहनीय के उदयप्रकृतियों का प्रमाण अड़तीस हजार दो सौ सैंतीस *(३८२३७)* है । वही कहते हैं – मिथ्यात्व गुणस्थान में स्थान दस आदि

चार और नौ आदि चार हैं । इन आठ स्थानों को छह लेश्याओं से गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान हुये और उनकी अड़सठ प्रकृतियों को छह लेश्याओं से गुणा करनेपर चार सौ आठ प्रकृतियां हुयी ।

सासादन में नौ आदि चार स्थानों को छह लेश्याओं से गुणा करनेपर चौबीस स्थान होते हैं और उनकी बत्तीस प्रकृतियों को छह लेश्याओं से गुणा करनेपर एक सौ बानबे प्रकृतियां होती हैं । मिश्र गुणस्थान में नौ आदि चार स्थान और बत्तीस प्रकृतियां हैं । उनको छह लेश्याओं से गुणा करनेपर चौबीस स्थान और एक सौ बानबे प्रकृतियां होती हैं ।

असंयत में नौ आदि चार और आठ आदि चार ऐसे आठ स्थान हैं और उनकी साठ प्रकृतियां हैं । उनको छह लेश्याओं से गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान और तीन सौ साठ प्रकृतियां होती हैं ।

देशसंयत में आठ आदि चार और सात आदि चार मिलकर आठ स्थान हैं और बावन प्रकृतियां हैं । उनको तीन लेश्याओं से गुणा करनेपर चौबीस स्थान और एक सौ छप्पन प्रकृतियां होती हैं ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत में सात आदि चार स्थान और छह आदि चार स्थान मिलकर आठ स्थान और उनकी चौवालीस प्रकृतियां हैं । उनको तीन लेश्याओं से गुणा करनेपर चौबीस-चौबीस स्थान और एक सौ बत्तीस-एक सौ बत्तीस प्रकृतियां होती हैं ।

अपूर्वकरण में छह आदि चार स्थान और उनकी बीस प्रकृतियां हैं । उनको शुक्ललेश्या से गुणा करनेपर चार स्थान और बीस प्रकृतियां होती हैं ।

यहां तक स्थान और प्रकृतियों को चौबीस से गुणा करते हैं ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग में एक स्थान, दो प्रकृतियां हैं । उनको शुक्ललेश्या से गुणा करनेपर भी एक स्थान, दो प्रकृतियां होती हैं, इनको बारह भंगों से गुणा करना । अवेद भाग में एक स्थान, एक प्रकृति, एक शुक्ललेश्या से गुणा करनेपर भी एक स्थान, एक प्रकृति होती है, इनको चार भंगों से गुणा करना ।

सूक्ष्मसाम्पराय में एक स्थान, एक प्रकृति, इसको शुक्ललेश्या से गुणा करनेपर भी एक स्थान, एक प्रकृति, इनको एक भंग से गुणा करना ।

यहां अपूर्वकरण तक के स्थानों और प्रकृतियों का जोड़ देकर उनको चौबीस से गुणा करना । अनिवृत्तिकरणादि के सत्रह स्थान स्थानप्रमाण में और उनतीस प्रकृतियां प्रकृतिप्रमाण में मिलानेपर पूर्वोक्त स्थानभेद और प्रकृतिभेद का प्रमाण होता है ॥५०५॥

आगे सम्यक्त्व के आश्रय से कहते हैं –

अट्ठुत्तरीहिं सहिया तेरसयसया हवंति उदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०६॥

अष्टसप्ततिभिः सहितानि त्रयोदशकशतानि भवंति उदयस्य ।
स्थानविकल्पा जानीहि सम्यक्त्वगुणेन मोहस्य ॥५०६॥

टीका – सम्यक्त्व से युक्त मोहनीय के उदयस्थान के विकल्प अठहत्तर सहित तेरह सौ *(१३७८)* जानना ॥५०६॥

अट्ठेव सहस्साइं छव्वीसा तह य होंति णादव्वा ।
पयडीणं परिमाणं सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०७॥

अष्टैव सहस्राणि षड्विंशतिस्तथा च भवंति ज्ञातव्याः ।
प्रकृतीनां परिमाणं सम्यक्त्वगुणेन मोहस्य ॥५०७॥

टीका – सम्यक्त्व गुण से युक्त मोहनीय के प्रकृतियों का प्रमाण आठ हजार छब्बीस *(८०२६)* जानना । वही कहते हैं – असंयत में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के नौ आदि चार स्थान, उनकी बत्तीस प्रकृतियां हैं । औपशमिक-क्षायिक सम्यग्दृष्टि के आठ आदि चार स्थान, उनकी अट्ठाइस प्रकृतियां, इसलिए इन दोनों सम्यक्त्वों के स्थान मिलानेपर आठ स्थान और छप्पन प्रकृतियां होती हैं ।

७
८ | ८
९

६
७ | ७
८

पुनश्च देशसंयत में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के आठ आदि चार स्थान **८, ७, ७, ६**; इनकी अट्ठाइस प्रकृतियां हैं; तथा औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व के जुदे-जुदे सात आदि चार स्थान **७, ६, ६, ५** और चौबीस प्रकृतियां हैं, इसलिए दोनों सम्यक्त्व के आठ स्थान और अड़तालीस प्रकृतियां हैं ।

पुनश्च प्रमत्त और अप्रमत्त में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के सात आदि चार-चार स्थान **७, ६, ६, ५**; उनकी चौबीस-चौबीस प्रकृतियां हैं । औपशमिक और क्षायिक में छह आदि चार-चार स्थान **६, ५, ५, ४**; उनकी बीस-बीस प्रकृतियां हैं । सो दोनों सम्यक्त्वों के आठ-आठ स्थान तथा चालीस-चालीस प्रकृतियां हैं ।

अपूर्वकरण में क्षायोपशमिक है नहीं, औपशमिक-क्षायिक में छह आदि चार स्थान **६, ५, ५, ४**; उनकी बीस प्रकृतियां हैं । सो दोनों सम्यक्त्व के आठ स्थान और चालीस प्रकृतियां हैं ।

यहां तक के स्थानों और प्रकृतियों को चौबीस भंगों से गुणा करना ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण में सवेद भाग में एक स्थान, दो प्रकृतियां, वहां औपशमिक-क्षायिक मे दो स्थान, चार प्रकृतियां होती हैं । इनको बारह भंगों से गुणा करना । अवेद भाग में एक स्थान, एक प्रकृति; सो दोनों सम्यक्त्वों के दो स्थान, दो प्रकृतियां । इनको चार भंगों से गुणा करना । सूक्ष्मसाम्पराय में एक स्थान, एक प्रकृति । दोनों सम्यक्त्वों के दो स्थान, दो प्रकृतियां । इनको एक भंग से गुणा करना ।

यहां अपूर्वकरण तक के स्थानों एवं प्रकृतियों को जोड़कर उनको पृथक् चौबीस से गुणा करना । अनिवृत्तिकरणादि के स्थान और प्रकृतियों को वहां के गुणकार से गुणा करके स्थानों को स्थानप्रमाण में और प्रकृतियों को प्रकृतिप्रमाण में मिलानेपर, पूर्वोक्त स्थानप्रमाण और प्रकृतिप्रमाण होते हैं ।

इस प्रकरण में जैसे गुणस्थानों में उपयोग, योग, संयम, लेश्या, सम्यक्त्व इनके आश्रय से मोहनीय के उदयस्थान और उनके प्रकृतिभेद कहे, वैसे ही जीवसमासों में, गति आदि मार्गणाओं में तथा आगे कहे जायेंगे ऐसे इकतालीस जीवपदों में आगम के अनुसार मोहनीय के उदयस्थानभेद और प्रकृतिभेद कहना ॥५०७॥

आगे मोहनीय के सत्त्व का प्रकरण ग्यारह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

अट्ठ य सत्त य छक्क य चदुतिदुगेगाधिगाणि वीसाणि ।
तेरस बारेयारं पणादि एगूणयं सत्तं ।।५०८।।

अष्ट च सप्त च षट्कं च चतुस्त्रिद्विकैकमधिकानि विंशतिः ।
त्रयोदश द्वादशैकादश पंचादि एकोनकं सत्त्वं ।।५०८।।

टीका – आठ, सात, छह, चार, तीन, दो, एक से अधिक बीस और तेरह, बारह, ग्यारह, तथा पांच से लेकर एक-एक हीन प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान हैं । **२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १** । वही कहते हैं –

तीन दर्शनमोहनीय और पच्चीस चारित्रमोहनीय ऐसी अट्ठाइस प्रकृतिरूप सत्त्व हैं । उनमें से सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वेलना होनेपर सत्ताइस-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । उनमें से मिश्रमोहनीय *(सम्यग्मिथ्यात्व)* की उद्वेलना होनेपर छब्बीस-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । पुनश्च अट्ठाइस में से अनंतानुबंधी का विसंयोजन होनेपर चौबीस-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । उनमें से मिथ्यात्व का क्षय होनेपर तेइस-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय होनेपर बाइस-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । सम्यक्त्व मोहनीय का क्षय होनेपर इक्कीस-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । पुनश्च अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरणरूप मध्यम आठ कषायों का क्षय होनेपर तेरह-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है ।

पुनश्च स्त्रीवेद और नपुंसकवेद में से एक का क्षय होनेपर बारह-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेद में से अवशेष एक वेद का क्षय होनेपर ग्यारह-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । हास्यादि छह नोकषायों का क्षय होनेपर पांच-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । पुरुषवेद का क्षय होनेपर चार-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है ।

पुनश्च संज्वलन क्रोध का क्षय होनेपर तीन-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । संज्वलन मान का क्षय होनेपर दो-प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । संज्वलन माया का क्षय होनेपर एक-बादर लोभरूप सत्त्व होता है । बादर लोभ का क्षय होनेपर सूक्ष्म लोभरूप सत्त्व होता है । यहां बादर और सूक्ष्म, एक लोभप्रकृति ही है, इसलिए दोनों का एक ही

स्थान कहा — ऐसे पंद्रह सत्त्वस्थान हैं ॥५०८॥

आगे ये स्थान गुणस्थानों में कैसे पाये जाते हैं ? वह कहते हैं —

तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से चदुसु पण णियट्टीए ।
तिण्णि य थूलेकारं सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसंते ॥५०९॥

त्रीण्येकस्मिन्नेकस्मिन्नेकं द्वे मिश्रे चतुर्षु पंच निवृत्तौ ।
त्रीणि च स्थूले एकादश सूक्ष्मे चत्वारि त्रीण्युपशांते ॥५०९॥

टीका – मिथ्यात्व में तीन, सासादन में एक, मिश्र में दो, असंयतादि चार में पांच-पांच, अपूर्वकरण में तीन, अनिवृत्तिकरण में ग्यारह, सूक्ष्मसाम्पराय में चार, उपशांतमोह में तीन सत्त्वस्थान पाये जाते हैं ॥५०९॥

वे कौनसे हैं ? वह कहते हैं —

पढमतियं च य पढमं पढमं चउवीसयं च मिस्सम्हि ।
पढमं चउवीसचऊ अविरददेसे पमत्तिदरे ॥५१०॥

प्रथमत्रयं च च प्रथमं प्रथमं चतुर्विंशकं च मिश्रे ।
प्रथमं चतुर्विंशचतुष्कं अविरतदेशे प्रमत्तेतरे ॥५१०॥

टीका – मिथ्यात्व में तीन सत्त्वस्थान अट्ठाइस, सत्ताइस, छब्बीस,क्योंकि सम्यक्त्वमोहनीय, सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना मिथ्यात्व गुणस्थान में चारों गति के जीव करते हैं । सासादन में अट्ठाइस-प्रकृतिरूप एक ही है। मिश्र में अट्ठाइसरूप और चौबीसरूप दो हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी के विसंयोजनावाले भी सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से मिश्र गुणस्थान में आते हैं । असंयत आदि चार गुणस्थानों में पांच-पांच स्थान — अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस, इक्कीस प्रकृतिरूप हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी का विसंयोजन और तीन दर्शनमोहनीय का क्रम से क्षय इन गुणस्थानों में पाया जाता है ॥५१०॥

अडचउरेक्काबीसं उवसमसेढिम्हि खवगसेढिम्हि ।
एक्काबीसं सत्ता अट्ठकसायाणियट्टित्ति ॥५११॥

अष्टचतुरेकविंशतिः उपशमश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां ।
एकविंशतिः सत्ता अष्टकषायानिवृत्तिरिति ॥५११॥

टीका – उपशमश्रेणी में अपूर्वकरणादि चारों गुणस्थानों में तीन-तीन स्थान – अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस प्रकृतिरूप हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी के विसंयोजनवाले और तीनों दर्शनमोहनीय, चार अनंतानुबंधी का जिनके क्षय हुआ है वे *(क्षायिक सम्यग्दृष्टि)* भी वहां चढ़ते हैं ।

क्षपकश्रेणी में अपूर्वकरण में तथा अनिवृत्तिकरण में आठ कषाय नष्ट होने के पहले इक्कीस-इक्कीस प्रकृतिरूप एक-एक स्थान है ॥५११॥

तेरस बारेयारं तेरस बारं च तेरसं कमसो ।
पुरिसित्थिसंढवेदोदयेण गदपणगबंधम्हि ॥५१२॥

त्रयोदश द्वादशैकादश त्रयोदश द्वादश च त्रयोदश क्रमशः ।
पुरुषस्त्रीषंढवेदोदयेन गतपंचकबंधे ॥५१२॥

टीका – उसके ऊपर पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के जहां पुरुषवेद और चार संज्वलन इन पांच प्रकृतियों का बंध होता है ऐसे अनिवृत्तिकरण के भाग में तेरह-प्रकृतिरूप, बारह-प्रकृतिरूप, ग्यारह-प्रकृतिरूप तीन स्थान हैं । आठ कषाय के क्षय के अनंतर अनिवृत्तिकरण में स्त्रीवेद, नपुंसकवेद का अनुक्रम से क्षय होता है; इसलिए स्त्रीवेद के उदय सहित जो श्रेणी चढ़ता है, उसके वह तेरह-प्रकृतिरूप स्थान है और नपुंसकवेद का क्षय होनेपर बारह-प्रकृतिरूप स्थान है । जो जीव नपुंसकवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़ता है, उसके वहां वह तेरह-प्रकृतिरूप स्थान ही है, क्योंकि उसके नपुंसकवेद, स्त्रीवेद की क्षपणा का युगपत् प्रारंभ है ॥५१२॥

पुरिसोदयेण चडिदे अंतिमखंडंतिमोत्ति पुरिसुदओ ।
तप्पणिधिमिदराणं अवगदवेदोदयं होदि ॥५१३॥

पुरुषोदयेन चटिते अंतिमखंडांतिम इति पुरुषोदयः ।
तत्प्रणिधौ इतरयोरपगतवेदोदयो भवति ॥५१३॥

टीका – पुरुषवेद के उदय सहित क्षपक श्रेणी चढ़नेवालों में अंतिम खंड के अंतिम समय तक पुरुषवेद के उदय की प्रथमस्थिति के काल में नपुंसकवेद क्षपणाखंड, स्त्रीवेद क्षपणाखंड और पुरुषवेद क्षपणाखंड इनमें अंतिम खंड के अंतिम समय तक निरंतर पुरुषवेद का उदय और बंध पाया जाता है । उसी पुरुषवेद क्षपणा के अंतिम खंड के निकट अन्य नपुंसक-स्त्रीवेदों के उदय का अभाव होता है ॥५१३॥

ऐसा होनेपर क्या होता है ? वह कहते हैं –

तट्ठाणे एक्कारस सत्ता तिण्होदयेण चडिदाणं ।
सत्तण्हं समगं छिदी पुरिसे छण्हं च णवगमत्थित्ति ॥५१४॥

तत्स्थाने एकादश सत्ताः त्रिकोदयेन चटितानां ।
सप्तानां समकं छित्तिः पुरुषे षण्णां च नवकमस्तीति ॥५१४॥

टीका – उसी पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग के अंतिम खंड में, तथा उसी खंड के निकट अनिवृत्तिकरण के उस अंतिम खंड के काल में स्त्री-नपुंसकवेद के उदय सहित चढ़नेवालों के स्त्री-नपुंसकवेद के उदय के अभावरूप दो स्थानों में पुरुषवेद सहित सात नोकषाय और चार संज्वलन इन ग्यारह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है ।

पुनश्च तीन वेदों में से किसी भी वेद के उदय सहित श्रेणी चढ़े हो, उनके सात नोकषायों की क्षपणा का प्रारंभ और वहां अंतिम खंड के अंतिम समय में उन सातों की सत्त्व की व्युच्छित्ति युगपत् होती है, इसके होनेपर चार ही का सत्त्व रहता है ।

वहां इतना विशेष है कि जो पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़ा है, उसके एक समय कम दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्धों में से एक समय कम आवली प्रमाण क्षय होने के पश्चात्, अवशेष आवलीप्रमाण पुरुषवेद के संपूर्ण नवकसमयप्रबद्ध पाये जाते हैं । इसलिए उनके छह नोकषायों की ही सत्त्व की व्युच्छित्ति है । इसलिए पुरुषवेद सहित चढ़नेवाले के पांच का सत्त्व होता है ।

जिनका बंध हुये थोड़ा काल हुआ, जिनके निषेक संक्रमणादि करनेयोग्य नहीं हुये, ऐसे नूतन समयप्रबद्धों के निषेकों का नाम नवकसमयप्रबद्ध जानना । वे

नवकसमयप्रबद्ध अपने-अपने बंध के प्रथम समय से लेकर आवली प्रमाण काल तक अन्य अवस्था प्राप्त नहीं करते, इसलिए इस आवली काल को अचलावली कहते हैं । उस अचलावली के व्यतीत होनेपर, प्रतिसमय एक-एक फाली को अर्थात् उस समय संक्रमण होनेयोग्य परमाणुओं के समूह को अन्य प्रकृतिरूप परिणमाकर उदय में लाना, वही परमुख से उदय होना है । उसरूप होते हुये आवली काल में क्षय होनेपर, एक समय कम दो आवली काल में सर्व उच्छिष्टावलीमात्र निषेकों सहित क्षय होता है ।

यहां नवकसमयप्रबद्ध कहा, वहां गलाने के पश्चात् समयप्रबद्ध के अवशेष निषेक रहे, वे समयप्रबद्ध के अंश हैं, इसलिए उन निषेकों को समयप्रबद्ध कहते हैं । नवकसमयप्रबद्ध की सहनानी चार का अंक है, उस समयप्रबद्ध की अचलावलीप्रमाण आबाधा है । उसमें उदयादिरूप नहीं होते, उसकी सहनानी चार बिंदी हैं ।

पुनश्च उच्छिष्टावली अर्थात् उदय को प्राप्त हुये कर्म के आवलीमात्र अवशेष रहे निषेक तथा उदय को प्राप्त न हुये कर्म के आवलीमात्र निषेक उल्लंघकर स्थिति के अंतिम कांडक की अंतिम फाली के पतन में आवलीमात्र अवशेष रहे निषेक, वे क्षपणा बिना संक्रमण विधान से अन्य प्रकृतिरूप होकर परमुख उदय से प्रतिसमय एक-एक निषेक अनुक्रम से गलन होकर विनष्ट होते हैं ।

भावार्थ – वेदक्षपणाकाल में पुरुषवेद के नवकसमयप्रबद्ध का सत्त्व अवशेष रहता है, वह क्रोधक्षपणाकाल में क्रोधरूप परिणमित होकर विनष्ट होता है, इसलिए वहां पांच का भी सत्त्व जानना ।

निषेक संक्रमणादि स्वरूप वर्णन पहले किया था, वह जानना । इनका विशेष वर्णन यहां भाषाटीका में आगे क्षपणासार अनुसार कथन लिखेंगे, वहां जानना ॥५१४॥

इस अर्थ को कहकर अनिवृत्तिकरण में सत्त्वस्थानों का विशेष कहते हैं –

इदि चदुबंधक्खवगे तेरस बारस एगार चउसत्ता ।
तिदुइगिबंधे तिदुइगि णवगुच्छिट्ठाणमविवक्खा ॥५१५॥

इति चतुर्बंधक्षपके त्रयोदश द्वादशैकादश चतुःसत्ता ।
त्रिद्विकैकबंधे त्रिद्विकैकं नवकोच्छिष्टयोरविवक्षा ॥५१५॥

टीका – इस कहे हुये विधान से जो नपुंसकवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़ता है, उसके वेदसहित अनिवृत्तिकरण का भाग जिसमें मोहनीय के चार प्रकृतियों का बंध पाया जाता है, वहां तेरह-प्रकृतिरूप सत्त्व है ।

जो स्त्रीवेद के उदय सहित चढ़ता है, उसके वहां ही बारह-प्रकृतिरूप सत्त्व है । पुनश्च जो नपुंसकवेद वा स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ़ते हैं, उनके वेद से रहित और चार प्रकृतियों का जहां बंध पाया जाता है ऐसे भाग में ग्यारह-प्रकृतिरूप सत्त्व है । पुनश्च नपुंसकवेद वा स्त्रीवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के सात नोकषायों का क्षय होनेपर चार-प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है और पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के चार और पांच प्रकृतिरूप भी सत्त्वस्थान है, क्योंकि ग्यारह के सत्त्वस्थान संबंधी पुरुषवेद के नवकसमयप्रबद्ध की विवक्षा है । उसके ऊपर तीनों ही वेदों के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवालों के तीन, दो, एक प्रकृति का जिनमें बंध पाया जाता है, ऐसे तीन भागों में क्रम से तीनरूप, दोरूप, एकरूप सत्त्वस्थान पाये जाते हैं ।

क्षपक अनिवृत्तिकरण के सत्त्वस्थानों का यंत्र

बंध सत्त्व १ १ २ २ ३ ३ ४ ४			बंध सत्त्व १ १ २ २ ३ ३ ४ ४			बंध सत्त्व १ १ २ २ ३ ३ ४ ४ वा ५		
व्युच्छित्ति ७ नोकषाय	बंध ४	सत्त्व ११	व्युच्छित्ति ७ नोकषाय	बंध ४	सत्त्व ११	व्युच्छित्ति ७ नोकषाय	बंध ५	सत्त्व ११
	बंध ४	सत्त्व १३		बंध ४	सत्त्व १२	व्युच्छित्ति स्त्री	बंध ५	सत्त्व १२
	बंध ५	सत्त्व १३		बंध ५	सत्त्व १२		बंध ५	सत्त्व १३
	बंध ५	सत्त्व १३		बंध ५	सत्त्व १३		बंध ५	सत्त्व १३
		सत्त्व २१			सत्त्व २१		बंध ५	सत्त्व २१
नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवालों के			स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ़नेवालों के			पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवालों के		

यहां पूर्ववत् नवकबंध के एक समय कम दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावलीमात्र उदय से अवशेष प्रथम स्थिति के निषेक हैं तथापि उनकी विवक्षा यहां नहीं है । जिसतरह पुरुषवेद के नवकसमयप्रबद्ध का सत्त्व अवशेष रहता है, वह क्रोधक्षपणाकाल में परमुख होकर नष्ट होता है, उसतरह क्रोध, मान, माया के भी नवकसमयप्रबद्ध के सत्त्व अवशेष रहकर क्रम से मान, माया, लोभ के क्षपणाकाल में परमुख होकर नष्ट होते हैं; परंतु उनकी विवक्षा ग्रहण नहीं की । यदि विवक्षा होती तो जैसे चार के सत्त्व की जगह पांच का भी सत्त्व कहा, वैसे तीन, दो, एक की जगह चार, तीन, दो का भी सत्त्व कहते । परंतु वह विवक्षा नहीं होने से तीन, दो, एक ही का सत्त्व कहा ।

इसतरह अनिवृत्तिकरण में उपशमश्रेणी में तो अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं और क्षपकश्रेणी में इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो, एक रूप नौ स्थान हैं । वहां इक्कीसरूप स्थान उपशमक और क्षपक दोनों में कहा, इसलिए पुनरुक्त है । इसलिए ग्यारह सत्त्वस्थान कहे ।

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय में उपशमश्रेणी में अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस प्रकृतिरूप तीन स्थान और क्षपकश्रेणी में सूक्ष्मलोभरूप एक स्थान ऐसे चार सत्त्वस्थान हैं । वह लोभ कैसा है ? अनिवृत्तिकरण में बादर संज्वलन लोभ का अनुक्रम से अनंतवें-अनंतवें भाग अश्वकर्णकरण सहित कभी नहीं हुआ ऐसा अपूर्वस्पर्धककरण होता है । पुनश्च उन स्पर्धकों के स्थूलखंडरूप बादरकृष्टिकरण होता है । पुनश्च उन बादरकृष्टियों के सूक्ष्मखंडरूप सूक्ष्मकृष्टिकरण होता है । उन सूक्ष्मकृष्टियों का उदय अनिवृत्तिकरण में नहीं है । सूक्ष्मसाम्पराय में वे उदय को प्राप्त होते हैं ऐसा जानना । अश्वकर्णादि का स्वरूप क्षपणासार के अनुसार आगे लिखेंगे, वहां जानना ।

उपशांतमोह में अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस प्रकृतिरूप तीन स्थान हैं । ऊपर मोहनीय के सत्त्व का अभाव है ॥५१५॥

आगे मोहनीय के बंधस्थानों में कौनसे सत्त्वस्थान पाये जाते हैं ? वह दो गाथाओं द्वारा कहते हैं —

तिण्णेव दु बावीसे इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा ।
सत्तरतेरेणवबंधगेसु पंचेव ठाणाणि ॥५१६॥

पंचविधचदुविधेसु य छ सत्त सेसेसु जाण चत्तारि ।
उच्छिट्ठावलिणवकं अविवेक्खिय सत्तठाणाणि ॥५१७॥ जुम्मं

त्रय एव तु द्वाविंशतौ एकविंशतौ अष्टविंशतिः कर्मांशाः ।
सप्तदशत्रयोदशनवबंधकेषु पंचैव स्थानानि ॥५१६॥

पंचविधचतुर्विधेषु च षट् सप्त शेषेषु जानीहि चत्वारि ।
उच्छिष्टावलिनवकमविवेक्ष्य सत्त्वस्थानानि ॥५१७॥ युग्मं

टीका – मोहनीय का जहां बाइस-बंधरूप स्थान है वहां कर्मांश अर्थात् सत्त्वस्थान अट्ठाइस, सत्ताइस, छब्बीस प्रकृतिरूप तीन हैं । जहां इक्कीस का बंध है, वहां अट्ठाइसरूप ही सत्त्वस्थान है । सत्रह, तेरह और नौ के बंधस्थानों में अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस, इक्कीसरूप पांच-पांच सत्त्वस्थान हैं । पांच के बंधस्थान में अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, प्रकृतिरूप छह सत्त्वस्थान हैं । चार के बंधस्थान में पूर्वोक्त छह स्थान और चार प्रकृतिरूप एक स्थान ऐसे सात सत्त्वस्थान हैं । यहां पांच प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान नहीं कहा क्योंकि नवकबंधरूप समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावली की यहां विवक्षा नहीं है । तीन के बंधस्थान में अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस और तीन प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं । दो के बंधस्थान में अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस और दो प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं । एक के बंधस्थान में अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस और एक प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं । ये सत्त्वस्थान उच्छिष्टावली और नवकसमयप्रबद्ध की विवक्षा किये बिना कहे हैं । ऐसे जीवों के ऐसे बंधस्थान होनेपर ऐसे सत्त्वस्थान पाये जाते हैं ॥५१६, ५१७॥

दसणवपण्णरसाइं बंधोदयसत्तपयडिठाणाणि ।
भणिदाणि मोहणिज्जे एत्तो णामं परं वोच्छं ॥५१८॥

दशनवपंचदश बंधोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि ।
भणितानि मोहनीये इतो नाम परं वक्ष्यामि ॥५१८॥

टीका – मोहनीय में दस बंधस्थान, नौ उदयस्थान और पंद्रह सत्त्वस्थान कहे । इसके आगे नामकर्म के कहेंगे ॥५१८॥

वहां प्रथम ही नामकर्म के स्थानों के आधारभूत इकतालीस पदों को दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

णिरया पुण्णा पण्हं बादरसुहुमा तहेव पत्तेया ।
वियलाऽसण्णी सण्णी मणुवा पुण्णा अपुण्णा य ॥५१९॥

सामण्णतित्थकेवलि उहयसमुग्घादगा य आहारा ।
देवावि य पज्जत्ता इदि जीवपदा हु इगिदाला ॥५२०॥ जुग्मं।

निरयाः पूर्णाः पंच बादरसूक्ष्माः तथैव प्रत्येकाः ।
विकला असंज्ञिनः संज्ञिनो मनुष्या पूर्णा अपूर्णाश्च ॥५१९॥

सामान्यतीर्थकेवलिन उभयसमुद्घातगाश्च आहाराः ।
देवा अपि च पर्याप्ता इति जीवपदा हि एकचत्वारिंशत् ॥५२०॥ युग्मं।

टीका – नारकी सर्व पर्याप्त ही हैं । पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण वनस्पति ये बादर और सूक्ष्म – उनकी दस और प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय और मनुष्य ऐसे सत्रह – इनके पर्याप्त और अपर्याप्त चौंतीस हुये । पुनश्च सामान्यकेवली, तीर्थंकरकेवली और समुद्घात को प्राप्त सामान्यकेवली, तीर्थंकरकेवली – ये चार तथा आहारक और देव – ये छह पर्याप्त ही हैं – ऐसे इकतालीस जीवपद हैं । वहां नामकर्म के बंधस्थानों की विवक्षा से कर्मपद हैं, क्योंकि इन प्रकृतिरूप नामकर्म का बंध होता है । उदय और सत्त्व की विवक्षा से जीवपद हैं, क्योंकि इनका उदय, सत्त्व जीव के पाया जाता है । वही कहते हैं –

नरकगति नामकर्म १; पुनश्च पृथ्वीकाय स्थावर विशेषरूप बादर एकेन्द्रिय १, पृथ्वीकाय स्थावर विशेषरूप सूक्ष्म एकेन्द्रिय १, अप्काय स्थावर विशेषरूप बादर एकेन्द्रिय १, अप्काय स्थावर विशेषरूप सूक्ष्म एकेन्द्रिय १, तेजस्काय स्थावर विशेषरूप बादर एकेन्द्रिय १, तेजस्काय स्थावर विशेषरूप सूक्ष्म एकेन्द्रिय १,

वायुकाय स्थावर विशेषरूप बादर एकेन्द्रिय १, वायुकाय स्थावर विशेषरूप सूक्ष्म एकेन्द्रिय १, साधारण स्थावर विशेषरूप बादर एकेन्द्रिय १, साधारण स्थावर विशेषरूप सूक्ष्म एकेन्द्रिय १, स्थावर बादर विशेषरूप प्रत्येक वनस्पति एकेन्द्रिय १ – ये ग्यारह नामकर्म एकेन्द्रियजाति नामक नामकर्म एकेन्द्रिय के निमित्त से हैं ।

पुनश्च त्रस विशेषरूप द्वीन्द्रिय १, त्रस विशेषरूप त्रीन्द्रिय १, त्रस विशेषरूप चतुरिन्द्रिय १, त्रस विशेषरूप असंज्ञी पंचेन्द्रिय १, त्रस विशेषरूप संज्ञी पंचेन्द्रिय १ और मनुष्यगतिनाम १ – ये सत्रह पर्याप्त नामकर्म के विशेष के धारक पर्याप्त पद जानना और अपर्याप्त नामकर्म के विशेष के धारक अपर्याप्त पद जानना ।

पुनश्च चार केवली केवल जीवपद ही हैं, इनमें कर्मपद नहीं हैं, क्योंकि केवलीपना जीव का स्वभाव है ।

पुनश्च आहारकपद भी केवल जीवपद ही है क्योंकि देवगति को छोड़कर अन्य गतिसहित आहारक का बंध नहीं है, इसलिए देवगति में आहारकपद को गर्भित किया ।

पुनश्च पर्याप्त विशेषरूप देवगति नामकर्म ।

इसतरह नरकगति, देवगतिरूप दो पद और तिर्यंचगति, मनुष्यगति के चौंतीस पद मिलकर, चार केवली और आहारक बिना, कर्मपद छत्तीस ही जानना और जीवपद सर्व इकतालीस जानना ॥५१९, ५२०॥

तेवीसं पणवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगतीसं ।
तीसेक्कतीसमेवं एक्को बंधो दुसेढिम्हि ॥५२१॥

त्रयोविंशतिः पंचविंशतिः षड्विंशतिरष्टविंशमेकोनत्रिंशत् ।
त्रिंशदेकत्रिंशदेवमेको बंधो द्विश्रेण्यां ॥५२१॥

टीका – नामकर्म के बंधस्थान तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस, एक प्रकृतिरूप आठ हैं । उनमें से आदि के सात स्थान अपूर्वकरण के छठवें भाग तक यथासंभव पाये जाते हैं । एक प्रकृतिरूप बंधस्थान दोनों श्रेणियों में अपूर्वकरण के सातवें भाग के प्रथम समय से सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय तक पाया जाता है ।

वे बंधस्थान कौनसे कर्मपद सहित बंधते हैं वह दो सूत्रों द्वारा कहते हैं –

ठाणमपुण्णेण जुदं पुण्णेण य उवरि पुण्णगेणेव ।
तावदुगाणण्णदरेणण्णदरेणमरणिरयाणं ॥५२२॥

णिरयेण विणा तिण्हं एक्कदरेणेवमेव सुरगइणा ।
बंधंति विणा गइणा जीवा तज्जोगपरिणामा ॥५२३॥ जुम्मं

स्थानमपूर्णेन युतं पूर्णेन चोपरि पूर्णकेनैव ।
आतपद्विकयोरन्यतरेणान्यतरेणामरनिरययोः ॥५२२॥

निरयेन विना त्रयाणामेकतरेणैवमेव सुरगतिना ।
बध्नंति विना गतिना जीवास्तद्योग्यपरिणामाः ॥५२३॥ युग्मं

टीका – तेइस प्रकृतिरूप स्थान अपर्याप्त प्रकृति सहित बंधता है । पच्चीसरूप स्थान पर्याप्त प्रकृति सहित बंधता है, चकार से अपर्याप्त प्रकृति सहित भी बंधता है । छब्बीस आदि स्थान पर्याप्त प्रकृति सहित ही बंधते हैं, वहां भी छब्बीस प्रकृतिरूप स्थान आतप, उद्योत में से किसी एक प्रकृति सहित बंधता है । अट्ठाइस प्रकृतिरूप स्थान देवगति और नरकगति में से एक गतिप्रकृति सहित बंधता है। उनतीसरूप स्थान और तीसरूप स्थान तिर्यंचादि तीन में से एक गतिप्रकृति सहित बंधता है ।

[***विशेषार्थ*** *: नरकगतिसहित मात्र अट्ठाइस को ही बांधता है ।*]

इकतीस प्रकृतिरूप स्थान देवगतिप्रकृति सहित बंधता है । एक प्रकृतिरूप स्थान किसी गतिप्रकृति सहित नहीं बंधता ।

[***विशेषार्थ*** *: आठवें गुणस्थान के छठवें भाग तक देवगति का बंध है, उसके ऊपर किसी भी गतिनामकर्म का बंध नहीं है ।*]

ऐसे इन स्थानों को जीव उन-उन स्थानयोग्य परिणामों से युक्त होनेपर बांधते हैं ॥५२२, ५२३॥

वे आतप-उद्योत प्रकृतियां प्रशस्त हैं, वे किस पद सहित बंधती हैं ? वह कहते हैं –

६४८५

भूबादरपज्जत्तेणादावं बंधजोग्गमुज्जोवं ।
तेउतिगूणतिरिक्खपसत्थाणं एयदरगेण ।।५२४।।

भूबादरपर्याप्तेनातापो बंधयोग्य उद्योत: ।
तेस्त्रिकोनतिर्यक् प्रशस्तानामेकतमेन ।।५२४।।

टीका -- पृथ्वीकायिक बादरपर्याप्त सहित ही आतप प्रकृति बंधयोग्य है, अन्य सहित बंधती नहीं । तेजस्काय, वायुकाय, साधारण वनस्पति संबंधी बादर और सूक्ष्म तथा अन्य स्थावर संबंधी सूक्ष्म ये अप्रशस्त प्रकृतियां हैं इसलिए इनको छोड़कर अवशेष तिर्यंच संबंधी बादर पर्याप्त आदि प्रशस्त प्रकृतियों में से किसी प्रकृति सहित उद्योत प्रकृति बंधयोग्य है । इसलिए पृथ्वीकायिक बादर पर्याप्त सहित आतप, उद्योत में से एक प्रकृति संयुक्त छब्बीस प्रकृतिरूप बंधस्थान होता है अथवा बादर अप्कायिक पर्याप्त या प्रत्येक वनस्पति पर्याप्त में से किसी प्रकृति सहित उद्योत प्रकृति संयुक्त छब्बीस प्रकृतिरूप बंधस्थान होता है ।

पुनश्च द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* में से किसी एक प्रकृति सहित उद्योत प्रकृति संयुक्त तीस प्रकृतिरूप बंधस्थान पाया जाता है ।।५२४।।

णरगइणामरगइणा तित्थं देवेण हारमुभयं च ।
संजदबंधट्ठाणं इदराहि गईहिं णत्थित्ति ।।५२५।।

नरगतिनामरगतिना तीर्थं देवेनाहारमुभयं च ।
संयतबंधस्थानमितराभिर्गतिभिर्नास्तीति ।।५२५।।

टीका – तीर्थंकर, आहारक ये दो विशेष प्रशस्त प्रकृतियां हैं, इसलिए तीर्थंकर प्रकृति को देवअसंयत और नारकअसंयत तो मनुष्यगति सहित ही बांधते हैं और मनुष्य असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती देवगतिसहित ही बांधते हैं । पुनश्च आहारकद्विक अथवा तीर्थंकर -आहारकद्विक देवगति सहित ही बांधते हैं, क्योंकि संयत के योग्य जो बंधस्थान हैं, वे देवगति बिना अन्य गति सहित नहीं बंधते । इसी सूत्र द्वारा देव, नारकी

तो मनुष्यगति संयुक्त तीस प्रकृतिरूप स्थान को तीर्थंकर सहित बांधते हैं और मनुष्य हैं, वे देवगति संयुक्त उनतीस प्रकृतिरूप स्थान को तीर्थंकर सहित बांधते हैं ।

पुनश्च अप्रमत्त, अपूर्वकरण के छठवें भाग तक देवगति संयुक्त आहारकद्विक सहित तीस प्रकृतिरूप स्थान को और तीर्थंकर-आहारकद्विक सहित इकतीस प्रकृतिरूप स्थान को बांधते हैं — ऐसा कहा है ।।५२५।।

आगे तेइस आदि स्थानों मे प्रकृतियां जानने के लिये पाठ का अनुक्रम तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं —

णामस्स णवधुवाणि य सरूणतसजुम्मगाणमेक्कदरं ।
गइजाइदेहसंठाणाणूणेक्कं च सामण्णा ।।५२६।।

तसबंधेण हि संहदि अंगोवंगाणमेगदरगं तु ।
तप्पुण्णेण य सरगमणाणं पुण एगदरगं तु ।।५२७।।

पुण्णेण समं सव्वेणुस्सासो णियमदो दु परघादो ।
जोगट्ठाणे तावं उज्जोवं तित्थमाहारं ।।५२८।। विसेसयं

नाम्नो नव ध्रुवाश्च स्वरोनत्रसयुग्मकानामेकतरकं ।
गतिजातिदेहसंस्थानानूनामेका च सामान्या: ।।५२६।।

त्रसबंधे हि संहत्यंगोपांगानामेकतरकं तु ।
तत्पूर्णेन च स्वरगमनानां पुन: एकतरकं तु ।।५२७।।

पूर्णेन समं सर्वेणोच्छ्वासो नियमतस्तु परघात: ।
योगस्थाने आतप उद्योत: तीर्थमाहार: ।।५२८।। विशेषकं

टीका – नामकर्म की तेजस् १, कार्माण १, अगुरुलघु १, उपघात १, निर्माण १, वर्णादिक ४ — ये नौ तो ध्रुवबंधी हैं, इनका तो निरंतर सर्व जीवों के बंध है । पुनश्च स्वर बिना नौ युगल *(युग्म)* त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, प्रत्येक १, स्थिर १, शुभ १, सुभग १, आदेय १, यशस्कीर्ति १ — ऐसी तथा इनके प्रतिपक्षी स्थावर आदि

नौ इनसे संयुक्त जो नौ युगल हैं, उनमें से एक-एक युगल में से एक प्रकृति का बंध होता है – ऐसी नौ प्रकृतियां ये हुयी । पुनश्च चार गति, पांच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, चार आनुपूर्वी इनमें से एक-एक का बंध होता है – ऐसी पांच प्रकृतियां ये हुयी । सर्व मिलकर तेइस प्रकृतियां हुयी -- ये तो सामान्य हैं, इनका बंध तो सभी के है ।

पुनश्च त्रसपर्याप्त और अपर्याप्त में से एक किसी प्रकृति सहित छह संहनन, तीन अंगोपांगों में से एक-एक का बंध योग्य है, अन्य सहित नहीं है । पुनश्च त्रसपर्याप्त सहित ही सुस्वर, दुस्वर में से एक का और प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति में से एक का बंध योग्य है, अन्य सहित नहीं है । पर्याप्त सहित वर्तमान सर्व ही त्रस, स्थावर इनके सहित उच्छ्वास, परघात बंधयोग्य है, अन्य सहित नहीं । पुनश्च पूर्वगाथोक्त योग्य नामपद में ही आतप, उद्योत, तीर्थंकर, आहारकद्विक बंधयोग्य हैं ॥५२६, ५२७, ५२८॥

तित्थेणाहारदुगं एक्कसराहेण बंधमेदीदि ।
पक्खित्ते ठाणाणं पयडीणं होदि परिसंखा ॥५२९॥

तीर्थेनाहारद्विकमेकसराहेण बंधमेतीति ।
प्रक्षिप्ते स्थानानां प्रकृतीनां भवति परिसंख्या ॥५२९॥

टीका – तीर्थंकर सहित आहारकद्विक हैं, वे 'एकसराहेण' अर्थात् एक काल में युगपत् बंध को प्राप्त होती हैं, इसलिए पूर्वोक्त सामान्य तेइस का बंध कहा उसमें यथायोग्य प्रकृति मिलानेपर स्थानों की और प्रकृतियों की संख्या होती है ॥५२९॥

उसको दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

एयक्खअपज्जत्तं इगिपज्जत्तबितिचपणरापज्जत्तं ।
एइंदियपज्जत्तं सुरणिरयगईहिं संजुत्तं ॥५३०॥

पज्जत्तगबितिचपमणुसदेवगदिसंजुदाणि दोण्णि पुणो ।
सुरगइजुदमगइजुदं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३१॥ जुम्मं

एकाक्षापर्याप्तमेकपर्याप्तं द्वित्रिचपनरापर्याप्तं ।
एकेंद्रियपर्याप्तं सुरनिरयगतिभ्यां संयुक्तं ॥५३०॥

पर्याप्तकद्वित्रिचपं मानुषदेवगतिसंयुते द्वे पुनः ।
सुरगतियुतमगतियुतं बंधस्थानानि नाम्नः ॥५३१॥ युग्मं

टीका – नामकर्म के एक जीव के एक समय में जो बंध पाये जाते हैं ऐसे बंधस्थान कहते हैं –

वहां पूर्वोक्त नौ ध्रुवबंधी से लेकर आनुपूर्वी तक तेइस प्रकृतियों में से स्थावर, अपर्याप्त, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति संयुक्त जो बंध है, वह एकेन्द्रिय-अपर्याप्तयुत तेइस का बंधस्थान है – $\overset{२३}{१}$ एअ [*ए = एकेन्द्रिय, अ = अपर्याप्त, २३ = प्रकृतियां, १ स्थान*]

इनमें से अपर्याप्त प्रकृति घटाकर पर्याप्त, उच्छ्वास, परघात ये तीन मिलानेपर एकेन्द्रिय-पर्याप्तयुत पच्चीस का बंधस्थान होता है ।

इनमें से स्थावर, पर्याप्त, एकेन्द्रियजाति, उच्छ्वास, परघात इन पांच को घटाकर त्रस, अपर्याप्त, द्वीन्द्रियजाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, औदारिक अंगोपांग ये पांच मिलानेपर द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान होता है ।

पुनश्च इनमें से द्वीन्द्रियजाति घटाकर त्रीन्द्रियजाति मिलानेपर त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान होता है । इनमें से त्रीन्द्रियजाति घटाकर चतुरिन्द्रियजाति मिलानेपर चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान होता है । इनमें से चतुरिन्द्रियजाति घटाकर पंचेन्द्रियजाति मिलानेपर पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान होता है ।

इनमें से तिर्यंचगति घटाकर मनुष्यगति मिलानेपर मनुष्य-अपर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान होता है । ऐसे ये पच्चीस-प्रकृतिरूप बंधस्थान छह हुये ।

एप	द्वी	त्री	च	पं	म	अ
१	१	१	१	१	१	

पुनश्च उस मनुष्य-अपर्याप्तयुत पच्चीस के स्थान में से त्रस, अपर्याप्त, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, औदारिक अंगोपांग ये छह प्रकृतियां घटाकर

स्थावर, पर्याप्त, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, उच्छ्वास, परघात ये छह और आतप इन सात प्रकृतियों को मिलानेपर एकेन्द्रिय-पर्याप्तयुत छब्बीस का बंधस्थान होता है । इनमें से आतप घटाकर उद्योत मिलानेपर भी एकेन्द्रिय-पर्याप्तयुत छब्बीस का ही बंधस्थान होता है । ये छब्बीस-प्रकृतिरूप दो स्थान हुये ।

अब अट्ठाइस-प्रकृतिरूप कहते हैं –

नौ ध्रुवबंधी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति में से एक, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, प्रथम संस्थान *(समचतुरस्रसंस्थान)*, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक अंगोपांग, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, परघात इन अट्ठाइस-प्रकृतिरूप देवगतियुत अट्ठाइस का स्थान होता है ।

पुनश्च नौ ध्रुवबंधी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, हुंडकसंस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक अंगोपांग, दुस्वर, अप्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, परघात इन अट्ठाइस-प्रकृतिरूप नरकगतियुत अट्ठाइस का स्थान होता है । ये दो अट्ठाइस के बंधरूप स्थान हुये । *(अब उनतीस-प्रकृतिरूप बंध स्थान कहते हैं ।)*

पुनश्च नौ ध्रुवबंधी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, दुर्भग, अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति में से एक, तिर्यंचगति, द्वीन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, हुंडकसंस्थान, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, औदारिक अंगोपांग, दुस्वर, अप्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, परघात – इनरूप द्वीन्द्रिय-पर्याप्तयुत उनतीस का स्थान होता है ।

इनमें से द्वीन्द्रियजाति घटाकर त्रीन्द्रियजाति मिलानेपर त्रीन्द्रिय-पर्याप्तयुत उनतीस का स्थान होता है । इनमें से त्रीन्द्रियजाति घटाकर चतुरिन्द्रियजाति मिलानेपर चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तयुत उनतीस का स्थान होता है ।

इनमें से चतुरिन्द्रियजाति घटाकर पंचेन्द्रियजाति मिलाना और यहां स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति- अयशस्कीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, सुस्वर-दुस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति इनमें से किसी एक-एक प्रकृति

का ग्रहण करना, तब पंचेन्द्रिय-पर्याप्तयुत उनतीस का स्थान होता है ।

इनमें से तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी घटाकर मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी मिलानेपर मनुष्य-पर्याप्तयुत उनतीस का स्थान होता है ।

पुनश्च नौ ध्रुवबंधी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति में से एक, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, प्रथमसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक अंगोपांग, सुस्वर, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास, परघात, तीर्थंकर — इनरूप देवगतियुत उनतीस का स्थान होता है । इसको असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही बांधता है ।

इसतरह उनतीस-प्रकृतिरूप छह स्थान कहे ।

पुनश्च द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तयुत उनतीस के चार स्थान कहे थे, उनमें उद्योत प्रकृति मिलानेपर पर्याप्त-द्वीन्द्रिययुत तीस का, पर्याप्त-त्रीन्द्रिययुत तीस का, पर्याप्त-चतुरिन्द्रिययुत तीस का और पर्याप्त-पंचेन्द्रिययुत तीस का — ऐसे चार बंधस्थान होते हैं ।

पुनश्च पर्याप्त-मनुष्ययुत उनतीसरूप स्थान में तीर्थंकर प्रकृति मिलानेपर असंयत देव-नारकी के बंधयोग्य मनुष्यगतियुत तीस का स्थान होता है । विशेष इतना है कि यहां स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति में से किसी एक-एक प्रकृतियुत स्थान जानना ।

देवगतियुत उनतीस के स्थान में तीर्थंकर प्रकृति घटाकर आहारकद्विक मिलानेपर देवगतियुत तीस का स्थान होता है । इसको अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती बांधता है ।

इसतरह तीस-प्रकृतिरूप छह बंधस्थान हुये ।

पुनश्च देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस के स्थान में आहारकद्विक मिलानेपर अप्रमत्त के बंधयोग्य देवगतियुत इकतीस का स्थान होता है । इसतरह अपूर्वकरण के छठवें भाग तक बंधयोग्य इकतीस-प्रकृतिरूप एक स्थान है ।

पुनश्च अपूर्वकरण के सातवें भाग से सूक्ष्मसाम्पराय तक यशस्कीर्ति-प्रकृतिरूप एक का स्थान है ।

ऐसे नामकर्म के बंधस्थान कहे ॥५३०, ५३१॥

नामकर्म के बंधस्थानों का यंत्र

तेइस का स्थान १	अट्ठाइस के स्थान २	तीस के स्थान ६
१ एकेन्द्रिय अपर्याप्तयुत २३	१ देवगतियुत २८	१ द्वीन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत ३०
पच्चीस के स्थान ६	१ नरकगतियुत २८	१ त्रीन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत ३०
१ एकेन्द्रिय पर्याप्तयुत २५	**उनतीस के स्थान ६**	१ चतुरिन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत ३०
१ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तयुत २५	१ द्वीन्द्रिय पर्याप्तयुत २९	१ पंचेन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत ३०
१ त्रीन्द्रिय अपर्याप्तयुत २५	१ त्रीन्द्रिय पर्याप्तयुत २९	१ मनुष्य तीर्थयुत ३०
१ चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तयुत २५	१ चतुरिन्द्रिय पर्याप्तयुत २९	१ देव आहारकयुत ३०
१ पंचेन्द्रिय अपर्याप्तयुत २५	१ पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत २९	**इकतीस का स्थान १**
१ मनुष्य अपर्याप्तयुत २५	१ मनुष्य पर्याप्तयुत २९	१ देव, आहारक, तीर्थयुत ३१
छब्बीस के स्थान २	१ देव तीर्थयुत २९	**एक का स्थान १**
१ एकेन्द्रिय पर्याप्त आतपयुत २६		१ यशस्कीर्तिरूप १
१ एकेन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत २६		

आगे इन नामकर्मों के बंधस्थानों के भंग कहते हैं –

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे ।
अविरुद्धेक्कदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा हु ॥५३२॥

संस्थाने संहनने विहायोयुग्मे च चरमषड्युग्मे ।
अविरुद्धैकतरात् बंधस्थानेषु भंगा हि ॥५३२॥

टीका – छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति युगल, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति और इनके प्रतिपक्षीरूप छह युगल इनमें एक-एक का बंध पाया जाता है इसलिए इनको ऊपर-ऊपर स्थापित करके अविरुद्ध एक-एक का ग्रहण करनेपर, प्रकृतियों के बदलने से भंग होते हैं । इन सबको **६, ६, २, २, २, २, २, २, २** परस्पर गुणा करनेपर छियालीस सौ आठ *(४६०८)* भंग होते हैं ।

जैसे, प्रथम संस्थान सहित स्थान कहा, पश्चात् दूसरे संस्थान सहित कहा, ऐसे अक्षसंचार द्वारा एक-एक प्रकृति बदलने से ये भंग होते हैं, ऐसा भावार्थ जानना ॥५३२॥

तत्थासत्थो णारयसव्वापुण्णेण होदि बंधो दु ।
एक्कदराभावादो तत्थेक्को चेव भंगो दु ॥५३३॥

तत्राशस्तो नारक सर्वापूर्णेन भवति बंधस्तु ।
एकतराभावात् तत्रैकश्चैव भंगस्तु ॥५३३॥

टीका – उन प्रशस्त-अप्रशस्त बंधरूप प्रकृतियों में से नरकगति सहित हुंडक संस्थान, अप्रशस्त विहायोगति आदि एक-एक अप्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध है । पुनश्च त्रस-स्थावर सहित जो अपर्याप्त, उन सहित दुर्भग, अनादेय आदि अप्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध है क्योंकि इनमें बंधयोग्य एक प्रकृति के प्रतिपक्षी प्रकृति का बंध नहीं है, संस्थानादि में से जिसका बंध है उस एक-एक ही प्रकृति का बंध है, इसलिए पहले इकतालीस पद कहे थे, उनमें से नरकगतियुत अट्ठाइस के स्थान में और एकेन्द्रिययुत ग्यारह पदों के अपर्याप्तयुत तेइस के स्थानों में और त्रस सहित छह पद- उनके अपर्याप्तयुत पच्चीस के स्थानों में एक-एक ही भंग है ॥५३३॥

२३	२५
१	१

तत्थासत्थ एदि हु साहारणथूलसव्वसुहुमाणं ।
पज्जत्तेण य थिरसुह जुम्मेक्कदरं तु चदुभंगा ॥५३४॥

तत्राशस्ता एति हि साधारणस्थूलसर्वसूक्ष्माणाम् ।
पर्याप्तेन च स्थिरशुभ युग्मैकतरं तु चतुर्भंगाः ॥५३४॥

टीका – उन एकेन्द्रिय के ग्यारह भेदों में साधारण वनस्पति बादर पर्याप्त और सर्व सूक्ष्म पर्याप्त सहित पच्चीस के बंधस्थानों में भी उन पूर्वोक्त प्रकृतियों में से एक-एक अप्रशस्त ही का बंध है । विशेष इतना है कि स्थिर-अस्थिर में से या तो स्थिर का बंध होता है, या अस्थिर का और शुभ-अशुभ युगल में से या तो शुभ का बंध होता है या अशुभ का; इसलिए इन दोनों युगलों द्वारा साधारण बादर वनस्पति पर्याप्त सहित पच्चीस के स्थान में और पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण इनके सूक्ष्म पर्याप्त

सहित पच्चीस के पांच स्थानों में चार-चार भंग जानना ॥५३४॥

पुढवीआऊतेऊ वाऊपत्तेयवियलसण्णीणं ।
सत्थेण असत्थं थिर सुहजसजुम्मट्ठभंगा हु ॥५३५॥

पृथिव्यप्तेजोवायु प्रत्येकविकलासंज्ञिनां ।
शस्तेनाशस्तं स्थिर शुभयशोयुग्ममष्टभंगा हि ॥५३५॥

टीका – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति *(पर्याप्त)*, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय *(पर्याप्त)* इनके अविरुद्ध त्रस-बादर पर्याप्तादिक यथासंभव हुये ऐसे पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के स्थानों में दुर्भग, अनादेय आदि का तो एक-एक अप्रशस्त ही का बंध है और स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति इन तीन युगलों में से एक-एक प्रशस्त या अप्रशस्त किसी का बंध होता है; इसलिए इन तीन युगलों की प्रकृतियां बदलने से आठ-आठ भंग होते हैं ।

पृथ्वीकायिक बादर-पर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान, आतपयुत या उद्योतयुत छब्बीस का स्थान, अप्कायिक बादर-पर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान, उद्योतयुत छब्बीस का स्थान, तेजस्कायिक बादर-पर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान, वायुकायिक बादर-पर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान, प्रत्येकवनस्पति-पर्याप्तयुत पच्चीस का स्थान और उद्योतयुत छब्बीस का स्थान, पुनश्च द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी-पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत उनतीस-तीस के बंधस्थान – इनमें आठ-आठ भंग हैं ॥५३५॥

अवशेष तिर्यंच पंचेन्द्रिय-पर्याप्तयुत संज्ञी कर्मपद में और मनुष्यगति-पर्याप्तयुत मनुष्य कर्मपद में उनतीस और तीस के स्थानों में बंध कहने के लिये गुणस्थानों में विभाजन करते हैं –

सण्णिस्स मणुस्सस्स य ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु ।
छादालसयं अट्ठ य बिदिये बत्तीससयभंगा ॥५३६॥

संज्ञिनो मनुष्यस्य च ओघैकतरं तु मिथ्याभंगा हि ।
षट्चत्वारिंशच्छतमष्ट च द्वितीये द्वात्रिंशच्छतभंगाः ॥५३६॥

टीका – तिर्यंचगति-पर्याप्तयुत संज्ञी के उनतीस के स्थान में और उद्योतयुत तीस के स्थान में तथा मनुष्यगति-पर्याप्तयुत उनतीस के स्थान में सामान्य छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति आदि सात युगल – इनमें एक-एक करके सर्व प्रकृतियों का बंध पाया जाता है; इसलिए छह संस्थान आदि के एक-एक के बदलने से पूर्वोक्त एक-एक स्थान में छियालीस सौ आठ भंग होते हैं, वे मिथ्यात्व गुणस्थान में ही हैं ।

पुनश्च मनुष्यगतियुत तीस का स्थान तीर्थंकर सहित है, इसका बंध असंयत देव-नारकी ही के है, इसलिए मिथ्यादृष्टि के बंधस्थानों के भंगों में इसको नहीं कहा ।

सासादन के उद्योत रहित उनतीस के स्थान में और उद्योत सहित तीस के स्थान में पांच संस्थान, पांच संहनन, सात युगल इनमें एक-एक का बंध पाया जाता है, इसलिए इनकी एक-एक प्रकृति बदलने से बत्तीस सौ-बत्तीस सौ भंग होते हैं । सासादन के मनुष्यगति-पंचेन्द्रिय-पर्याप्तयुत उनतीस के स्थान में भी ऐसे ही बत्तीस सौ भंग हैं ॥५३६॥

मिस्साविरदमणुस्सट्ठाणे मिच्छादिदेवजुदठाणे ।
सत्थं तु पमत्तंते थिरसुहजसजुमगट्ठभंगा ॥५३७॥

मिश्राविरतमनुष्यस्थाने मिथ्यादिदेवयुतस्थाने ।
शस्तं तु प्रमत्तांते स्थिरशुभयशोयुग्मकाष्टभंगा हि ॥५३७॥

टीका – देव-नारकी मिश्र और असंयत गुणस्थानवर्ती के मनुष्यगति-पर्याप्तयुत उनतीस के स्थान में और देव-नारकी असंयत के मनुष्यगति-पर्याप्त-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान में स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति इन तीन युगलों में से किसी एक-एक प्रकृति का बंध है और संस्थानादि में एक-एक प्रशस्त प्रकृति ही का बंध है, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति आदि का बंध व्युच्छेद सासादन में ही हुआ, इसलिए तीन युगलों की प्रकृति बदलने से पूर्वोक्त एक-एक स्थान में आठ-आठ भंग हैं ।

पुनश्च तिर्यंच-मनुष्य मिश्र और असंयत गुणस्थानवर्ती के तिर्यंच-मनुष्य में मनुष्यगति का बंध व्युच्छेद सासादन में ही हुआ, इसलिए वे पूर्वोक्त दोनों स्थान न कहे ।

पुनश्च मिथ्यात्वादि असंयत तक जीवों के देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान में, असंयत जीव के देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस के स्थान में, देशसंयत-प्रमत्त जीव के देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान में और देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस के स्थान में प्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध है, तथापि अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्ति का प्रमत्त तक बंध है, इसलिए तीन युगलों से इन स्थानों में आठ-आठ भंग हैं ।

पुनश्च अप्रमत्त-अपूर्वकरण के देवगतियुत अट्ठाइस के, तीर्थंकरयुत उनतीस के, तीर्थंकर रहित आहारकद्विकयुत तीस के तथा तीर्थंकर-आहारकद्विकयुत इकतीस के — इन चार स्थानों में प्रतिपक्षी अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध नहीं है, इसलिए एक-एक ही भंग पाया जाता है ।

पुनश्च अपूर्वकरण के अंतिम भाग के प्रथम समय से सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय तक यशस्कीर्ति बंधरूप एक ही के स्थान में एक ही भंग है ॥५३७॥

आगे पर्याय को छोड़ना या पर्याय में उपजना — इनको कहते हैं —

णेरयियाणं गमणं सण्णीपज्जत्तकम्मतिरियणरे ।
चरिमचऊतित्थूणे तेरिच्छे चेव सत्तमिया ॥५३८॥

नेरयिकाणां गमनं संज्ञिपर्याप्तकर्मतिर्यग्नरे ।
चरमचतुष्कतीर्थोने तिरिश्चि चैव सप्तमिकाः ॥५३८॥

टीका – गमन अर्थात् मरकर उपजना । नारकी धर्मादि तीन पृथ्वीवालों के तो गर्भज-पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-संज्ञी-कर्मभूमियां तिर्यंच वा मनुष्यों में ही गमन है, क्योंकि अर्धचक्री, सकलचक्री और बलभद्र बिना पंद्रह-कर्मभूमि के मनुष्यों-तिर्यंचों में, लवणसमुद्र, कालोदधि, स्वयंप्रभाचल पर्वत के बाहर आधे स्वयंभूरमणद्वीप में, सम्पूर्ण स्वयंभूरमणसमुद्र में, स्वयंभूरमण समुद्र के बाहर चारों कोणों में — क्योंकि स्वयंभूरमण समुद्र गोल है और त्रसनाली चौकोर है इसलिए चारों कोणों में भी — पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं — इनमें आदि के तीन नरकों से निकलकर जीव जलचर, स्थलचर, नभचर तिर्यंचों में उपजते हैं ।

[***विशेषार्थ*** : *नरक से निकलकर जीव अर्धचक्री, चक्रवर्ती, बलभद्र नहीं हो सकता , भोगभूमि में भी नहीं उपजता, कर्मभूमि के मनुष्य या तिर्यंच में ही उपजता है । प्रत्येक मेरुसंबंधी भरतक्षेत्र, ऐरावतक्षेत्र और विदेहक्षेत्र इसतरह पांच मेरु संबंधी पंद्रह कर्मभूमि हैं । नरकों के नाम अनुक्रम से इसतरह हैं — (१) धर्मा, (२) वंशा, (३) मेघा, (४) अंजना, (५) अरिष्टा, (६) मघवी, (७) माघवी ।*

जम्बूद्वीप, पूर्वधातकीखण्ड, पश्चिम धातकीखण्ड, पूर्व पुष्करार्ध, पश्चिम पुष्करार्ध इनमें प्रत्येक में एक-एक मेरु, छ-छ कुलाचल, सात-सात क्षेत्र हैं । इनमें प्रत्येक में एक-एक भरतक्षेत्र, एक-एक ऐरावत क्षेत्र, एक-एक विदेहक्षेत्र, दो-दो जघन्य भोगभूमि दो-दो मध्यम भोगभूमि, दो-दो उत्तम भोगभूमि ऐसी छह-छह भोगभूमि हैं । प्रत्येक मेरु संबंधी विदेह में पूर्वविदेह, पश्चिम विदेह उसमें भी दक्षिण के-उत्तर के आठ-आठ ऐसे बत्तीस-बत्तीस क्षेत्र हैं ।

लवणसमुद्र और कालोदक समुद्र में ४८-४८ कुभोगभूमि हैं जहां कुमानुष अर्थात् अंतद्वीपिज म्लेच्छ रहते हैं ।]

पूर्वोक्त नारकी जीव तीस भोगभूमि और छानबे कुभोगभूमि के तिर्यंच-मनुष्यों में नहीं उपजते । तथा मानुषोत्तर पर्वत और स्वयंप्रभाचल के बीच असंख्यात द्वीप समुद्रों में जहां तिर्यंचसंबंधी जघन्य भोगभूमि हैं — वहां के तिर्यंचों में नहीं उपजते ।

[***विशेषार्थ*** : *वहां मात्र द्वीपों में ही तिर्यंच रहते हैं, समुद्रों में जलचर नहीं पाये जाते ।*]

पुनश्च अंजना पृथ्वीवाले तीर्थंकर बिना और अरिष्टावाले चरमशरीरी बिना और मघवीवाले सकल-संयमी बिना पूर्वोक्त मनुष्य और तिर्यंचों में उपजते हैं । माघवीवाले देशसंयत, असंयत, मिश्र, सासादन बिना पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों में ही उपजते हैं, क्योंकि तिर्यंच बिना अन्य आयु का इनके बंध नहीं है ॥५३८॥

[***विशेषार्थ*** : *चौथे नरक से निकलकर जीव तीर्थंकर नहीं हो सकता । पहले तीन नरकों में से निकलकर जीव तीर्थंकर हो सकता है । चौथे नरक से निकलकर मनुष्य होकर उसी भव में मोक्ष पा सकता है । पांचवें नरक से निकलकर जीव*

चरमशरीरी नहीं हो सकता है, संयमी हो सकता है । छठवें नरक से निकलकर जीव संयमी नहीं हो सकता – देशसंयम तक ही प्राप्त कर सकता है । छठवें नरक तक के जीव मनुष्य या तिर्यंच में उत्पन्न होते हैं । परंतु सातवें नरक के नारकी मात्र तिर्यंच – संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त हिंस्र श्वापद में ही जन्म लेते हैं, उस तिर्यंच के भव में उन्हें एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है, अन्य कोई नहीं । सातवें नरक का नारकी अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त कर मरण के अंतर्मुहूर्त पूर्व तक तैंतीस सागर में कुछ अंतर्मुहूर्त काल कम तक चौथे गुणस्थान में रह सकता है, परंतु वह नियम से मिथ्यात्व में जाकर तिर्यंच का आयुबंध करके मरता है ।]

तत्थतणऽविरदसम्मो मिस्सो मणुवदुगमुच्चयं णियमा ।
बंधदि गुणपडिवण्णा मरंति मिच्छेव तत्थ भवा ॥५३९॥

तत्रतनोऽविरतसम्यक् मिश्रो मानवद्विकमुच्चकं नियमात् ।
बध्नाति गुणप्रतिपन्ना म्रियंते मिथ्ये एव तत्र भवाः ॥५३९॥

टीका – 'तत्रतनः' अर्थात् सातवें माघवी नरक में उत्पन्न जीव जब असंयत, मिश्र गुणस्थान में आता है, तब अपने-अपने गुणस्थान में मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र नियम से बांधता है । वहां उत्पन्न होनेपर सासादन, मिश्र, असंयत गुणस्थान को प्राप्त हुये जीव जिस काल में मरते हैं, उस काल में मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होकर ही मरते हैं ॥५३९॥

तेउदुगं तेरिच्छे सेसेगअपुण्णविलयगा य तहा ।
तित्थूणणरेवि तहाऽसण्णी धम्मे य देवदुगे ॥५४०॥

तेजोद्विकं तिरश्चि शेषैकापूर्णविकलकाश्च तथा ।
तीर्थोननरेऽपि तथा असंज्ञी धर्मे च देवद्विके ॥५४०॥

टीका – तिर्यंचगति में बादर और सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव मरकर नियम से तिर्यंचगति में ही उपजते हैं, क्योंकि सर्व भोगभूमियां पंचेन्द्रिय तिर्यंच को छोड़कर अन्य सर्व त्रिलोकवर्ती बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-

अपर्याप्त पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण वनस्पति, पर्याप्त-अपर्याप्त प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी पंचेन्द्रिय – इन सर्व तिर्यंचों में तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव उपजते हैं ।

पुनश्च अवशेष बादर और सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त पृथ्वीकायिक और अप्कायिक, नित्य निगोद, चतुर्गतिनिगोद, पर्याप्त और अपर्याप्त प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय – इतने जीव मरकर तेजस्कायिक-वायुकायिकवत् तिर्यंचों में तथा तिरसठ शलाका पुरुषों के बिना मनुष्यों में उपजते हैं । इतना विशेष है कि नित्य और चतुर्गति सूक्ष्म निगोद से आये हुये मनुष्य सम्यक्त्व और देशसंयम को ग्रहण कर सकते हैं परंतु सकलसंयम को नहीं ग्रहण करते ।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय मरकर पृथ्वीकायिकवत् तिर्यंच, मनुष्यों में, प्रथम नरक में तथा भवनवासी, व्यंतर देवों में उत्पन्न होते हैं । अन्य देवों में *(ज्योतिषी और वैमानिकों में)* और अन्य नरकों में *(दूसरे से सातवें नरकों में)* नहीं उपजते, क्योंकि असंज्ञी के आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है ॥५४०॥

[***विशेषार्थ*** *: ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु पल्य के आठवें भागप्रमाण और उत्कृष्ट आयु तीन पल्य है, वैमानिकों की उससे भी अधिक है इसलिए असंज्ञी मरकर वहां उत्पन्न नहीं होते ।*]

सण्णीवि तहा सेसे णिरये भोगेवि अच्चुदंतेवि ।
मणुवा जंति चउग्गदि परियंतं सिद्धिठाणं च ॥५४१॥

संज्ञी अपि तथा शेषे निरये भोगेऽपि अच्युतांतेऽपि ।
मानवा यांति चतुर्गति पर्यंत सिद्धिस्थानं च ॥५४१॥

टीका – संज्ञी तिर्यंच भी असंज्ञी पंचेन्द्रियवत् सभी में और सर्व नारकियों में, सर्व भोगभूमिवालों में वा अच्युत स्वर्ग तक के सर्व देवों में उपजते हैं ।

कर्मभूमियां पर्याप्त मनुष्य संज्ञीवत् सर्व जीवों में और कल्पातीत अहमिन्द्र देवों में उपजते हैं ।

अपर्याप्त मनुष्य कर्मभूमियां तिर्यंचों में और तीर्थंकरादि विशेष पद रहित ऐसे सामान्य मनुष्यों में उपजते हैं ।

तीस भोगभूमि के तिर्यंच और मनुष्य तथा असंख्यात द्वीपसमुद्रों संबंधी तिर्यंच संबंधी जघन्य भोगभूमि के तिर्यंच वे मरकर उनमें से सम्यग्दृष्टि तो सौधर्म-ईशान में ही उपजते हैं और मिथ्यादृष्टि, सासादन और कुभोगभूमियां मनुष्य भवनत्रिक देवों में उपजते हैं ।

चरमशरीरी मनुष्य स्वात्मोपलब्धिरूप सिद्धिस्थान को प्राप्त होते हैं ॥५४१॥

आहारगा दु देवे देवाणं सण्णिकम्मतिरियणरे ।
पत्तेयपुढविआऊ बादरपज्जत्तगे गमणं ॥५४२॥

भवणतियाणं एवं तित्थूणणरेसु चेव उप्पत्ती ।
ईसाणंताणेगे सदरदुगंताण सण्णीसु ॥५४३॥ जुम्मं

आहारकास्तु देवे देवानां संज्ञिकर्मतिर्यग्नरे ।
प्रत्येकपृथिव्यब्बादरपर्याप्तके गमनं ॥५४२॥

भवनत्रिकाणामेवं तीर्थोननरेषु चैवोत्पत्तिः ।
ईशानांतयोरेकस्मिन् शतारद्विकांतानां संज्ञिषु ॥५४३॥ युग्मं

टीका – आहारक देह सहित मरनेवाले प्रमत्तसंयमी का गमन वैमानिक देवों में ही होता है । सर्वार्थसिद्धि तक के देव पंद्रह कर्मभूमि के मनुष्यों में ही गमन करते हैं *(उपजते हैं)*, अन्यत्र नहीं । सहस्रार तक *(बारहवें स्वर्ग तक)* के देवों का उन मनुष्यों में अथवा पंद्रह कर्मभूमि, लवणोद, कालोद समुद्र, स्वयंभूरमण द्वीप का अपरार्ध *(बाहरी आधा)*, स्वयंभूरमण समुद्रवर्ती संज्ञी पर्याप्त जलचर, स्थलचर, नभचर तिर्यंचों में उपजना होता है ।

ईशान *(२ रा स्वर्ग)* तक के देवों का उन पूर्वोक्त मनुष्य, तिर्यंचों में या बादर पर्याप्त पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पतिरूप एकेन्द्रिय में उपजना होता है । भवनत्रिक देवों का भी सौधर्म ईशानवत् ही उपजना होता है । इतना विशेष है कि मनुष्यों में

तीर्थंकरादि तिरसठ शलाका पुरुषों में वे नहीं उपजते ॥५४२, ५४३॥

इसतरह चारों गति के जीवों के च्यवन-उत्पत्ति को संक्षेप से कहकर आगे उन नामकर्म के बंधस्थानों को चौदह मार्गणाओं में आठ गाथाओं द्वारा कहते हैं —

णामस्स बंधठाणा णिरयादिसु णवयवीस तीसमदो ।
आदिमछक्कं सव्वं पणछण्णववीस तीसं च ॥५४४॥

नाम्नः बंधस्थानानि निरयादिषु नवकविंशं त्रिंशदतः ।
आदिमषट्कं सर्वं पंचषट्नवविंशं त्रिंशच्च ॥५४४॥

टीका – ***गतिमार्गणा*** में नामकर्म के बंधस्थान नरकादि गति में क्रम से नरकगति में तो उनतीस, तीस के दो स्थान बंधते हैं । वहां पंचेन्द्रिय-पर्याप्त तिर्यंचगतियुत और मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को मघवी *(छठवें नरक)* तक के जीव बांधते हैं और पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंचगतियुत उनतीस के या उद्योतयुत तीस के स्थान को माघवी *(सातवें नरक)* तक के जीव बांधते हैं । तथा मनुष्यगति-पर्याप्त-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को मेघा पृथ्वी *(तीसरे नरक)* तक के जीव ही बांधते हैं ।

पुनश्च मार्गणाओं में गुणस्थान विवक्षा से उन स्थानों को लगाना सुगम है क्योंकि गति, इन्द्रिय, पर्याप्ति आदि के विशेष स्थान-स्थान प्रति कहे हैं । वहां मिथ्यादृष्टि वा सासादन गुणस्थानवर्ती नारकी तिर्यंचगतियुत या मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधते हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं क्योंकि तिर्यंचगतिद्विक और उद्योत का बंध-व्युच्छेद सासादन में ही हुआ है । असंयत नारकी मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को अथवा आदि के तीन नरकों में मनुष्यगति-पर्याप्त-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को बांधते हैं ।

तिर्यंचगति में आदि के छह स्थान हैं । [***विशेषार्थ*** *: तिर्यंच जीव इन छह स्थानों का बंध करते हैं* ***२३, २५, २६, २८, २९, ३०*** *प्रकृतिरूप स्थान*] वहां स्थावर-बादर-अपर्याप्त-एकेन्द्रिययुत वा स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-एकेन्द्रिय तिर्यंचगतियुत तेइस के स्थान को बांधते हैं । पुनश्च बादर-पर्याप्त-एकेन्द्रिययुत वा सूक्ष्म-पर्याप्त-एकेन्द्रिययुत वा त्रस-अपर्याप्त-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय या पंचेन्द्रिय जाति-तिर्यंचगतियुत अथवा त्रस-

अपर्याप्त-मनुष्यगतियुत पच्चीस के स्थान को बांधते हैं ।

पुनश्च पृथ्वीकाय विशेषरूप स्थावर-बादर-एकेन्द्रियजाति-आतप-तिर्यंचगतियुत अथवा तेजस्कायिक, वायुकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक इन तीन बिना अन्य एकेन्द्रिय बादर-पर्याप्त-उद्योत-तिर्यंचगतियुत छब्बीस के स्थान को बांधते हैं । पुनश्च त्रस-पर्याप्त-नरकगतियुत वा त्रस-पर्याप्त-देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को बांधते हैं । पुनश्च त्रस-पर्याप्त द्वीन्द्रिय वा त्रीन्द्रिय वा चतुरिन्द्रिय वा पंचेन्द्रियजाति-तिर्यंचगतियुत अथवा त्रस-पर्याप्त-मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधते हैं । पुनश्च त्रस-बादर-पर्याप्त-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय वा पंचेन्द्रियजाति, तिर्यंचगति-उद्योतयुत तीस के स्थान को बांधते हैं । इसतरह *(तिर्यंचों के बंधयोग्य)* छह स्थान हैं ।

पुनश्च लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच अट्ठाइस के स्थान बिना शेष पांच स्थानों को ही बांधते हैं । मनुष्यगति में सर्व ही स्थानों को बांधते हैं । देवगति में पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के चार स्थानों को बांधते हैं ॥५४४॥

पंचक्खतसे सव्वं अडवीसूणादिछक्कयं सेसे ।
चउमणवयणोराले सड देवं वा विगुव्वदुगे ॥५४५॥

पंचाक्षत्रसे सर्वमष्टविंशोनादिषट्कं शेषे ।
चतुर्मनोवचनौराले सर्वं देवं वा वैगूर्वद्विके ॥५४५॥

टीका – इन्द्रियमार्गणा में तो पंचेन्द्रिय में और **कायमार्गणा** में त्रस में तो सर्व बंधस्थान हैं । अवशेष एकेन्द्रियादि चारों में और पृथ्वीकायादि पांचों में आदि के छह स्थानों में से अट्ठाइस के स्थान बिना शेष पांच-पांच स्थान जानना ।

योगमार्गणा में चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिक काययोग इनमें तो सर्व बंधस्थान हैं । वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र काययोग में देवगतिवत् चार स्थान *(२५, २६, २९, ३०)* हैं ॥५४५॥

अडवीसदु हारदुगे सेसदुजोगेसु छक्कमादिल्लं ।
वेदकसाये सव्वं पढमिल्लं छक्कमण्णाणे ॥५४६॥

अष्टविंशद्विकमाहारद्विके शेषद्वियोगयो: षट्कमादिमं ।
वेदकषाये सर्वं प्राथमिकं षट्कमज्ञाने ॥५४६॥

टीका – आहारक, आहारकमिश्र काययोग में अट्ठाइस, उनतीस के दो स्थान हैं । शेष कार्माण, औदारिकमिश्र काययोग में आदि के छह स्थान हैं । यहां देवगति, आहारकद्विकयुत स्थान नहीं पाया जाता, क्योंकि इसका बंध अप्रमत्त, अपूर्वकरण में ही पाया जाता है । पुनश्च कार्माण और औदारिकमिश्र योग में तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि में अट्ठाइस का बंध नहीं है, क्योंकि 'कम्मे उरालमिस्सं' सूत्र द्वारा वहां देवद्विक और नरकद्विक के बंध का अभाव है ।

पुनश्च कार्माणयोग सहित तिर्यंच-मनुष्य सासादन में सर्व एकेन्द्रिय-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्तयुत तेइस, पच्चीस, छब्बीस का तथा नरकगति-देवगतियुत अट्ठाइस का तथा विकलत्रययुत उनतीस, तीस का – इनके बिना अवशेष तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यगतियुत उनतीस और तीस के दो बंधस्थान हैं । यहां 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि' इस वचन से देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान का अभाव जानना । पुनश्च कार्माण योगवाले तिर्यंच, मनुष्य असंयत में देवगतियुत अट्ठाइस का स्थान और मनुष्यअसंयत में देवगति, तीर्थंकरयुत उनतीस का भी स्थान जानना ।

वेदमार्गणा और **कषायमार्गणा** में तीनों वेदों में और क्रोधादि चारों कषायों में सर्व बंधस्थान हैं । वहां विशेष कहते हैं –

नपुंसकवेद में उनतीस, तीस के दो स्थान आदि के तीन नरकों में जानना । नपुंसकवेदवाले तिर्यंचों में एकेन्द्रिय-बादर, सूक्ष्म-अपर्याप्तयुत तेइस का, एकेन्द्रिय-बादर, सूक्ष्म-पर्याप्तयुत पच्चीस का, त्रस-अपर्याप्त-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-तिर्यंचगति, मनुष्यगतियुत पच्चीस का, एकेन्द्रिय-बादर-पर्याप्त-आतप या उद्योतयुत छब्बीस का, तिर्यंचगति या मनुष्यगति-पर्याप्तयुत उनतीस का, तिर्यंचगति-पर्याप्त-उद्योतयुत तीस का – ऐसे स्थान पाये जाते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकवेदी में नरकगति-देवगतियुत अट्ठाइस का स्थान भी पाया जाता है । स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी तिर्यंचों में छह स्थान जानना ।

नपुंसकवेदी मनुष्य-लब्धिअपर्याप्त में एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय में कहे हुये पांच

स्थान *(नरकगति-देवगति बिना)* जानना। पुनश्च पर्याप्त-मनुष्य द्रव्य से नपुंसक, स्त्री, पुरुषवेदी जीव पुरुष, स्त्री,नपुंसक-वेद के उदय से भाव से पुरुष, स्त्री, नपुंसकवेदी होते हैं, तीर्थंकर, देव बिना। वहां भाव-नपुंसक, स्त्री, पुरुषवेद में गुणस्थान अपना-अपना सवेद अनिवृत्तिकरण तक जानना । वहां वेदों में नौ-नौ बंधस्थान जानना ।

विशेष इतना है कि क्षपकश्रेणीवाले नपुंसक, स्त्रीवेदी में देवगति, तीर्थकरयुत उनतीस का या इकतीस का स्थान नहीं पाया जाता, क्योंकि कितने ही चरमशरीरी जीवों के वहां क्षपकश्रेणी में तीर्थंकर का बंध पाया भी जाता है, तथापि वे जीव क्षपकश्रेणी में पुरुषवेद के ही उदय सहित चढ़नेवाले होते हैं । यदि चरमशरीरी जीवों के तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ असंयत, देशसंयत गुणस्थान में होता है तो उनके तपकल्याणक आदि तीन ही कल्याणक होते हैं और प्रमत्त, अप्रमत्त में *(शुरु)* होता हो, तो ज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणक ये दो ही कल्याणक होते हैं और यदि पूर्वभव में ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ किया हो तो उस जीव के गर्भकल्याणक आदि पांचों ही कल्याणक होते हैं, ऐसा विशेष जानना ।

कषायमार्गणा में क्रोधादि कषायों के अनंतानुबंधी आदि भेदों द्वारा चार भेद होते हैं, तथापि जाति के आश्रय से एकत्वपने का ही ग्रहण किया है, क्योंकि यहां शक्ति की प्रधानता से भेद कहने की इच्छा नहीं है । वही कहते हैं —

बारह कषायों के *(अनंतानुबंधी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४)* स्पर्धक तो सर्वघाति ही हैं, देशघाति नहीं हैं और संज्वलन के स्पर्धक सर्वघाति और देशघाति दोनों हैं । इसलिए अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से एक का उदय होते हुये अप्रत्याख्यानादि तीनों का भी उदय होता ही है, क्योंकि अनंतानुबंधी के उदय सहित अन्य के उदय के भी सम्यक्त्व, संयम-गुण का घातकपना है । उसीप्रकार अप्रत्याख्यान क्रोधादिक में से एक का उदय होते हुये, प्रत्याख्यानादि दो का भी उदय है ही, क्योंकि अप्रत्याख्यान के उदय के साथ उन दोनों का उदय भी देशसंयम का घात करता है । पुनश्च प्रत्याख्यान क्रोधादि में से एक का उदय होते हुये संज्वलन का भी उदय है ही, क्योंकि *(प्रत्याख्यान के उदय के साथ संज्वलन का उदय होनेपर)* प्रत्याख्यानवत् संज्वलन भी सकलसंयम का घात करता

है । पुनश्च केवल संज्वलन का उदय हो तो, प्रत्याख्यानादि तीन का उदय नहीं होता, क्योंकि अन्य कषायों के स्पर्धक सकलसंयम के विरोधी हैं ।

पुनश्च केवल प्रत्याख्यान, संज्वलन का उदय होनेपर शेष दो कषायों का उदय नहीं है, क्योंकि अवशेष कषायों के स्पर्धक देशसंयम, सकलसंयम का घात करते हैं ।

पुनश्च केवल अप्रत्याख्यानादि तीन का उदय होनेपर, अनंतानुबंधी का उदय नहीं है, क्योंकि अनंतानुबंधी के स्पर्धक सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम का घात करते हैं ।

इसप्रकार अनंतानुबंधी के और उसके उदय के साथ अप्रत्याख्यानादिकों के चारित्रमोहपना होनेपर भी सम्यक्त्व, संयम का घातकपना कहा । अनंतानुबंधी के उदय रहित अप्रत्याख्यानादि के उदय देशसंयम का घात करते हैं । अप्रत्याख्यान के उदय रहित प्रत्याख्यान, संज्वलन का उदय सकलसंयम का घात करता है । प्रत्याख्यान के उदय रहित केवल संज्वलन-देशघाति स्पर्धकों का उदय यथाख्यात संयम का घात करता है ।

इसतरह शक्ति साधारण की विवक्षा से सोलह कषायों के क्रोधादिक भेदों से चार कषाय ही अंगीकार किये हैं, उसकारण सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम का असंयत, देशसंयत, प्रमत्तादि गुणस्थानों में उपजना कहा ।

यहां प्रश्न – अनंतानुबंधी की शक्ति से अन्य कषायों की शक्ति समान कैसे हो सकती है ?

उसका उत्तर –

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं ।
चउविहे भावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥ गो. कर्म.-१८२॥

देशघाति चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पांच अंतराय, चार संज्वलन, पुरुषवेद ये सत्रह प्रकृतियां तो चारों प्रकार के अनुभागरूप परिणमती हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: देशघाति प्रकृतियों में सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक दोनों होते हैं । वे शैल, अस्थि, दारु, लता भागरूप कहलाते हैं । शैल, अस्थि और दारु के अनंत बहुभाग सर्वघाति हैं, दारु का अनंतवां भाग और लताभाग वाले देशघाति हैं ।*]

अवशेष सम्यग्मिथ्यात्व को छोड़कर केवलज्ञानावरणादि बीस सर्वघाति प्रकृतियां, आठ नोकषाय और पचहत्तर अघातिया ये तीन प्रकार के अनुभागरूप परिणमती हैं । इसका कथन पहले अनुभागबंध के कथन में किया है । इसलिए अनुभाग शक्ति के विशेष से अनंतानुबंधीवत् अन्य कषायों के भी सम्यक्त्वादि का घात करने से सादृश्यपना पायां जाता है । मिथ्यात्व सहित उदय हो, वे कषाय सम्यक्त्व का घात करते हैं । अनंतानुबंधी सहित उदय हो, वे सम्यक्त्व, संयम का घात करते हैं । अप्रत्याख्यान सहित उदय हो, वे देशसंयम, सकलसंयम का घात करते हैं । प्रत्याख्यान सहित उदय हो, वे सकलसंयम का घात करते हैं । संज्वलन के देशघाति स्पर्धकों का उदय है, वह यथाख्यात संयम का घात करता है । इसतरह बारह कषाय और सर्वघाति संज्वलन के स्पर्धकों में किसी प्रकार से भेद है, तथापि शक्ति की समानता से समान कार्य को करते हैं । इसलिए यहां अनंतानुबंधी आदि भेद न कहे; क्रोधादि चार कषाय ही कहे हैं ।

वहां क्रोध में बंधस्थान नारक में तो उनतीस, तीस के दो, तिर्यंचगति में आदि के छह, मनुष्यों में सर्व और देवों में देवगतिवत् चार हैं । ऐसे ही मान, माया, लोभ में जानना ।

ज्ञानमार्गणा में तीन कुज्ञान में आदि के छह, वहां नारकियों के कुज्ञान में तो तिर्यंचगति, मनुष्यगति-पर्याप्तयुत उनतीस और उद्योतयुत तीस ये दो स्थान हैं । एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय के कुमति, कुश्रुत में नरकगति-देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान बिना योग्य तिर्यंच, मनुष्ययुत तेइस आदि पांच स्थान हैं *(२३, २५, २६, २९, ३०)* । पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य इनके अपर्याप्तों के कुमति, कुश्रुत सहित मिथ्यात्व में वे ही पांच स्थान हैं । तीन कुज्ञान सहित मिथ्यात्व, सासादनवर्ती पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों में यथायोग्य चतुर्गतियुत छह स्थान हैं ।

भवनत्रिक, सौधर्मद्विक में तिर्यंचगतियुत यथायोग्य पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के और मनुष्यगतियुत उनतीस के — ये पांच स्थान हैं । सनत्कुमार से सहस्रार तक *(तीसरे स्वर्ग से बारहवें स्वर्ग तक)* के देवों में संज्ञी-पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंच-मनुष्यगतियुत उनतीस का और उद्योतयुत तीस का — ये दो स्थान हैं । आनतादि

(तेरहवें से) नौवें ग्रैवेयक तक के देवों में मनुष्यगतियुत उनतीस का ही है, क्योंकि 'तदो णत्थि सदर चऊ' इस वचन से वहां तिर्यंचगतियुत स्थान का अभाव है ।

इसतरह कुज्ञानवाले जीवों की अपेक्षा तीन कुज्ञानों में छह स्थान कहे हैं ॥५४६॥

सण्णाणे चरिमपणं केवलजहखादसंजमे सुण्णं ।
सुदमिव संजमतिदए परिहारे णत्थि चरिमपदं ॥५४७॥

सज्ज्ञाने चरमपंच केवलयथाख्यातसंयमे शून्यं ।
श्रुतमिव संयमत्रितये परिहारे नास्ति चरमपदं ॥५४७॥

टीका – मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय ज्ञानों में अट्ठाइस से लेकर पांच स्थान *(२८, २९, ३०, ३१, १)* पाये जाते हैं, क्योंकि यहां तेइस आदि तीन का *(२३, २५, २६)* अभाव है । वहां मतिज्ञानादि तीन ज्ञान पर्याप्त, अपर्याप्त नारकी, संज्ञी तिर्यंच, मनुष्य और देव इनमें पाये जाते हैं । वहां नारकियों में मनुष्यगतियुत उनतीस का और आदि की तीन पृथ्वियों में *(नरकों में)* मनुष्यगति, तीर्थंकरयुत तीस का – ये दो स्थान हैं । सौधर्मादिक देवों में भी वे ही दो स्थान हैं । भवनत्रिक में मनुष्यगतियुत उनतीस का ही स्थान है । तिर्यंचों मे देवगतियुत अट्ठाइस का ही स्थान है । मनुष्यों में देवगतियुत अट्ठाइस और देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का है ।

ऐसे मतिज्ञानादि तीन में बंधस्थान कहे ।

मन:पर्यय सहित चार ज्ञानों में प्रमत्त में वे ही अट्ठाइस, उनतीस के दो स्थान हैं । अप्रमत्त में और अपूर्वकरण के छटवें भाग तक वे दो स्थान तथा देवगति, आहारकद्विकयुत तीस का और देवगति-तीर्थंकर-आहारकद्विकयुत इकतीस का ऐसे चार स्थान हैं । अपूर्वकरण के सातवें भाग से सूक्ष्मसाम्पराय तक यशस्कीर्तिरूप एक प्रकृति का एक स्थान है -- ऐसे कुल पांच स्थान हैं *(२८, २९, ३०, ३१, १)* ।

केवलज्ञान में नामकर्म के बंध का अभाव है ।

संयममार्गणा में सामायिकादि तीन संयमों में श्रुतज्ञानवत् पांच स्थान हैं *(२८, २९, ३०, ३१, १)* । वहां परिहारविशुद्धि में अंत का एक स्थान (एक प्रकृतिरूप)

नहीं है, इसलिए चार ही हैं । वहां 'सं' अर्थात् एकीभाव से समभाव में 'अय' अर्थात् गमन-परिणमन, उसे समय कहते हैं । समय वही सामायिक अथवा समय है प्रयोजन जिसका उसे सामायिक कहते हैं । इतने मात्र क्षेत्र काल के नियम सहित स्थित जो मुनि, उनके महाव्रत होते हैं । केवल स्थूल-सूक्ष्म जीवहिंसादि का त्याग करने से ही महाव्रत नहीं होते; क्योंकि ऐसी क्रिया तो चारित्रमोह का उदय होनेपर अर्हंत-लिंग के धारक मिथ्यादृष्टि में भी पायी जाती है ।

जैसे राजकुल में प्राप्त, राजमान्य जन को राजा कहते हैं, वैसे उस क्रिया को उपचार से महाव्रत कहते हैं, इसलिए देशकाल की मर्यादा तक जितना योग्य हो उतने प्रमाण से एकत्वरूप वृत्ति वही सामायिक है, यह सिद्ध हुआ ।

वही प्रमाद-योगों द्वारा प्राणों का हिंसन, वह हिंसा; उसका त्याग वह अहिंसा महाव्रत है और अनृत *(असत्य)*, स्तेय *(चोरी)*, अब्रह्म, परिग्रह का त्याग वे सत्यादि महाव्रत हैं । पुनश्च सम्यक् ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, उत्सर्ग ये पांच समिति हैं । सम्यक् योगों का निग्रह वे तीन गुप्ति हैं । काय, वचन और मन के व्यापाररूप योगों की स्वेच्छा-प्रवृत्ति का त्याग वही निग्रह कहलाता है ।

वे गुप्ति विषय-सुख की अभिलाषा के निमित्त होनेवाली प्रवृत्ति के निषेध के लिये हुयी हैं, इसलिए सम्यक् हैं, ये सत्यादिक सर्व अहिंसाव्रत के पालन के लिये भले उपाय हैं, इसलिए ये तेरह भेद हैं वे मैं सर्व सावद्य का त्यागी हूँ –इसप्रकार अंगीकार किये हुये सामायिक में गर्भित हैं । इसीलिए श्री वर्धमानस्वामी ने पहले उत्तमसंहनन के धारी जिनकल्प *(जिनेन्द्रभगवान जैसे)* आचरणरूप परिणत मुनियों के वह सामायिकरूप एक प्रकार का ही चारित्र कहा है तथा पंचमकाल में स्थविरकल्पी हीन संहनन के धारी को वह चारित्र तेरह प्रकार का कहा है ।

पुनश्च नियत क्षेत्र और नियत-अनियत काल में प्रमाद से अनर्थ-दोष से सामायिक में विलोप हुयी सम्यक् प्रतिक्रिया-उसके शुद्ध करने का उपाय अथवा विकल्प अर्थात् भेद, उसका त्याग छेदोपस्थापन कहलाता है । पुनश्च परिहार अर्थात् प्राणहिंसा का त्याग उससे विशेषतारूप शुद्धता जिसमें हो, वह परिहारविशुद्धि कहलाता है । पुनश्च सूक्ष्म है साम्पराय अर्थात् कषाय जिसमें, वह सूक्ष्मसाम्पराय कहलाता है ।

पुनश्च मोहनीय के समस्त उपशम से या क्षय से, आत्मस्वभाव में अवस्थितिरूप उपेक्षा-उदासीनता है लक्षण जिसका, वह यथाख्यात है । पहले चारित्र के धारक जीवों द्वारा मोह का क्षय वा उपशम करके प्राप्त किया उसे यथाख्यात कहते हैं। यथा शब्द अनंतरवाची है, सो समस्त मोह के क्षय वा उपशम के अनंतर प्रकट हुआ वह यथाख्यात है अथवा इसको तथाख्यात भी कहते हैं, क्योंकि जैसा आत्मस्वभाव अवस्थित था, वैसा ही प्रकट हुआ है ।

इनमें से सामायिक, छेदोपस्थापना में तो प्रमत्त में देवगतियुत अट्ठाइस का, देवगति-तीर्थकरयुत उनतीस का ये दो हैं । अप्रमत्त और अपूर्वकरण के छठवें भाग तक दो तो ये तथा देवगति-आहारकद्विकयुत तीस का और देवगति-तीर्थकर-आहारकद्विकयुत इकतीस का ऐसे चार स्थान हैं ।

पुनश्च अपूर्वकरण के सातवें भाग और अनिवृत्तिकरण में एक का स्थान है । इसतरह *(सामायिक, छेदोपस्थापना में)* पांच बंधस्थान हैं *(२८, २९, ३०, ३१, १)* ।

पुनश्च परिहारविशुद्धि में सामायिकवत् प्रमत्त में दो *(२८, २९)* और अप्रमत्त में चार *(२८, २९, ३०, ३१)* हैं, यहां श्रेणी चढ़ने के अभाव से एक का स्थान नहीं है ॥५४७॥

अंतिमठाणं सुहुमे देसाविरदीसु हारकम्मं वा ।
चक्खूजुगले सव्वं सगसगणाणं व ओहिदुगे ॥५४८॥

अंतिमस्थानं सूक्ष्मे देशाविरत्योः आहारकर्म वा ।
चक्षुर्युगले सर्वं स्वकस्वकज्ञानं वा अवधिद्विके ॥५४८॥

टीका – सूक्ष्मसाम्पराय संयम में अंत का एक का ही स्थान है । यथाख्यात संयम में केवलज्ञानवत् बंध का स्थान शून्य है *(वहां नामकर्म के बंध का अभाव है)* ।

देशसंयम में आहारक काययोगवत् देवगतियुत अट्ठाइस का और देवगति-तीर्थकरयुत उनतीस का ये दो स्थान हैं । वहां देशसंयम सहित तिर्यंच में देवगतियुत अट्ठाइस का ही बंधस्थान है ।

असंयम में कार्मणकाययोगवत् आदि के छह स्थान हैं । *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)*

वहां नारकी के मिथ्यात्व और सासादन में पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंचगतियुत अथवा मनुष्यगतियुत उनतीस का और उद्योतयुत तीस का ये दो स्थान हैं । मिश्र गुणस्थान में मनुष्यगतियुत उनतीस का ही स्थान है । असंयत गुणस्थान में धर्मादि तीन पृथ्वियों में मनुष्यगतियुत उनतीस और मनुष्यगति-तीर्थकरयुत तीस का ये दो स्थान हैं । अवशेष पृथ्वियों में *(नरकों में)* मनुष्यगतियुत उनतीस का ही स्थान है ।

पुनश्च तिर्यंचगति में तेइस से लेकर आदि के छह स्थान हैं परंतु वहां इतना विशेष है कि पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियों में तथा अपर्याप्त पंचेन्द्रियों में नरकगति, देवगतियुत अट्ठाइस का बंधस्थान नहीं है । पुनश्च बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त तेजस्कायिकों, वायुकायिकों में मनुष्यगति-अपर्याप्तयुत पच्चीस का और पर्याप्त-मनुष्यगतियुत उनतीस का ये दो स्थान नहीं हैं ।

पुनश्च प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित देशव्रत की विराधना करके सासादन को प्राप्त हुआ तिर्यंच तिर्यंचगतियुत या मनुष्यगतियुत उनतीस का, उद्योतयुत तीस का और देवगतियुत अट्ठाइस का ऐसे तीन स्थान बांधता है । मरण होनेपर नरक बिना अन्य गतियों में उत्कृष्ट एक समय कम छह आवली से जघन्य एक समय तक अपर्याप्त दशा में सासादन गुणस्थान रहता है; इसलिए सासादन तिर्यंच 'णहि सासणो अपुण्णे साहारण सुहुमगे य तेउदुगे' इस वचन से एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी जीव ही अपर्याप्त सासादन गुणस्थानवर्ती हैं, वे नरकगति, देवगतियुत अट्ठाइस को नहीं बांधते, शरीरपर्याप्ति के पूर्व ही सासादनपना छोड़कर नियम से मिथ्यादृष्टि होकर पर्याप्त अवस्था होने के पश्चात् ही नरकगतियुत वा देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को बांधते हैं ।

'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि' इस वचन से संज्ञी, असंज्ञी भी अपर्याप्त दशायुक्त सासादन में अट्ठाइस का स्थान नहीं बांधते ।

पुनश्च तिर्यंच मिश्र और असंयत गुणस्थानवर्ती हैं वे संज्ञी पर्याप्त ही हैं, मिश्र में तो देवगतियुत अट्ठाइस को ही बांधते हैं, क्योंकि 'उपरिम छण्हं च छिदी' इस वचन से तिर्यंच, मनुष्यगति बंधने का इसके अभाव है ।

[***विशेषार्थ*** : *तिर्यंचगति के बंध का व्युच्छेद तो दूसरे गुणस्थान में ही होता है । परंतु मनुष्य, तिर्यंचों में मनुष्यगति आदि छह प्रकृतियों के बंध का व्युच्छेद भी दूसरे गुणस्थान में ही होता है । देव, नारकियों के लिये इन छह के बंध की व्युच्छित्ति चौथे गुणस्थान में होती है ।*]

पुनश्च असंयत में भी वही स्थान बंधता है, क्योंकि तिर्यंचों में तीर्थंकर, आहारक का बंध नहीं है ।

असंयम सहित मनुष्य में मिथ्यात्व में लब्धिअपर्याप्त मनुष्य के तो नरकगति, देवगतियुत अट्ठाइस के बिना तेइस आदि छह स्थान हैं *(छह में से एक नहीं है, इसलिए पांच हैं)* ।

पर्याप्त-मनुष्य के चारों गतियुत छहों स्थान पाये जाते हैं ।

पुनश्च 'चदुगदि मिच्छो सण्णी' इत्यादि सामग्री सहित जीव करणलब्धि के अंतिम समय में दर्शनमोहनीय को उपशमाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वी हुआ अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित देशव्रती या महाव्रती हुआ । उस उपशम सम्यक्त्व के अंतर्मुहूर्त काल में से एक समय से लेकर छह आवली तक कोई भी काल अवशेष रहनेपर, अनंतानुबंधी का अप्रशस्त उपशम हुआ था उसमें से क्रोधादि में से किसी एक का उदय होनेपर, जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व गुण पाया था, उसका घात करके सासादन हुआ, ऐसा मनुष्य पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंचगति वा मनुष्यगतियुत उनतीस के या तीस के, देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को बांधता है, क्योंकि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय प्रकृतियों का बंध तो मिथ्यात्व गुणस्थान में ही है ।

पुनश्च मरण में तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव जितने काल अपर्याप्त दशा में सासादन में रहते हैं *(सासादन में मरकर नरक बिना इन तीन गतियों में उत्पन्न होनेवाले जीव के अपर्याप्त दशा में सासादन गुणस्थान रहता है, शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही वह मिथ्यात्व में जाता है)* उतने काल तो उनतीस या तीस के दो ही स्थानों को बांधता है, नरकगति, देवगतियुत अट्ठाइस को नहीं बांधता । सासादन का काल पूर्ण होनेपर मिथ्यादृष्टि होकर वहां जितना काल निर्वृत्तिअपर्याप्त दशा का अवशेष रहता है, उस काल में अट्ठाइस को छोड़कर पच्चीस से लेकर पांच स्थानों को बांधता है ।

(पांच में से एक स्थान छोड़कर चार को बांधता है — २५, २६, २९, ३० ।) पर्याप्त अवस्था में अट्ठाइस सहित छह स्थानों को बांधता है *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)* ।

पुनश्च कर्मभूमिया या भोगभूमिया मनुष्य मिश्र वा असंयत गुणस्थानवर्ती देवगतियुत अट्ठाइस को ही बांधता है, क्योंकि मनुष्य, तिर्यंचगति का सासादन में ही बंधव्युच्छेद हुआ है । पुनश्च विग्रहगति में तीर्थंकर वा निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था में तीर्थंकर वा गर्भअवस्था में तीर्थंकर वा जन्म अवस्था में तीर्थंकर वा कुमार अवस्था में तीर्थंकर वा जिसके पहले देवायु, नरकायु का बंध हुआ है और पश्चात् तीर्थंकर बंध का प्रारंभ किया है ऐसा जीव वा तीर्थंकर सत्त्व का धारी चरमशरीरी मनुष्य- असंयतगुणस्थानवर्ती, वह देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस के स्थान को ही बांधता है ।

पुनश्च असंयम सहित देव पर्याप्त दशा में मिथ्यादृष्टि-भवनत्रिक, सौधर्मद्विकवाले तो एकेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंचगतियुत पच्चीस का, आतप, उद्योतयुत छब्बीस का, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंचगति-मनुष्यगतियुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का — ऐसे चार स्थानों को बांधते हैं । सानत्कुमारादि दस स्वर्गवाले *(३ रे से १२ वें स्वर्ग तक के)* मनुष्य-तिर्यंचगतियुत उनतीस का और तिर्यंचगति-उद्योतयुत तीस के स्थान को बांधते हैं । आनतादि स्वर्ग *(१३ वें से १६ वें स्वर्ग तक के)* और नौ ग्रैवेयकवाले मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं ।

अब देवों के निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था में बंध कहते हैं; इसलिए देव में कौन कैसे उत्पन्न होते हैं, वह कहते हैं —

मनुष्यलोक *(अढ़ाई द्वीप)* संबंधी तीस भोगभूमि के तिर्यंच, मनुष्य और मानुषोत्तर — स्वयंप्रभ पर्वतों के बीच असंख्यात द्वीप-समुद्र संबंधी *(मात्र द्वीपोंमें)* तिर्यंचों की जघन्य भोगभूमि के संज्ञी तिर्यंच, लवणसमुद्र, कालोदधि के छानबे कुमानुष द्वीपवासी *(कुभोगभूमि के)* कुमनुष्य — ये नियम से अपनी आयु के नौ महिने अवशेष रहने पर आठ अपकर्षों में बताये हुये त्रिभाग अवशेष रहनेपर देवायु को बांधकर, भुज्यमान आयु के नाश से भवनत्रिक में या कल्पवासिनी स्त्रियों *(देवियों)* में मिथ्यादृष्टि होकर उपजते हैं । वहां जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक निर्वृत्तिअपर्याप्त हैं ।

यहां औरों के कथन के लिये प्रासंगिक गाथा कहते हैं –

सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा ।
सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं ॥ त्रि. सार-५४६॥

मिथ्यादृष्टि भोगभूमिया और तापसी 'वर' अर्थात् उत्कृष्टपने से भवनत्रिक में उपजते हैं, अन्यत्र नहीं । पुनश्च भरत, ऐरावत, विदेहवासी वा स्वयंभूरमण द्वीप का अपरार्ध और स्वयंभूरमण, लवणोद, कालोद इन समुद्रों के वासी जीव, कोई जलचर, स्थलचर, नभचर संज्ञी पर्याप्त भद्र मिथ्यादृष्टि; तथा उपशम-ब्रह्मचर्य सहित वानप्रस्थ वा एकजटी, शतजटी, सहस्रजटी वा नागा वा कांजी भक्षण करनेवाले वा कंदमूल, पत्र, पुष्प, फल खानेवाले वा अकामनिर्जरा संयुक्त वा एकदंडी, त्रिदंडी मिथ्या तपश्चरणरूप परिणत वे कायक्लेशादि आचरण से कोई अपनी-अपनी विशुद्धता के अनुसार भवनत्रिक से लेकर अच्युत *(सोलहवें)* स्वर्ग तक उपजते हैं ।

'अकाम' अर्थात् अभिलाषा रहित अपने बंधनादि द्वारा क्षुधा-तृष्णा का सहना, ब्रह्मचर्य धारण करना, भूमि पर सोना, मलादिक धारण करना, परीषहादि सहन करना- इनसे जो निर्जरा होती है, वह अकामनिर्जरा है ।

मिथ्यादर्शन सहित, मोक्ष उपाय रहित, बहुत कायक्लेश करना, कपटरूप बहुत व्रत धारण करना, वह बालतप है । ये भी देव में उत्पन्न होने के कारण हैं । यहां उनके उपजने की प्रासंगिक गाथा कहते हैं –

चरिया य परिव्वाजा बम्होत्तरचुदपदोत्ति आजीवा ।
अणुदिसअणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जंति ॥ त्रि. सार-५४७॥

'चरका:' अर्थात् नागा, परिव्राजक अर्थात् संन्यासी, एकदंडी, त्रिदंडी ये उत्कृष्ट भवनत्रिक से ब्रह्मस्वर्ग *(पांचवें स्वर्ग)* तक उपजते हैं । 'आजीवा' अर्थात् कांजी के भक्षण करनेवाले उत्कृष्ट भवनत्रिक से अच्युत स्वर्ग तक उपजते हैं । अनुत्तर, अनुदिश विमानवासी देव द्विचरमशरीरी हैं, इसलिए वे मरकर नारायण, प्रतिनारायण होनेवाले नरकगामी जीवों में नहीं उपजते ।

पुनश्च सादि, अनादि वा अभव्य मिथ्यादृष्टि, अर्हंत के द्रव्य-लिंग का धारक, बाह्य में छह प्रकार के तप में मग्न, त्रिकाल देववंदनादि क्रिया सहित, दर्शन-चारित्र मोहरूप घातिकर्म का जिसके उदय पाया जाता है, उपशम-ब्रह्मचर्यादि संयुक्त द्रव्यलिंगी — वह उपरिम ग्रैवेयक तक उपजता है, ऊपर नहीं ।

यहां प्रासंगिक गाथा कहते हैं —

णरतिरियदेसअयदा उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा ।
णरअयददेसमिच्छा गेव्वोज्जंतोत्ति गच्छंति ।। त्रि. सार-५४५।।

तिर्यंच-मनुष्य देशसंयत और असंयत उत्कृष्टपने अच्युत स्वर्ग तक उपजते हैं । जो द्रव्य से जिनरूप-महाव्रती हो और भाव से असंयत, देशसंयत या मिथ्यादृष्टि हैं वे उपरिम ग्रैवेयक तक उपजते हैं — ऐसे देवों में उपजना कहा ।

उनमें से निर्वृत्तिअपर्याप्त मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक देव, कल्पवासिनी स्त्री और सौधर्मईशानवाले देव एकेन्द्रिय-पर्याप्तयुत पच्चीस का और आतप, उद्योतयुत पर्याप्त-तिर्यंचगति-एकेन्द्रिययुत छब्बीस का तथा पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंचगतियुत और मनुष्यगतियुत उनतीस का और उद्योतयुत तीस का ऐसे चार स्थानों को बांधते हैं । उसीप्रकार सानत्कुमारादि दस स्वर्ग के वासी पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंचगतियुत और मनुष्यगतियुत उनतीस को और उद्योत-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचगतियुत तीस को बांधते हैं । आनतादि उपरिम ग्रैवेयकवाले मनुष्यगतियुत उनतीस को ही बांधते हैं, क्योंकि तिर्यंचगतियुत उनतीस, तीस का यहां बंध नहीं है ।

इसतरह संक्षेप से असंयम सहित मिथ्यादृष्टि जीवों के देवगति की अपेक्षा नामकर्म के बंधस्थान कहे । यहां जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण आदि की विवक्षा से ग्रंथ बढ़ने के भय से कथन नहीं किया । परमागम के जानकारों द्वारा लगा लेना ।

आगे असंयम सहित अपर्याप्त सासादन में कहते हैं —

संज्ञी-पर्याप्त-गर्भज विशुद्धता सहित साकार ज्ञानउपयोग के धारी-मिथ्यादृष्टि — ऐसे भोगभूमिया तिर्यंच तो जातिस्मरण या देव-संबोधन से और तीस भोगभूमि के तिर्यंच जातिस्मरण, देव संबोधन या चारणमुनि संबोधन से प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण करके

असंयत गुणस्थानवर्ती होते हैं । स्वयंप्रभाचल पर्वत के पार *(बाहरी ओर)* कर्मभूमि के तिर्यंच जातिस्मरण या देवसंबोधन से प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पाकर असंयत होते हैं । अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित देशसंयम को पाकर देशसंयत होते हैं ।

पुनश्च पंद्रह कर्मभूमि के वासी तिर्यंच जातिस्मरण वा देव, मनुष्य संबोधन वा जिनबिम्बदर्शन से वैसे ही असंयत वा देशसंयत होते हैं ।

पुनश्च इसीप्रकार मनुष्य वैसे ही असंयत या देशसंयत होते हैं अथवा कोई मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित महाव्रत अंगीकार करके अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती होते हैं । इसी अप्रमत्त में से उतरकर कोई प्रमत्त में आते हैं । पुनश्च कोई जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को अंगीकार करके श्रेणी चढ़कर पश्चात् अनुक्रम से उतरकर असंयत, देशसंयत अथवा प्रमत्त होते हैं ।

ये प्रथमोपशम या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के धारी जीव अपने पर्याय के अंत में जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहनेपर किसी एक अनंतानुबंधी कषाय के उदय से सासादन होते हैं । कोई पहले देवायु बांधी थी वे मरकर और कोई जिन्होंने पहले आयु का बंध नहीं किया था, वे वहां अंत समय में *(आयु के आखरी काल में)* देवायु बांधकर मरकर देव-निर्वृत्तिअपर्याप्त सासादन गुणस्थानवर्ती होते हैं । वे भवनत्रिक, कल्पवासिनी स्त्री, सौधर्मद्विकवाले देव तो वहां पंचेन्द्रिय-तिर्यंचगति, मनुष्यगति-पर्याप्तयुत उनतीस के वा तिर्यंचगति-उद्योत-पर्याप्तयुत तीस के स्थान को बांधते हैं । और सासादन का काल समाप्त कर मिथ्यादृष्टि होकर उन दोनों स्थानों को बांधते हैं और जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हो तब तक एकेन्द्रिय-पर्याप्तयुत पच्चीस के वा उद्योत, आतप एकेन्द्रिय-पर्याप्तयुत छब्बीस के स्थान को भी बांधते हैं ।

पुनश्च सानत्कुमारादि दस स्वर्गवाले *(३ रे से १२ वें तक)* वहां उनतीस, तीस के दोनों स्थानों को ही बांधते हैं । आनतादि स्वर्गवाले और नौ ग्रैवेयकवाले वहां मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं ।

सासादन का काल व्यतीत होने के पश्चात् निर्वृत्तिअपर्याप्त मिथ्यादृष्टिवत् स्थानों को बांधते हैं । पुनश्च भवनत्रिकादि उपरिम ग्रैवेयक तक मिश्र गुणस्थानवर्ती और

पर्याप्त भवनत्रिक, कल्पवासिनी स्त्री – असंयत गुणस्थानवर्ती वे मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधते हैं । वैमानिक देव तीर्थ रहित उनतीस के स्थान को और *(असंयत)* तीर्थयुत तीस के स्थान को बांधते हैं ।

(दर्शनमार्गणा में) चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन में सर्व बंधस्थान हैं । वहां चक्षुदर्शन सहित नारकी उनतीस, तीस के दो स्थानों को बांधते हैं । चतुरिन्द्रिय जीव अट्ठाइस के स्थान बिना तिर्यंच, मनुष्यगतियुत तेइस से लेकर छह स्थान बांधते हैं *(२३, २५, २६, २९, ३०)* । पंचेन्द्रिय तिर्यंच तेइस से लेकर छह स्थान बांधते हैं *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)* । मनुष्य सर्व स्थानों को बांधते हैं । देव यथायोग्य पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के चारों स्थानों को बांधते हैं ।

अचक्षुदर्शन सहित नारकी चक्षुदर्शनवत् दो स्थानों को बांधते हैं । एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रियतक के तिर्यंचजीव नरकगति-देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान बिना तेइस आदि छह को *(२३, २५, २६, २९, ३०)* बांधते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच उस अट्ठाइस सहित छह स्थानों को बांधते हैं । *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)* । मनुष्य सर्व स्थानों को बांधते हैं । देव चक्षुदर्शनवत् चार स्थानों को बांधते हैं ।

पुनश्च अवधिदर्शन में अवधिज्ञानवत् अंत के पांच स्थान हैं *(२८, २९, ३०, ३१, १)* । असंयत देव, नारकी में, असंयत और देशसंयत संज्ञी-पर्याप्त-तिर्यंच में और असंयतादि क्षीणमोह तक के मनुष्यों में देशावधिज्ञान है । प्रमत्तादि क्षीणमोह तक के चरमशरीरी मुनियों में परमावधि और सर्वावधि ज्ञान पाये जाते हैं । ऐसे अवधिज्ञानी जीवों के ही अवधिदर्शन पाया जाता है ।

वहां अवधिदर्शन के धारी धर्मादि तीन नरकवाले जीव तीर्थकर-मनुष्यगतियुत तीस के स्थान को और तीर्थकर सत्त्व रहित धर्मादिवाले और अंजनादिवाले मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधते हैं । तिर्यंच हैं वे देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को बांधते हैं । मनुष्य हैं वे देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान से लेकर एक के स्थान तक पांच को बांधते हैं । *(२८, २९, ३०, ३१, १)* । देव हैं, वे सौधर्मादिवाले तीर्थकर सत्त्व सहित तीर्थकर-मनुष्यगतियुत तीस के स्थान को और तीर्थकर सत्त्व रहित तथा भवनत्रिक देव मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधते हैं ।

केवलदर्शन केवलज्ञानवत् बंधशून्य है ॥५४८॥

कम्मं वा किण्हतिये पणुवीसाछक्कमट्ठवीसचऊ ।
कमसो तेऊजुगले सुक्काए ओहिणाणं वा ॥५४९॥

कर्म वा कृष्णत्रये पंचविंशतिषट्कमष्टाविंशचतुष्कं ।
क्रमशः तेजोयुगले शुक्लायामवधिज्ञानं वा ॥५४९॥

टीका – ***लेश्यामार्गणा*** में कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याओं में कार्माणकाययोगवत् आदि के छह बंधस्थान हैं *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)* । पीतलेश्या में पच्चीस से लेकर छह स्थान हैं *(२५, २६, २८, २९, ३०, ३१)* । पद्मलेश्या में अट्ठाइस से लेकर चार हैं *(२८, २९, ३०, ३१)* । शुक्ललेश्या में अवधिज्ञानवत् अंत के पांच स्थान हैं *(२८, २९, ३०, ३१, १)* ।

वहां वर्ण नामक नामकर्म के उदय से हुआ शरीर का वर्ण द्रव्यलेश्या है, उसका यहां ग्रहण नहीं किया है । मोह के उदय, उपशम, क्षय या क्षयोपशम से हुयी जीव की चंचलतारूप भावलेश्या का यहां ग्रहण किया है । लेश्या कृष्णादि भेद से छह प्रकार की हैं ।

वहां प्रथम नरक के प्रथम इन्द्रक में कपोत का जघन्य अंश है । तीसरे नरक के द्विचरम इन्द्रक में कपोत का उत्कृष्ट अंश है । तीसरे नरक के अंतिम इन्द्रक में नील का जघन्य अंश है । पांचवें नरक के द्विचरम इन्द्रक में नील का उत्कृष्ट अंश है। पांचवें नरक के अंतिम इन्द्रक में कृष्ण का जघन्य अंश है । सातवें नरक के अवधिस्थान इन्द्रक में कृष्ण का उत्कृष्ट अंश है । उन जघन्य और उत्कृष्ट स्थानों के मध्य में उन-उन लेश्याओं के मध्यम अंश जानना ।

[***विशेषार्थ*** *: बीचों बीच मध्य के नरकबिल को इन्द्रक कहते हैं, । प्रत्येक नरक में अपने-अपने पटल-पाथडे होते हैं । पहले नरक में तेरह, दूसरे में ग्यारह, तीसरे में नौ, चौथे में सात, पांचवें में पांच, छठवें में तीन तथा सातवें में एक पटल हैं । यहां तीसरे नरक में ऊपर से नीचे की ओर आठवें पटल के इन्द्रक बिल को द्विचरम इन्द्रक कहा है*]

उन नरकों में उपजने के योग्य कौनसे जीव हैं ? वह कहते हैं –

मिथ्यादृष्टि जीव घर्मा पृथ्वी में कर्मभूमिया, छहों संहनन के धारी, असंज्ञी, सरीसृप, पंछी, सर्प, सिंह, स्त्री, मत्स्य, मनुष्य उपजते हैं । वंशा पृथ्वी में सरीसृपादि ही उपजते हैं, असंज्ञी नहीं । मेघा पृथ्वी में पंछी आदि ही उपजते हैं । अंजना में आदि के पांच संहनन के धारक सर्पादिक ही उपजते हैं । अरिष्टा में सिंहादिक ही उपजते हैं । मघवी में आदि के चार संहनन के धारक, स्त्री, मत्स्य, मनुष्य ही उपजते हैं । माघवी में प्रथम संहनन *(वज्रवृषभनाराच)* के धारक मत्स्य और मनुष्य ही उपजते हैं ।

वे इन नरक में उपजनेपर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने या न होनेपर तिर्यंचगति-मनुष्यगतियुत उनतीस या तीस के स्थानों को बांधते हैं । सातवीं पृथ्वी में तिर्यंचगतियुत ही उनतीस या तीस के स्थानों को बांधते हैं ।

पुनश्च सासादनवाले भी वैसे ही तिर्यंचगति-मनुष्यगतियुत दो स्थानों को बांधते हैं ।

मिश्र और असंयतवाले मनुष्यगतियुत उनतीस ही को बांधते हैं ।

पुनश्च घर्मापृथ्वी में निर्वृत्तिअपर्याप्त वा पर्याप्त, क्षायिक वा वेदक सम्यग्दृष्टि वा कृतकृत्यवेदक – तीर्थकर सत्त्व रहित वे तो मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को और तीर्थकर सत्त्व सहित मनुष्यगति-तीर्थकरयुत तीस के स्थान को बांधते हैं । वंशा, मेघा में तीर्थकर सत्त्व सहित जीव पर्याप्ति पूर्ण होते ही नियम से मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यग्दृष्टि होकर तीस के स्थान *(मनुष्यगति-तीर्थकरयुत)* को ही बांधते हैं ।

तिर्यंचगति में पर्याप्तादि तीन प्रकार के सर्व एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय में वा लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्तिअपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय में वा मिथ्यादृष्टि नरकादि से आये उनमें वा सासादन अपर्याप्त संज्ञी में तीन अशुभलेश्या ही हैं । पर्याप्त मिथ्यादृष्टि असंज्ञी में कृष्णादि चार लेश्या *(कृष्ण, नील, कपोत, पीत)* हैं ।

पर्याप्त सासादन, मिश्र, अपर्याप्त असंयत संज्ञी तिर्यंच में छहों लेश्या हैं । पर्याप्त भोगभूमि में निर्वृत्तिअपर्याप्त असंयत में जघन्य कपोत ही है और पर्याप्त अवस्था में मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि के तीन शुभलेश्या ही हैं, क्योंकि वहां उत्पन्न हुये जीवों के शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही तीन शुभलेश्या ही आगम में कही हैं ।

इन कहे हुये तिर्यंच जीवों में से बादर-सूक्ष्म पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद और प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय — ये उन्नीस प्रकार के लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच तथा इन उन्नीस प्रकार के लब्धिअपर्याप्तों में से अथवा तिर्यंच पर्याप्तों में से और पर्याप्त वा अपर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्यों में से इन सब मिथ्यादृष्टियों में से आकर *(मरकर)* जो कोई तीन अशुभलेश्या सहित तिर्यंच जीव उपजते हैं, वे अट्ठाइस के बिना तेइस से लेकर पांच स्थानों को बांधते हैं । *(२३, २५, २६, २९, ३०)* ।

तेजस्कायिक, वायुकायिक के जीव तिर्यंचगतियुत ही उन पांच स्थानों को बांधते हैं । पुनश्च वे उन्नीस प्रकार के लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच, उन्नीस प्रकार के पर्याप्त तिर्यंच, दो प्रकार के मनुष्य मिलकर जो चालिस प्रकार के मिथ्यादृष्टि हैं, वे तीन अशुभलेश्या सहित मरकर पूर्वोक्त उन्नीस प्रकार के पर्याप्त तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों में उपजते हैं । वहां विशेष —

तेजस्कायिक, वायुकायिक में तो अशुभलेश्या के मध्यम अंश सहित ही उपजते हैं । भवनत्रिक और सौधमद्विक के मिथ्यादृष्टि देव पीत लेश्या के मध्यम अंश से तथा तिर्यंच, मनुष्य अशुभ तीन लेश्या के मध्यम अंश से मरकर कोई बादर पृथ्वी, अप्रतिष्ठित प्रत्येक में उपजते हैं । पुनश्च भवनत्रिक से सहस्रार तक के देव तथा सर्व नारकी जो मिथ्यादृष्टि हैं और जिनके तिर्यंचायु का बंध हुआ है, वे अपनी-अपनी लेश्याओं सहित मरकर कर्मभूमिया गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उपजते हैं । वहां वे पूर्वोक्त उन्नीस प्रकार के तिर्यंच चतुर्गति से आकर उपजे हुये निर्वृत्तिअपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, वे सर्व ही अट्ठाइस के स्थान बिना तेइस आदि पांच स्थानों को बांधते हैं ।

अनंतानुबंधी में से किसी एक प्रकृति के उदय से प्रथमोपशम सम्यक्त्व की विराधना करके सासादन होकर, जिन्होंने पूर्व में तिर्यंचायु बांधी हो ऐसे जीव मरकर अथवा जिनके आयुबंध न हुआ हो ऐसे कोई जीव उस अंतकाल में तिर्यंचायु को बांधकर मरकर, तिर्यंच में उपजते हैं वहां कर्मभूमिया तिर्यंच, मनुष्य तो बादर पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति, विकलत्रय, संज्ञी, असंज्ञी में उपजते हैं ।

ईशान तक के देव अपनी-अपनी लेश्या सहित मरकर बादर पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति में उपजते हैं । भवनत्रिक से सहस्रार तक और छठवें नरक तक के नारकी कर्मभूमिया गर्भज संज्ञी तिर्यंचों में उपजते हैं । ये जीव सासादन तिर्यंच होकर तिर्यंचगति, मनुष्यगति-पर्याप्तयुत उनतीस या तीस के स्थान को बांधते हैं । अपना-अपना सासादन का काल समाप्त होनेपर नियम से मिथ्यादृष्टि होकर जबतक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक निर्वृत्तिअपर्याप्त तिर्यंच मिथ्यादृष्टि में कहे हुये तेइस आदि पांच स्थानों को बांधते हैं *(२३, २५, २६, २९, ३०)* ।

यहां प्रश्न यदि सासादन का उत्कृष्टकाल भी छह आवली प्रमाण और आयुबंध का जघन्यकाल भी अंतर्मुहूर्तप्रमाण है, तो पूर्व-उत्तर दोनों पर्यायों में सासादन कैसे पाया जाता है ?

उसका समाधान — अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं । एक आवली से लेकर एक एक समय से बढ़ते हुये, एक समय कम मुहूर्त तक अंतर्मुहूर्त के भेद हैं । इसलिए आयुबंध का काल यहां कुछ आवलीप्रमाण ही जानना ।

तिर्यंच असंयत *(निर्वृत्तिअपर्याप्त)* में — पहले जिनके तिर्यंचायु का बंध हुआ है ऐसे ~~देव, नारकी~~ वेदक सम्यग्दृष्टि ~~अपनी-अपनी~~ लेश्यासहित मरकर उपजते हैं, वहां सातवें नरकवाले नहीं उपजते; क्योंकि इनका मरण मिथ्यात्व में ही होता है । वहां उत्पन्न तिर्यंच-असंयत गुणस्थानवर्ती निर्वृत्तिअपर्याप्त जीव देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को बांधते हैं । पर्याप्ति पूर्ण होनेपर देशसंयत गुणस्थान तक प्राप्त होते हैं । वहां असंयत तक छहों लेश्या हैं, देशसंयत में तीन शुभलेश्या ही हैं ।

यहां प्रश्न — शुभाशुभ लेश्याओं में एक जीव अनुक्रम से परिणमित होता है या युगपत् परिणमित होता है ?

वहां समाधान — आत्मा संक्लेश की हानि से तो उत्कृष्ट कृष्णलेश्या से जघन्य कपोतलेश्या तक और संक्लेश की वृद्धि से जघन्य कपोतलेश्या से उत्कृष्ट कृष्णलेश्या तक असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानपतित वृद्धिहानि युक्त लेश्या के स्थानों में अनुक्रम से परिणमता है । पुनश्च विशुद्धि की वृद्धि से पीत, पद्म, शुक्ललेश्या के जघन्यादि अंशों में और विशुद्धि की हानि से शुक्ल, पद्म, पीतलेश्या के उत्कृष्टादि अंशो में

अनुक्रम से परिणमता है । उन लेश्याओं का मूलकारण कषायों के उदयरूप अनुभागस्थानों से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति है ।

वे कषाय चार हैं । उनमें विवक्षित क्रोधकषाय के अनुभागस्थान का उदय जीव को नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवगति में उपजाता है । उस क्रोध की शक्ति शिलाभेद, पृथ्वीभेद, धूलिरेखा, जलरेखा समान चार प्रकार की है । वहां सर्वघाति शक्ति सहित जो उदयस्थान हैं, उनके नीचे प्रमत्तादि संयमी जीवों में ही पायी जानेवाली ऐसी देशघातिरूप पूर्वस्पर्धक है नाम जिसका ऐसी शक्ति है । उसके नीचे-नीचे अपूर्वस्पर्धक है नाम जिसका, बादरकृष्टि है नाम जिसका और लोभकषाय में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सूक्ष्मकृष्टि है नाम जिसका — ऐसी शक्ति है । इसतरह समस्त क्रोधकषाय के अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानपतित हानिवाले असंख्यातलोकप्रमाण हैं ।

इनको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग देकर वहां एकभाग बिना बहुभागप्रमाण तो संक्लेशस्थान हैं । एकभागप्रमाण विशुद्धिस्थान हैं । उनमें लेश्यापद चौदह हैं । लेश्या के अंश छब्बीस हैं, उनमें से मध्य के आठ अंश आयुबंध के कारण हैं । इसके संदृष्टि, यंत्र आदि विशेष पहले जीवकाण्ड में कषायमार्गणा अधिकार में कहे हैं वहां से जानना ।

वे मध्यम अंश पीतलेश्या के जघन्यस्थान के अनंतर अपने अनंतगुणवृद्धिरूप मध्यमस्थान से लेकर कपोतलेश्या के जघन्यस्थान के अनंतर अनंतगुणवृद्धिरूप उसीके मध्यमस्थान तक अथवा कपोतलेश्या के जघन्यस्थान के अनंतर अनंतगुणवृद्धिरूप उसी कपोतलेश्या के मध्यमस्थान से लेकर पीतलेश्या के जघन्यस्थान के अनंतर अनंतगुणवृद्धिरूप जो पीतलेश्या का मध्यमस्थान वहां तक पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील इनका जघन्य अंश और चारों गतिसंबंधी आयुबंध के कारण वा नरकबिना तीन आयु के वा नरक, तिर्यंच बिना दो आयु के वा केवल देव आयु के बंध के कारण चारों अंश — ऐसे आठ मध्यम अंश आयु के बंध के कारण हैं ।

यहां प्रश्न — पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील लेश्या के जघन्य अंशों को मध्यम अंश कैसे कहते हैं ?

उसका समाधान — शुभ-अशुभ लेश्या के भेद की अपेक्षा से बीच के अंश हैं, इसलिए इनको मध्यम अंश कहते हैं ।

पुनश्च अवशेष कृष्णादि के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद से अठारह अंश हैं, वे चारों गति में गमन के कारण हैं । मरण इन अठारह अंशों में होता है । उनमें से तीन अशुभ लेश्याओं के नौ अंश तो नरकगति, तिर्यंचगति में उपजानेवाले हैं और आगे के शुभ-अशुभ लेश्याओं के अंश तिर्यंच, मनुष्य, देवगति में गमन के कारण हैं ।

पुनश्च लेश्याओं का संक्रमण कहते हैं —

संक्रमण नाम स्थान से अन्य स्थान को प्राप्त होने का है ।

वृद्धि द्वारा कृष्ण और शुक्ललेश्या का संक्रमण अपने स्थान में ही है, क्योंकि संक्लेश की या विशुद्धि की वृद्धि होनेपर कृष्ण या शुक्ललेश्या को छोड़कर किसी अन्य लेश्या को प्राप्त नहीं होता । हानि में अपने उत्कृष्ट अंश से जघन्य अंश तक स्वस्थान में तथा कृष्ण का नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ल के उत्कृष्ट तक और शुक्ल का पद्म, पीत, कपोत, नील, कृष्ण के उत्कृष्ट तक परस्थान में संक्रमण होता है ।

अवशेष लेश्याओं का *(बीच की चार लेश्या)* संक्लेश वा विशुद्धि की हानि में अपने-अपने उत्कृष्ट से अपने-अपने जघन्य तक तो स्वस्थान संक्रमण है और नील, कपोत के अपने-अपने जघन्य से शुक्ल के उत्कृष्ट तक तथा पद्म, पीत के अपने-अपने जघन्य से कृष्ण के उत्कृष्ट तक परस्थान संक्रमण है ।

पुनश्च वृद्धि में अपने-अपने जघन्य से अपने-अपने उत्कृष्ट तक तो स्वस्थानसंक्रमण है और नील, कपोत के अपने-अपने उत्कृष्ट से कृष्ण के उत्कृष्ट तक तथा पद्म, पीत के अपने-अपने उत्कृष्ट से शुक्ल के उत्कृष्ट तक परस्थानसंक्रमण है ।

स्वस्थान में परस्थानवत् अन्य लेश्या के समान शक्तिरूप स्थान को प्राप्त नहीं होता क्योंकि अपने-अपने लक्षण को छोड़ता नहीं । स्वस्थानसंक्रमण में सर्व लेश्याओं के उत्कृष्ट के अनंतर अपने-अपने मध्यम स्थान में कृष्णादि तीन में संक्लेश की और पीतादि तीन में विशुद्धि की हानि अनंतभाग पायी जाती है *(अनंतभागहानि)*, क्योंकि

लेश्याओं का उत्कृष्ट स्थान अपने अनंतरवर्ती मध्यमस्थान से उर्वक अर्थात् अनंतभागरूप कहा है । इन लेश्याओं के जघन्य के अनंतर अपने मध्यमस्थान में वृद्धि अनंतभागरूप ही है, क्योंकि उन लेश्याओं का जघन्यस्थान अष्टांक अर्थात् अपने अनंतरवर्ती स्थान से अनंतगुणरूप है । पुनश्च परस्थानसंक्रमण में उन लेश्याओं के जघन्य से अनंतगुणहानि पायी जाती है, क्योंकि अन्य लेश्या की अपेक्षा जघन्य के अष्टांक अर्थात् अनंतगुणपना पाया जाता है । ऐसी ये लेश्या पायी जाती हैं, उनका कथन जीवकाण्ड में लेश्यामार्गणा अधिकार में विशेष किया है, वह जानना ।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि में तो मिथ्यात्व सहित अनंतानुबंधी आदि सर्वघाति क्रोध का चतुष्क, मान का चतुष्क, माया का चतुष्क और लोभ का चतुष्क उदयरूप होता है । सासादन में मिथ्यात्व बिना उदय होता है । मिश्र में अनंतानुबंधी बिना जुदी ही जाति का सर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व सहित उदय होता है । असंयत में सम्यग्मिथ्यात्व बिना दर्शनमोह के क्षयोपशम में देशघाति सम्यक्त्वमोहनीय सहित तथा उपशम, क्षय में सम्यक्त्वमोहनीय रहित उदय होता है ।

देशसंयत में अप्रत्याख्यान रहित दर्शनमोह के क्षयोपशम में सम्यक्त्वमोहनीय सहित और उपशम में सम्यक्त्वमोहनीय रहित उदय होता है । तिर्यंच देशसंयत में संक्लेश की हानि से हुये तीन शुभलेश्या के कारणभूत कषायों के उदयस्थान सर्व कषायों के उदयस्थान के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, तो भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं । अवशेष बहुभागप्रमाण छह लेश्याओं के कारणभूत उदयस्थान हैं, वे मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानों में होते हैं । वहां मिथ्यात्व में तेइस से लेकर छह स्थान बंधते हैं । सासादन में अट्ठाइस से लेकर तीन स्थान बंधते हैं । मिश्रादि तीन गुणस्थानों में अट्ठाइस के स्थान को ही बांधते हैं ।

मनुष्य ने पूर्वभव में दानयोग्य द्रव्य को दाता के गुणसहित होकर तीन प्रकार के पात्र को दान दिया अथवा अनुमोदना दी और तिर्यंच ने अनुमोदना ही दी, उसके द्वारा मिथ्यात्व से तिर्यंचायु को बांधकर तीन अशुभलेश्या सहित मरकर भोगभूमि में तिर्यंच मिथ्यादृष्टि होता है, उसकी अपर्याप्त दशा में तिर्यंचगतियुत उनतीस या तीस के और मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधता है ।

जिसके तिर्यंचायु का बंध हुआ हो और मरणदशा में प्रथमोपशम सम्यक्त्व पाकर अनंतानुबंधी के उदय से विराधना करके तिर्यंच और मनुष्य तो भोगभूमि में और नारकादि जीव कर्मभूमि में तीन अशुभलेश्या सहित सासादन होकर तिर्यंच में उत्पन्न हुआ, वहां तिर्यंचगति वा मनुष्यगतियुत उनतीस और तीस को ही बांधते हैं, क्योंकि 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि' इस वचन से देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान का बंध पर्याप्त में ही है ।

पुनश्च कर्मभूमि का तिर्यंच, मनुष्य वेदक सम्यग्दृष्टि या मनुष्य क्षायिक सम्यग्दृष्टि जिसके पहले तिर्यंचायु का बंध हुआ हो, वह तीन प्रकार के पात्रदान से वा दान की अनुमोदना से तीन, दो, एक, पल्य प्रमाण आयु धारण कर तीन भोगभूमियों में कपोत लेश्या के जघन्य अंश सहित उत्पन्न होकर वेदक सम्यग्दृष्टि, कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि इस अपर्याप्त दशा में देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को ही बांधते हैं 'भोगे सुरट्ठावीसं सम्मो' इस वचन से जानना ।

पर्याप्त दशा के ऊपर *(पर्याप्त होनेपर)* चारों गुणस्थानवर्ती भोगभूमिया जीव तीन शुभलेश्या संयुक्त ही हैं । वहां मिथ्यात्व और सासादनवाले तो देवगतियुत अट्ठाइस के अथवा तिर्यंचगति, मनुष्यगतियुत उनतीस के वा उद्योतयुत तीस के — इन तीन स्थानों को बांधते हैं । मिश्र, असंयत हैं वे देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को ही बांधते हैं, क्योंकि तिर्यंचगति, मनुष्यगतियुत स्थानों का सासादन में ही व्युच्छेद हुआ ।

इसतरह तिर्यंच में लेश्या सहित जीवों के बंधस्थान कहे ।

अब मनुष्यगति में कहते हैं —

लब्धिअपर्याप्त मनुष्यों में तो तीन अशुभलेश्या ही हैं । निर्वृत्तिअपर्याप्त के छहों लेश्या हैं, इसलिए मिथ्यादृष्टि में तो तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के पांच स्थान बंधते हैं । सासादन में उनतीस, तीस के दो स्थान बंधते हैं । असंयत में देवगतियुत अट्ठाइस का अथवा देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का दो स्थान बंधते हैं ।

पर्याप्त दशा में छहों लेश्या पायी जाती हैं, वहां मिथ्यात्व में तेइस आदि छह स्थान बंधते हैं । सासादन में अट्ठाइस आदि तीन स्थान — देव २८, तिर्यंच, मनुष्य २९, तिर्यंच-उद्योत ३० बंधते हैं । मिश्र में देवगतियुत अट्ठाइस का ही स्थान बंधता

है । असंयत में वा तीन शुभलेश्या सहित देशसंयत या प्रमत्त में देवगतियुत अट्ठाइस या देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस के स्थान बंधते हैं ।

अप्रमत्त में उपरोक्त दोनों तथा आहारकयुत तीस, इकतीस के — ऐसे चार स्थान बंधते हैं । अपूर्वकरण में शुक्ललेश्या ही है, वहां वे चारों स्थान और अंतिम भाग में एक का स्थान — ऐसे पांच स्थान बंधते हैं । बादर अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय में एक का ही बंध है । उपशांतमोह आदि में बंध का अभाव है । भोगभूमि में भोगभूमिया तिर्यंचवत् बंध जानना ।

अब देवगति में कहते हैं —

भवनत्रिक अपर्याप्त में तीन अशुभलेश्या ही हैं । पर्याप्त में पीतलेश्या का जघन्य अंश है । पर्याप्त अपर्याप्त वैमानिक देवों में सौधर्मयुगल के प्रथम इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक में तो पीत का जघन्य अंश है । द्वितीय इन्द्रक से सानत्कुमारादिक के छठवें इन्द्रक तक मध्यम अंश है । सातवें इन्द्रक, श्रेणीबद्धों में पीत का उत्कृष्ट, पद्म का जघन्य अंश है । ब्रह्मद्विक के चार इन्द्रक, लांतवद्विक के दो इन्द्रक, शुक्रद्विक के एक इन्द्रक — इनमें पद्म का मध्यम अंश है । शतारयुगल के एक इन्द्रक में पद्म का उत्कृष्ट, शुक्ल का जघन्य अंश है । आनतचतुष्क के छह इन्द्रक, नौ ग्रैवेयकों के नौ इन्द्रक, अनुदिशों का एक इन्द्रक और अनुत्तरों के श्रेणीबद्धों में शुक्ललेश्या का मध्यम अंश है । सर्वार्थसिद्धि में उत्कृष्ट अंश है ।

जहां देवों का जन्म होता है ऐसे आवास, वे वैमानिक देवों के तो तिरसठ पटल हैं, भवनवासियों के रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग, पंकभाग में सात कोडी बहत्तर लाख भवन हैं, व्यंतरों के असंख्यात द्वीपसमुद्र हैं, ज्योतिषियों के सुदर्शन मेरु से ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर, पृथ्वी से सात सौ नब्बे योजन से लेकर नौ सौ योजन तक एक सौ दस योजन की मोटाई में पणट्ठीप्रमाण प्रतरांगुल से भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विमान हैं ।

[***विशेषार्थ*** : *प्रत्येक पटल में मध्य में एक इन्द्रक, चारों दिशाओं में श्रेणीबद्ध तथा अन्य प्रकीर्णक विमान होते हैं ।*

युगल क्रमांक	नाम	पटल
१	सौधर्म ईशान	३१
२	सानत्कुमार माहेन्द्र	७
३	ब्रह्म युगल	४
४	लान्तव युगल	२
५	शुक्र युगल	१
६	शतार युगल	१
७, ८	आनतादि दो युगल	६
	नौ ग्रैवेयक	९
	अनुदिश	१
	अनुत्तर	१
	कुल ६३ पटल	]

वहां मिथ्यादृष्टि कर्मभूमिया मनुष्य और संज्ञी-गर्भज-तिर्यंच तो कृष्णादि चार लेश्यावाले भवनत्रिक में उपजते हैं । गर्भज-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय पीतलेश्यावाले भवनवासी व्यंतर में ही उपजते हैं, क्योंकि असंज्ञी पंचेन्द्रिय के देवायु का उत्कृष्ट स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण ही है ।

पुनश्च मानुषोत्तर और स्वयंप्रभाचल के बीच में तिर्यंच संबंधी जघन्य भोगभूमि, तीन प्रकार की मनुष्यक्षेत्र की भोगभूमि, छानबे कुभोगभूमि के पीतलेश्यावाले जीव भवनत्रिक में उपजते हैं, सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक में नहीं उपजते ।

पुनश्च जिनके देवायु का बंध हुआ है ऐसे तिर्यंच, मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अनंतानुबंधी के एक प्रकृति के उदय से घात करके चारों लेश्याओं से वहां सासादन में उपजते हैं, वे भवनत्रिक निर्वृत्तिअपर्याप्त मिथ्यादृष्टि तो अट्ठाइस के बिना पच्चीस आदि चार स्थान बांधते हैं । एप २५, एप २६, तिम २९, तिउ ३० । *(निर्वृत्तिअपर्याप्त)* सासादनवाला उनतीस, तीस के दो स्थानों को बांधता है । *(तिम २९, तिउ ३०)* ।

पुनश्च मनुष्य या तिर्यंचलोक संबंधी कर्मभूमिया तिर्यंच वा नागा संन्यासी इत्यादि वा जिनद्रव्यलिंगी आदि पीतलेश्या से मरकर सौधर्मद्विक में मिथ्यादृष्टि उपजते हैं – वे निर्वृत्तिअपर्याप्त देव पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के स्थानों को बांधते हैं । *(एप २५, एप आउ २६, तिम २९, तिउ ३०)* ।

पुनश्च देशसंयत तक तो तिर्यंच प्रथमोपशम सम्यक्त्व की और प्रमत्तसंयत तक मनुष्य प्रथमोपशम या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की विराधना करके देवायु का जिनके बंध हुआ हो वे पीतलेश्या से सौधर्मद्विक में सासादन में उपजते हैं । वहां निर्वृत्तिअपर्याप्त में उनतीस, तीस के दो स्थानों को बांधते हैं । *(तिम २९, तिउ ३०)* ।

पुनश्च सर्व भोगभूमिया वेदक और क्षायिक सम्यग्दृष्टि, कर्मभूमिया वेदक सम्यग्दृष्टि, कर्मभूमिया देशसंयत तक तिर्यंच और तीर्थंकर सत्त्व सहित या रहित अप्रमत्तसंयत तक के मनुष्य जो देवायु बंध से संयुक्त हैं, वे पीतलेश्या से सौधर्मद्विक में उपजते हैं, वहां असंयत गुणस्थानवर्ती निर्वृत्तिअपर्याप्त में तीर्थंकर सत्त्व सहित तो तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को और तीर्थंकर सत्त्व से रहित मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधते हैं ।

पद्म, शुक्ललेश्या सहित भोगभूमिया असंयत अथवा पद्म, शुक्ल लेश्यावाले असंयतादिक वा शुक्ललेश्यावाले अपूर्वकरणादि भी मरण के समय पीतलेश्या को पाकर ही सौधर्मद्विक में उपजते हैं । वहां उत्तरदिशा के श्रेणीबद्ध और वायव्य-ईशान कोण के प्रकीर्णक विमान तो उत्तर दिशा के ईशान इन्द्र संबंधी हैं और अवशेष विमान दक्षिण दिशा के सौधर्म इन्द्र संबंधी हैं इतना ही सौधर्म-ईशान में भेद हैं ।

सानत्कुमार युगल में चक्रइन्द्रक श्रेणीबद्ध तक पीतलेश्या है, तथापि वहां भोगभूमिया उपजते नहीं, अवशेष *(ऊपर कहे हुये कर्मभूमिया)* उपजते हैं । वे निर्वृत्तिअपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, सासादन तो तिर्यंचगति, मनुष्यगतियुत उनतीस और तीस के स्थानों को बांधते हैं । *(तिम २९, तिउ ३०)* ।

पुनश्च निर्वृत्तिअपर्याप्त असंयत मनुष्यगतियुत उनतीस और मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को बांधते हैं ।

पुनश्च ऊपर के आठ स्वर्गों में जिन्होंने देवायु का बंध किया है ऐसे नागा इत्यादि,

कर्मभूमिया तिर्यंच, मनुष्य पद्मलेश्या के साथ उत्पन्न होते हैं । वे भी उसीप्रकार मिथ्यात्व, सासादनवाले जीव तिर्यंचगति, मनुष्यगतियुत दो स्थानों को *(२९, ३०)* और असंयत जीव मनुष्यगतियुत और मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत दो स्थानों को *(२९, ३०)* बांधते हैं ।

आनतादि चार स्वर्ग और नौ ग्रैवेयकों में शुक्ललेश्या है, वहां मिथ्यात्व, सासादन में मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को तथा वहां के असंयत और अनुदिश, अनुत्तर के वासी असंयत मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को बांधते हैं । यहां प्रासंगिक गाथा कहते हैं —

णरतिरियदेसअयदा उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा ।
णरअयददेसमिच्छा गेव्वेज्जंतोत्ति गच्छंति ।। त्रि. सार-५४५।।

मनुष्य, तिर्यंच, देशव्रती या असंयत उत्कृष्ट से अच्युत *(१६ वें)* स्वर्ग तक उपजते हैं । द्रव्य से निर्ग्रंथ और भाव से असंयत, देशसंयत, मिथ्यादृष्टि ऊपर के ग्रैवेयक तक *(९ वें ग्रैवेयक तक)* उपजते हैं ।

सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा ।
सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं ।। त्रि. सार-५४६।।

सर्वार्थसिद्धि तक सम्यग्दृष्टि महाव्रती उपजते हैं, भोगभूमिया सम्यग्दृष्टि तो सौधर्मयुगल में और मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक में उपजते हैं । तापसी उत्कृष्ट से भवनत्रिक में उपजते हैं ।

चरिया य परिव्वाजा बम्होत्तरचुदपदोत्ति आजीवा ।
अणुदिसअणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जंति ।। त्रि. सार-५४७।।

नागा संन्यासी ब्रह्मोत्तर तक उपजते हैं । कांजीभिक्षु अच्युत तक उपजते हैं । अनुदिश, अनुत्तर विमान से चयकर जीव नारायण, प्रतिनारायण नहीं होते ।

सोहम्मोवरदेवी सलोगपालाय दक्खिणमरिंदा ।
लोयंतिय सव्वट्ठा चुदा तदो णिव्वुदिं जंति ।। त्रि. सार-५४८।।

सौधर्मइन्द्र की शची नामक पट्टदेवी, लोकपाल सहित सौधर्म आदि दक्षिण दिशा के इन्द्र, लौकान्तिक देव, सर्वार्थसिद्धिवासी देव च्युत होकर मनुष्य होकर निर्वाण को ही प्राप्त करते हैं ।

णरतिरियगदीहिंतो भवणतियादो य णिग्गया जीवा ।
ण लहंते ते पदवीं तेसट्ठिसलागपुरिसाणं ।। त्रि. सार-५४९।।

मनुष्यगति, तिर्यंचगति और भवनत्रिक से च्युत हुये जीव तिरसठ शलाका पुरुष की पदवी को प्राप्त नहीं होते ।

सुहसयणग्गे देवा जायंते दिणयरोव्व पुव्वणगे ।
अंतो मुहुत्तपुण्णा सुगंधिसुहफाससुचिदेहा ।। त्रि. सार-५५०।।

शुभ *(सुख)* शय्या-उपपाद शय्या स्थान में प्राप्त हुये देव ऐसे जन्म लेते हैं, जैसे *(पूर्व दिशा में)* उदयाचल पर सूर्य ऊगता है, अंतर्मुहूर्त में उनका शरीर सम्पूर्ण होता है जो सुगंध, शुभस्पर्श से युक्त तथा पवित्र होता है ।

आणंदतूरजयथुदिरवेण जम्मं विबुज्झ सं पत्तं ।
दट्ठूण सपरिवारं गयजम्मं ओहिणाणं च ।। त्रि. सार-५५१।।

आनंद के वाजित्र, जयकार और स्तुतिरूप शब्दों से अपने प्राप्त जन्म को जानकर और परिवार सहित सबको देखकर अवधिज्ञान को प्राप्त होता है ।

धम्मं पसंसिदूणं ण्हादूण दहेभिसेयलंकारं ।
लद्धा जिणाभिसेयं पूजं कुव्वंति सद्दिट्ठी ।। त्रि. सार-५५२।।

धर्म की प्रशंसा करके सरोवर में स्नान कर और अतिउज्ज्वल शरीर और अलंकार सहित होकर सम्यग्दृष्टि जिनप्रतिमा का अभिषेक और पूजन करते हैं ।

सुरबोहियावि मिच्छा पच्छा जिणपूजणं पकुव्वंति ।
सुहसायरमज्झगया देवा ण विदंति गयकालं ।। त्रि. सार-५५३।।

जो मिथ्यादृष्टि देव हैं, वे अन्य देवों द्वारा संबोधनेपर *(समझानेपर)* जिनपूजन करते हैं । सुखसागर में मग्न वे देव बीते हुये काल को नहीं जान पाते, इतना समय कैसे बीत गया उन्हें पता नहीं चलता ।

महपूजासु जिणाणं कल्लाणेसु य पजांति कप्पसुरा ।
अहमिंदा तत्थविणा णमंति मणिमौलिघडिदकरा ।। त्रि. सार-५५४।।

कल्पवासी देव महापूजा, इन्द्रध्वजविधान, अष्टाह्निका में *(नंदीश्वर द्वीप के अकृत्रिम जिनालयों में)* और तीर्थंकरों के कल्याणकों में जाते हैं । अहमिन्द्र देव *(ग्रैवेयकादि ऊपर के देव)* अपने स्थान में रहकर ही दोनों हाथ मणिजडित मुकुटों को लगाकर *(हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाकर)* नमस्कार करते हैं ।

विविहतवयरणभूसा णाणसुचीसीलवत्थसोम्मंगा ।
जो तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छी य ।। त्रि. सार-५५५।।

जो विविध तपश्चरणों से आभूषित हैं, ज्ञान से पवित्र हैं, शीलरूपी वस्त्र के धारक हैं और सौम्य अंग सहित हैं, उन्हींके देवलक्ष्मी और मुक्तिलक्ष्मी वश में होती हैं ।

इसतरह देवों का वर्णन किया, वहां लेश्या के वर्णन से बंधस्थान कहे । इसप्रकार असंयत में छह लेश्या हैं, देशविरत आदि तीन गुणस्थानों में तीन शुभलेश्या हैं, ऊपर शुक्ललेश्या है, अयोगी लेश्यारहित हैं । वहां तीन अशुभलेश्याओं में तेइस आदि छह बंधस्थान हैं । पीतलेश्या में पच्चीस आदि छह स्थान हैं । पद्मलेश्या में अट्ठाइस आदि चार स्थान हैं । शुक्ललेश्या में अट्ठाइस आदि पांच स्थान हैं, वे सूक्ष्मसाम्पराय तक यथासंभव जानना ।।५४९।।

भव्वे सव्वमभव्वे किण्हं वा उवसमम्मि खइए य ।
सुक्कं वा पम्मं वा वेदगसम्मत्तठाणाणि ।।५५०।।

भव्ये सर्वमभव्ये कृष्णा वा उपशमे क्षायिके च ।
शुक्लं वा पद्मं वा वेदकसम्यक्त्वस्थानानि ।।५५०।।

टीका – भव्यमार्गणा में सर्व बंधस्थान हैं, क्योंकि उसके सर्व गुणस्थान पाये जाते हैं । अभव्य में कृष्णलेश्यावत् तेइस आदि छह स्थान मिथ्यात्व में ही पाये जाते हैं ।

सम्यक्त्वमार्गणा में उपशम, क्षायिक सम्यक्त्व में तो शुक्ललेश्यावत् अट्ठाइस आदि पांच स्थान हैं । वेदक सम्यक्त्व में पद्मलेश्यावत् अट्ठाइस आदि चार स्थान हें । वहां सम्यक् का जो भाव वह सम्यक्त्व है । वह संसार के नाश का कारण है । जीवादिक पदार्थों का यथार्थ श्रद्धान-यथार्थ प्रतीति इसका लक्षण है – ऐसा भव्य जीवों का परिणाम विशेष, वह सम्यक्त्व है । वह सम्यक्त्व तीन प्रकार का है – औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व । औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकार का है – प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व । वहां –

दंसणमोहक्खवणा खवगा चडमाण पढमपुव्वाय ।
पढमुवसम्मा तमतम गुणपडिवण्णा य ण मरंति ।। गो. कर्म.-५६०।।

दर्शनमोह की क्षपणा करनेवाले, क्षपक श्रेणीवाले, चढ़ते हुये अपूर्वकरण के प्रथम भाग में स्थित उपशमश्रेणीवाले, प्रथमोपशम सम्यक्त्व के धारक और तमस्तम सातवें नरक में सासादन आदि गुणस्थानवर्ती *(२ रे, ३ रे, ४ थे)* – ये जीव मरते नहीं; इसलिए इन दोनों में से प्रथमोपशम सम्यक्त्व चारों गतियों के पर्याप्त जीवों में ही होता है, अपर्याप्तों में नहीं होता । द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पर्याप्त मनुष्य और निर्वृत्तिअपर्याप्त वैमानिक देवों में होता है *(द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित मरकर देवों में उत्पन्न होनेवाले में)* । क्षायिक सम्यक्त्व धर्मानारकी *(प्रथम नरक)*, भोगभूमिया तिर्यंच, भोगभूमिया-कर्मभूमिया मनुष्य, वैमानिक देव – इनके पर्याप्त और अपर्याप्त दशा में पाया जाता है । वेदक सम्यक्त्व चारों गतियों के पर्याप्त और निर्वृत्तिअपर्याप्त जीवों के होता है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे जीव के होती है ? वह कहते हैं –

चदुगदि मिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्धसागारो ।
पढमुवसम्मं गेण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्मि ।। लब्धिसार-२ ।।

चारों गति का मिथ्यादृष्टि; संज्ञी पंचेन्द्रिय ही हो असंज्ञी न हो; जो पर्याप्त ही हो-लब्धिअपर्याप्त या निर्वृत्तिअपर्याप्त न हो; गर्भज या उपपादज ही हो सम्मूर्छन न हो, संक्लेशी न हो, विशुद्ध परिणामी हो; अनाकार दर्शनोपयोगी न हो विशेष ग्रहणरूप साकार ज्ञानोपयोग का धारक हो; वहां भी –

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगबंधेण होदि सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वयाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥ गो. कर्म.-३३४॥

चारों गति की आयु पूर्व में बांधी हो तो भी सम्यक्त्व होता है, कोई दोष नहीं है; परंतु जिसके देवायु बिना अन्य आयु का बंध हुआ हो, उसको अणुव्रत महाव्रत नहीं होते – इस वचन से बद्धायु हो या अबद्धायु हो; सादि मिथ्यादृष्टि हो या अनादि मिथ्यादृष्टि हो, वहां सादि मिथ्यादृष्टि के यदि सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय *(सम्यग्मिथ्यात्व)* का सत्त्व पाया जाये तो उसके दर्शनमोहनीय की तीन और अनंतानुबंधी की चार – ये सात प्रकृतियां हैं और यदि सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय का सत्त्व नहीं हैं, तो पांच प्रकृतियां हैं और अनादि मिथ्यादृष्टि के पांच ही प्रकृतियां हैं ।

इन प्रकृतियों को क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि करणलब्धि के परिणामों द्वारा प्रशस्तोपशमन विधान से युगपत् *(एकसाथ)* उपशमाकर अंतर्मुहूर्त काल तक प्रथमोपशम सम्यक्त्व को अंगीकार करनेवाले कोई जीव अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से इकतालीस पाप प्रकृतियों के बंध को रोकता हुआ असंयत सम्यग्दृष्टि होता है । अथवा कोई जीव प्रत्याख्यान के उदय से इक्यावन प्रकृतियों के बंध को रोककर देशसंयत होता है । अथवा कोई जीव संज्वलन के उदय से इकसठ प्रकृतियों के बंध को रोकता हुआ अप्रमत्तसंयत होता है । वह अप्रमत्त संख्यात हजार बार अप्रमत्त से प्रमत्त में और प्रमत्त से अप्रमत्त में आवागमन करता है ।

उस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण के प्रथम समय से गुणसंक्रमण द्वारा उस सम्यक्त्व के परिणाम से मिथ्यात्व द्रव्य मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व *(मिश्र)* और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप भेदों से तीन प्रकार का करता है । जैसे चक्की से पीसनेपर कोद्रों नामक अनाज के तीन रूप हो जाते हैं ।

वहां नारकी तो असंयत ही होता है, वह मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को – इन दोनों को तो धर्मादि तीन पृथ्वियों में बांधते हैं । अवशेष पृथ्वियों में मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं ।

यहां प्रश्न – 'अविरदादि चत्तारि तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते' इस वचन से अविरतादि चारों गुणस्थानवाले मनुष्य ही केवलीद्विक के निकट तीर्थंकर बंध के प्रारंभक कहे हैं, नरक में कैसे तीर्थंकर का बंध है ?

वहां समाधान – जिनके पूर्व में नरकायु का बंध हुआ हो, पश्चात् प्रथमोपशम या वेदक सम्यक्त्व में जो मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ करते हैं, पश्चात् मरण के समय मिथ्यादृष्टि होकर तृतीय पृथ्वी तक *(तीसरे नरक तक)* उत्पन्न होते हैं, वहां शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् उन दोनों में से *(प्रथमोपशम, वेदक)* किसी सम्यक्त्व को प्राप्त कर, समयप्रबद्ध में तीर्थंकर का भी बंध करते हैं । *(जो एक अंतर्मुहूर्त तक ही मिथ्यात्व में रहा है, वह वेदक सम्यक्त्व को ही प्राप्त करेगा, प्रथमोपशम सम्यक्त्व को नहीं ।)*

वहां प्रश्न – प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति में साकारोपयोग कहा है, वह नरक में कैसे होता है ?

उसका समाधान – तीसरी पृथ्वी तक देवों के संबोधने से *(उपदेश से)* अथवा निसर्ग अर्थात् स्वभाव से वहां भी साकारोपयोग होता है ।

वहां प्रश्न – निसर्गज सम्यग्दर्शन में पदार्थों का अवबोध *(ज्ञान)* होता है या नहीं ? यदि होता है तो वह भी अधिगमज ही हुआ और यदि पदार्थों का ज्ञान नहीं है तो तत्त्वज्ञान बिना सम्यक्त्व नाम कैसे पाया ?

उसका समाधान – निसर्गज और अधिगमज इन दोनों प्रकार के सम्यक्त्व में अंतरंग कारण दर्शनमोह का उपशम-क्षय-क्षयोपशम की समानता है । उसके होनेपर जहां आचार्यादि के उपदेश से तत्त्वज्ञान होता है वह अधिगमज है और उसके बिना तत्त्वज्ञान होता है वह निसर्गज है ।

पुनश्च प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि तिर्यंच असंयत या देशसंयत होकर वह देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को ही बांधता है ।

प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य असंयत, देशसंयत या प्रमत्त गुणस्थानवर्ती देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को वा देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस के स्थान को बांधता है, क्योंकि इस *(प्रथमोपशम)* सम्यक्त्व में भी तीर्थंकर बंध का प्रारंभ होता है ।

अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव उपरोक्त दोनों स्थान तथा आहारकयुत तीस का *(देवगति-आहारकद्विकयुत)* और इकतीस का *(देवगति-आहारकद्विक-तीर्थंकरयुत)* — ऐसे चार स्थानों को बांधता है ।

प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि देव असंयत ही है और उपरिम ग्रैवेयक तक ही होता है, वह मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधता है, तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को नहीं बांधता, क्योंकि जिसने पहले देवायु का बंध करके पश्चात् तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ किया है वह जैसे सम्यक्त्व से भ्रष्ट नहीं होता, वैसे ही जिसने पहले तीर्थंकर का बंध करके पश्चात् देवायु बांधी हो वह भी सम्यक्त्व से भ्रष्ट नहीं होता और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में गये बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती ।

पुनश्च द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त ही तीन करण परिणामों द्वारा सातों प्रकृतियों का उपशम करके ग्रहण करता है । उस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अंतर्मुहूर्त काल के प्रथम समय में देवगतियुत-अट्ठाइस आदि चार स्थानों को बांधता है *(२८, २९, ३०, ३१)* ।

यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी पर आरोहण करने के लिये तीन करण करते हुये अधःप्रवृत्तकरण को तो सातिशय अप्रमत्त अवस्था में ही करता है । वहां प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि को धारण करते हुये, सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के गुड, खाण्ड, शर्करा, अमृतरूप चारों प्रकार के अनुभागबंध को प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ाता है; असातावेदनीय आदि अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभागबंध को प्रतिसमय अनंतगुणा घटाता हुआ निंब, कांजीररूप दो प्रकार का बांधता है । तथा सर्व प्रकृतियों के स्थितिबंध को घटाता हुआ अपूर्वकरण गुणस्थान को प्राप्त होता है । उसके प्रथम समय से लेकर छठवें भाग तक उन्हीं चार बंधस्थानों को बांधता है; सातवें भाग में, अनिवृत्तिकरण में और सूक्ष्मसाम्पराय में एक के स्थान को बांधता है ।

उपशांतमोह में अंतिम समय तक नामकर्म का बंध नहीं करता पश्चात् अनुक्रम से उतरकर अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त होता है । वहां अप्रमत्त से प्रमत्त में और प्रमत्त से अप्रमत्त में हजारों बार गमनागमन करता है, पश्चात् संक्लेश के वश से प्रमत्त से प्रत्याख्यानावरण के उदय से देशसंयत होकर या अप्रत्याख्यानावरण के उदय से असंयत होकर प्रमत्तवत् दो स्थानों को बांधता है, ऐसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में आठ गुणस्थान हैं *(चौथे से ग्यारहवें तक)* ।

उसने यदि पहले देवायु का बंध किया हो तो चढ़ते अपूर्वकरण के प्रथम भाग बिना अन्यत्र और उतरते सर्वत्र कहींपर यदि उसका मरण हो जाये तो वैमानिक देव में यथासंभव उपजता है । वहां निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था में मनुष्यगतियुत उनतीस के या मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को बांधता है ।

इसतरह उपशम सम्यक्त्व कहा ।

इन दोनों प्रकार के उपशम सम्यक्त्व में इकतीस प्रकृतिरूप नामकर्म का जो बंधस्थान है, उसके सत्त्व सहित प्रमत्तसंयत में मिथ्यात्व का उदय नहीं होता । इकतीस के बंधस्थान की प्रकृतियों का सत्त्व जिसके पाया जाता है, वह प्रमत्त से मिथ्यात्व में नहीं आता ।

पुनश्च तीर्थंकर और आहारक सत्त्ववाले असंयतादि तीन गुणस्थानों में अनंतानुबंधी का उदय नहीं होता, इसलिए वहां से इनकी सत्तावाला जीव सासादन में नहीं आता । तीर्थंकर का सत्त्व होनेपर मिश्रमोहनीय का उदय नहीं होता, इसलिए वहां से उसकी सत्तावाला मिश्रगुणस्थान में नहीं आता, क्योंकि उस-उस कर्म के सत्त्वयुक्त जीवों के वह-वह गुणस्थान नहीं होता । एक जीव के तीर्थंकर और आहारक का सत्त्व होते हुये मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं होता; आहारक का सत्त्व होनेपर सासादन नहीं होता; तीर्थंकर का सत्त्व होनेपर मिश्र नहीं होता — ऐसे जानना ।

आगे क्षायिक सम्यक्त्व का विधान कहते हैं — प्रासंगिक गाथा —

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुजो ।
तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले ।। लब्धिसार-११०।।

णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु धम्मे य ।
कदकरणिज्जो चदुसुवि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ॥ लब्धिसार-१११॥

दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ तो कर्मभूमिया मनुष्य में तीर्थंकर, केवली वा श्रुतकेवली के पादमूल में ही होता है और निष्ठापन वहींपर *(मनुष्य में)* या वैमानिक देव में या भोगभूमिया मनुष्य या तिर्यंच में या धर्मानरकवाले में *(प्रथम नरक के नारकी में)* होता है, क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि चारों गति में उपजता है । वही कहते हैं —

सामग्री विशेष से संयुक्त असंयतादि चारों गुणस्थानों में से किसी गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से लेकर पूर्वोक्त प्रकार से विशुद्धि का बढ़ना, सातादि प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागबंध बढ़ाना, असातादि अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागबंध घटाना, सर्व प्रकृतियों का स्थितिबंध घटाना — ये चार आवश्यक करता हुआ उस अधःप्रवृत्तकरण को पूर्ण करके अनंतर समय में अपूर्वकरण को प्राप्त हुआ । वहां उन पूर्वोक्त चार आवश्यकों के साथ प्रतिसमय जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में वा देशसंयत में वा सकलसंयम में असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा गुणश्रेणीरूप द्रव्य है, उससे भी असंख्यातगुणा अनंतानुबंधी के द्रव्य अर्थात् परमाणुओं के समूह को अपकर्षण करके पृथक् ग्रहण करता है । यहां गुणश्रेणी का आयाम अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण दोनों के काल से कुछ अधिक है तथापि सकलसंयम के गुणश्रेणीकाल से संख्यातगुणा हीन *(संख्यातवें भागप्रमाण)* है । उसमें से व्यतीत होने के पश्चात् अवशेष जितना रहता जाये उस गुणश्रेणी काल में उस अपकर्षण किये हुये द्रव्य को देता है ।

भावार्थ – सत्त्वरूप मोहनीयकर्म के परमाणुओं में अनंतानुबंधी के जितने परमाणु हैं, उनमें से पूर्वोक्त गुणश्रेणी में देने के लिये अपकर्षण द्वारा जितने परमाणु पृथक् किये, उतने परमाणु उस पूर्वोक्त गुणश्रेणी के काल के जितने समय हो, उनमें प्रतिसमय असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा होकर निर्जरित करता है । पहले से असंख्यातगुणा संक्रमण द्रव्य को संक्रमित करता है — अनंतानुबंधी के द्रव्य को अन्य कषायरूप परिणमाता है । पूर्व से असंख्यातगुणा आयाम अर्थात् समयों के प्रमाणवाले संख्यात हजार स्थितिकांडकघात करता है, पूर्व में सत्ता में कर्मों की जो स्थिति थी उसको

घटाता है । उतने ही नये कर्मों का स्थितिबंधापसरण करता है-स्थितिबंध को घटाता है । एक-एक स्थितिकांडक के घात करने के काल में पूर्व से अनंतगुणा अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदादिरूप आयामवाले अनुभागकांडकों का नाश करता है । ऐसे करते हुये अपूर्वकरण को पूर्ण करता है ।

उसके अनंतर समय में अनिवृत्तिकरण होता है ।

अणियट्टे अद्धाए अणस्स चत्तारि होंति पव्वाणि ।
सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टिउच्छिट्ठं ॥ लब्धिसार-११३॥

वहां अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अनंतानुबंधी की सत्त्वरूप स्थिति पृथक्त्व लाख सागर प्रमाण है । उसके ऊपर उस अनिवृत्तिकरण के काल को संख्यात का भाग देकर वहां एकभाग बिना अवशेष बहुभागप्रमाण काल बीत जानेपर पल्य के संख्यातवें भागप्रमाण एक-एक कांडक अर्थात् एक-एक बार इतनी-इतनी स्थिति घटाना, ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान हजार सागर प्रमाण स्थिति शेष रखता है ।

उसके ऊपर उतने ही प्रमाणवाले उतने ही कांडकों द्वारा चतुरिन्द्रिय के बंध के समान सौ सागर की स्थिति शेष रखता है । पुनश्च उसके ऊपर उतने ही प्रमाणवाले उतने ही कांडकों द्वारा त्रीन्द्रिय के बंध के समान पचास सागर की स्थिति शेष रखता है । उसके ऊपर उतने ही आयामवाले उतने ही कांडकों द्वारा द्वीन्द्रिय के बंध के समान पच्चीस सागर की स्थिति शेष रखता है । उसके ऊपर उतने ही आयाम वाले उतने ही कांडकों द्वारा स्थिति को घटाकर एकेन्द्रिय के बंध के समान एक सागर स्थिति शेष रखता है । उसके ऊपर उतने ही आयामवाले उतने ही कांडकों द्वारा स्थिति को घटाकर पल्यप्रमाण स्थिति शेष रखता है ।

पुनश्च उसके ऊपर पल्य के असंख्यातवें भाग में से एकभाग बिना बहुभाग प्रमाण आयामवाले उतने ही कांडकों द्वारा स्थिति को घटाकर पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति शेष रखता है — जिसे दूरापकृष्टि कहते हैं । उसके ऊपर उतने ही आयामवाले उतने ही कांडकों द्वारा आवलीप्रमाण स्थिति शेष रखता है — जिसे उच्छिष्टावली कहते हैं । इतनी

स्थिति अवशेष रहनेपर विसंयोजन, उपशमन या क्षपण की क्रिया नहीं हो सकती, इसलिए इसको उच्छिष्टावली कहते हैं । वे अवशेष रहे आवलीकाल के निषेक उस आवलीकाल में एक-एक निषेक करके अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होकर गल जाते हैं ।

इसतरह अनंतानुबंधी चतुष्क उस उच्छिष्टावली के अंतिम समय में विसंयोजनरूप किया हुआ अन्य बारह कषाय और नौ नोकषायरूप हो जाता है ।

अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय पुणोवि तिकरणं किरिय ।
अणियट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेई ॥ लब्धिसार-११७॥

उसके अनंतर अंतर्मुहूर्त विश्राम लेकर अर्थात् अनंतानुबंधी का विसंयोजन करने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त होनेपर पुनः तीन करण करता है । वहां अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात भागों में से एकभाग बिना बहुभाग बीत जानेपर एकभाग अवशेष रहनेपर पहले मिथ्यात्व का, पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व का, पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृति का अनुक्रम से क्षय करता है ।

वहां दर्शनमोह की क्षपणा के प्रारंभ के प्रथम समय में स्थायी जो सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति-उसके काल में से अंतर्मुहूर्त शेष रहने के अंत समय तक उसे प्रस्थापक कहते हैं । उसके अनंतर समय से प्रथम स्थिति के अंतिम निषेक तक उसे निष्ठापक कहते हैं । प्रस्थापक तो असंयतादि चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही होता है । परंतु निष्ठापक बद्धायु की अपेक्षा वैमानिक देव या धर्मानारक या भोगभूमिया तिर्यंच या भोगभूमिया मनुष्य — निर्वृत्तिअपर्याप्त भी होते हैं और अबद्धायु की अपेक्षा *(पर्याप्त)* मनुष्य निष्ठापक होता है ।

कृतकृत्यवेदक का काल अंतर्मुहूर्त बीतनेपर जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है । यह क्षायिक सम्यग्दृष्टि कोई कर्मभूमि का मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ कर अथवा न प्रारंभ कर चरमशरीरी उसी भव में क्षपकश्रेणी चढ़कर घातिकर्मों का नाश करके सातिशय या निरतिशय केवली होता है । यदि तीसरे भव में मुक्त होना हो तो देवायु ही को बांधकर वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होकर दिव्यभोगों को भोगकर चयकर पंद्रह कर्मभूमियों में उत्तमसंहनन का धारी होकर घातिकर्मों को नष्ट करता है ।

ये क्षायिक सम्यग्दृष्टि यथासंभव अट्ठाइस आदि पांच स्थानों को बांधते हैं ।

आगे वेदक सम्यक्त्व में कहते हैं —

मनुष्यगति में असंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती मनुष्य द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि कोई मरकर वैमानिक देवों में असंयत हुये हैं, वे वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं । कर्मभूमिया मनुष्य प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि अपने-अपने उपशम सम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त काल समाप्त होनेपर सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं । कर्मभूमिया मनुष्य सादि मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से मिथ्यात्व के उदयरूप निषेक का अभाव करके असंयतादि चारों गुणस्थानों में मिथ्यात्व से वेदक सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति को बांधता है अथवा कोई जीव नहीं बांधता । ये वेदक सम्यक्त्वी और कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वी हैं, वे असंयतादि तीन गुणस्थानवर्ती तो अट्ठाइस, उनतीस के दो स्थानों को और अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती अट्ठाइस आदि चार स्थानों को बांधते हैं ।

नरकगति में प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि अपने काल के अनंतर समय को प्राप्त होकर मिश्रगुणस्थानी या सादि मिथ्यादृष्टि होते हैं, वे मिश्रप्रकृति या मिथ्यात्वप्रकृति के उदय निषेकों को मिटाकर सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि होकर धर्मादि तीन नरकों में तो तीर्थंकर रहित या सहित उनतीस या तीस के स्थानों को बांधते हैं । शेष पृथ्वियों में मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं ।

कर्मभूमिया और भोगभूमिया तिर्यंच और भोगभूमिया मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्व को छोड़कर सादि मिथ्यादृष्टि होकर मिथ्यात्व के उदय निषेकों को मिटाकर सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं; वे जीव और भोगभूमिया कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि देवगतियुत अट्ठाइस के ही स्थान को बांधते हैं ।

[***विशेषार्थ*** : *सभी तिर्यंच, भोगभूमिया मनुष्य इनमें तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता, वे उसका बंध भी नहीं करते ।*]

देवगति में कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि देव उनतीस आदि दो स्थानों को बांधते हैं । मनु २९ मती ३० । प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि देव और देवपर्याय में ही जिनके वेदक सम्यक्त्व हुआ ऐसे देव मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं ।

भवनत्रिकादि उपरिम ग्रैवेयक तक सादि मिथ्यादृष्टि जीव तीन करणों को *(करके)* या किये बिना यथासंभव सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से मिथ्यात्व को छोड़कर वेदक सम्यग्दृष्टि होकर मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं ॥५५०॥

अडवीसतिय दु साणे मिस्से मिच्छे दु किण्हलेस्सं वा ।
सण्णीआहारिदरे सव्वं तेवीसछक्कं तु ॥५५१॥

अष्टविंशत्रयं तु साने मिश्रे मिथ्ये तु कृष्णलेश्या वा ।
संज्ञ्याहारेतरयोः सर्व त्रयोविंशषट्कं तु ॥५५१॥

टीका – सासादनसम्यक्त्व में अट्ठाइस आदि तीन को बांधते हैं । वहां निर्वृत्तिअपर्याप्त बादर पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों, मनुष्यों में और पर्याप्त नारकियों में तथा पर्याप्त-अपर्याप्त भवनत्रिकादि सहस्रार तक के देवों में उनतीस आदि दो ही स्थानों को बांधते हैं *(तिम २९, तिउ ३०)* । पर्याप्त-संज्ञी-तिर्यंचों, मनुष्यों में देवगतियुत अट्ठाइस आदि तीन स्थान बांधते हैं – दे २८, तिम २९, तिउ ३० । पर्याप्त-अपर्याप्त आनतादि उपरिम ग्रैवेयक तक मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं ।

अनुदिश और अनुत्तरों में सासादन है नहीं ।

मिश्ररुचि में अट्ठाइस आदि दो ही स्थानों को बांधते हैं । पर्याप्त देव, नारकियों में तो मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को ही बांधते हैं । तिर्यंच, मनुष्य में देवगतियुत अट्ठाइस को ही बांधते हैं । अनुदिश, अनुत्तरों में मिश्र गुणस्थान है नहीं ।

मिथ्यारुचि में कृष्णलेश्यावत् तेइस आदि छह स्थानों को बांधते हैं । वहां निर्वृत्तिअपर्याप्त-पर्याप्त नारकियों में छह पृथ्वियों में तिर्यंचगति, मनुष्यगतियुत उनतीस, तीस के स्थान को बांधते हैं । सातवीं पृथ्वीं में तिर्यंचगतियुत ही दो स्थानों को *(२९, ३०)* बांधते हैं । तिर्यंचगति में लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्तिअपर्याप्त, बादर-सूक्ष्म पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण-प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों, मनुष्यों में अट्ठाइस के बिना तेइस आदि पांच स्थानों को बांधते हैं *(२३, २५, २६, २९, ३०)* ।

वहां विशेष — तेजस्कायिक और वायुकायिक में मनुष्यगतियुत पच्चीस और उनतीस का बंध नहीं होता । पर्याप्त असंज्ञी-संज्ञी तिर्यंच, मनुष्यों में तेइस आदि छह को बांधते हैं । लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्तिअपर्याप्त मनुष्यों में अट्ठाइस के बिना पांच स्थानों को ही बांधते हैं *(२३, २५, २६, २९, ३०)* ।

देवगति में निर्वृत्तिअपर्याप्त और पर्याप्त में भवनत्रिक से ईशान तक तो पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के चार स्थानों को बांधते हैं । सानत्कुमारादि दस स्वर्गों में उनतीस आदि दो स्थान बांधते हैं । आनतादि उपरिम ग्रैवेयक तक उनतीस *(मनुष्यगतियुत)* के स्थान को ही बांधते हैं । अनुदिश, अनुत्तरों में मिथ्यादृष्टि हैं नहीं ।

यहां प्रासंगिक गाथा कहते हैं —

चदुरेक्कदुपण पंच य छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता ।
तिण्णुवसमगे संते त्ति य तियतियदोण्णि गच्छंति ॥ गो. कर्म-५५६॥

निज गुणस्थान को छोड़कर अनंतर समय में कौन-कौनसे गुणस्थानों को प्राप्त होता है ? वह कहते हैं — मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीव सासादन और प्रमत्त बिना अप्रमत्त तक चार गुणस्थानों को प्राप्त होता है *(३, ४, ५, ७)* । सासादन गुणस्थानवर्ती एक मात्र मिथ्यात्व को ही प्राप्त होता है । मिश्र गुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व और असंयत इन दो को प्राप्त होता है । असंयत और देशसंयत गुणस्थानवर्ती प्रमत्त बिना अप्रमत्त तक पांच-पांच को प्राप्त होते हैं । प्रमत्त गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त तक छह को प्राप्त होते हैं । अप्रमत्त और अपूर्वकरणादि तीन उपशमश्रेणीवाले जीव अपने से ऊपर के गुणस्थान में चढ़ते हैं या नीचे के गुणस्थान में उतरते हैं, यदि मरण हो तो देवपर्यायरूप असंयत होते हैं — ऐसे तीन-तीन को प्राप्त होते हैं । उपशांतमोहवाले उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय में आते हैं, यदि मरण हो तो देव असंयत होते हैं — ऐसे दो को प्राप्त होते हैं ।

गतिमार्गणा की अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टि जीव मिश्र, असंयत को प्राप्त होता है; सासादन गुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व को ही प्राप्त होता है; मिश्र गुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व, असंयत को प्राप्त होता है; असंयत सम्यग्दृष्टि मिश्र तक तीन गुणस्थानों को प्राप्त होता है ।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि मिश्रादि देशसंयत तक तीन गुणस्थानों को; सासादनवाला मिथ्यात्व ही को; मिश्र गुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व, असंयत को; असंयत जीव देशसंयत तक चार को; देशसंयत जीव असंयत तक चार को प्राप्त होता है ।

मनुष्य मिथ्यादृष्टि सासादन, प्रमत्त बिना अप्रमत्त तक चार को; सासादनवाला मिथ्यात्व ही को; मिश्र गुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व, असंयत को; असंयत गुणस्थानवर्ती प्रमत्त बिना अप्रमत्त तक पांच को; देशसंयत भी प्रमत्त बिना अप्रमत्त तक पांच को; प्रमत्त गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त तक छह को; अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती प्रमत्त या अपूर्वकरण को या मरण होनेपर देव-असंयत को; अपूर्वकरणवाले चढ़ते हुये अनिवृत्तिकरण को, उतरते हुये अप्रमत्त को, मरण होनेपर देव-असंयत को; अनिवृत्तिकरणवाले चढ़ते हुये सूक्ष्मसाम्पराय को, उतरते हुये अपूर्वकरण को, मरण होनेपर देव-असंयत को; सूक्ष्मसाम्पराय चढ़ते हुये उपशांतमोह को, उतरते हुये अनिवृत्तिकरण को, मरण होनेपर देव-असंयत को प्राप्त होता है । उपशांतमोहवाला उतरते हुये सूक्ष्मसाम्पराय को, मरण होनेपर देव-असंयत को प्राप्त होता है ।

क्षपकश्रेणी में चढ़ना ही है, उतरना नहीं है । इसलिए अपूर्वकरणवाला अनिवृत्तिकरण को; अनिवृत्तिकरणवाला सूक्ष्मसाम्पराय को; सूक्ष्मसाम्परायवाला क्षीणमोह को; क्षीणमोहवाला सयोगकेवली गुणस्थान को; सयोगकेवली अयोगकेवली गुणस्थान को; अयोगकेवली सिद्धपद को प्राप्त होता है ।

देव मिथ्यादृष्टि जीव मिश्र और असंयत को; सासादनवाला मिथ्यात्व को; मिश्र गुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व, असंयत को; असंयत सम्यग्दृष्टि मिश्र तक तीन गुणस्थानों को प्राप्त होता है ।

पुनश्च संज्ञीमार्गणा और आहारमार्गणा में नामकर्म के सर्व बंधस्थान हैं । असंज्ञी अनाहारक में तेइस आदि छह स्थान हैं । संज्ञी में नारकी में तो उनतीस, तीस के दो स्थान हैं — तिम २९, तिउ, मती ३० । तिर्यंच में तीर्थंकर, आहारक बिना छह स्थान हैं । मनुष्य में सर्व स्थान हैं । देव में अट्ठाइस के बिना पच्चीस आदि चार स्थान हैं — एप २५, एप आउ २६, तिम २९, तिउ, मती ३० ।

असंज्ञी में लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्तिअपर्याप्त, पर्याप्त बादर-सूक्ष्म पृथ्वी, अप्, तेज,

वायु, साधारण-प्रत्येक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में तीर्थंकर, आहारक रहित छह स्थान हैं ।

आहारमार्गणा में आहारकों में देव-नरक में उनतीस, तीस के स्थान हैं, तिर्यंच में तेइस आदि छह स्थान हैं, मनुष्य में सर्व स्थान हैं । अनाहारकों में विग्रहगति में देव, नरक में उनतीस, तीस के दो स्थान हैं । पूर्वोक्त उनतीस प्रकार के तिर्यंचों में तेइस आदि छह स्थान हैं, उनमें से देवयुत अट्ठाइस का स्थान असंयत में ही पाया जाता है। ✗ *(अनाहारक)* मनुष्यों में तेइस आदि छह स्थान हैं । एअ २३, एप द्वी त्री च पं मअ २५, एप आउ २६, दे २८, द्वी त्री च पं मप देती २९, द्वी, त्री, च, पं तिउ ३० । यहां सहनानी *(चिन्ह)* में विशेषों के आदि अक्षर जानना । *(जैसे – एकेन्द्रिय अपर्याप्त एअ, आतप या उद्योतयुत एकेन्द्रिय पर्याप्त एप आउ, देवगति -तीर्थंकर स्थान देती २९)*

ऐसे नामकर्म के बंधस्थान मार्गणाओं में जानना, क्योंकि तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है । तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान बोध है । उन सहित जीवों का न विराधना चारित्र है – वही मोक्षमार्ग है ॥५५१॥

आगे पुनरुक्त भंगों को कहते हैं –

णिरयादिजुदट्ठाणे भंगेणप्पप्पणम्मि ठाणम्मि ।
ठविदूणमिच्छभंगे सासणभंगा हु अत्थित्ति ॥५५२॥

अविरदभंगे मिस्सय देसपमत्ताण सव्वभंगा हु ।
अत्थित्ति ते दु अवणिय मिच्छाविरदापमादेसु ॥५५३॥ जुम्मं

निरयादियुतस्थाने भंगेनात्मात्मनि स्थाने ।
स्थापयित्वा मिथ्यभंगे सासनभंगा हि अस्तीति ॥५५२॥

अविरतभंगे मिश्रक देशप्रमत्तानां सर्वभंगा हि ।
अस्तीति तांस्तु अपनीय मिथ्याविरताप्रमादेषु ॥५५३॥ युग्मं

टीका – नरकादिं गतियुत स्थानों को अपने-अपने भंगों सहित अपने-अपने गुणस्थानों में स्थापित करना । वहां मिथ्यात्व के बंधस्थानों के भंगों में सासादन के

बंधस्थानों के भंग आ गये और असंयत के बंधस्थानों के भंगों में मिश्र, देशसंयत, प्रमत्त के बंधस्थानों के भंग आ गये; क्योंकि इनके भंगों की परस्पर समानता पायी जाती है । इसलिए सासादन के भंगों को घटाकर और मिश्र, देशसंयत, प्रमत्त के भंगों को घटाकर मिथ्यात्व, असंयत में बंधस्थानों के भंग होते हैं ।

वहां मिथ्यात्व में नरकयुत अट्ठाइस के स्थान में एक भंग है । तिर्यंचगतियुत तेइस के स्थान में एक, पच्चीस के स्थान में आठ, छब्बीस के स्थान में आठ, उनतीस के स्थान में छियालीस सौ आठ, तीस के स्थान में छियालीस सौ आठ भंग हैं । मनुष्यगतियुत पच्चीस के स्थान में एक, उनतीस के स्थान में छियालीस सौ आठ भंग हैं । देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान में आठ भंग हैं ।

सासादन में नरकगतियुत स्थान नहीं है । तिर्यंचगतियुत उनतीस के स्थान में बत्तीस सौ, तीस के स्थान में बत्तीस सौ भंग हैं । मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान में बत्तीस सौ भंग हैं । देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान में आठ भंग हैं ।

मिश्र, असंयत में नरकगति, तिर्यंचगतियुत स्थान नहीं हैं; इसलिए मिश्र में मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान में चार भंग हैं । देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान में आठ भंग हैं । असंयत में मनुष्यगतियुत उनतीस, तीस और देवगतियुत अट्ठाइस, उनतीस के — इन चार स्थानों में आठ-आठ भंग हैं ।

देशसंयत, प्रमत्त में देवगतियुत अट्ठाइस, उनतीस के स्थान में आठ-आठ भंग हैं ॥५५२, ५५३॥

भुजगारा अप्पदरा अवट्ठिदावि य सभंगसंजुत्ता ।
सव्वपरट्ठाणेण य णेदव्वा ठाणबंधम्मि ॥५५४॥

भुजाकारा अल्पतरा अवस्थिता अपि च स्वभंगसंयुक्ताः ।
सर्वपरस्थानेन च नेतव्याः स्थानबंधे ॥५५४॥

टीका – ये पूर्वोक्त बंध भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, चकार से अवक्तव्य — ऐसे चार प्रकार के हैं । वे अपने-अपने भंगों से युक्त नामकर्म के बंधस्थानों में स्वस्थान, परस्थान वा सर्वपरस्थान सहित लाना *(उनकी संख्या जानना)* ॥५५४॥

उन स्वस्थानादि का लक्षण कहते हैं –

अप्पपरोभयठाणे बंधट्ठाणाण जो दु बंधस्स ।
सट्ठाण परट्ठाणं सव्वपरट्ठाणमिदि सण्णा ॥५५५॥

आत्मपरोभयस्थानानि बंधस्थानानां यत्तु बंधस्य ।
स्वस्थानं परस्थानं सर्वपरस्थानमिति संज्ञा ॥५५५॥

टीका – आत्मस्थान अर्थात् स्वस्थान अर्थात् विवक्षित निज गुणस्थान; परस्थान अर्थात् विवक्षित गुणस्थान से अन्य गुणस्थान; और उभयस्थान *(सर्वस्थान)* अर्थात् अन्य ही गति और अन्य ही गुणस्थान – इन तीनों में मिथ्यात्व, असंयत, अप्रमत्त के बंधस्थान संबंधी भुजाकारादिबंध अनुक्रम से स्वस्थान भुजाकारादि, परस्थान भुजाकारादि, सर्वपरस्थान भुजाकारादि ऐसी तीन संज्ञा के धारक होते हैं ॥५५५॥

चदुरेक्कदुपण पंच य छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता ।
तिसु उवसमगे संते त्ति य तियतिय दोण्णि गच्छंति ॥५५६॥

चतुरेकद्विपंच पंच च षट्त्रिकस्थानान्यप्रमत्तांताः ।
त्रिषु उपशामके शांत इति च त्रिकत्रिकं द्वे गच्छंति ॥५५६॥

टीका – मिथ्यात्वादि अप्रमत्त तक के जीव निज-निज गुणस्थानों को छोड़कर अनुक्रम से चार *(३, ४, ५, ७)*, एक *(१)*, दो *(१, ४)*, पांच *(१, २, ३, ५, ७)*, पांच *(१, २, ३, ४, ७)*, छह *(१ से ५, ७)*, तीन *(६, ८, ४)*, गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं । अपूर्वकरणादि तीन उपशमश्रेणीवाले तीन-तीन को *(७, ९, ४; ८, १०, ४; ९, ११, ४)* प्राप्त होते हैं । उपशांतमोहवाले दो *(१०, ४)* गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं ॥५५६॥

वे गुणस्थान कौन से हैं ? वह कहते हैं –

सासणपमत्तवज्जं अपमत्तंतं समल्लियइ मिच्छो ।
मिच्छत्तं बिदियगुणो मिस्सो पढमं चउत्थं च ॥५५७॥

अविरदसम्मो देसो पमत्तपरिहीणमप्पमत्तंतं ।
छट्ठाणाणि पमत्तो छट्ठगुणं अप्पमत्तो दु ॥५५८॥ जुग्मं

सासनप्रमत्तवर्ज्यमप्रमत्तांतं समाश्रयति मिथ्यः ।
मिथ्यात्वं द्वितीयगुणो मिश्रः प्रथमं चतुर्थं च ॥५५७॥

अविरतसम्यो देशः प्रमत्तपरिहीनमप्रमत्तांतं ।
षट्स्थानानि प्रमत्तः षष्ठगुणमप्रमत्तस्तु ॥५५८॥ युग्मं

टीका – मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीव सासादन, प्रमत्त को छोड़कर मिश्र से अप्रमत्त तक *(३, ४, ५, ७)* चार गुणस्थानों को प्राप्त होता है । दूसरा सासादन गुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व को ही प्राप्त होता है । मिश्र गुणस्थानवर्ती पहले, चौथे गुणस्थानों को प्राप्त होता है । असंयत, देशसंयत गुणस्थानवर्ती प्रमत्त बिना अप्रमत्त तक पांच पांच गुणस्थानों को प्राप्त होता है । प्रमत्त गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त तक छह गुणस्थानों को प्राप्त होता है । अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती छठवें गुणस्थान को और 'तु' शब्द से उपशमक-क्षपक अपूर्वकरण को या मरण होनेपर देव-असंयत को प्राप्त होता है ॥५५७, ५५८॥

उवसामगा दु सेढिं आरोहंति य पडंति य कमेण ।
उवसामगेसु मरिदो देवतमत्तं समल्लियई ॥५५९॥

उपशामकास्तु श्रेणिमारोहयंति च पतंति च क्रमेण ।
उपशामकेषु मृतो देवतमत्वं समाश्रयति ॥५५९॥

टीका – अपूर्वकरणादि उपश्रमश्रेणीवाले उपश्रेणी पर अनुक्रम से चढते हैं और अनुक्रम से ही उतरते हैं । उपशमश्रेणी में मरनेपर महर्द्धिकदेव होते हैं । वहां एक ऊपर का गुणस्थान चढ़ने का, एक नीचे का गुणस्थान उतरने का, मरण होनेपर एक देव-असंयत ऐसे तीन-तीन गुणस्थानों को अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती प्राप्त होते हैं । उपशांतमोह से चढ़ते नहीं; इसलिए गिरने का एक सूक्ष्मसाम्पराय और मरण होनेपर देव-असंयत इन दो को ही प्राप्त होते हैं ॥५५९॥

उपशम में मरण कहां होता है ? वह कहने के लिये सूत्र कहते हैं –

मिस्सा आहारस्स य खवगा चडमाणपढमपुव्वा य ।
पढमुवसम्मा तमतम गुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥५६०॥

मिश्राहाराश्रयका: क्षपका: चटमानप्रथमापूर्वाश्च ।
प्रथमोपशमसम्यक्त्वास्तमस्तमोगुणप्रतिपन्नाश्च न मरंति ॥५६०॥

टीका – मिश्र गुणस्थानवर्ती, निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी, क्षपकश्रेणीवाले, चढ़नेवाले अपूर्वकरण उपशमक के प्रथमभागवाले, प्रथमोपशम सम्यक्त्व के धारक और महातमप्रभा *(सातवें नरक)* पृथ्वी के सासादन, मिश्र, असंयत नारकी ये जीव मरण को प्राप्त नहीं होते ॥५६०॥

अणसंजोजिदमिच्छे मुहुत्तअंतो त्ति णत्थि मरणं तु ।
कदकरणिज्जं जाव दु सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥५६१॥

अनसंयोगे मिथ्ये मुहूर्तांतरिति नास्ति मरणं तु ।
कृतकरणीय यावत्तु सर्वपरस्थानान्यष्टपदानि ॥५६१॥

टीका – अनंतानुबंधी की विसंयोजना करके जो मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, उसके अंतर्मुहूर्त काल तक मरण नहीं है । दर्शनमोहनीय का क्षय करनेवाला जीव कृतकृत्यपना प्राप्त होने तक मरता नहीं ॥५६१॥

कृतकृत्यपना होने के पश्चात् मरता है, उस बद्धायु-कृतकृत्य के प्रति पूर्वोक्त तीन स्थानों में से सर्व परस्थानों के अर्थवान पद हैं । उनको कहते हैं –

देवेसु देवमणुवे सुरणरतिरिये चउग्गईसुंपि ।
कदकरणिज्जुप्पत्ती कमसो अंतोमुहुत्तेण ॥५६२॥

देवेषु देवमनुष्ये सुरनरतिरश्चि चतुर्गतिष्वपि ।
कृतकरणियोत्पत्ति: क्रमशोऽतर्मुहूर्तेन ॥५६२॥

टीका – कृतकृत्यवेदककाल अंतर्मुहूर्त है, उसके चार भाग कीजिये । वहां क्रम से प्रथम भाग के अंतर्मुहूर्त में मरनेवाले देव में उपजते हैं, दूसरे भाग के अंतर्मुहूर्त में मरनेवाले देव या मनुष्य में, तीसरे भाग के अंतर्मुहूर्त में मरनेवाले देव, मनुष्य या तिर्यंच में और चौथे भाग के अंतर्मुहूर्त में मरनेवाले देव, मनुष्य, तिर्यंच या नरक में से एक में उपजते हैं ॥५६२॥

तिविहो दु ठाणबंधो भुजगारप्पदरवट्ठिदो पढमो ।
अप्पं बंधंतो बहु बंधे बिदियो दु विवरीयो ॥५६३॥

तदियो सणामसिद्धो सव्वे अविरुद्धठाणबंधभवा ।
ताणुप्पत्तिं कमसो भंगेण समं तु वोच्छामि ॥५६४॥ जुम्मं

विविधस्तु स्थानबंधो भुजाकाराल्पतरावस्थितः प्रथमः ।
अल्प बध्नन् बहुबंधे द्वितीयस्तु विपरीतः ॥५६३॥

तृतीयः स्वनामसिद्धः सर्व अविरुद्धस्थानबंधभवाः ।
तेषामुत्पत्तिं क्रमशो भंगेन समं तु वक्ष्यामि ॥५६४॥ युग्मं

टीका – नामकर्म के बंधस्थान तीन प्रकार के हैं – भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित । जहां पहले थोड़ी प्रकृतियों को बांधता है उसके पश्चात् बहुत प्रकृतियों को बांधता है, वहां पहला भुजाकारबंध कहते हैं । जहां पहले बहुत प्रकृतियों को बांधता है, उसके पश्चात् थोड़ी प्रकृतियों को बांधता है, वहां दूसरा अल्पतरबंध कहते हैं । तीसरा अपने नाम से ही सिद्ध है, जितनी प्रकृतियों का पूर्व समय में बंध होता है, उतनी का ही पश्चात् अनंतर समय में बंध हो, वहां अवस्थितबंध कहते हैं । ये भुजाकारादि सर्व बंध अविरुद्ध बंधस्थानों से उपजते हैं । उनकी उत्पत्ति को क्रम से भंगसहित कहूंगा ॥५६३, ५६४॥

वह कहते हैं --

भूवादरतेवीसं बंधंतो सव्वमेव पणुवीसं ।
बंधदि मिच्छाइट्ठी एवं सेसाणमाणेज्जो ॥५६५॥

भूबादरत्रयोविंशं बध्नन् सर्वमेव पंचविंशतिं ।
बध्नाति मिथ्यादृष्टि एवं शेषाणामानेयः ॥५६५॥

टीका – बादर पृथ्वीकायादि इकतालीस पद पूर्व में कहे थे *(गाथा ५१९, ५२०)* उनमें भंगों सहित स्थान कहते हैं । वहां अपर्याप्त-पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण इनके सूक्ष्म और बादर और प्रत्येक वनस्पति ऐसे एकेन्द्रिय के ग्यारह भेदों द्वारा तेइस के बंधस्थान ग्यारह प्रकार के हैं । वहां भंग एक-एक ही है, इसलिए ग्यारह भेद हुये ।

पुनश्च पच्चीस के स्थान में बादर-पर्याप्त-पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति पांच उनमें तो स्थिर, शुभ, यशस्कीर्ति – युगलों से हुये आठ-आठ भंग पाये जाते हैं, उनके चालीस भेद हुये ।

पर्याप्त-बादर-साधारण *(पर्याप्त-बादर-निगोद)* और पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण – इनरूप छह में स्थिर, शुभ युगल से चार-चार भंग पाये जाते हैं, उनके चौबीस हुये । अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी-संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य इनरूप छह में अप्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध है, इसलिए एक-एक ही भंग है, उनके छह हुये । इसतरह पच्चीस के सर्व स्थानों में सत्तर भेद हुये ।

पुनश्च छब्बीस के स्थान में बादर-पृथ्वीकाय आतपयुत और उद्योतयुत दो तो ये तथा उद्योतयुत अपकाय, वनस्पतिकाय इन चाररूप में स्थिर, शुभ, यशस्कीर्ति युगलों से आठ-आठ भंग हैं, उनके छब्बीस के सर्व स्थानों में बत्तीस भेद हुये ।

पुनश्च अट्ठाइस के स्थान में देवगतियुत में तो उन तीन युगलों से आठ भंग पाये जाते हैं और नरकगतियुत में अप्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध है, इसलिए एक ही भंग हैं । ऐसे अट्ठाइस के स्थान में नौ भेद जानना ।

पुनश्च उनतीस के स्थान में पर्याप्त-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, *(असंज्ञी)* पंचेन्द्रियरूप चार में तो उन्हीं तीन युगलों से आठ-आठ भंग हैं, उनके बत्तीस भेद हैं । तिर्यंचगतियुत, मनुष्यगतियुत – इन दो में प्रत्येक के संस्थान *(६)* संहनन *(६)* सात युगल *(स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, स्वर, विहायोगति – ७ युगल)* – इनसे छियालीस सौ आठ भंग, उनके *(दोनों के मिलकर)* बानबे सौ सोलह; ऐसे उनतीस के स्थान में बानबे सौ अड़तालीस *(९२१६ + ३२ = ९२४८)* भेद हुये ।

पुनश्च तीस के स्थान में उद्योतयुत पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रियरूप चार में तो उन्हीं तीन युगलों से आठ-आठ भंग हैं । उनके बत्तीस भेद होते हैं; और संज्ञी-तिर्यंच-उद्योतयुत एक में छियालीस सौ आठ भंग — ऐसे तीस के स्थान में छियालीस सौ चालीस भेद हुये । ये मिथ्यात्व गुणस्थान में बंधस्थान हैं, इनसे नानाकाल की अपेक्षा भुजाकारादि कहते हैं —

पहले तेइस के स्थान को बांधता था, पश्चात् पच्चीस आदि के स्थानों को बांधता है, वहां भुजाकारबंध होता है । वहां बादर पृथ्वीकाययुत तेइस के एक भेद को बांधता था पश्चात् पच्चीस आदि स्थानों के *(२५, २६, २८, २९, ३०)* सर्व भेदों को बांधेगा तो तेइस के ग्यारह भेदों को बांधनेवाला कितने भेदों को बांधेगा ? ऐसे *(पांच स्थानों के)* पांच त्रैराशिक करने । उन पांच त्रैराशिकों में सर्वत्र प्रमाणराशि तो तेइस का एक ही भेद जानना और फलराशि अनुक्रम से पच्चीस के सत्तर भेद, छब्बीस के बत्तीस भेद, अट्ठाइस के नौ भेद, उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस भेद, तीस के छियालीस सौ चालीस भेद जानना । तथा इच्छाराशि सर्वत्र तेइस के ग्यारह भेद जानना ।

फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर सब भेदों का प्रमाण होता है । यहां सर्वत्र इच्छाराशि ग्यारह ही है इसलिए सर्व फलराशि ७० | ३२ | ९ | ९२४८ | ४६४० का जोड़ देनेपर तेरह हजार नौ सौ निन्यानबे गुण्य हुये, उनको इच्छाराशिरूप ग्यारह गुणकार से गुणा करनेपर एक लाख तिरपन हजार नौ सौ नवासी *(१५३९८९)* भेद हुये । प्रमाणराशि एक ही है, उसका भाग देनेपर भी उतने ही रहे, इतने तो तेइस के भुजाकार हुये ।

पुनश्च पच्चीस का बंध करके उसके पश्चात् छब्बीस आदि स्थानों को बांधता है, तब भुजाकार बंध होता है । एक भेदरूप पच्चीस का बंध करके छब्बीस आदि सभी स्थानों के सर्व भेदों का बंध होगा तो पच्चीस के सत्तर भेदों द्वारा कितने बंध होते हैं ? ऐसे चार त्रैराशिक करना । उनमें प्रमाणराशि सर्वत्र पच्चीस का एक भेद, फलराशि क्रम से छब्बीस के बत्तीस भेद, अट्ठाइस के नौ भेद, उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस भेद, तीस के छियालीस सौ चालीस भेद, इच्छाराशि सर्वत्र पच्चीस के सत्तर भेद जानना । सर्व फलराशियों का जोड़ देनेपर ३२ | ९ | ९२४८ | ४६४०

तेरह हजार नौ सौ उनतीस हुये । उनको इच्छाराशि सत्तर से गुना करनेपर नौ लाख पचहत्तर हजार तीस हुये *(९७५०३०)*। इतने पच्चीस के भुजाकार जानना ।

पुनश्च पहले छब्बीस का बंध करके उसके पश्चात् अट्ठाइस आदि का बंध करता है, तब भुजाकार होता है । छब्बीस के एक भेद का बंध करके पश्चात् अट्ठाइस आदि सर्व स्थानों के सब भेदों का बंध करता है, तो छब्बीस के बत्तीस भेदों द्वारा कितने बंध होगे ? ऐसे यहां तीन त्रैराशिक करना । उनमें प्रमाणराशि तो सर्वत्र छब्बीस का एक भेद, फलराशि क्रम से अट्ठाइस के नौ भेद, उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस भेद, तीस के छियालीस सौ चालीस भेद; इच्छाराशि सर्वत्र छब्बीस के बत्तीस भेद जानना । सर्व फलराशि का जोड़ देनेपर ९ | ९२४८ | ४६४० तेरह हजार आठ सौ सत्तानबे हुये, उनको इच्छाराशि बत्तीस से गुणा करनेपर चार लाख चौवालीस हजार सात सौ चार होते हैं *(४४४७०४)* । इतने छब्बीस के भुजाकार जानना ।

पुनश्च पहले अट्ठाइस का बंध करके उसके पश्चात् उनतीस, तीस का बंध करता है, तब भुजाकारबंध होता है । एक प्रकार का अट्ठाइस का बंध करके उनतीस, तीस के सब भेदों का बंध करता है, तो नौ प्रकार के अट्ठाइस के बंध करके कितने भेदों का बंध होगा ? ऐसे दो त्रैराशिक करना । उनमें प्रमाणराशि सर्वत्र अट्ठाइस का एक भेद, फलराशि क्रम से उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस भेद, तीस के छियालीस सौ चालीस भेद, इच्छाराशि सर्वत्र अट्ठाइस के नौ भेद जानना । फलराशि का जोड़ देनेपर ९२४८ | ४६४० तेरह हजार आठ सौ अट्ठासी हुये । उनको इच्छाराशि नौ से गुणा करनेपर एक लाख चौबीस हजार नौ सौ बानबे होते हैं *(१२४९९२)* । इतने अट्ठाइस के भुजाकार हैं ।

पुनश्च पहले उनतीस का बंध करके उसके पश्चात् तीस का बंध करता है, तब भुजाकार होता है । उनतीस के एक भेद का बंध करके तीस के सर्व भेदों का बंध करता है, तो उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस

२९	४२९१०७२०
२८	१२४९९२
२६	४४४७०४
२५	९७५०३०
२३	१५३९८९

भुजाकारभंग

भेदों द्वारा कितने बंध होगे ? ऐसा एक त्रैराशिक हुआ । उसमें प्रमाणराशि उनतीस का एक भेद, फलराशि तीस के छियालीस सौ चालीस भेद, इच्छाराशि उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस भेद जानना । फलराशि छियालीस सौ चालीस को इच्छाराशि बानबे सौ अड़तालीस से गुणा करनेपर चार करोड़ उनतीस लाख दस हजार सात सौ बीस भेद हुये *(४२९१०७२०)* । इतने उनतीस के भुजाकार हुये ॥५६५॥

नामकर्म के स्थानों के भुजाकारबंध लाने के लिये त्रैराशिक यंत्र

२३ १	३० ४६४०	२३ ११	२५ १	३० ४६४०	२५ ७०	२६ १	३० ४६४०	२६ ३२	२८ १	३० ४६४०	२८ ९	२९ १	३० ४६४०	२९ ९२४८
२३ १	२९ ९२४८	२३ ११	२५ १	२९ ९२४८	२५ ७०	२६ १	२९ ९२४८	२६ ३२	२८ १	२९ ९२४८	२८ ९	प्रमाण	फल	इच्छा
२३ १	२८ ९	२३ ११	२५ १	२८ ९	२५ ७०	२६ १	२८ ९	२६ ३२	प्रमाण	फल	इच्छा			
२३ १	२६ ३२	२३ ११	२५ १	२६ ३२	२५ ७०	प्रमाण	फल	इच्छा						
२३ १	२५ ७०	२३ ११	प्रमाण	फल	इच्छा									
प्रमाण	फल	इच्छा												

तेवीसट्ठाणादो मिच्छत्तीसोत्ति बंधगो मिच्छो ।
णवरि हु अट्ठावीसं पंचिंदियपुण्णगो चेव ॥५६६॥

त्रयोविंशतिस्थानान्मिथ्यात्वत्रिंशदिति बंधको मिथ्यः ।
नवरि हि अष्टाविंशं पंचेन्द्रियपूर्णकश्चैव ॥५६६॥

टीका – ये मिथ्यात्व में तेइस से लेकर तीस तक के बंधयोग्य स्थानों के भुजाकार कहे, उनको मिथ्यादृष्टि जीव बांधता है । वहां विशेष यह है कि अट्ठाइस के स्थान को पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही बांधता है ।

तथा भोगभूमिया के स्थानों को कहते हैं –

भोगे सुरट्ठवीसं सम्मो मिच्छो य मिच्छगअपुण्णे ।
तिरिउगतीसं तीसं णरउगुतीसं च बंधदि हु ॥५६७॥

भोगे सुराष्टविंशं सम्यो मिथ्यश्च मिथ्यकापूर्णे ।
तिर्यगेकोनत्रिंशत् नरैकोनत्रिंशच्च बध्नाति हि ॥५६७॥

टीका – भोगभूमिया में पर्याप्त पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि तथा चकार से निर्वृत्तिअपर्याप्त सम्यग्दृष्टि जीव देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान को ही बांधता है । निर्वृत्तिअपर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यंचगतियुत उनतीस, तीस को और मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को बांधता है ॥५६७॥

मिच्छस्स ठाणभंगा एयारं सदरि दुगुणसोल णवं ।
अडदालं बाणउदी सदाण छादाल चत्तधियं ॥५६८॥

मिथ्यस्य स्थानभंगा एकादश सप्तति: द्विगुणषोडश नव ।
अष्टचत्वारिंशद्द्वानवति: शतानां षट्चत्वारिंशच्चत्वारिंशदधिकं ॥५६८॥

टीका – पूर्वोक्त प्रकार से मिथ्यादृष्टि के स्थानभेद तेइस के ग्यारह, पच्चीस के सत्तर, छब्बीस के दोगुणे सोलह अर्थात् बत्तीस, अट्ठाइस के नौ, उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस, तीस के छियालीस सौ चालीस जानना ॥५६८॥

स्थानभेद

३०	४६४०
२९	९२४८
२८	०००९
२६	००३२
२५	००७०
२३	००११

३०	४३४७६८००
२९	११२८२५६
२८	१०१७
२६	२५९२
२५	७७०

अल्पतरभंग

आगे अल्पतर भंगों को कहते हैं –

विवरीयेणप्पदरा होंति हु तेरासिएण भंगा हु ।
पुव्वपरट्ठाणाणं भंगा इच्छा फलं कमसो ॥५६९॥

विपरीतेनाल्पतरा भवंति हि त्रैराशिकेन भंगा हि ।
पूर्वापरस्थानानां भंगा इच्छा फलं क्रमशः ।।५६९।।

टीका – भुजाकार भंगों के निमित्त जो त्रैराशिक किये थे, उनके विपरीत त्रैराशिक करनेपर अल्पतर भंग होते हैं, क्योंकि पहले स्थानरूप भंगों को इच्छाराशि और पश्चात् स्थानों के भंगों को फलराशि करनेपर अनुक्रम से भेद होते हैं । वह कहते हैं –

तीस का बंध करता था, वह उनतीस आदि का बंध करे, तब अल्पतर होता है । वहां तीस के एक भेद का बंध करके पश्चात् उनतीस आदि के सब भेदों का बंध करे, तो तीस के छियालीस सौ चालीस भेदों द्वारा कितने बंध होगे ? यहां पांच त्रैराशिक करने । उनमें प्रमाणराशि सर्वत्र तीस का एक भेद; फलराशि क्रम से उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस, अट्ठाइस के नौ, छब्बीस के बत्तीस, पच्चीस के सत्तर और तेइस के ग्यारह भेद; इच्छाराशि सर्वत्र तीस के स्थान के छियालीस सौ चालीस भेद जानना । फलराशि का जोड़ देनेपर तिरानबे सौ सत्तर गुण्य हुये, उनको इच्छारूप छियालीस सौ चालीस से गुना करनेपर चार करोड चौंतीस लाख छिहत्तर हजार आठ सौ हुयें । इतने तो तीस के अल्पतर हैं ।

पुनश्च पहले उनतीस का बंध करके उसके पश्चात् अट्ठाइस आदि का बंध करे तब अल्पतर होता है । उनतीस के स्थान के एक भेद का बंध करके पश्चात् सर्व अट्ठाइस आदि के सब भेदों का बंध करे, तो बानबे सौ अड़तालीस भेदरूप उनतीस के बंध द्वारा कितने भेद होंगे ? यहां चार त्रैराशिक होते हैं । उनमें प्रमाणराशि सर्वत्र उनतीस के स्थान का एक भेद, फलराशि क्रम से अट्ठाइस के नौ, छब्बीस के बत्तीस, पच्चीस के सत्तर, तेइस के ग्यारह भेद; इच्छाराशि सर्वत्र उनतीस के बानबे सौ अड़तालीस भेद हैं । फलराशि का जोड़ देनेपर एक सौ बाइस, उनको इच्छाराशि बानबे सौ अड़तालीस से गुणा करनेपर ग्यारह लाख अट्ठाइस हजार दो सौ छप्पन भेद होते हैं । इतने उनतीस के अल्पतर भेद हैं ।

पुनश्च पहले अट्ठाइस के स्थान का बंध करके उसके पश्चात् छब्बीस आदि के स्थानों का बंध करते हैं, तब अल्पतर होते हैं । अट्ठाइस के एक भेद का बंध करके सर्व छब्बीस आदि के सब भेदों का बंध करे, तो अट्ठाइस के नौ भेदों द्वारा कितने बंध होंगे ? यहां

तीन त्रैराशिक करना । उनमें प्रमाणराशि सर्वत्र अट्ठाइस का एक भेद, फलराशि क्रम से छब्बीस के बत्तीस, पच्चीस के सत्तर, तेइस के ग्यारह; इच्छाराशि सर्वत्र अट्ठाइस के नौ भेद जानना । वहां फलराशि का जोड़ देनेपर एक सौ तेरह, इनको इच्छाराशि नौ से गुणा करके एक हजार सत्रह होते हैं । इतने अट्ठाइस के अल्पतर हैं ।

पुनश्च पहले छब्बीस का बंध करके उसके पश्चात् तेइस का बंध करता है, तब अल्पतर होता है । छब्बीस के एक भेद का बंध करके पच्चीस, तेइस के सर्व भेदों को बांधता है, तो छब्बीस के बत्तीस भेदों द्वारा बंध के कितने भेद होते हैं ? यहां दो त्रैराशिक, उनमें सर्वत्र प्रमाणराशि छब्बीस का एक भेद, फलराशि क्रम से पच्चीस के सत्तर, तेइस के ग्यारह; इच्छाराशि सर्वत्र छब्बीस के बत्तीस भेद जानना । वहां फलराशि का जोड़ इक्यासी को इच्छाराशि बत्तीस से गुणा करनेपर पच्चीस सौ बानबे होते हैं । इतने छब्बीस के अल्पतर हैं ।

पुनश्च पहले पच्चीस का बंध करके पश्चात् तेइस का बंध करता है, तब अल्पतर होता है । पच्चीस के एक भेद का बंध करके तेइस के ग्यारह भेदों को बांधते हैं, तो पच्चीस के सर्व सत्तर भेदों द्वारा बंध के कितने भेद होंगे ? यहां एक त्रैराशिक है, उसमें प्रमाणराशि पच्चीस का एक भेद, फलराशि तेइस के ग्यारह भेद, इच्छाराशि पच्चीस के सत्तर भेद । फलराशि सत्तर को इच्छाराशि ग्यारह से गुणा करनेपर सात सौ सत्तर होते हैं । इतने पच्चीस के अल्पतर जानना ॥५६९॥

नामकर्म के बंधस्थानों के अल्पतर भंग लाने के लिये त्रैराशिक का यंत्र –

प्रमाण	फल	इच्छा													
३० १	२३ ११	३० ४६४०	प्रमाण	फल	इच्छा										
३० १	२५ ७०	३० ४६४०	२९ १	२३ ११	२९ ९२४८	प्रमाण	फल	इच्छा							
३० १	२६ ३२	३० ४६४०	२९ १	२५ ७०	२९ ९२४८	२८ १	२३ ११	२८ ९	प्रमाण	फल	इच्छा				
३० १	२८ ९	३० ४६४०	२९ १	२६ ३२	२९ ९२४८	२८ १	२५ ७०	२८ ९	२६ १	२३ ११	२६ ३२	प्रमाण	फल	इच्छा	
३० १	२९ ९२४८	३० ४६४०	२९ १	२८ ९	२९ ९२४८	२८ १	२६ ३२	२८ ९	२६ १	२५ ७०	२६ ३२	२५ १	२३ ११	२५ ७०	

आगे इन कहे हुये भेदों का त्रैराशिकादि बिना थोड़े में ज्ञान हो ऐसा विधान कहते हैं –

लघुकरणं इच्छंतो एयारादीहिं उवरिमं जोग्गं ।
संगुणिदे भुजगारा उवरीदो होंति अप्पदरा ॥५७०॥

लघुकरणमिच्छत एकदशादिभिरूपरिमं योग्यं ।
संगुणिते भुजाकारा उपरितो भवंत्यल्पतराः ॥५७०॥

टीका – थोड़े में ज्ञान हो ऐसे लघुकरण को इच्छनेवाला विवेकी है वह ग्यारह आदि अंकों द्वारा, ऊपर के मिलाये हुये अंकों का जो प्रमाण हो, उसको गुणा करनेपर भुजाकार होता है ऐसा जानना । वहां सत्तर, बत्तीस, नौ, बानबे सौ अड़तालीस, छियालीस सौ चालीस का *(७० | ३२ | ९ | ९२४८ | ४६४०)* जोड़ देनेपर १३९९९ हुये । ग्यारह से गुणा करनेपर तेइस के भुजाकार १५३९८९ होते हैं । बत्तीस आदि का *(३२ | ९ | ९२४८ | ४६४०)* जोड़ देनेपर १३९२९ हुये, उसको सत्तर से गुणा करनेपर पच्चीस के भुजाकार ९७५०३० होते हैं । नौ आदि का *(९ | ९२४८ | ४६४०)* जोड़ देनेपर १३८९७ हुये, उसको बत्तीस से गुणा करनेपर छब्बीस के भुजाकार ४४४७०४ होते हैं । ऊपर के दो स्थानों के भंग ९२४८ | ४६४० का जोड़ देनेपर १३८८८ हुये, उसको नौ से गुणा करनेपर अट्ठाइस के भुजाकार १२४९९२ होते हैं । ऊपर के छियालीस सौ चालीस को बानबे सौ अड़तालीस से गुणा करनेपर उनतीस के ४२९१०७२० होते हैं । ये सर्व मिलकर मिथ्यादृष्टि के भुजाकार भंग होते हैं ।

अल्पतर भंग लाने के लिये ऊपर के तीस आदि के स्थानों के भंगों द्वारा नीचे के सर्व भंगों के जोड़ को गुणा करनेपर अल्पतर होते हैं । वह कथन ऊपर कर आये हैं वह जानना ।

अल्पतर भंगों का यंत्र इसप्रकार है –

गुण्य	गुणकार	सर्वभंग
९३७०	४६४०	४३४७६८००
१२२	९२४८	११२८२५६
११३	९	१०१७
८१	३२	२५९२
११	७०	७७०

इन अल्पतरों का जोड़ देनेपर मिथ्यात्व के सर्व अल्पतर भंग होते हैं ।

भुजाकार और अल्पतर दोनों को मिलानेपर जो प्रमाण होता है, उतने मिथ्यात्व के अवस्थितभंग हैं ॥५७०॥

वे कितने हुये ? वह कहते हैं –

भुजगारप्पदराणं भंगसमासो समो हु मिच्छस्स ।
पणतीसं चउणउदी सट्ठी चोदालमंककमे ॥५७१॥

भुजकाराल्पतरयोर्भंगसमासो समो हि मिथ्यस्य ।
पंचत्रिंशत् चतुर्नवतिः षष्टिः चतुश्चत्वारिंशदंककक्रमेण ॥५७१॥

टीका – मिथ्यात्व में कहे हुये भुजाकार और अल्पतर इन दोनों की संख्या समान है । वह कितनी है ? पैंतीस, चौरानबे, साठ, चौवालीस इतने अंक क्रम से लिखनेपर चार करोड छियालीस लाख नौ हजार चार सौ पैंतीस होते हैं, इतनी वह संख्या है ४४६०९४३५ । इतने ही भुजाकार हैं और इतने ही अल्पतर ——→ हैं। उन दोनों को मिलानेपर आठ करोड बानबे लाख अठारह हजार आठ सौ सत्तर (८९२१८८७०) होते हैं – इतने अवस्थित भंग हैं । क्योंकि भुजाकार और अल्पतर भंगों में जिस-जिस प्रकृतिभंग का बंध होता है, उसीका बंध द्वितीयादि समय में जहां होता है, वहां अवस्थितबंध होता है । यहां परस्पर भंगों को गुणा करके भुजाकारादि भंग लाने का अभिप्राय यह है कि एक-एक भंग द्वारा अन्य भंगों की अपेक्षा भुजाकारादि जानना ॥५७१॥

आगे असंयत में उनको कहते हैं –

देवट्ठवीस णरदेवुगुतीस मणुस्सतीस बंधयदे ।
तिछणवणवदुगभंगा तित्थविहीणा हु पुणरुत्ता ॥५७२॥

देवाष्टविंशं नरदेवैकोनत्रिंशत् मनुष्यत्रिंशत् बंधोऽयते ।
त्रिषट्नवनवद्विकभंगास्तीर्थविहीना हि पुनरुक्ताः ॥५७२॥

टीका – देवगतियुत अट्ठाइस के स्थान में, मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान में, देवगतियुत उनतीस के स्थान में और मनुष्यगतियुत तीस के स्थान में तीन, छह, नौ, नौ, दो, इन अंकों से छत्तीस हजार नौ सौ बानबे भुजाकार होते हैं ।।५७२।।

इनमें तीर्थंकर प्रकृति रहित भंग हैं, वे पुनरुक्त हैं, मिथ्यादृष्टि के भंगों में वे आ गये । वही कहते हैं –

देवट्ठवीसबंधे देवुगुतीसम्मि भंग चउसट्ठी ।
देवुगुतीसे बंधे मणुवत्तीसेवि चउसट्ठी ।।५७३।।

देवाष्टविंशबंधे देवैकोनत्रिंशति भंगाः चतुष्षष्टिः ।
देवैकोनत्रिंशति बंधे मानवत्रिंशत्यपि चतुष्षष्टिः ।।५७३।।

टीका – देवगतियुत अट्ठाइस को बांधकर मनुष्य-असंयत तीर्थंकरप्रकृति के बंध का प्रारंभ करता है, तब तीर्थंकरयुत उनतीस को बांधता है । तब दोनों के आठ-आठ भंगों को परस्पर गुणा करनेपर चौंसठ भंग हुये । पुनश्च तीर्थंकर-देवगतियुत उनतीस को बांधनेवाला मनुष्य-असंयत मरकर देव या नारकी असंयत होकर वहां तीर्थंकर-मनुष्यगतियुत तीस को बांधता है । वहां भी दोनों के आठ-आठ भंगों को परस्पर गुणा करनेपर चौंसठ होते हैं ।।५७३।।

तित्थयरसत्तणारय मिच्छो णरऊणतीसबंधो जो ।
सम्मम्मि तीसबंधो तियछक्कडछक्कचउभंगा ।।५७४।।

तीर्थकरसत्त्वनारकमिथ्यो नरैकोनत्रिंशबंधो यः ।
सम्यंचि त्रिंशबंधः त्रिकषट्काष्टषट्कचतुर्भंगाः ।।५७४।।

टीका – तीर्थंकर प्रकृति के सत्त्व सहित नारकी-मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त अवस्था में छियालीस सौ आठ भंगों द्वारा मनुष्यगतियुत उनतीस का बंध करता है । पश्चात् शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर सम्यक्त्व को प्राप्त कर तीर्थंकर-मनुष्यगतियुत तीस का बंध करता है, उसके आठ भंग हैं । इन भंगों को परस्पर गुणा करनेपर *(४६०८ × ८ = ३६८६४)* छत्तीस हजार आठ सौ चौंसठ भंग होते हैं । इनमें पूर्वोक्त *(६४*

+ ६४ = १२८) एक सौ अट्ठाइस मिलानेपर असंयत में भुजाकार छत्तीस हजार नौ सौ बानबे होते हैं ॥५७४॥

आगे असंयत में अल्पतर भंगों को कहते हैं –

बावत्तरि अप्पदरा देवुगुतीसा दु णिरयअडवीसं ।
बंधंत मिच्छभंगे णवगयतित्था हु पुणरुत्ता ॥५७५॥

द्वासप्ततिरल्पतरा देवैकोनत्रिंशत्तु निरयाष्टाविंशतिः ।
बध्नन् मिथ्यभंगेनापगततीर्था हि पुनरुक्ताः ॥५७५॥

टीका – पूर्व में नरकायु जिसके बंधी हो ऐसा मनुष्य-असंयत तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ करके तीर्थंकर-देवगतियुत उनतीस का बंध करता है, उसके आठ भंग हैं । पश्चात् मरणसमय नरक के सन्मुख हुआ, तब अंतर्मुहूर्त के लिये मिथ्यादृष्टि होकर नरकगतियुत अट्ठाइस को बांधता है उसका एक भंग है । इनको परस्पर गुणा करनेपर आठ भंग हुये । देव, नारकी असंयत तीर्थंकर-मनुष्यगतियुत तीस को बांधते हैं, उसके आठ भंग हैं । पश्चात् मरकर तीर्थंकर पदवीरूप माता के गर्भ में अवतरते हैं, वहां तीर्थंकर-देवगतियुत उनतीस को बांधते हैं, उसके भी आठ भंग हैं । इनको परस्पर गुणा करनेपर चौंसठ होते हैं । इनको जोड़नेपर बहत्तर अल्पतरभंग असंयत में होते हैं । तीर्थंकर रहित मनुष्यगतियुत उनतीस को बांधकर पश्चात् देवगतियुत अट्ठाइस को बांधता है, उसके चौंसठ भंग पुनरुक्त हैं, पूर्व में मिथ्यादृष्टि के भंगों में आ गये, इसलिए नहीं कहे ॥५७५॥

आगे अप्रमत्तादि में भुजाकार भंगों को कहते हैं –

देवजुदेक्कट्ठाणे णरतीसे अप्पमत्तभुजगारा ।
पणदालिगिहारुभये भंगा पुणरुत्तगा होंति ॥५७६॥

देवयुतैकस्थाने नरत्रिंशति अप्रमत्तभुजाकाराः ।
पंचचत्वारिंशदेकाहारोभयेषु भंगा. पुनरुक्तका भवंति ॥५७६॥

टीका – देवगतियुत एक स्थान में और मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान में

अप्रमत्त गुणस्थान में पैंतालीस भुजाकार होते हैं । पुनश्च तीर्थंकरयुत, आहारकयुत, तथा तीर्थंकर-आहारक दोनों सहित इन तीन स्थानों में जो भंग हैं, वे पुनरुक्त हैं ॥५७६॥

उन पैंतालीस का विधान कहते हैं –

इगि अड अट्ठिगि अट्ठिगि भेदड अट्ठड दुणव य वीस तीसेक्के ।
अडिगिगि अडिगिगि बिहि उण खिगि इगिइगितीस देवचउ कमसो ॥५७७॥

एकमष्ट अष्टैकमष्टैक भेदमष्टाष्टाष्ट द्विनव च विंशतित्रिंशदेकान् ।
अष्टैकमेकमष्टैकैकं द्वाभ्यामेकोन खैकैकैकत्रिंशद्देवचतुष्कं क्रमशः ॥५७७॥

टीका – नीचे की पंक्ति के एक, आठ, आठ ,एक, आठ, एक, एक, एक, एक, एक भंगों सहित अट्ठाइस, अट्ठाइस, अट्ठाइस, उनतीस, उनतीस, तीस, एक, एक, एक, एक रूप स्थानों में ऊपर की पंक्ति के आठ, एक, एक, आठ, एक, एक, एक, एक, एक, एक भंगों सहित उनतीस, तीस, इकतीस, तीस, इकतीस, इकतीस और देवयुत चार स्थानों को क्रम से बांधता है । इसतरह नीचे की पंक्ति में कहे हुये स्थानों को बांधता था, पश्चात् ऊपर की पंक्ति में कहे हुये बंधस्थानों को बांधता है; इसलिए ऊपर की पंक्ति के एक-एक स्थान भंगों से नीचे की पंक्ति के एक-एक स्थान भंगों को गुणा करनेपर सर्व पैंतालीस भुजाकार होते हैं । वही कहते हैं –

[*विशेषार्थ :*

ऊपर की पंक्ति स्थान	२९	३०	३१	३०	३१	३१	२८	२९	३०	३१
भंग	८	१	१	८	१	१	१	१	१	१
नीचे की पंक्ति स्थान	२८	२८	२८	२९	२९	३०	१	१	१	१
भंग	१	८	८	१	८	१	१	१	१	१
भंगों को गुणा करनेपर	८	८	८	८	८	१	१	१	१	१

इनका जोड़ ४५ होता है ।]

अप्रमत्त *(गुणस्थानवर्ती)* एक भंग सहित देवगतियुत अट्ठाइस को बांधता था, पश्चात् प्रमत्त में जाकर तीर्थंकर बंध का प्रारंभ करके तीर्थंकर-देवगतियुत उनतीस को आठ भंगों सहित बांधता है; उन दोनों के भंगों को परस्पर गुणा करनेपर आठ हुये ।

प्रमत्त *(गुणस्थानवर्ती)* आठ भंगों सहित देवगतियुत अट्ठाइस को बांधता था, पश्चात् अप्रमत्त होकर आहारकद्विकयुत तीस को एक भंग सहित बांधता है – ऐसे आठ ये हुये ।

प्रमत्त *(गुणस्थानवर्ती)* आठ भंगों सहित अट्ठाइस को बांधता था, पश्चात् अप्रमत्त होकर तीर्थंकर-आहारकयुत इकतीस को एक भंग सहित बांधता है – ऐसे आठ ये हुये ।

अप्रमत्त तीर्थंकर-देवगतियुत उनतीस को एक भंग सहित बांधता था, मरकर देव-असंयत होकर आठ भंगों सहित मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस को बांधता है – ऐसे आठ ये हुये ।

प्रमत्त तीर्थंकर-देवगतियुत उनतीस को आठ भंगों सहित बांधता था, अप्रमत्त होकर तीर्थंकर-आहारकयुत इकतीस को एक भंग सहित बांधता है – ऐसे ये आठ हुये ।

अप्रमत्त एक भंग सहित आहारकयुत तीस को बांधता था, तीर्थंकर बंध प्रारंभ करके एक भंग सहित इकतीस को बांधता है – ऐसे एक यह हुआ ।

उतरनेवाला अपूर्वकरण *(उपशमक)* सातवें भाग में एक भंग सहित एक प्रकृतिरूप एक का बंध करता था, नीचे आकर *(छठवें भाग में)* देवगतियुत अट्ठाइस को या देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस को या देवगति-आहारकयुत तीस को या देवगति-आहारक-तीर्थंकरयुत इकतीस को एक-एक भंग सहित बांधता है – इनके चार हुये ।

इसतरह पैंतालीस भुजाकार होते हैं ॥५७७॥

आगे अप्रमत्तों के अल्पतर भंग कहते हैं –

इगिविहिगिगिखखतीसे दस णव णवडधियवीसमट्ठविहं ।
देवचउक्कक्कक्कक्के अपमत्तप्पदरछत्तीसा ॥५७८॥

एकविधिकमेकखखत्रिंशत् दशनव नवाष्टाधिकविंशमष्टविधं ।
देवचतुष्कमेकैकैकेन अप्रमत्ताल्पतरषट्त्रिंशत् ॥५७८॥

टीका – एक-एक भंग सहित एक, एक, शून्य, शून्य अधिक तीस प्रकृतिरूप स्थानों को बांधनेवाला आठ-आठ भंगों से दस, नौ, नौ, आठ अधिक बीस प्रकृतिरूप स्थान और एक-एक भंग सहित देवगतियुत चार स्थानों को बांधता है – ऐसे अप्रमत्त

में छत्तीस अल्पतर होते हैं । वही कहते हैं –

अप्रमत्त अल्पतर								अवक्तव्य भंग			
म ३० ८	प्र २९ ८	प्र २९ ८	प्र २८ ८	१ १	१ १	१ १	१ १	१ १	म २९ ८	म ३० ८	अल्पतर ३६
अ ३१ १	अ ३१ १	अ ३० १	अ ३० १	२८ १	२९ १	३० १	३१ १	०	०	०	अवक्तव्य १७

अप्रमत्त *(गुणस्थानवर्ती)* देवगति-आहारक-तीर्थंकरयुत इकतीस के स्थान को एक भंग सहित बांधनेवाला मरकर देव-असंयत होकर आठ भंगों द्वारा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस को बांधता है – ऐसे आठ हुये ।

अप्रमत्त *(गुणस्थानवर्ती)* एक प्रकार के इकतीस को बांधनेवाला प्रमत्त होकर आठ भंगों द्वारा देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस को बांधता है – ऐसे ये आठ हुये ।

अप्रमत्त *(गुणस्थानवर्ती)* एक भंग सहित देवगति-आहारकयुत तीस के स्थान को बांधनेवाला, प्रमत्त होकर तीर्थंकर के बंध का प्रारंभ करके आठ भंगों द्वारा देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का बंध करता है – ऐसे आठ ये हुये ।

अप्रमत्त (गुणस्थानवर्ती) एक भंग द्वारा आहारक-देवगतियुत तीस को बांधनेवाला प्रमत्त होकर आठ भंगों सहित देवगतियुत अट्ठाइस को बांधता है – ऐसे आठ हुये ।

अपूर्वकरण *(उपशामक)* चढ़ने में एक-एक भंग सहित देवगतियुत अट्ठाइस, देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस, देवगति-आहारकयुत तीस, देवगति-आहारक-तीर्थंकरयुत इकतीस के स्थानों को बांधनेवाला सप्तम भाग में एक भंग सहित एक प्रकृतिरूप स्थान को बांधता है, वहां चार भंग हुये – ऐसे छत्तीस अल्पतर जानना ॥५७८॥

आगे भुजाकार आदि को एकत्रिक करते हैं –

सव्वपरट्ठाणेण य अयदपमत्तिदरसव्वभंगा हु ।
मिच्छस्स भंगमज्झे मिलिदे सव्वे हवे भंगा ॥५७९॥

सर्वपरस्थानेन च अयतप्रमत्तेतरसर्वभंगा हि ।
मिथ्यस्य भंगमध्ये मिलिते सर्वे भवंति भंगाः ॥५७९॥

टीका – सर्व परस्थानों द्वारा, स्वस्थानों द्वारा और स्वपरस्थानों द्वारा संयुक्त जो असंयत अप्रमत्तादि के सर्व भुजाकारादि भंगों को मिथ्यादृष्टि के भुजाकारादि भंगों में मिलानेपर नामकर्म के सर्व भुजाकारादि भंग होते हैं ॥५७९॥

नामकर्म के सर्व भुजाकारादि बंधस्थानों के भंगों का यंत्र –

	भुजाकार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य
मिथ्यात्व	४४६०९४३५	४४६०९४३५	८९२१८८७०	
असंयत	३६९९२	७२	३७०६४	
अप्रमत्त	४५	३६	८१	
उ. मोह			१७	१७
जोड़	४४६४६४७२	४४६०९५४३	८९२५६०३२	१७

आगे उन भंगों की प्राप्ति का साधारण उपाय दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

भुजगारा अप्पदरा हवंति पुव्ववरठाणसंताणे ।
पयडिसमोऽसंताणोऽपुणरुत्तेत्ति य समुद्दिट्ठो ॥५८०॥

भुजाकारा अल्पतरा भवंति पूर्वापरस्थानसंताने ।
प्रकृतिसमः असंतानोऽपुनरुक्तोक्ति च समुद्दिष्टः ॥५८०॥

टीका – पहले स्थान थोड़ी प्रकृतिरूप उनको बहुत प्रकृतिरूप स्थानों द्वारा यथासंभव लगानेपर भुजाकार होते हैं । पुनश्च पूर्व स्थान बहुत प्रकृतिरूप उनको थोड़ी प्रकृतिरूप स्थानों द्वारा यथासंभव लगानेपर अल्पतर होते हैं ।

पुनश्च प्रकृतियों की संख्या समान होनेपर भी 'असंतानः' अर्थात् प्रकृतियों का समुदाय यदि प्रकृति भेद से युक्त हो तो उसे अपुनरुक्त ही कहते हैं । जैसे, तीर्थंकर बिना संहनन सहित भी उनतीस का बंध है और तीर्थंकरयुत संहनन बिना भी उनतीस

का बंध है । इन दोनों में उनतीस की समानता होनेपर भी तीर्थंकर और संहनन प्रकृति के भेद से अपुनरुक्तपना कहते हैं, ऐसा कहा है ॥५८०॥

भुजगारे अप्पदरेऽवत्तव्वे ठाइदूण समबंधो ।
होदि अवट्ठिदबंधो तब्भंगा तस्स भंगा हु ॥५८१॥

भुजाकारानल्पतरानवक्तव्यान् स्थापयित्वा समबंधः ।
भवति अवस्थितबंधः तद्भंगास्तस्य भंगा हि ॥५८१॥

टीका – भुजाकार, अल्पतर, अवक्तव्य इन भंगों को स्थापन करके जिन-जिन भंगसहित प्रकृतियों का उनमें एक समय बंध होकर उन्हीं भंग सहित प्रकृतियों का जहां द्वितीयादिक समयों में समान बंध होता है, वहां अवस्थित बंध कहते हैं । इसलिए उन तीन के जितने भंग हैं, उतने अवस्थित के भंग जानना ॥५८१॥

आगे उन अवक्तव्य भंगों को कहते हैं –

पडिय मरियेक्कमेक्कूणतीस तीसं च बंधगुवसंते ।
बंधो दु अवत्तव्वो अवट्ठिदो बिदियसमयादी ॥५८२॥

पतित्वा मृत्वैकमेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च बंधकोपशांते ।
बंधस्तु अवक्तव्योऽवस्थितो द्वितीयसमयादिः ॥५८२॥

टीका – उपशांतमोह में नामकर्म की किसी भी प्रकृति को नहीं बांधनेवाला पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय को प्राप्त होकर एक प्रकृति स्थान को बांधता है, एक तो यह । पुनश्च मरण होनेपर देव-असंयत होकर आठ-आठ भंगों द्वारा मनुष्यगतियुत उनतीस के स्थान को या मनुष्य-तीर्थंकरयुत तीस के स्थान को बांधता है – दोनों के मिलकर सोलह हुये । इसतरह अवक्तव्य बंध के सत्रह भंग जानना और उन्हीं के समान बंध द्वितीयादिक समय में होता है, वहां अवस्थित भी इतने ही जानना ॥५८२॥

: नामकर्म के उदयस्थान :

दोहा – जे तरंग भव उदधि के नाम-बंध के थान ।
तीन जगत के जीव सब तिनकरि वेष्ठित जान ॥१॥

आगे नामकर्म के उदयस्थानों को बाइस गाथाओं द्वारा कहते हैं –

विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते ।
आणावचिपज्जत्ते कमेण पंचोदये काला ॥५८३॥

विग्रहकार्मणशरीरे शरीरमिश्रे शरीरपर्याप्ते ।
आनवचः पर्याप्ते क्रमेण पंचोदये कालाः ॥५८३॥

टीका – नामकर्म के उदयस्थान जिस-जिस काल में उदययोग्य हैं, वहां ही होते हैं, इसलिए नियतकाल हैं । वे काल अनुक्रम से पांच हैं – (१) विग्रहगति और कार्माणशरीर में (२) मिश्रशरीर में (३) शरीरपर्याप्ति में (४) श्वासोच्छ्वास *(आनपान)* पर्याप्ति में (५) भाषापर्याप्ति में । जहां कार्माणशरीर पाया जाता है वह कार्माणकाल; जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक शरीरमिश्रकाल; शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर जब तक श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक शरीरपर्याप्तिकाल; श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर जब तक भाषापर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकाल *(आनपानपर्याप्तिकाल)*; भाषापर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् सर्व अवशेष आयुप्रमाण *(मरण तक)* भाषापर्याप्तिकाल कहते हैं । यहां विग्रहगति और कार्माण ये दो विशेषण कहे हैं वे समुद्घात-केवली के कार्माण के ग्रहण निमित्त कहे हैं ॥५८३॥

एक्कं व दो व तिण्णि व समया अंतोमुहुत्तयं तिसुवि ।
हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥५८४॥

एको वा द्वौ वा त्रयो वा समया अंतर्मुहूर्तकास्त्रिष्वपि ।
अधस्तनकालोनः चरमस्य चोदयकालस्तु ॥५८४॥

टीका – उन पांच कालों का प्रमाण क्रम से विग्रहगति के कार्माणशरीर में एक, दो या तीन समय हैं; अपर्याप्तिरूप मिश्रशरीर में, शरीरपर्याप्ति में, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति में अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त काल है । भाषापर्याप्ति में पूर्वोक्त चार काल का प्रमाण घटानेपर अवशेष सर्व भुज्यमान आयुप्रमाण काल जानना ॥५८४॥

उन पांच कालों को जीवसमासों में कहते हैं –

सव्वापज्जत्ताणं दोण्णिवि काला चउक्कमेयक्खे ।
पंचवि होंति तसाणं आहारस्सुवरिमचउक्कं ॥५८५॥

सर्वापर्याप्तानां द्वावपि कालौ चतुष्कमेकाक्षे ।
पंचापि भवंति त्रसानामाहारस्योपरिमचतुष्कं ॥५८५॥

टीका – वे काल सर्व लब्धिअपर्याप्तकों में आदि के दो ही हैं; एकेन्द्रियों में आदि के चार हैं; त्रसों में पांचों हैं । आहारकशरीर में पहले बिना ऊपर के चार काल हैं ॥५८५॥

कम्मोरालियमिस्सं ओरालुस्सासभास इदि कमसो ।
काला हु समुग्घादे उवसंहरमाणगे पंच ॥५८६॥

कार्मणौरालिकमिश्रमौरालोच्छ्वासभाषेति क्रमशः ।
काला हि समुद्घाते उपसंहरमाणके पंच ॥५८६॥

टीका – समुद्घात-केवली में कार्माण, औदारिकमिश्र, औदारिकशरीरपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति ऐसे पांच काल अनुक्रम से होते हैं । ये पांचों काल प्रदेशों को समेटते हुये ही होते हैं, फैलाते समय तीन ही काल हैं ॥५८६॥

वही कहते हैं –

ओरालं दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु ।
पदरे य लोगपूरे कम्मे व य होदि णायव्वो ॥५८७॥

औराल दंडद्विके कपाटयुगले च तस्य मिश्रं तु ।
प्रतरे च लोकपूरे कर्मणि वा च भवंति ज्ञातव्यः ॥५८७॥

टीका – दंड के करने और समेटनेरूप युगल में औदारिकशरीरपर्याप्ति काल है; कपाट के करने और समेटनेरूप युगल में औदारिकमिश्रशरीरकाल है, प्रतर के करने,

समेटने तथा लोकपूर्ण में कार्माणकाल है । इसतरह फैलाते समय तीन ही काल हैं और समेटते हुये मूलशरीर में प्रवेश करने के प्रथम समय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रियवत् अनुक्रम से पर्याप्ति पूर्ण करता है, इसलिए पांचों ही काल पाये जाते हैं ॥५८७॥

आगे नामकर्मों के उदयस्थानों का क्रम से उपजने का विधान चार गाथाओं द्वारा कहते हैं –

णामधुवोदयबारस गइजाईणं च तसतिजुम्माणं ।
सुभगादेज्जजसाणं जुम्मेक्कं विग्गहे वाणू ॥५८८॥

नामध्रुवोदयद्वादश गतिजातीनां च त्रसत्रियुग्मानां ।
सुभगादेययशसां युग्मैकं विग्रहे वानुः ॥५८८॥

टीका – तेजसशरीर, कार्माणशरीर, वर्णादि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु, निर्माण – ये बारह प्रकृतियां ध्रुवोदयी हैं । सब जीवों के इनका निरंतर उदय पाया जाता है । पुनश्च चार गति में से, पांच जाति में से, त्रस-स्थावर में से, बादर-सूक्ष्म में से, पर्याप्त-अपर्याप्त में से, सुभग-दुर्भग में से, आदेय-अनादेय में से, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति में से, चार आनुपूर्वी में से एक-एक का उदय होता है । ऐसी इक्कीस प्रकृतिरूप इक्कीस का स्थान विग्रहगति में ही उदयरूप होता है, क्योंकि इक्कीस में आनुपूर्वी कही है, इस आनुपूर्वी का उदय मात्र विग्रहगति में ही होता है । ऋजुगति में इक्कीस के स्थान का उदय नहीं है, चौबीस के स्थान आदि का ही उदय है ॥५८८॥

मिस्सम्मि तिअंगाणं संठाणाणं च एगदरगं तु ।
पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो ॥५८९॥

मिश्रे त्र्यंगानां संस्थानानां चैकतरकं तु ।
प्रत्येकद्विकयोरेक उपघातो भवत्युदयगतः ॥५८९॥

टीका – उस इक्कीस के स्थान में से आनुपूर्वी घटाकर और औदारिकादि तीन शरीरों में से एक, छह संस्थान में से एक, प्रत्येकशरीर-साधारणशरीर में

से एक और उपघात ये चार मिलानेपर चौबीस का स्थान होता है । यह स्थान त्रस और स्थावर जीवों के शरीरमिश्रकाल में उदयरूप होता है ॥५८९॥

तसमिस्से ताणि पुणो अंगोवंगाणमेगदरगं तु ।
छण्हं संहडणाणं एगदरो उदयगो होदि ॥५९०॥

परघादमंगपुण्णे आदावदुगं विहायमविरुद्धे ।
सासवची तप्पुण्णे कमेण तित्थं च केवलिणि ॥५९१॥ जुम्मं

त्रसमिश्रे तानि पुनः अंगोपांगानामेकतरकं तु ।
षण्णां संहननानामेकतरमुदयकं भवति ॥५९०॥

परघातमंगपूर्णे आतापद्विकं विहायोऽविरुद्धे ।
श्वासवचसी तत्पूर्णे क्रमेण तीर्थं च केवलिनि ॥५९१॥ युग्मं

टीका – ये पूर्वोक्त चार और तीन अंगोपांग में से एक, छह संहनन में से एक – ऐसी छह प्रकृतियां मिश्रशरीरी त्रस में उदययोग्य हैं । परघात प्रकृति त्रस स्थावर जीवों के शरीरपर्याप्तिकाल में ही उदयरूप होती है । पुनश्च आतप-उद्योत और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति अविरुद्ध और योग्य त्रस और स्थावरों के पर्याप्तप्रकृति काल में ही उदयरूप होती हैं । उच्छ्वास और स्वरद्विक प्रकृतियां अपने-अपने पर्याप्तिकाल में ही उदयरूप होती हैं । तीर्थंकर प्रकृति केवली में ही उदयरूप होती है ॥५९०, ५९१॥

एक-एक जीव के एक-एक काल में पाये जानेवाले नामकर्म के उदयस्थान नानाजीवों के प्रति कहे, उन्हींको कहते हैं –

वीसं इगिचउवीसं तत्तो इगितीसओत्ति एयधियं ।
उदयट्ठाणा एवं णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥५९२॥

विंशमेकचतुर्विंशं तत एकत्रिंशदिति एकाधिकं ।
उदयस्थानान्येवं नवाष्ट च भवंति नाम्नः ॥५९२॥

टीका – बीस का, इक्कीस का, चौबीस का, इससे एक-एक अधिक इकतीस

का तक, नौ का, आठ का – ये बारह नामकर्म के उदयस्थान हैं ॥५९२॥

चदुगदिया एइंदी विसेसमणुदेवणिरयएइंदी ।
इगिबितिचपसामण्णा विसेससुरणारगेइंदी ॥५९३॥

सामण्णसयलवियलविसेसमणुस्ससुरणारया दोण्हं ।
सयलवियलसामण्णा सजोगपंचक्खवियलया सामी ॥५९४॥ जुग्मं

चतुर्गतिका एकेन्द्रिया विशेषमनुदेवनिरयैकेन्द्रियाः ।
एकद्वित्रिचपसामान्या विशेषसुरनारकैकेन्द्रियाः ॥५९३॥

सामान्यसकलविकलविशेषमनुष्यसुरनारका द्वयोः ।
सकलविकलसामान्याः सयोगपंचाक्षविकलकाः स्वामिनः ॥५९४॥ युग्मं

टीका – उन स्थानों का स्वामी कहते हैं – इक्कीस के स्थान के चतुर्गति के जीव स्वामी हैं । चौबीस के स्थान के एकेन्द्रिय स्वामी हैं । पच्चीस के स्थान के विशेष मनुष्य, देव, नारकी, एकेन्द्रिय स्वामी हैं । छब्बीस के स्थान के एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय सामान्य जीव स्वामी हैं । सत्ताइस के स्थान के विशेष मनुष्य, देव, नारकी, एकेन्द्रिय स्वामी हैं । अट्ठाइस, उनतीस के स्थान के सामान्य पुरुष, सकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, विशेष पुरुष, देव, नारकी स्वामी हैं । तीस के स्थान के सकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सामान्य पुरुष स्वामी हैं । इकतीस के स्थान के सयोगकेवली वा पंचेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय स्वामी हैं । नौ तथा आठ के स्थान के अयोगकेवली स्वामी हैं । जिस स्थान का जो स्वामी कहा उसके उस स्थान संबंधी प्रकृतियों का उदय जानना । यहां इन स्थानों का प्रकट कथन करते हैं –

ध्रुवोदयी बारह; चार गति में से एक; पांच जाति में से एक; त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति और इनके प्रतिपक्षीरूप छह युगलों में से एक-एक; चार आनुपूर्वी में से एक – ऐसे इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान है । इसका उदय कार्माणशरीर सहित चारों गति संबंधी वक्रगमनरूप जो विग्रहगति, उसीमें होता है, अन्यत्र नहीं; क्योंकि यह स्थान आनुपूर्वी सहित है ।

इसमें से आनुपूर्वी को घटाकर तथा औदारिकादि तीन शरीरों में से एक, छह संस्थान में से एक, प्रत्येकशरीर-साधारणशरीर में से एक और उपघात इन चारों को मिलानेपर चौबीस प्रकृतिरूप स्थान होता है । यह एकेन्द्रिय अपर्याप्त में शरीरमिश्रयोग होनेपर *(शरीरमिश्रकाल में)* ही उदयरूप होता है, अन्यत्र नहीं; क्योंकि इसमें अंगोपांग और संहनन नहीं हैं ।

इसमें परघात मिलानेपर एकेन्द्रिय के शरीरपर्याप्तिकाल में उदययोग्य पच्चीस का स्थान होता है अथवा आहारक अंगोपांग मिलानेपर विशेष मनुष्य के आहारकशरीर के मिश्रकाल में उदययोग्य पच्चीस का स्थान होता है । अथवा वैक्रियिक अंगोपांग मिलानेपर देव, नारकी के शरीरमिश्रकाल में उदययोग्य पच्चीस का स्थान होता है । इसतरह पच्चीस प्रकृतिरूप तीन स्थान हुये ।

पुनश्च एकेन्द्रिय के उदययोग्य पच्चीस के स्थान में आतप या उद्योत में से एक मिलानेपर एकेन्द्रिय के शरीरपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य छब्बीस का स्थान होता है । अथवा उस एकेन्द्रिय के पच्चीस के स्थान में उच्छ्वास मिलानेपर एकेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य छब्बीस का स्थान हाता है । अथवा चौबीस के स्थान में औदारिक अंगोपांग और एक संहनन मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)*, सामान्य मनुष्य, निरतिशय केवली के कपाट युगल इनके औदारिकमिश्र *(काल)* में उदययोग्य छब्बीस का स्थान होता है — ऐसे छब्बीस प्रकृतिरूप तीन स्थान हुये ।

पुनश्च चौबीस के स्थान में आहारक अंगोपांग, परघात, प्रशस्तविहायोगति ये तीन मिलानेपर प्रमत्त गुणस्थानवर्ती के आहारक शरीरपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य सत्ताइस का स्थान होता है । अथवा पूर्वोक्त समुद्घात केवली के छब्बीस के स्थान में तीर्थंकर प्रकृति मिलानेपर तीर्थंकर समुद्घात केवली के उदययोग्य सत्ताइस का स्थान होता है । अथवा पूर्वोक्त चौबीस के स्थान में वैक्रियिक अंगोपांग, परघात, नारकी के अप्रशस्तविहायोगति, देव के प्रशस्तविहायोगति — ऐसे तीन मिलानेपर नारकी, देव के शरीरपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य सत्ताइस का स्थान होता है । अथवा पूर्वोक्त चौबीस के स्थान में परघात और आतप-उद्योत में से एक और उच्छ्वास — ऐसे तीन मिलानेपर एकेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य सत्ताइस का स्थान होता है । इसतरह सत्ताइस प्रकृतिरूप चार स्थान हुये ।

पुनश्च उस चौबीस के स्थान में औदारिक अंगोपांग, एक संहनन, परघात, यथायोग्य विहायोगति, इन चार को मिलानेपर सामान्य मनुष्य, मूलशरीर में प्रवेश करनेवाले समुद्घातरूप सामान्यकेवली तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* इनके शरीरपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य अट्ठाइस का स्थान होता है । अथवा चौबीस के स्थान में आहारक अंगोपांग, परघात, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास ये चार मिलानेपर आहारकसंयुक्त के आहारकशरीर के श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य अट्ठाइस का स्थान होता है । अथवा चौबीस के स्थान में वैक्रियिक अंगोपांग, परघात, यथासंभव विहायोगति, उच्छ्वास इन चार को मिलानेपर देव, नारकी के उच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य अट्ठाइस का स्थान होता है — इसतरह अट्ठाइस के तीन स्थान हुये ।

पुनश्च सामान्य मनुष्य तथा समुद्घात-केवली के अट्ठाइस के स्थान में उच्छ्वास प्रकृति मिलानेपर सामान्य मनुष्य के और मूलशरीर में प्रवेश करनेवाले समुद्घात केवली के उच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य उनतीस का स्थान होता है ।

अथवा चौबीस के स्थान में औदारिक अंगोपांग, एक संहनन, परघात, एक विहायोगति, उद्योत मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* के शरीरपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य उनतीस का स्थान होता है । अथवा पूर्वोक्त चौबीस के स्थान में औदारिक अंगोपांग, एक संहनन, परघात, एक विहायोगति, उच्छ्वास मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* के उच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य उनतीस का स्थान होता है । अथवा चौबीस के स्थान में औदारिक अंगोपांग, संहनन *(वज्रवृषभनाराच)*, परघात, प्रशस्तविहायोगति, तीर्थंकर मिलानेपर समुद्घात-तीर्थंकरकेवली के शरीरपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य उनतीस का स्थान होता है ।

अथवा चौबीस के स्थान में आहारक अंगोपांग, परघात, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास, सुस्वर मिलानेपर प्रमत्त के आहारकशरीर के भाषापर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य उनतीस का स्थान होता है । अथवा देव, नारकी के अट्ठाइस के स्थान में देव के सुस्वर, नारकी के दुस्वर मिलानेपर देव, नारकी के भाषापर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य उनतीस

का स्थान होता है । इसतरह उनतीस के छह स्थान हुये ।

पुनश्च चौबीस के स्थान में अंगोपांग, संहनन, परघात, विहायोगति, उच्छ्वास मिलानेपर उनतीस होते हैं; इनमें उद्योत मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* के उच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य तीस का स्थान होता है । अथवा उनतीस में दो स्वर में से एक स्वर मिलानेपर सामान्य मनुष्य, पंचेन्द्रिय या विकलत्रय के भाषापर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य तीस का स्थान होता है । अथवा चौबीस के स्थान में औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, परघात, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास मिलानेपर उनतीस होते हैं, उनमें तीर्थंकर प्रकृति मिलानेपर समुद्घात-तीर्थंकरकेवली के उच्छ्वासपर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य तीस का स्थान होता है अथवा *(उनतीस में)* दो स्वर में से एक मिलानेपर सामान्य समुद्घात-केवली के भाषापर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य तीस का स्थान होता है । इसतरह तीस के चार स्थान कहे ।

पुनश्च सामान्य सयोगकेवली के भाषापर्याप्ति संबंधी तीस के स्थान में तीर्थंकर प्रकृति मिलानेपर तीर्थंकरकेवली के भाषापर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य इकतीस का स्थान होता है । अथवा पूर्वोक्त चौबीस के स्थान में अंगोपांग, संहनन, परघात, उद्योत, विहायोगति, उच्छ्वास, सुस्वर-दुस्वर में से एक – ऐसी सात प्रकृतियां मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* के भाषापर्याप्ति *(काल)* में उदययोग्य इकतीस का स्थान होता है । इसतरह इकतीस के दो स्थान कहे । इसप्रकार एक जीव के एक काल में उदय के स्थान कहे ॥५९३, ५९४॥

एगे इगिवीसपणं इगिछव्वीसट्ठवीसतिण्णि णरे ।
सयले वियलेवि तहा इगितीसं चावि वचिठाणे ॥५९५॥

सुरणिरयविसेसणरे इगिपणसगवीसतिण्णि समुघादे ।
मणुसं वा इगिवीसे वीसं रूवाहियं तित्थं ॥५९६॥

वीसट्ठ चउवीसचऊ पणछव्वीसादिपंचयं दोसु ।
उगुतीसति पणकाले गयजोगे होंति णव अट्ठं ॥५९७॥ विसेसयं

एकस्मिन्नेकविंशति पंच एकषड्विंशाष्टविंशत्रीणि नरे ।
सकलविकलेऽपि तथा एकत्रिंशच्चापि वचः स्थाने ॥५९५॥

सुरनिरयाविशेषनरे एकपंचसप्तविंशत्रीणि समुद्घाते ।
मनुष्यं वा एकविंशे विंशं रूपाधिकं तीर्थं ॥५९६॥

विंशद्विकं चतुर्विंशचतुष्कं पंचषड्विंशादिपंचकं द्वयोः ।
एकोनत्रिंशत्त्रिकं पंचकालेषु गतयोगे भवंति नवाष्ट ॥५९७॥ विशेषकं

टीका – पूर्वोक्त पांच कालों में अनुक्रम से यथासंभव स्थान कहते हैं । एकेन्द्रिय में उदययोग्य इक्कीस का आदि पांच स्थान हैं *(२१, २४, २५, २६, २७)* । मनुष्य में उदययोग्य इक्कीस का, छब्बीस का, अट्ठाइस आदि तीन का हैं *(२१, २६, २८, २९, ३०)* ऐसे पांच स्थान हैं । सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तिर्यंच में उदययोग्य इक्कीस का, छब्बीस का, अट्ठाइस आदि तीन का और भाषापर्याप्ति *(काल)* में इकतीस का ऐसे छह स्थान हैं । देव, नारकी और आहारक या केवलसहित विशेष मनुष्य इनमें उदययोग्य इक्कीस का, पच्चीस का, सत्ताइस आदि तीन का — ऐसे पांच स्थान हैं । वहां समुद्घात-केवली के कार्माणकाल में इक्कीस के स्थान में से आनुपूर्वी बिना सामान्य-केवली के बीस का ही उदयस्थान है, तीर्थंकरकेवली के तीर्थंकरप्रकृति सहित इक्कीस का उदयस्थान है ।

नामकर्म के उदयस्थान जैसे पाये जाते हैं उनका यंत्र

जिनके होते हैं उनका नाम	एकेन्द्रिय	देव	नारकी	तिर्यंच	मनुष्य	सामान्य केवली	तीर्थंकर केवली	विशेष मनुष्य
भाषापर्याप्ति में	०	२९	२९	३१ ३०	३०	३०	३१	२९
उच्छ्वासपर्याप्ति में	२७ २६	२८	२८	३० २९	२९	२९	३०	२८
शरीरपर्याप्ति में	२६ २५	२७	२७	२९ २८	२८	२८	२९	२७
शरीरमिश्र में	२४	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
कार्माण में	२१	२१	२१	२१	२१	२०	२१	०

नामकर्म के उदयस्थानों का यंत्र

बीस का स्थान एक –

समुद्घात-केवली के कार्माण में उदययोग्य २० ।

इक्कीस के स्थान दो –

चारों गति के विग्रहगति में उदययोग्य २१ ।

तीर्थंकरकेवली के कार्माण में उदययोग्य २१ ।

चौबीस का स्थान एक –

एकेन्द्रिय के मिश्रशरीर में उदययोग्य २४ ।

पच्चीस के स्थान तीन –

एकेन्द्रिय के शरीरपर्याप्ति में उदययोग्य २५ ।

आहारक के शरीरमिश्रकाल में उदययोग्य २५ ।

देव, नारकी के शरीरमिश्रकाल में उदययोग्य २५ ।

छब्बीस के स्थान तीन –

एकेन्द्रिय के शरीरपर्याप्तिकाल में उदययोग्य २६ ।

एकेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य २६ ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, सामान्य मनुष्य, निरतिशयकेवली के औदारिकमिश्रकाल में उदययोग्य २६ ।

सत्ताइस के स्थान चार –

आहारकशरीरपर्याप्ति में उदययोग्य २७ ।

तीर्थंकर समुद्घात-केवली के उदययोग्य २७ ।

देव, नारकी के शरीरपर्याप्ति में उदययोग्य २७ ।

एकेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य २७ ।

अट्ठाइस के स्थान तीन –

सामान्यमनुष्य, सामान्यकेवली, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)*

के शरीरपर्याप्ति में उदययोग्य २८ ।

आहारक के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य २८ ।

देव, नारकी के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य २८ ।

उनतीस के स्थान छह –

सामान्य समुद्घात-केवली के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य २९ ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के शरीरपर्याप्ति में उदययोग्य २९ ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य २९ ।

तीर्थंकर समुद्घात-केवली के शरीरपर्याप्ति में उदययोग्य २९ ।

आहारकशरीर भाषापर्याप्ति में उदययोग्य २९ ।

देव, नारकी के भाषापर्याप्ति में उदययोग्य २९ ।

तीस के स्थान चार –

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य ३० ।

सामान्य मनुष्य, पंचेन्द्रिय, विकलत्रय के भाषापर्याप्ति में उदययोग्य ३० ।

तीर्थंकर समुद्घात-केवली के उच्छ्वासपर्याप्ति में उदययोग्य ३० ।

सामान्य समुद्घात-केवली के भाषापर्याप्ति में उदययोग्य ३० ।

एकतीस के स्थान दो –

तीर्थंकरकेवली के भाषापर्याप्ति में उदययोग्य ३१ ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के भाषापर्याप्ति में उदययोग्य ३१ ।

नौ का स्थान एक –

(तीर्थंकर) अयोगकेवली के उदययोग्य ९ ।

आठ का स्थान एक –

(सामान्य) अयोगकेवली के उदययोग्य ८ ।

इसतरह केवली के कार्माण में बीस, इक्कीस के दो स्थान हैं और विग्रहगति के कार्माण में इक्कीस का ही स्थान है । शरीरमिश्रकाल में चौबीस का आदि चार स्थान हैं ।

शरीरपर्याप्तिकाल में पच्चीस का आदि पांच स्थान हैं । उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में छब्बीस का आदि पांच स्थान हैं । भाषापर्याप्तिकाल में उनतीस का आदि तीन स्थान हैं । अयोगी में तीर्थंकरकेवली के नौ का और सामान्यकेवली के आठ का उदय जानना ॥५९५-५९७॥

अयोगकेवली गुणस्थान के दो स्थानों का स्वरूप कहते हैं –

गयजोगस्स य बारे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु ।
णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु ॥५९८॥

गतयोगस्य च द्वादश तृतीयायुष्कगोत्रमिति विहीनेषु ।
नाम्नश्च नव उदया अष्टैव च तीर्थहीनेषु ॥५९८॥

टीका – अयोगकेवली के बारह उदयप्रकृतियां हैं । उनमें से वेदनीय, आयु, गोत्र की तीन प्रकृतियों के बिना नामकर्म की नौ प्रकृतियों का उदय जानना । तीर्थंकर बिना आठ का उदय जानना । इसतरह नौ का, आठ का उदय जानना ॥५९८॥

आगे नामकर्मों के उदयस्थानों में भंग कहते हैं –

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे ।
अविरुद्धेक्कदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा हु ॥५९९॥

संस्थाने संहनने विहायोयुग्मे च चरमचतुर्युग्मे ।
अविरुद्धैकतरस्मात् उदयस्थानेषु भंगा हि ॥५९९॥

टीका – छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, सुभग युगल, स्वर युगल, आदेय युगल, यशस्कीर्ति युगल इनमें से अविरुद्ध एक-एक का ग्रहण करने से भंग होते हैं । जैसे, संस्थान में से समचतुरस्र की अपेक्षा उदयस्थान कहा उसको पलटकर न्यग्रोधपरिमंडल की अपेक्षा कहा । इसतरह सबमें अक्षसंचार विधान से भंग होते हैं । छह संस्थानादिक को ६, ६, २, २, २, २, २ परस्पर गुणा

य	अ	१ १
आ	अ	१ १
सु	दु	१ १
सु	दु	१ १
प्र	अ	१ १
सं		१ १ १ १ १ १
सं		१ १ १ १ १ १
युति		११५२

करनेपर ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं ॥५९९॥

उनमें से नारकादि इकतालीस जीवपदों में पाये जानेवाले भंग तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

तत्थासत्था णारय साहारणसुहुमगे अपुण्णे य ।
सेसेगविगलऽसण्णी जुदठाणे जसजुगे भंगा ॥६००॥

तत्राशस्ता नारक साधारणसूक्ष्मके अपूर्णे च ।
शेषैकविकलासंज्ञि युतस्थाने यशायुग्मे भंगाः ॥६००॥

टीका – उन उदयप्रकृतियों में से नारकी, साधारण वनस्पति, सर्व ही सूक्ष्म और सर्व ही लब्धिअपर्याप्त इनमें अप्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय है । इसलिए उनके पांच काल संबंधी सर्व उदयस्थानों में एक-एक भंग है । अवशेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इनमें अन्य तो अप्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय है परंतु यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति इन दोनों में से किसी एक का उदय है । इसलिए उनके उदयस्थानों में दो-दो भंग जानना । एक यशस्कीर्ति सहित उदयस्थान, एक अयशस्कीर्ति सहित उदयस्थान – ऐसे दो जानना ॥६००॥

सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य ओघेक्कदरं तु केवले वज्जं ।
सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि ॥६०१॥

संज्ञिनि मनुष्ये च ओघैकतरं तु केवले वज्रं ।
सुभगादेययशांसि च तीर्थयुते शस्तमेतीति ॥६०१॥

टीका – संज्ञी जीवों में से मनुष्य में छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति आदि पांच युगल इनमें से एक-एक का उदय पाया जाता है; इसलिए सामान्यवत् ग्यारह सौ बावन भंग मनुष्य के उदयस्थानों में यथासंभव जानना । केवलज्ञान में वज्रवृषभनाराच संहनन, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति इन्हीं का उदय पाया जाता है, इसलिए केवलज्ञान संबंधी स्थानों में छह संस्थान, दो युगल इनमें से एक-एक के उदय की अपेक्षा चौबीस-चौबीस ही भंग जानना । पुनश्च तीर्थंकरकेवली के अंत के

पांच संस्थान, अप्रशस्तविहायोगति, दुस्वर इनका भी उदय नहीं है; सर्व प्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय है । इसलिए उनके उदयस्थानों में एक-एक ही भंग है ॥६०१॥

देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो ।
वोच्छिण्णं जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु ॥६०२॥

देवाहारे शस्तं कालविकल्पेषु भंग आनेयः ।
व्युच्छिन्नं ज्ञात्वा गुणप्रतिपन्नेषु सर्वेषु ॥६०२॥

टीका – चारों प्रकार के देवों में और आहारक सहित प्रमत्त में प्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय है; इसलिए उनके सर्वकाल संबंधी उदयस्थानों में एक-एक ही भंग है । पुनश्च सासादनादि गुणस्थानों को प्राप्त हुये जीवों में और विग्रहगति के कार्माण आदि कालों में व्युच्छित्ति हुयी प्रकृतियों को जानकर अवशेष प्रकृतियों के यथासंभव भंग जानना ॥६०२॥

वीसादीणं भंगा इगिदालपदेसु संभवा कमसो ।
एक्कं सट्ठी चेव य सत्तावीसं च उगुवीसं ॥६०३॥

वीसुत्तरछच्चसया बारस पण्णत्तरीहिं संजुत्ता ।
एक्कारससयसंखा सत्तरससयाहिया सट्ठी ॥६०४॥

ऊणत्तीससयाहिय एक्कावीसा तदोवि एकट्ठी ।
एक्कारससयसहिया एक्केक्क विसरिसगा भंगा ॥६०५॥ विसेसयं

विंशादीनां भंगा एकचत्वारिंशत्पदेषु संभवाः क्रमशः ।
एकः षष्टि चैव च सप्तविंश च एकोनविंशं ॥६०३॥

विंशोत्तरषट् च शतानि द्वादश पंचसप्ततिभिः संयुक्ता ।
एकादशशतसंख्या सप्तदशशताधिकाः षष्टि ॥६०४॥

एकोनत्रिंशच्छताधिकैकविंशं ततोऽपि एकषष्टिः ।
एकादशशतसहिता एकैकं विसदृशका भंगा ॥६०५॥ विशेषकं

टीका – बीस के स्थान से लेकर जो स्थान कहे उनमें इकतालीस जीवपदों की अपेक्षा जो भंग पाये जाते हैं, वे अनुक्रम से कहते हैं –

वहां बीस का उदय सामान्य समुद्घात-केवली के प्रतर, लोकपूरण के कार्मणकाल में है । उसमें एक ही भंग है । (१)

इक्कीस के भंग कहते हैं – देवगति के विग्रहगतिरूप कार्माण में एक ही भंग है । तीर्थंकर के समुद्घात संबंधी कार्माण में एक ही भंग है । मनुष्यगति के विग्रहगति संबंधी कार्माण में सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति इन तीन युगलों में से एक-एक के उदय से आठ भंग हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* के कार्माण में भी वैसे ही आठ भंग हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी इनके कार्माण में यशस्कीर्ति के युगल से हुये दो भंग हैं, उनके आठ हुये । बादर – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति इन पांचों के कार्माण में भी यशस्कीर्ति के युगल से हुये दो-दो भंग हैं, उनके दस हुये । सूक्ष्म – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सूक्ष्म और बादर साधारण वनस्पति इन छहों के कार्माण में एक-एक ही भंग है, उनके छह हुये । नारकी के कार्माण में एक ही भंग है । लब्धिअपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायादि भेद से सत्रह प्रकार के हैं, उनके कार्माण में एक-एक ही भंग है, उनके सत्रह हुये । इसतरह इक्कीस के स्थान में साठ भंग हैं । (६०)

अब चौबीस के स्थान में भंग कहते हैं –

इसका उदय पर्याप्त जीवों के शरीरमिश्रकाल में है । वहां बादर – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति इन पांचों में यशस्कीर्ति युगल से हुये दो भंगों से दस हुये । सूक्ष्म – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, बादर और सूक्ष्म साधारण इनमें एक-एक भंग से छह हुये । लब्धिअपर्याप्त ग्यारह हैं, उनके शरीरमिश्रकाल में उदय है वहां एक-एक ही भंग है, उनके ग्यारह हुये । इसतरह चौबीस के स्थान में सत्ताइस भंग हैं । (२७)

(पच्चीस के स्थान में भंग कहते हैं) पच्चीस के स्थान में देव, नारकी, आहारक इनके तो एक-एक भंग से तीन भंग हुये । शरीरपर्याप्ति में बादर – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति इनके दो-दो भंगों से दस हुये । सूक्ष्म – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, बादर और सूक्ष्म साधारण वनस्पति इनके एक-एक भंग से छह हुये। // इसतरह पच्चीस के स्थान में उन्नीस भंग हैं । (१९)

(छब्बीस के स्थान में भंग कहते हैं) छब्बीस के स्थान में शरीरमिश्रकाल में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी के यशस्कीर्ति युगल से हुये दो-दो भंगों से आठ होते हैं । संज्ञी तिर्यंच और मनुष्य में छह संहनन, छह संस्थान, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति युगल से दो सौ अट्ठासी-दो सौ अट्ठासी भंग हुये; उनके पांच सौ छिहत्तर होते हैं । तीर्थंकर रहित सामान्य समुद्घात-केवली के छह संस्थानों के बदलने से छह भंग होते हैं । पुनश्च लब्धिअपर्याप्त छह उनके एक-एक भंग से छह भंग होते हैं । शरीरपर्याप्तिकाल में बादर पृथ्वीकायिक के आतप, उद्योतयुतपने से दो स्थान होते हैं, उनमें यशस्कीर्ति युगल से दो-दो भंग इनके चार हुये । बादर — अप्काय, प्रत्येक वनस्पति में दो-दो भंगों से चार हुये । उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में बादर — पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति इनमें यशस्कीर्ति युगल से दो-दो भंगों से दस हुये । सूक्ष्म — पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सूक्ष्म और बादर साधारण इनमें एक-एक भंग से छह हुये । इसतरह छब्बीस के स्थान में छह सौ बीस भंग हैं । (६२०)

(सत्ताइस के स्थान में भंग कहते हैं) सत्ताइस के स्थान में तीर्थंकर समुद्घात-केवली के शरीरमिश्रकाल में एक भंग है । देव, नारकी, आहारक के शरीरपर्याप्तिकाल में एक-एक भंग हैं, उनके तीन हुये । उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में बादर पृथ्वीकायिक के आतप, उद्योत से दो स्थान उनमें दो-दो भंगों से चार हुये । बादर — अप्, प्रत्येक वनस्पति के दो दो भंगों से चार हुये । इसतरह सत्ताइस के स्थान में बारह भंग हैं । (१२)

(अट्ठाइस के स्थान में भंग कहते हैं) अट्ठाइस के स्थान में शरीरपर्याप्तिकाल में निरतिशय समुद्घात-केवली के विहायोगति युगल, छह संस्थान द्वारा बारह भंग होते हैं । मनुष्य और संज्ञी तिर्यंच में सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, विहायोगति के युगल, छह संस्थान, छह संहनन इनसे प्रत्येक के पांच सौ छिहत्तर भंग होते हैं, उनके ग्यारह सौ बावन हुये । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी में यशस्कीर्ति युगल से दो-दो भंग हैं, उनके आठ हुये । देव, नारकी, आहारक इनका उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में एक-एक भंग उनके तीन हुये । इसतरह अट्ठाइस के स्थान में ग्यारह सौ पचहत्तर भंग हैं । (११७५)

(उनतीस के स्थान में भंग कहते हैं) — उनतीस के स्थान में शरीरपर्याप्तिकाल

में तीर्थंकर समुद्घात-केवली के एक भंग है । संज्ञी-पंचेन्द्रिय-उद्योतयुत-तिर्यंच के पूर्वोक्त प्रकार से पांच सौ छिहत्तर भंग हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय उद्योतयुत, उनके दो-दो भंगों से आठ भंग हैं । उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में निरतिशय समुद्घात-केवली के छह संस्थान और विहायोगति युगल से बारह भंग हैं; मनुष्य में और संज्ञी पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* में पूर्वोक्त प्रकार से प्रत्येक के पांच सौ छिहत्तर भंग हैं — उनके ग्यारह सौ बावन हुये; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय उद्योत रहित उनके दो-दो भंगों से आठ भंग हैं । पुनश्च भाषापर्याप्तिकाल में देव, आहारक, नारकी के एक-एक भंग से तीन भंग हुये । इसतरह उनतीस के स्थान में सत्रह सौ साठ भंग हैं । (१७६०)

(तीस के स्थान में भंग कहते हैं) — तीस के स्थान में उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में तीर्थंकर समुद्घात-केवली के एक भंग है । उद्योतयुत संज्ञी पंचेन्द्रिय के पूर्वोक्त प्रकार से पांच सौ छिहत्तर भंग हैं । उद्योतयुत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,असंज्ञी पंचेन्द्रिय के दो-दो भंगों से आठ भंग हैं । पुनश्च भाषापर्याप्तिकाल में ~~द्वीन्द्रिय~~, ~~त्रीन्द्रिय~~, ~~चतुरिन्द्रिय~~, ~~असंज्ञी पंचेन्द्रिय में~~ तीर्थंकर रहित सामान्यकेवली के छह संस्थान, विहायोगति युगल, स्वर युगल से चौबीस भंग हैं । मनुष्य में छह संस्थान, छह संहनन, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, विहायोगति, स्वर के युगल इनसे ग्यारह सौ बावन भंग हैं । उद्योत रहित संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच में भी वैसे ही ग्यारह सौ बावन भंग हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के दो-दो भंगों से आठ भंग हैं । इसतरह तीस के स्थान में उनतीस सौ इक्कीस भंग हैं । (२९२१)

तीर्थंकर रहित समुद्घात-केवली के भाषापर्याप्तिकाल में चौबीस भंग हैं, वे पुनरुक्त हैं, क्योंकि पूर्व में कहे उनमें *(तीर्थंकर रहित सामान्यकेवली में)* और इनमें कुछ भेद नहीं है ।

(इकतीस के स्थान में भंग कहते हैं) इकतीस के स्थान में भाषापर्याप्तिकाल में तीर्थंकरकेवली के एक भंग है । उद्योतयुत संज्ञी पंचेन्द्रिय *(तिर्यंच)* में पूर्वोक्त प्रकार से ग्यारह सौ बावन भंग हैं । उद्योतयुत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के दो-दो भंगों से आठ भंग हुये । इसतरह इकतीस के स्थान में ग्यारह सौ इकसठ भंग हैं । (११६१)

तीर्थंकर समुद्घात-केवली में एक भंग है, वह पुनरुक्त है । *(नौ के स्थान में भंग कहते हैं)* अयोगकेवली में तीर्थंकरयुत नौ का स्थान है, उसका एक भंग है । (१)

(आठ के स्थान में भंग कहते हैं) अयोगकेवली में तीर्थंकर रहित आठ का स्थान है, उसका एक भंग है । (१)

ऐसे सर्व मिलकर सात हजार सात सौ अट्ठावन *(७७५८)* भंग हुये ॥६०३ से ६०५॥

उन पुनरुक्त भंगों को कहते हैं –

सामण्णकेवलिस्स समुग्घादगदस्स तस्स वचि भंगा ।
तित्थस्सवि सगभंगा समेदि तत्थेक्कमवणिज्जो ॥६०६॥

सामान्यकेवलिनः समुद्घातगतस्य तस्य वचसि भंगाः ।
तीर्थस्यापि स्वकभंगाः समा इति तत्रैकोपनेयः ॥६०६॥

टीका – भाषापर्याप्तिकाल में सामान्यकेवली और समुद्घात सहित सामान्य केवली के तीस के स्थान में चौबीस-चौबीस भंग समान हैं । पुनश्च तीर्थंकरकेवली के और तीर्थंकर समुद्घात-केवली के इकतीस के स्थान में एक-एक भंग है, वह समान है, इसलिए ये पच्चीस भंग पुनरुक्त हैं, उनको ग्रहण नहीं करना ॥६०६॥

आगे गुणस्थानों में उन भंगों को कहते हैं –

णारयसण्णिमणुस्ससुराणं उवरिमगुणाण भंगा जे ।
पुणरुत्ता इदि अवणिय भणिया मिच्छस्स भंगेसु ॥६०७॥

नारकसंज्ञिमनुष्यसुराणामुपरितनगुणानां भंगा ये ।
पुनरुक्ता इत्यपनीय भणिता भंगेषु ॥६०७॥

टीका – नारकी, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, देव – इनके ऊपर के सासादनादि गुणस्थानों में जो भंग हैं, वे मिथ्यादृष्टि के भंगों के समान हैं; इसलिए उन पुनरुक्त भंगों को दूर करके एक मिथ्यादृष्टि के भंगों में वे भी कहे, उसी को कहते हैं –

मिथ्यादृष्टि में इक्कीस के साठ भंगों में से तीर्थंकर संबंधी एक बिना उनसठ भंग हैं । चौबीस के सत्ताइस भंग हैं । पच्चीस के उन्नीस भंगों में से आहारकशरीरमिश्रकाल संबंधी एक बिना अठारह भंग हैं । छब्बीस के छह सौ बीस भंगों में से सामान्य समुद्घात-केवली के छह भंग बिना छह सौ चौदह भंग हैं । सत्ताइस के बारह भंगों में से आहारक, तीर्थंकर के दो बिना दस भंग हैं । अट्ठाइस के ग्यारह सौ पचहत्तर भंगों में से सामान्य समुद्घात-केवली के बारह, आहारक का एक – इन तेरह बिना ग्यारह सौ बासठ भंग हैं । उनतीस के सत्रह सौ साठ भंगों में से सामान्य समुद्घात-केवली के बारह, तीर्थंकर समुद्घात-केवली का एक, आहारक का एक – इन चौदह बिना सत्रह सौ छियालिस भंग हैं । तीस के उनतीस सौ इक्कीस भंगों में से सामान्यकेवली के चौबीस, तीर्थंकरकेवली का एक इन पच्चीस बिना अट्ठाइस सौ छानबे भंग हैं । इकतीस के ग्यारह सौ इकसठ भंगों में से तीर्थंकर के एक बिना ग्यारह सौ साठ भंग हैं ।

[***विशेषार्थ : मिथ्यादृष्टि के भंग -***

उदयस्थान	२१ का	२४ का	२५ का	२६ का	२७ का	२८ का	२९ का	३० का	३१ का	
भंग	५९	२७	१८	६१४	१०	११६२	१७४६	२८९६	११६०	कुल ७६९२]

पुनश्च सासादन गुणस्थान में इक्कीस के बादर – पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति के छह, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के आठ, संज्ञी पंचेन्द्रिय के आठ, मनुष्य के आठ, देव का एक – ऐसे इकतीस भंग हैं । चौबीस के बादर – पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति के ही छह भंग हैं । पच्चीस का देवगति का एक भंग है । छब्बीस के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के आठ, संज्ञी पंचेन्द्रिय के दो सौ अट्ठासी, मनुष्य के दो सौ अट्ठासी – ऐसे पांच सौ चौरासी भंग हैं । इस गुणस्थान में सत्ताइस, अट्ठाइस का उदय नहीं है, क्योंकि शरीरपर्याप्ति आदि कालों में एकेन्द्रियादि के मिथ्यात्व ही पाया जाता है ।

[***विशेषार्थ*** *: सासादन में इन पर्यायों में जन्म लेनेपर भी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले ही सासादन से मिथ्यात्व में आ जाते हैं ।*]

उनतीस के देव, नारकी का एक, एक – ऐसे दो भंग हैं । तीस के स्थान

के भाषापर्याप्तिकाल में संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के ग्यारह सौ बावन, मनुष्य के ग्यारह सौ बावन — ऐसे तेइस सौ चार भंग हैं । इकतीस के स्थान के संज्ञी के भाषापर्याप्तिकाल में उद्योतयुत स्थान के ग्यारह सौ बावन भंग हैं ।

सासादन के भंग –

उदयस्थान	२१ का	२४ का	२५ का	२६ का	२९ का	३० का	३१ का	
भंग	३१	६	१	५८४	२	२३०४	११५२	कुल ४०८०]

मिश्र गुणस्थान में उनतीस के देव, नारकी के भाषापर्याप्तिकाल में एक-एक करके दो भंग हैं । तीस के संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य के मिलाकर तेइस सौ चार भंग हैं । इकतीस के उद्योतयुत संज्ञी के ग्यारह सौ बावन भंग हैं ।

[***विशेषार्थ : मिश्र के भंग -***

उदयस्थान	२९ का	३० का	३१ का	
भंग	२	२३०४	११५२	कुल ३४५८]

पुनश्च असंयत गुणस्थान में इक्कीस के चारों गति के एक-एक भंग से चार भंग हैं । पच्चीस के धर्मानारक, वैमानिक देव के एक-एक करके दो भंग हैं । छब्बीस के भोगभूमिया तिर्यंच के शुभ ही का उदय है इसलिए एक और कर्मभूमिया मनुष्य के छह संस्थान, छह संहनन से छत्तीस ऐसे सैंतीस भंग हैं । सत्ताइस के धर्मानारक, वैमानिक देव का एक-एक करके दो भंग हैं । अट्ठाइस के भोगभूमिया तिर्यंच, धर्मानारकी, वैमानिक देव के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में एक-एक करके तीन, मनुष्य के छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति युगल से बहत्तर — ऐसे पचहत्तर भंग हैं । उनतीस के भोगभूमिया तिर्यंच, मनुष्य के प्रशस्त ही का उदय है, इसलिए एक-एक भंग करके उनके उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में दो भंग और देव, नारकी के भाषापर्याप्तिकाल में एक-एक करके दो भंग और कर्मभूमिया मनुष्य के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में पूर्वोक्त प्रकार से बहत्तर भंग — ऐसे छिहत्तर भंग हैं । तीस के भोगभूमिया तिर्यंच उद्योतयुत के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में एक और संज्ञी तिर्यंच और कर्मभूमिया

मनुष्य के *(भाषापर्याप्तिकाल में)* दोनों के मिलाकर तेइस सौ चार – ऐसे तेइस सौ पांच भंग हैं । इकतीस के संज्ञी तिर्यंच के ही *(उद्योतयुत भाषापर्याप्तिकाल में)* ग्यारह सौ बावन भंग हैं ।

[***विशेषार्थ : असंयत के भंग -***

उदयस्थान	२१ का	२५ का	२६ का	२७ का	२८ का	२९ का	३० का	३१ का	
भंग	४	२	३७	२	७५	७६	२३०५	११५२	कुल ३६५३]

देशसंयत गुणस्थान में तीस के संज्ञी तिर्यंच के छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति युगल, स्वर युगल से एक सौ चौवालीस, ऐसे ही मनुष्य के एक सौ चौवालीस – ऐसे दो सौ अट्ठासी भंग हैं । उद्योतयुत संज्ञी तिर्यंच के इकतीस के पूर्वोक्त प्रकार से एक सौ चौवालीस भंग हैं ।

[***विशेषार्थ – देशसंयत के भंग –***

उदयस्थान	३० का	३१ का	
भंग	२८८	१४४	कुल ४३२]

प्रमत्तसंयत में आहारक के शरीरमिश्रकाल में पच्चीस के स्थान का एक, शरीरपर्याप्तिकाल में सत्ताइस के स्थान का एक, उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में अट्ठाइस के स्थान का एक, भाषापर्याप्तिकाल में उनतीस के स्थान का एक भंग है । औदारिक शरीर के भाषापर्याप्ति संबंधी तीस के स्थान के छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति युगल, स्वर युगल से हुये एक सौ चौवालीस भंग हैं ।

[***विशेषार्थ – प्रमत्तसंयत के भंग –***

उदयस्थान	२५ का	२७ का	२८ का	२९ का	३० का	
भंग	१	१	१	१	१४४	कुल १४८]

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में तीस के स्थान के वैसे ही एक सौ चौवालीस भंग हैं ।

[**विशेषार्थ – अप्रमत्तसंयत के भंग –**

उदयस्थान	३० का
भंग	१४४

]

उपश्रेणीवाले चारों गुणस्थानों में प्रत्येक में छह संस्थान, तीन संहनन, स्वर युगल विहायोगति युगल से बहत्तर-बहत्तर भंग हैं ।

[***विशेषार्थ – उपशमश्रेणी के भंग – गुणस्थान ८, ९, १०, ११***

उदयस्थान	३० का
भंग	७२

प्रत्येक में]

क्षपकश्रेणीवाले चारों गुणस्थानों में छह संस्थान, एक संहनन *(वज्रवृषभनाराच)*, विहायोगति युगल, स्वर युगल से चौबीस-चौबीस भंग हैं ।

[***विशेषार्थ – क्षपकश्रेणी के भंग – गुणस्थान – ८, ९, १०, १२***

उदयस्थान	३० का
भंग	२४

प्रत्येक में]

सयोगकेवली में समुद्घातरूप कार्माण में बीस के स्थान का एक भंग है । तीर्थंकरयुत इक्कीस के स्थान का एक भंग है । औदारिकमिश्र में *(कपाटसमुद्घात के काल में)* छब्बीस के स्थान के छह संस्थानों से छह भंग हैं और *(उसी काल में)* तीर्थंकरयुत सत्ताइस का एक भंग है । मूलशरीर में प्रवेश करते हुये शरीरपर्याप्तिकाल में अट्ठाइस के स्थान के छह संस्थान, विहायोगति युगल से बारह भंग हैं; *(उसी काल में)* तीर्थंकर सहित उनतीस के स्थान का एक भंग है, सामान्यकेवली के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में उनतीस के स्थान के बारह भंग हैं – ऐसे *(उनतीस के स्थान के)* तेरह भंग हैं । तीर्थंकरयुत तीस के स्थान का *(उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में)* एक, भाषापर्याप्तिकाल में सामान्यकेवली के छह संस्थान, स्वर युगल और विहायोगति युगल से चौबीस ऐसे पच्चीस भंग हैं । तीर्थंकरयुत इकतीस का एक भंग है ।

[*विशेषार्थ – सयोगकेवली के भंग –*

उदयस्थान	२० का	२१ का	२६ का	२७ का	२८ का	२९ का	३० का	३१ का	
भंग	१	१	६	१	१२	१३	३५	१	कुल ६०]

अयोगकेवली में नौ का एक भंग है, आठ का एक भंग है ॥६०७॥

अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा य होंति पिंडेण ।
उदयट्ठाणे भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥६०८॥

अष्टपंचाशत्सप्तशतानि सप्तसहस्राणि च भवंति पिंडेन ।
उदयस्थाने भंगा असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥६०८॥

टीका – बीस आदि बारह नामकर्म के उदयस्थानों में अपुनरुक्त भंग मिलाकर अट्ठावन अधिक सात सौ सहित सात हजार *(७७५८)* भंग सहाय रहित पराक्रम के धारी वर्धमानस्वामी ने कहे हैं । यहां नारकी, संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच, मनुष्य और देव इनके मिथ्यात्व गुणस्थान में जो भंग कहे और सासादनादि में जो भंग कहे, उनमें से जिनके समान हैं वे सासादनादिक के भंग पुनरुक्त जानना ॥६०८॥

आगे नामकर्म के सत्त्वस्थान का प्रकरण उन्नीस गाथाओं द्वारा कहते हैं –

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य ।
ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥६०९॥

त्रिद्व्येकनवतिः नवतिः अष्टचतुर्द्व्यधिकाशीतिरशीतिश्च ।
एकोनाशीत्यष्टसप्तती सप्ततिः दश च नव सत्त्वानि ॥६०९॥

टीका – तिरानबे, बानबे, इक्यानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी, अस्सी, उन्नासी, अठहत्तर, सतहत्तर, दस, नौ, प्रकृतिरूप नामकर्म के सत्त्वस्थान तेरह हैं ॥६०९॥

उनका विधान कहते हैं –

सव्वं तित्थाहारुभऊणं सुरणिरयणरदुचारिदुगे ।
उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दसणवयं ॥६१०॥

सर्वं तीर्थाहारोभयोनं सुरनिरयनरद्विचतुर्द्विके ।
उद्वेल्लिते हते चतुष्कं त्रयोदश योगिनो दश नवकं ॥६१०॥

टीका – नामकर्म की सर्व प्रकृतिरूप तिरानबे का स्थान है । सर्व प्रकृतियों में से तीर्थंकर प्रकृति घटनेपर बानबे का स्थान होता है । आहारकद्विक घटनेपर इक्यानबे का स्थान है । तीर्थंकर, आहारकद्विक दोनों घटनेपर नब्बे का स्थान है । उस नब्बे के स्थान में देवगति और देवगत्यानुपूर्वी की उद्वेलना होनेपर अट्ठासी का स्थान होता है । इसमें से भी नारक-चतुष्टक की उद्वेलना होनेपर चौरासी का स्थान होता है । इसमें से भी मनुष्यद्विक की उद्वेलना होनेपर बयासी का स्थान होता है ।

पुनश्च 'णिरयतिरक्ख दु वियलं' इत्यादि गाथोक्त अनिवृत्तिकरण में क्षय हुयी तेरह प्रकृति तिरानबे में से घटनेपर अस्सी का स्थान होता है; बानबे में से घटनेपर उन्नासी का स्थान होता है, इक्यानबे में से घटनेपर अठहत्तर का स्थान होता है । नब्बे में से घटनेपर सतहत्तर का स्थान होता है । पुनश्च अयोगकेवली में दस का और नौ का स्थान है ।

इसतरह नामकर्म के सर्व सत्त्वस्थान जानना ॥६१०॥

नामकर्म के सत्त्वस्थानों का यंत्र

१	तिरानबे का स्थान सर्व प्रकृतिरूप ।	१	बानबे का स्थान तीर्थंकर रहित
१	इक्यानबे का स्थान आहारकद्विक रहित ।	१	नब्बे का स्थान तीर्थंकर, आहारक-द्विक रहित ।
१	अट्ठासी का स्थान तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवद्विक रहित ।	१	चौरासी का स्थान तीर्थंकर, आहारक-द्विक, देवद्विक, नरकचतुष्क रहित ।
१	बयासी का स्थान तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवद्विक, नरकचतुष्क, मनुष्यद्विक रहित ।	१	अस्सी का स्थान अनिवृत्तिकरण में तेरह का क्षय हुआ उनसे रहित *(९३ – १३ = ८०)* ।

१ उन्नासी का स्थान तेरह और तीर्थंकर रहित ।	१ अठहत्तर का स्थान तेरह और आहारकद्विक रहित ।
१ सतहत्तर का स्थान तेरह और तीर्थंकर, आहारकद्विक रहित ।	१ दस का स्थान तीर्थंकर अयोगी के अंत समय सत्तारूप ।

१ नौ का स्थान सामान्य अयोगकेवली के अंतसमय सत्तारूप ।

उन दस के और नौ के स्थानों में प्रकृतियों का कथन करते हैं –

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु ।
दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु ॥६११॥

गतयोगस्य तु त्रयोदशसु तृतीयायुष्कगोत्रेति विहीनेषु ।
दश नाम्नश्च सत्ता नव चैव च तीर्थहीनेषु ॥६११॥

टीका – अयोगकेवली में सत्त्वप्रकृति 'उदयगवारणराणू' इत्यादि गाथा से कही हुयी तेरह हैं । उनमें से वेदनीय, मनुष्यायु, उच्चगोत्र घटानेपर नामकर्म की दस प्रकृतियों का सत्त्व है । उनमें से तीर्थंकर प्रकृति बिना नौ का सत्त्व होता है ॥६११॥

आगे उद्वेलना के स्थानों का विशेष कहते हैं –

गुण संजादप्पयडिं मिच्छे बंधुदयगंधहीणम्मि ।
सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लदे जीवो ॥६१२॥

गुणसंजातप्रकृतिं मिथ्ये बंधोदयगंधहीने ।
शेषोद्वेल्लनप्रकृतिं नियमेनोद्वेल्लयति जीवः ॥६१२॥

टीका – मिथ्यादृष्टि में जिन प्रकृतियों के बंध का वा उदय का गंध अर्थात् वासनामात्र भी नहीं है ऐसी सम्यक्त्वादि गुण से उत्पन्न सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय *(सम्यग्मिथ्यात्व)* आहारकद्विक इन चार प्रकृतियों की तथा अवशेष उद्वेलनप्रकृतियों की उद्वेलना मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होती है ॥६१२॥

उनका अनुक्रम कहते हैं –

सत्थत्तादाहारं पुव्वं उव्वेल्लदे तदो सम्मं ।
सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सगलोय ॥६१३॥

शस्तत्वादाहारं पूर्वमुद्वेल्लयति ततः सम्यक् ।
सम्यग्मिथ्यं तु तत एको विकलश्च सकलश्च ॥६१३॥

टीका – आहारकद्विक प्रशस्त प्रकृति है, इसलिए चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव पहले आहारकद्विक की उद्वेलना करते हैं, उसके पश्चात् सम्यक्त्वमोहनीय, उसके पश्चात् मिश्रमोहनीय उसके पश्चात् अवशेष देवद्विक आदि प्रकृतियों की उद्वेलना एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय करते हैं ॥६१३॥

उस उद्वेलना के अवसर का काल कहते हैं –

वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्तं ।
सम्मामिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्कं तु ॥६१४॥

वेदकयोग्ये काले आहारमुपशमस्य सम्यक्त्वं ।
सम्यग्मिथ्यं चैकस्मिन् विकले वैगूर्वषटकं तु ॥६१४॥

टीका – वेदकयोग्य काल में तो आहारकद्विक की उद्वेलना करता है; और उपशमकाल में सम्यक्त्वप्रकृति की और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की और एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय जीव वैक्रियिक षट्क की उद्वेलना करते हैं ॥६१४॥

उन दोनों काल का लक्षण कहते हैं –

उदधिपुधत्तं तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे ।
जावय सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥६१५॥

उदधिपृथक्त्वं तु त्रसे पल्यासंख्योनमेकमेकाक्षे ।
यावच्च सम्यं मिश्रं वेदकयोगश्च उपशमस्य ततः ॥६१५॥

टीका – सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय इनकी जो पहले स्थिति थी, वह सत्तारूप स्थिति त्रस के तो पृथक्त्व सागरप्रमाण अवशेष रहे और एकेन्द्रिय के पल्य

के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरप्रमाण अवशेष रहे, तब तक के काल को वेदकयोग्य काल कहते हैं और यदि उसके ऊपर सत्तारूप स्थिति कम हो जाये, तब उपशमयोग्य काल कहते हैं ॥६१५॥

आगे तेजस्कायिक, वायुकायिक के उद्वेलनप्रकृतियों को कहते हैं –

तेउदुणे मणुवदुगं उच्चं उव्वेल्लदे जहण्णिदरं ।
पल्लासंखेज्जदिमं उव्वेल्लणकालपरिमाणं ॥६१६॥

तेजोद्विके मनुष्यद्विकमुच्चमुद्वेल्ल्यते जघन्येतरत् ।
पल्यासंख्येयिममुद्वेल्लनकालपरिमाणं ॥६१६॥

टीका – तेजस्कायिक, वायुकायिक में मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र – ये तीन प्रकृतियां उद्वेलनरूप होती हैं । उस उद्वेलना करने के काल का प्रमाण जघन्य या उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण जानना । इतने काल द्वारा उनके सर्व स्थिति के निषेकों को उद्वेलनारूप करते हैं ॥६१६॥

वही कहते हैं –

पल्लासंखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण ।
संखेज्जसायरठिदिं पल्लासंखेज्जकालेण ॥६१७॥

पल्यासंख्येयिमां स्थितिमुद्वेल्लयति मुहूर्तांतरेण ।
संख्येयसागरस्थितिं पल्यासंख्येयकालेन ॥६१७॥

टीका – पहले जो बंधी थी ऐसी सत्तारूप स्थिति में से पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति को एक अंतर्मुहूर्त काल में उद्वेलना करते हैं, तो संख्यात सागर प्रमाण मनुष्यद्विकादि की सत्तारूप स्थिति को कितने काल में उद्वेलना करेगा ? यह प्रश्न होनेपर उसका उत्तर है कि पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण काल में उस सर्वस्थिति की उद्वेलना करते हैं । वही कहते हैं –

इस स्थिति के अग्रतन भाग में *(अंतिम भाग में)* पल्य के अर्धच्छेदों के

असंख्यातवें भागप्रमाण कांडक अधोगलनरूप अंतर्मुहूर्त से अधिक *(यहां कांडकरूप उद्वेलना के लिये एक अंतर्मुहूर्त काल लगता है, उतने काल में प्रतिसमय एक-एक निषेक अधोगलना द्वारा पररूप संक्रमण होकर खिर जाने द्वारा नष्ट होता है)* इसको तो प्रमाणराशि करना । उस कांडक का गिरना-उद्वेलनारूप होना उसका काल अंतर्मुहूर्त है, इसको फलराशि करना । सर्वस्थिति संख्यात सागर प्रमाण इसको इच्छाराशि करना । फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर पल्य के असंख्यातवें भाग ही लब्धराशि का प्रमाण होता है । यहां अंतर्मुहूर्त में जितनी स्थिति के निषेक उद्वेलनारूप किये, उसीका नाम कांडक जानना ॥६१७॥

आगे सम्यक्त्व की विराधना कितनी बार होती है ? वह कहते हैं –

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं ।
पल्लासंखेज्जदिमं वारं पडिवज्जदे जीवो ॥६१८॥

सम्यक्त्वं देशसंयतमनसंयोजनविधिं चोत्कृष्टं ।
पल्यासंख्येयं वारं प्रतिपद्यते जीवः ॥६१८॥

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, देशसंयत और अनंतानुबंधी के विसंयोजन का विधान – इन चार को जीव उत्कृष्टपने से पल्य के असंख्यातवें भाग के जितने समय हो उतनी बार छोड़कर ग्रहण करता है, पश्चात् नियम से सिद्धि पद को ही प्राप्त करता है ॥६१८॥

चत्तारि वारमुवसम सेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो ।
बत्तीसं वाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि ॥६१९॥

चतुरोवारानुपशमश्रेणिं समारोहति क्षपितकर्मांशः ।
द्वात्रिंशद्वारान् संयममुपलभ्य निर्वाति ॥६१९॥

टीका – उत्कृष्टपने से उपशमश्रेणी चार बार ही चढ़ता है, पश्चात् क्षय किये हैं कर्म के अंश जिसने – ऐसा होकर क्षपकश्रेणी ही चढ़ता है । पुनश्च सकलसंयम को उत्कृष्टपने से बत्तीस बार ही धारण करता है पश्चात् निर्वाण ही को प्राप्त करता है ॥६१९॥

तित्थाहाराणुभयं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये ।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवई ।। गो. कर्म -३३३।।

तीर्थाहारोभयं सर्वं तीर्थं न मिथ्यकादित्रये ।
तत्सत्त्वकर्मकाणां तद्गुणस्थानं न संभवति ।।

टीका – मिथ्यात्व गुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा तीर्थंकर, आहारकद्विक इन दोनों से सहित स्थान नहीं पाया जाता । या तो तीर्थंकर ही का सत्त्व होगा, या आहारकद्विक ही का सत्त्व होगा । परंतु नाना जीवों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि में दोनों का सत्त्व है । सासादन में तो नाना जीवों की अपेक्षा भी आहारक, तीर्थंकर सहित सत्त्वस्थान नहीं है । मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर सहित सत्त्वस्थान नहीं है, आहारक सहित है; क्योंकि उन कर्मों की सत्तावाले जीवों के वह गुणस्थान नहीं पाया जाता । वही कहते हैं –

तीर्थंकर, आहारक दोनों का सत्त्व होनेपर मिथ्यात्व का उदय नहीं होता । तीर्थंकर और आहारक में से एक का भी सत्त्व होनेपर मिथ्यात्व रहित अनंतानुबंधी का उदय *(सासादन)* नहीं होता । तीर्थंकर का सत्त्व होनेपर सम्यग्मिथ्यात्व का उदय नहीं होता । आहारकद्विक का सत्त्व होनेपर सम्यग्मिथ्यात्व का उदय हो सकता है ।।६१९।।

आगे चार गति की विवक्षा से गुणस्थानों में नामकर्म के सत्त्वस्थान लगाते हैं –

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि बाणउदी ।
सुरसम्मे णरणारय सम्मे मिच्छे य इगिणउदी ।।६२०।।

सुरनरसम्ये प्रथमं सासनहीनेषु भवति द्वानवतिः ।
सुरसम्ये नरनारक सम्ये मिथ्ये चैकनवतिः ।।६२०।।

टीका – तिरानबे का सत्त्वस्थान देव असंयत सम्यग्दृष्टि में और मनुष्य असंयतादि गुणस्थानों में पाया जाता है । बानबे का स्थान सासादन रहित चारों गतियों के जीवों में पाया जाता है । इक्यानबे का स्थान देव सम्यग्दृष्टि में तथा मनुष्य, नारकी सम्यग्दृष्टि में और मिथ्यादृष्टि में पाया जाता है ।।६२०।।

णउदी चदुग्गदिम्मि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे ।
अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्मि बासीदी ॥६२१॥

नवतिः चतुर्गतौ च त्रयोदशक्षपक इति तिर्यग्नरमिथ्ये ।
अष्टचतुरशीतिः सत्ता तिर्यग्मिथ्ये द्व्यशीतिः ॥६२१॥

टीका – नब्बे का स्थान अनिवृत्तिकरण में तेरह प्रकृतियों का क्षय होता है उसके नीचे सर्वत्र चारों गतियों के जीवों में पाया जाता है । पुनश्च अट्ठासी, चौरासी के दोनों स्थान तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि में ही पाये जाते हैं, क्योंकि 'सपदे उप्पण्णठाणेवि' इस गाथा से एकेन्द्रियादि में जहां देवद्विकादि की उद्वेलना होती है, वहां भी ऐसी सत्ता पायी जाती है । वह जीव मरकर तिर्यंच या मनुष्य में जहां उत्पन्न हो वहां भी ऐसी सत्ता पायी जाती है । पुनश्च बयासी का स्थान मिथ्यादृष्टि तिर्यंच में ही पाया जाता है, क्योंकि मनुष्यद्विक की उद्वेलना तेजस्कायिक, वायुकायिक के होती है । वहां ऐसी सत्ता होकर पश्चात् वह मरकर भी तिर्यंच में ही उपजता है, अन्यत्र नहीं, वहां ऐसी सत्ता होती है ॥६२१॥

सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु ।
गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं ॥६२२॥

अशीत्यादिकचतुःस्थानानि त्रयोदशक्षपकादनुपशामकेषु ।
गतयोगस्य द्विचरमं यावच्च चरमे दशनवकं ॥६२२॥

टीका – अस्सी से लेकर चार स्थान *(८०,७९, ७८, ७७)* तेरह प्रकृतियों के क्षय सहित अनिवृत्तिकरण से लेकर अयोगी के द्विचरम समय तक जानना । दस का और नौ का सत्त्व अयोगी के अंतिम समय में पाया जाता है ॥६२२॥

आगे इकतालीस जीवपदों में कहते हैं –

णिरये बाइगिणउदी णउदी भूआदिसव्वतिरियेसु ।
बाणउदी णउदी अडचउ बासीदी य होंति सत्ताणि ॥६२३॥

निरये द्व्येकनवतिर्नवतिर्भ्वादिसर्वतिर्यक्षु ।
द्वानवतिर्नवतिरष्टचतुर्द्व्यशीतिश्च भवंति सत्त्वानि ॥६२३॥

टीका – नामकर्म के सत्त्वस्थान नारकी में बानबे, इक्यानबे, नब्बे के – ये तीन हैं । पृथ्वीकायादि सर्व तिर्यंचों में बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी के पांच-पांच स्थान हैं ॥६२३॥

बासीदिं वज्जित्ता बारसठाणाणि होंति मणुवेसु ।
सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु ॥६२४॥

द्व्यशीतिं वर्जयित्वा द्वादशस्थानानि भवंति मानवेषु ।
अशीत्यादिचतु:स्थानानि षट्स्थानानि केवलिद्विकयो: ॥६२४॥

टीका – मनुष्य में बयासी के स्थान को छोड़कर अवशेष बारह सत्त्वस्थान हैं । सयोगकेवली में अस्सी आदि चार स्थान हैं (८०, ७९, ७८, ७७) । अयोगकेवली में अस्सी आदि छह स्थान हैं (८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९) ॥६२४॥

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे ।
तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्कं तु ॥६२५॥

समविषमस्थानानि च क्रमेण तीर्थेतरकेवलिनोर्भवेयु: ।
त्रिद्विनवतिराहारे देवे आदिमचतुष्कं तु ॥६२५॥

टीका – केवली में जो स्थान कहे सयोगी में चार और अयोगी में छह, उनमें तीर्थंकर सहित में समरूप और तीर्थंकर रहित में विषमरूप प्रकृति जानना। सयोगी में अस्सी, अठहत्तर के और अयोगी में अस्सी, अठहत्तर और दस के ऐसे सम गिनतीवाले स्थान तीर्थंकर के सत्त्व सहित हैं और सयोगी में उन्नासी, सतहत्तर के तथा अयोगी में उन्नासी, सतहत्तर और नौ के ऐसे ये विषम गिनतीवाले स्थान सामान्यकेवली के *(तीर्थंकर रहित के)* सत्त्वरूप हैं । आहारक *(पद)* में तिरानबे, बानबे के दो सत्त्वस्थान हैं । वैमानिक देवों में आदि के -चार- स्थान हैं ॥६२५॥

बाणउदिणउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीणं ।
हेट्ठिमपुढविचउक्क भवाणं च य सासणे णउदी ॥६२६॥

द्वानवतिनवतिसत्ता भवनत्रिकाणां च भोगभूमीनां ।
अधस्तनपृथिवीचतुष्कभवानां च च सासने नवतिः ॥६२६॥

टीका – भवनत्रिक देवों के, सर्व भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यंचो के, अंजनादि नीचे की चार पृथ्वी के *(चौथे से सातवें नारक के)* नारकियों के बानबे, नब्बे के दो ही सत्त्वस्थान हैं । सर्व ही सासादन गुणस्थानवर्ती जीवों के नब्बे का ही एक स्थान है ॥६२६॥

मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तठाणभंगा हु ।
भणिदा हु तिसंजोगे एत्तो भंगे परूवेमो ॥६२७॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां बंधोदयसत्त्वस्थानभंगा हि ।
भणिता हि त्रिसंयोगे इतो भंगान् प्ररूपयामः ॥६२७॥

टीका – मूलप्रकृतियों और उत्तरप्रकृतियों के बंध, उदय, सत्त्वरूप स्थान और भंग कहे । यहां से आगे बंध, उदय, सत्त्व इनके त्रिसंयोग में स्थान और भंगों का हम प्ररूपण करते हैं ॥६२७॥

वही कहते हैं –

अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा ।
एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अबंधम्मि ॥६२८॥

अष्टविधसप्तषट्बंधकेषु अष्टैव उदयकर्मांशाः ।
एकविधं त्रिविकल्प एकविकल्पोऽबंधे ॥६२८॥

टीका – मूलप्रकृतियां ज्ञानावरणादि के भेद से आठ प्रकार की हैं । वहां जिस जीव के आठ, सात या छह प्रकार की मूलप्रकृतियों का बंध होता है, उसके उदय और सत्त्व आठ-आठ प्रकार का ही जानना । जिसके एक प्रकार की मूलप्रकृति का बंध है उसके उदय सात प्रकार के, सत्त्व आठ प्रकार का; अथवा उदय और सत्त्व दोनों

सात-सात प्रकार के; या उदय और सत्त्व दोनों चार-चार प्रकार के पाये जाते हैं ।

पुनश्च जिसके एक भी मूलप्रकृति का बंध नहीं है, उसके उदय और सत्त्व दोनों चार-चार प्रकार के ही हैं ॥६२८॥

बंध	८	७	६	१	१	१	०
उदय	८	८	८	७	७	४	४
सत्ता	८	८	८	८	७	४	४

[***विशेषार्थ*** – *बंधस्थान – ७ का आयु बिना; ६ का आयु और मोहनीय बिना; १ मात्र वेदनीय;. उदयस्थान – ७ का मोहनीय बिना; ४ का अघाति कर्मों का ।*]

इनको गुणस्थानों में जोड़ते हैं –

मिस्से अपुव्वजुगले बिदियं अपमत्तओत्ति पढमदुगं ।
सुहुमादिसु तदियादि बंधोदयसत्तभंगेसु ॥६२९॥

मिश्रेऽपूर्वयुगले द्वितीयमप्रमत्त इति प्रथमद्विकं ।
सूक्ष्मादिषु तृतीयादिर्बंधोदयसत्त्वभंगेषु ॥६२९॥

टीका – उन बंध, उदय और सत्त्व के भंगों में गुणस्थानों के प्रति मिश्र में तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण में सात मूलप्रकृतियों का बंध और आठ का उदय, आठ का सत्त्व ऐसा दूसरा ही भंग पाया जाता है । मिश्र को छोड़कर अवशेष मिथ्यात्व से लेकर अप्रमत्त तक के छह गुणस्थानों में आठ-आठ ही का बंध, उदय, सत्तारूप प्रथम भंग तथा सात का बंध और आठ-आठ का उदय और सत्त्व ऐसा दूसरा भंग पाया जाता है । *(इनमें दोनों ही बंधस्थान होते हैं जब आयु बंध रही हो तब आठ का, जब नहीं तब सात का)* ।

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय से अयोगी तक में क्रम से तीसरे भंग से लेकर छह का बंध, आठ-आठ का उदय और सत्त्व; तथा एक का बंध, सात का उदय, आठ का सत्त्व; तथा एक का बंध, सात-सात का उदय और सत्त्व; तथा एक

का बंध, चार- चार का उदय और सत्त्व; तथा बंध का अभाव, चार-चार का उदय और सत्त्व — ऐसे यथासंभव भंग पाये जाते हैं ॥६२९॥

	मि	सा	मि	असं.	देश	प्रमत्त	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उप.	क्षीण	सयो.	अयो.
बंध	८|७	८|७	७	८|७	८|७	८|७	८|७	७	७	६	१	१	१	०
उदय	८|८	८|८	८	८|८	८|८	८|८	८|८	८	८	८	७	७	४	४
सत्ता	८|८	८|८	८	८|८	८|८	८|८	८|८	८	८	८	८	७	४	४

आगे उत्तरप्रकृतियों में कहते हैं —

बंधोदयकम्मंसा णाणावरणांतरायिए पंच ।
बंधोपरमेवि तहा उदयंसा होंति पंचेव ॥६३०॥

बंधोदयकर्मांशा ज्ञानावरणांतरायियोः पंच ।
बंधोपरमेऽपि तथा उदयांशा भवंति पंचैव ॥६३०॥

टीका – ज्ञानावरण और अंतराय की पांच-पांच प्रकृतियां सूक्ष्मसाम्पराय तक बंध, उदय, सत्त्वरूप हैं । बंध का अभाव होनेपर उपशांतमोह, क्षीणमोह में उदय और सत्त्वरूप ही पांच-पांच प्रकृतियां हैं । यहां अंश नाम सत्त्व का जानना ॥६३०॥

ज्ञानावरण, अंतराय की गुणस्थानों में त्रिसंयोग रचना —

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
बंध	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०
उदय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
सत्ता	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५

बिदियावरणे णवबंधगेसु चदुपंचउदय णवसत्ता ।
छब्बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छडंसा य ॥६३१॥

उवरदबंधे चदुपंचउदय णव छच्च सत्त चदु जुगलं ।
तदियं गोदं आउं विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥६३२॥ जुम्मं

द्वितीयावरणे नवबंधकेषु चतु:पंचोदय: नवसत्ता ।
षड्वंधकेषु एवं तथा चतुर्बंधे षडंशाश्च ।।६३१।।

उपरतबंधे चतु:पंचोदयो नव षट् च सत्त्व चतुष्कं युगलं ।
तृतीय गोत्रमायुर्विभज्य मोहं परं वक्ष्ये ।।६३२।। युग्मं

टीका – दूसरा आवरण अर्थात् दर्शनावरण में नौ का जिनके बंध है, ऐसे मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थानवर्ती के उदय पांच का या चार का और सत्त्व नौ ही का जानना । पुनश्च छह का जिनके बंध पाया जाता है, ऐसे मिश्र गुणस्थान से दोनों श्रेणीरूप अपूर्वकरण के प्रथम भाग तक, उनके भी ऐसे ही उदय चार का या पांच का और सत्त्व नौ का है । पुनश्च चार का जिनके बंध है ऐसे अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर उपशमक-सूक्ष्मसाम्पराय तक और सोलह प्रकृतियों का क्षय करनेवाले क्षपक-अनिवृत्तिकरण तक के जीवों में उदय वैसे ही चार या पांच का है, सत्त्व नौ का है । पुनश्च सोलह प्रकृतियों का क्षय करनेवाले क्षपक से लेकर ऊपर सूक्ष्मसाम्पराय तक उदय तो वैसे ही और सत्त्व छह का है । जिनके बंध का अभाव हुआ है, उनके उदय वैसे ही चार या पांच का है और सत्त्व उपशांतमोह में नौ का, क्षीणमोह में द्विचरम समय तक छह का है । क्षीणमोह के अंतिम समय में उदय और सत्त्व दोनों ही चार-चार का है । अब वेदनीय, गोत्र, आयु के त्रिसंयोगी भंगों के विभाग द्वारा गुणस्थानों में कथन करके आगे मोहनीय के कहूँगा ।।६३१, ६३२।।

दर्शनावरण की त्रिसंयोग रचना –

	मि	सा	मिश्र	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू. उप.	अपू. क्ष	अनि. उ	अनि. क्ष	सू. उ	सू. क्ष	उ. मो.	क्षी. मो.	
बंध	९	९	६	६	६	६	६	६|४	६|४	४	४	४	४	०	०	०
उदय	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४|५	४
सत्ता	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९|६	९	६	९	६	४

सादासादेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे ।
दोसत्तं जोगित्ति य चरिमे उदयागदं सत्तं ।।६३३।।

छट्ठोत्ति चारि भंगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे ।
चउभंगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स ।।६३४।। जुग्मं

सातासातैकतरं बंधोदयौ भवतः संभवस्थाने ।
द्विसत्त्वं योगीति च चरमे उदयागतं सत्त्वं ॥६३३॥

षष्ठ इति चत्वारो भंगा द्वौ भंगौ भवतो यावद्योगिजिनं ।
चतुर्भंगा अयोगिजिने स्थानं प्रति वेदनीयस्य ॥६३४॥ युग्मं

टीका – साता और असाता में एक ही का बंध और उदय, योग्य स्थान में *(१ ले से ६ वें तक दोनों में से एक, ७ वें से आगे साता का ही बंध)* होता है तथा सत्त्व तो सयोगी तक दो-दो ही का है । अयोगी में जिसका उदय है, उसी का सत्त्व है; इसलिए गुणस्थानों में वेदनीय के भंग इसप्रकार हैं (१) छठवें प्रमत्तसंयत तक तो साता का बंध और उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (२) साता का बंध, असाता का उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (३) असाता का बंध, साता का उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (४) असाता का ही बंध और उदय, सत्त्व दोनों का – ऐसे चार भंग हैं ।

ऊपर के गुणस्थानों में सयोगी तक केवल साता ही का बंध है, इसलिए (१) साता ही का बंध और उदय, सत्त्व दोनों का वा (२) साता का बंध, असाता का उदय, सत्त्व दोनों का – ऐसे दो ही भंग हैं । पुनश्च अयोगी में बंध का तो अभाव है; इसलिए (१) साता का उदय, सत्त्व दोनों का; वा (२) असाता का उदय, सत्त्व दोनों का; वा (३) साता ही का उदय, साता ही का सत्त्व; वा (४) असाता ही का उदय, असाता ही का सत्त्व – ऐसे चार भंग हैं । *(तीसरा और चौथा भंग अंतिम समय में होता है)* ॥६३३, ६३४॥

आगे गोत्र के भंग कहते हैं –

णीचुच्चाणेकदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे ।
दोसत्ताजोगित्ति य चरिमे उच्चं हवे सत्तं ॥६३५॥

नीचोच्चयोरेकतरं बंधोदयौ भवतः संभवस्थाने ।
द्विसत्त्वमयोगीति च चरमे उच्चं भवेत्सत्त्वं ॥६३५॥

टीका – गोत्रद्विक के बंधरूप यथासंभव स्थान में उच्च या नीच में से एक ही का बंध और उदय होता है । सत्त्व अयोगी के द्विचरम समय तक दोनों का है । ऊपर *(अंतिम समय में)* एक उच्च ही का है ॥६३५॥

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्तं तु ।
सेसिगिवियले सयले णीचं च दुगं च सत्तं तु ॥६३६॥

उच्चोद्वेल्लिततेजसि वायौ च नीचमेव सत्त्वं तु ।
शेषैकविकले सकले नीचं च द्विकं च सत्त्वं तु ॥६३६॥

टीका – जिनके उच्चगोत्र की उद्वेलना हुयी है ऐसे तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के केवल नीचगोत्र ही का सत्त्व है । अवशेष एकेन्द्रियों, विकलेन्द्रियों, सकलेन्द्रियों के सत्त्व नीच ही का या दोनों का होता है ॥६३६॥

वही कहते हैं –

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु ।
उप्पण्णपढमकाले णीचं एयं हवे सत्तं ॥६३७॥

उच्चोद्वेल्लिततेजसि वायौ शेषे च विकलसकलेषु ।
उत्पन्नप्रथमकाले नीचमेकं भवेत्सत्त्वं ॥६३७॥

टीका – उच्चगोत्र की उद्वेलना युक्त तेजस्कायिकों और वायुकायिकों में एक नीचगोत्र ही का सत्त्व है । ऐसे तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव मरकर जहां उत्पन्न होते हैं ऐसे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय तिर्यंचों में उपजने के समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक के प्रथम काल में एक नीचगोत्र ही का सत्त्व है । पश्चात् उच्चगोत्र को बांधते हैं, तब उनके दोनों का सत्त्व होता है ॥६३७॥

मिच्छादिगोदभंगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु ।
एक्केक्का जोगिजिणे दो भंगा होंति णियमेण ॥६३८॥

मिथ्यादौ गोत्रभंगाः पंच चत्वारः त्रिषु द्वौ अष्टस्थानेषु ।
एकैकाऽयोगिजिने द्वौ भंगौ भवंति नियमेन ॥६३८॥

टीका – नियम से गोत्र के भंग गुणस्थानों में कहते हैं – मिथ्यात्व में (१) नीच का बंध और उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (२) नीच का बंध, उच्च

का उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (३) उच्च का बंध और उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (४) उच्च का बंध, नीच का उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (५) नीच ही का बंध, उदय और सत्त्व – ऐसे पांच भंग हैं ।

सासादन में अंत का नीच ही का बंध, उदय, सत्त्वरूप भंग नहीं है, अवशेष चार हैं; क्योंकि तेजोद्विक *(तेजस्कायिक, वायुकायिक)* में सासादन नहीं है ।

मिश्रादिक तीन में (१) उच्च का बंध और उदय, सत्त्व दोनों का; अथवा (२) उच्च का बंध, नीच का उदय, सत्त्व दोनों का – ऐसे दो-दो भंग हैं ।

प्रमत्त से सूक्ष्मसाम्पराय तक के गुणस्थानों में उच्च ही का बंध, उच्च ही का उदय, सत्त्व दोनों का – ऐसा एक-एक ही भंग है । ऊपर सयोगी तक बंध का अभाव, उच्च का उदय, सत्त्व दोनों का – ऐसा ही एक भंग है । अयोगी में उच्च का उदय, सत्त्व दोनों का; या उच्च ही का उदय और सत्त्व – ऐसे दो भंग हैं ॥६३८॥

गोत्र के त्रिसंयोग भंग –

बंध	नी	नी	उ	उ	नी	०	०
उदय	नी	उ	उ	नी	नी	उ	उ
सत्त्व	२	२	२	२	नी	२	उ
भंग	*१*	*२*	*३*	*४*	*५*	*६*	*७*

[***विशेषार्थ*** : *गुणस्थान* — *भंग*

मिथ्यात्व — *१ से ५*

सासादन — *१ से ४*

मिश्र, असंयत, देशसंयत — *३ और ४*

प्रमत्त से सूक्ष्मसाम्पराय तक — *३ रा*

उपशांतमोह से सयोगी तक — *६ वां*

अयोगी द्विचरम समय तक — *६ वां और [illegible]*

अयोगी-अंतिम समय में — *मात्र ७ वां*]

आगे आयु के बंध तेरह गाथा सूत्रों द्वारा कहते हैं –

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स ।
णरतिरिया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥६३९॥

भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति ।
इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरियं ॥६४०॥ जुग्मं

सुरनिरया नरतिर्यंच षण्मासावशिष्टके स्वकायुषः ।
नरतिर्यंचः सर्वायूंषि त्रिभागशेषे उत्कृष्टं ॥६३९॥

भोगभूमा देवायुः षण्मासावशिष्टके च बध्नंति ।
एकविकला नरतिर्यंचं तेजोद्विकौ सप्तकाः तिर्यंचं ॥६४०॥ युग्मं

टीका – जिस उदयागत आयु को भोगते हैं, उस भुज्यमान आयु के उत्कृष्ट छह महिने अवशेष रहनेपर देव और नारकी मनुष्यायु और तिर्यंचायु को बांधते हैं, उस काल में बंधयोग्य होते हैं । मनुष्य और तिर्यंच उनके भुज्यमान आयु का तीसरा भाग अवशेष रहनेपर चारों आयु को बांधते हैं । भोगभूमिया जीव छह महिने अवशेष रहनेपर देवायु ही को बांधते हैं । एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय मनुष्यायु और तिर्यंचायु ही को बांधते हैं । तेजस्कायिक, वायुकायिक और सातवीं पृथ्वी के नारकी तिर्यंचायु को ही बांधते हैं ॥६३९, ६४०॥

इसतरह आयु का बंधविधान कहकर उदय, सत्त्व का विधान कहते हैं –

सगसगगदीणमाउं उदेदि बंधे उदिण्णगेण समं ।
दो सत्ता हु अबंधे एक्कं उदयागदं सत्तं ॥६४१॥

स्वकस्वकगतीनामायुरुदेति बंधे उदीर्णकेन समं ।
द्वे सत्त्वे हि अबंधे एकमुदयागतं सत्त्वं ॥६४१॥

टीका – नारकादिकों के अपनी-अपनी गति संबंधी ही एक आयु का उदय होता है । परभव की आयु का बंध होनेपर सत्त्व उदयागत आयु सहित दो आयु का है – एक बध्यमान, एक भुज्यमान । अबद्धायु के एक उदयरूप भुज्यमान आयु का ही सत्त्व है ॥६४१॥

एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे ।
अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसे व सव्वत्थ ॥६४२॥

एकस्मिन्नेकमायुरेकभवे बंधमेति योग्यपदे ।
अष्टवारं वा तत्रापि त्रिभागशेषे एवं सर्वत्र ॥६४२॥

टीका – एक जीव एक भव में एक ही आयु को बांधता है, वह भी योग्यकाल में, आठ बार ही बांधता है, वहां सर्वत्र तीसरा-तीसरा भाग अवशेष रहनेपर बांधता है ॥६४२॥

इगिवारं वज्जिता वड्ढी हाणी अवट्ठिदी होदी ।
ओवट्टणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं ॥६४३॥

एकवारं वर्जयित्वा वृद्धिर्हानिरवस्थितिर्भवति ।
अपवर्तनघातः पुनः परिणामवशेन जीवानां ॥६४३॥

टीका – आठ अपकर्षों में पहली बार को छोड़कर द्वितीयादि बार में पहली बार जो आयु बंधी थी, उसकी स्थिति की वृद्धि, हानि या अवस्थिति होती है ।

भावार्थ – पहले आयु की जो स्थिति बांधी थी, पश्चात् दूसरी बार, तीसरी बार आदि बांधेगा तब पहली स्थिति से अधिक, हीन या जितनी की उतनी स्थिति बांधता है । वहां यदि वृद्धि होती है तो पश्चात् जो अधिक स्थिति बंधी उसी की प्रधानता जानना । यदि हानि होती है तो पहले अधिक स्थिति बंधी थी उसकी प्रधानता जानना । पुनश्च आयुबंध करनेवाले जीवों के परिणामों के वश से अपवर्तन भी होता है । अपवर्तन का अर्थ है घटना इसको अपवर्तनघात कहते हैं, क्योंकि उदय प्राप्त आयु *(भुज्यमान आयु)* के अपवर्तन को कदलीघात कहते हैं ।

पुनश्च तीसरा भाग-तीसरा भाग अवशेष रहनेपर आयु बंधेगी ही ऐसा एकांत नियम नहीं है । उस काल में आयु के बंध होने की योग्यता होती है; वहां आयु बंधे अथवा न भी बंधे । परंतु अन्यकाल में *(त्रिभाग के सिवाय अन्य काल में)* आयु का बंध होता ही नहीं यह नियम है । अपकर्षों का वर्णन पहले कर चुके हैं, इसलिए यहां नहीं किया है ॥६४३॥

एवमबंधे बंधे उवरदबंधेवि होंति भंगा हु ।
एक्कस्सेक्कम्मि भवे एक्काउं पडि तये णियमा ॥६४४॥

एवमबंधे बंधे उपरतबंधेऽपि भवंति भंगा हि ।
एकस्यैकस्मिन् भवे एकायुः प्रति त्रयो नियमात् ॥६४४॥

टीका – इसतरह पूर्वोक्त रीति से बंध, अबंध और उपरतबंध के भेद से एक जीव के एक पर्याय *(भव)* में एक आयु के नियम से तीन भंग *(भेद)* होते हैं । वर्तमानकाल में जहां परभव संबंधी आगामी आयु का बंध हो रहा है, वहां बंध आगामी आयु एक, उदय भुज्यमान आयु एक, सत्त्व भुज्यमान और बध्यमान दो आयु का पाया जाता है उसे बंध कहते हैं ।

यदि आगामी आयु का बंध अतीतकाल में नहीं हुआ है, वर्तमानकाल में भी नहीं हो रहा है, वहां बंध का अभाव है और उदय, सत्त्व एक भुज्यमान का ही पाया जाता है, उसे अबंध कहते हैं ।

जहां आगामी आयु का पहले बंध हो गया है और वर्तमानकाल में बंध नहीं हो रहा है, वहां बंध का अभाव, उदय भुज्यमान आयु एक का, तथा सत्त्व पूर्वबद्ध और भुज्यमान आयु दो का होता है, उसे उपरतबंध कहते हैं – इसतरह एक-एक आयु के प्रति तीन-तीन भंग जानना ।

एक्काउस्स तिभंगा संभवआऊहिं ताडिदे णाणा ।
जीवे इगिभवभंगा रूऊणगुणूणमसरित्थे ॥६४५॥

एकायुषस्त्रिभंगाः संभवायुर्भिस्ताडिते नाना ।
जीवेषु एकभवभंगा रूपोनगुणोनमसदृशे ॥६४५॥

टीका – इन एक-एक आयु के तीन-तीन भंगों को विवक्षित गति में जितनी आगामी आयु का बंध पाया जाता है, उस संख्या से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने नाना जीवों की अपेक्षा एक-एक भव संबंधी भंग होते हैं । सो नरकगति और देवगति में तो तिर्यंच और मनुष्य दो आयु का ही बंध पाया जाता है ।

इसलिए दो से उन तीन भंगों को गुणा करनेपर छह-छह भंग होते हैं । मनुष्यगति और तिर्यंचगति में चारों आयु का बंध पाया जाता है; इसलिए चार से उन तीनों भंगों को गुणा करनेपर बारह-बारह भंग होते हैं ।

पुनश्च असदृश अर्थात् अपुनरुक्त भंगों की विवक्षा होनेपर बध्यमान आयु की संख्यारूप जो गुणकार कहा था, उसमें से एक घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतना पूर्वोक्त भंगों में से घटानेपर अपुनरुक्त भंग होते हैं । देवगति, नरकगति में बध्यमान आयु दो का गुणकार था, उसमें से एक घटानेपर एक रहा । पूर्वोक्त छह-छह भंगों में से एक-एक घटानेपर पांच-पांच अपुनरुक्त भंग होते हैं । वे कहते हैं –

नरकगति में बंध एक मनुष्यायु, उदय एक नरकायु, सत्ता दो मनुष्यायु, नरकायु अथवा बंध एक तिर्यंचायु, उदय एक नरकायु, सत्ता दो तिर्यंचायु, नरकायु । इसतरह बंध की अपेक्षा दो भंग हैं । इसीतरह देवगति में नरकायु की जगह देवायु कहना । अबंध की अपेक्षा मनुष्यायु, तिर्यंचायु का बंध नहीं – ऐसे दो भंग हैं, परंतु दोनों समान हैं; क्योंकि दोनों में बंध का अभाव है, उदय स्वकीय भुज्यमान आयु का है और सत्ता एक स्वकीय भुज्यमान आयु की है, इसलिए इन दोनों में एक ही भंग का ग्रहण किया । उपरतबंध की अपेक्षा मनुष्यायु या तिर्यंचायु का बंध पहले हुआ उसकी अपेक्षा दो-दो भंग हैं । दोनों में बंध का अभाव, उदय एक स्वकीय भुज्यमान आयु का तथा सत्ता एक भंग में स्वकीय भुज्यमान आयु और मनुष्यायु; दूसरे भंग में स्वकीय भुज्यमान आयु और तिर्यंचायु ऐसे दो भंग हुये ।

इसतरह देव और नारक में पांच-पांच अपुनरुक्त भंग जानना ।

इसीतरह मनुष्यगति, तिर्यंचगति में बध्यमान आयु के प्रमाणरूप चार का गुणकार था, उसमें से एक घटानेपर तीन रहे, इसलिए पूर्वोक्त बारह-बारह भंगों में से तीन-तीन घटानेपर नौ-नौ अपुनरुक्त भंग होते हैं । वहां आयुबंध की अपेक्षा नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव के बंध से चार भंग हैं – उनमें बंध तो क्रम से नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु का जानना । उदय तिर्यंचगति में तिर्यंचायु का, मनुष्यगति में मनुष्यायु का जानना । सत्ता एक भुज्यमान आयु, एक बध्यमान आयु ऐसे दो-दो की

जानना । उनमें भी यदि जो आयु भुज्यमान है वही बध्यमान हो तो एक ही आयु की सत्ता जानना – ऐसे चार भंग हैं ।

पुनश्च आयु के अबंध में चार गति *(संबंधी आयु)* का बंध नहीं इस अपेक्षा चार भंग होते हैं, परंतु ये चारों समान हैं, क्योंकि सभी में बंध का अभाव है, उदय और सत्ता भुज्यमान स्वकीय आयु एक की है, इसलिए चारों में एक ही भंग का ग्रहण किया । पुनश्च उपरतबंध की अपेक्षा भी चार आयु द्वारा चार भंग हैं । उनमें बंध का अभाव है, उदय और सत्ता जैसे बंध की अपेक्षा कही वैसे ही जानना – ऐसे चार भंग हैं । इसप्रकार मनुष्य, तिर्यंच में अपुनरुक्त नौ-नौ भंग जानना ॥६४५॥

पण णवणव पण भंगा आउचउक्केसु होंति मिच्छम्मि ।
णिरयाउबंधभंगेणूणा ते चेव बिदियेगुणे ॥६४६॥

पंच नव नव पंच भंगा आयुश्चतुष्केषु भवंति मिथ्ये ।
निरयायुर्बंधभंगेनोनास्ते चैव द्वितीयगुणे ॥६४६॥

टीका – वे अपुनरुक्त भंग मिथ्यादृष्टि में नरकादिक गतियों में क्रम से पांच, नौ, नौ, पांच जानना । दूसरे सासादन गुणस्थान में मनुष्य, तिर्यंच में आयु बंध की अपेक्षा जो चार भंग कहे थे, उनमें से नरकायु के बंधरूप भंग यहां नहीं है; इसलिए नरकादि गतियों में क्रम से पांच, आठ, आठ, पांच भंग जानना ॥६४६॥

ना	ति	म	दे
५|५	८|९	८|९	५|५

सव्वाउबंधभंगेणूणा मिस्सम्मि अयदसुरणिरये ।
णरतिरिये तिरियाऊ तिण्णाउगबंधभंगूणा ॥६४७॥

सर्वायुर्बंधभंगेनोना मिश्रे अयतसुरनिरये ।
नरतिरश्चि तिर्यगायुस्त्रिकायुष्कबंधभंगोना: ॥६४७॥

टीका – आयु बंध की अपेक्षा जो बंध कहे थे उनको घटानेपर मिश्र गुणस्थान में नरकादिक गतियों में क्रम से तीन, पांच, पांच, तीन भंग हैं । देवगति, नरकगति में असंयत में आयुबंध की अपेक्षा तिर्यंचायु के बंधरूप भंग नहीं है; इसलिए चार-चार भंग हैं । मनुष्यगति, तिर्यंचगति में असंयत में आयुबंध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु के बंधरूप तीन भंग नहीं हैं, इसलिए छह-छह भंग हैं; क्योंकि इनके बंध का सासादन में ही व्युच्छेद हुआ ॥६४७॥

देस णरे तिरिये तिय तियभंगा होंति छट्ठसत्तमगे ।
तियभंगा उवसमगे दो दो खवगेसु एक्केक्को ॥६४८॥

देशे नरे तिरश्चि त्रिक त्रिक भंगा भवंति षष्ठसप्तमके ।
त्रिभंगा उपशमके द्वौ द्वौ क्षपकेष्वेकैक : ॥६४८॥

टीका – तिर्यंच, मनुष्य में देशसंयत में बंध, अबंध, उपरतबंध की अपेक्षा एक देवायु द्वारा तीन-तीन भंग हैं । छठवें, सातवें गुणस्थान में मनुष्य में ही बंध, अबंध, उपरतबंध की अपेक्षा एक देवायु ही द्वारा तीन-तीन भंग हैं । उपशमश्रेणी में देवायु का भी बंध नहीं है, इसलिए देवायु के अबंध और उपरतबंध की अपेक्षा दो-दो भंग हैं । क्षपकश्रेणी में उपरतबंध भी नहीं है, इसलिए अबंध की अपेक्षा एक-एक ही भंग है ॥६४८॥

आगे गुणस्थानों में कहे हुये सर्व गति संबंधी आयु के भंगों का जोड़ कहते हैं –

अडछव्वीसं सोलस वीसं छत्तिगतिगं च चदुसु दुगं ।
असरिसभंगा तत्तो अजोगिअंतेसु एक्केक्को ॥६४९॥

अष्टषड्विंशति: षोडश विंशति: षट् त्रिकत्रिकं च चतुर्षु द्विकं ।
असदृशभंगास्ततोऽयोग्यंतेष्वेकैक: ॥६४९॥

टीका – असदृश अर्थात् अपुनरुक्त भंग मिलकर इसप्रकार हैं –

मिथ्यात्व में अट्ठाइस, सासादन में छब्बीस, मिश्र में सोलह, असंयत में बीस, देशसंयत में छह, प्रमत्त-अप्रमत्त में तीन-तीन, उपशम श्रेणीवालों में दो-दो, क्षपक श्रेणीवाले से अयोगी तक प्रत्येक में एक-एक जानना ॥६४९॥

[*विशेषार्थ :*

	ना	ति	म	दे	जोड़
मि	५	९	९	५	२८
सा	५	८	८	५	२६
मिश्र	३	५	५	३	१६
असं	४	६	६	४	२०
देश		३	३		६
प्र			३		३
अप्र			३		३
अपू उपशमक			२		
अनि उपशमक			२		
सू उपशमक			२		
उप उपशमक			२		

अपू क्षपक	१
अनि क्षपक	१
सू क्षपक	१
क्षी क्षपक	१
स	१
अ	१

]

आगे वेदनीय, आयु, गोत्र के मिथ्यात्वादि सर्व गुणस्थानों में कितने-कितने भंग हुये, वह कहते हैं –

बादालं पणुवीसं सोलसअहियं सयं च वेयणिये ।
गोदे आउम्मि हवे मिच्छादिअजोगिणो भंगा ॥६५०॥

द्वाचत्वारिंशत् पंचविंशतिः षोडशाधिकं शतं च वेदनीये ।
गोत्रे आयुषि भवेयुर्मिथ्याद्ययोगिनो भंगाः ॥६५०॥

टीका – पहले मिथ्यात्व से अयोगकेवली तक के गुणस्थानों में जो भंग कहे, उनका जोड़ देनेपर वेदनीय के बयालीस, गोत्र के पच्चीस, आयु के एक सौ सोलह भंग होते हैं ॥६५०॥

आगे पूर्व में कहे हुये वेदनीय, गोत्र, आयु के सामान्यपने मूलभंगों की संख्या कहते हैं –

वेयणिये अडभंगा गोदे सत्तेव होंति भंगा हु ।
पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु विसरित्था ॥६५१॥

वेदनीये अष्ट भंगा गोत्रे सप्तैव भवंति भंगा हि ।
पंच नव नव पंच भंगा आयुश्चतुष्केषु विसदृशाः ॥६५१॥

टीका – उन पूर्वोक्त भंगों में अपुनरुक्त मूलभंग वेदनीय में आठ, गोत्र में सात, चारों आयु में क्रम से पांच, नौ, नौ, पांच जानना ॥६५१॥

आगे मोहनीय के त्रिसंयोगरूप भंगों को कहते हैं –

मोहस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु ।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ ॥६५२॥

मोहस्य च बंधोदयसत्त्वस्थानानां सर्वभंगा हि ।
प्रत्येकोक्तं व भवंति त्रिकसंयोगेऽपि सर्वत्र ॥६५२॥

टीका – मोहनीय के बंध, उदय, सत्त्व स्थानों में सर्व भंग जैसे पहले बंध, उदय, सत्ता का जुदा-जुदा कथन करते हुये कहे थे, वैसे ही बंध, उदय, सत्त्व के संयोगरूप त्रिसंयोग में भी भंग होते हैं ॥६५२॥

आगे गुणस्थानों में मोह के स्थानों की संख्या कहते हैं –

अट्ठसु एक्को बंधो उदया चदुतिदुसु चउसु चत्तारि ।
तिण्णि य कमसो सत्तं तिण्णेगदु चउसु पणग तियं ॥६५३॥

अणियट्टीबंधतियं पणदुगएक्कारसुहुमउदयंसा ।
इगि चत्तारि य संते सत्तं तिण्णेव मोहस्स ॥६५४॥ जुग्मं

अष्टसु एको बंध उदयाः चत्वारस्त्रयः द्वयोश्चतुर्षु चत्वारः ।
त्रीणी च क्रमशः सत्त्वं त्रयेकद्विक पंचकं त्रिकं ॥६५३॥

अनिवृत्तिबंधत्रिकं पंचद्विकैकादश सूक्ष्मोदयांशाः ।
एकश्चत्वारश्च शांते सत्त्वं त्रीण्येव मोहस्य ॥६५४॥ युग्मं

टीका – पहले मोहनीय के जो बंध, उदय, सत्त्व के स्थान कहे थे, उनमें से

आदि के आठ गुणस्थानों में यथासंभव बंधस्थान तो एक-एक ही है । उदयस्थान आदि के गुणस्थान में चार, उसके ऊपर दो गुणस्थानों में तीन-तीन *(सासादन, मिश्र)*, ऊपर के चार गुणस्थान में *(४ थे से ७ वें तक)* चार-चार; एक में *(८ वें में)* तीन जानना । पुनश्च सत्त्वस्थान क्रम से मिथ्यात्व में तीन, सासादन में एक, मिश्र में दो, ऊपर के चार गुणस्थानों में पांच-पांच, एक में *(उपशमक ८ वें में)* तीन जानना । अनिवृत्तिकरण में बंध, उदय और सत्त्वस्थान अनुक्रम से पांच *(५, ४, ३, २, १ के स्थान)* दो *(वेद और एक कषाय)* और ग्यारह *(२८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १)* जानना । सूक्ष्मसाम्पराय में बंधस्थान का अभाव, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान चार *(२८, २४, २१, १)* जानना । उपशांतमोह में बंधस्थान और उदयस्थान नहीं है, सत्त्वस्थान ही तीन *(२८, २४, २१)* पाये जाते हैं ॥६५३, ६५४॥

वे स्थान कौनसे हैं वह कहते हैं –

बावीसं दसयचऊ अडवीसतियं च मिच्छबंधादी ।
इगिवीसं णवयतियं अट्ठावीसे च बिदियगुणे ॥६५५॥

द्वाविंशतिः दशकचतुष्कमष्टाविंशति त्रिकं च मिथ्ये बंधादिः ।
एकविंशतिर्नवकत्रिकमष्टाविंशतिश्च द्वितीयगुणे ॥६५५॥

टीका – मिथ्यादृष्टि का बंधस्थान एक बाइस का ही है, उदयस्थान दस से लेकर चार हैं *(१०, ९, ८, ७)* सत्त्वस्थान अट्ठाइस से लेकर तीन हैं *(२८, २७, २६)* । सासादन में बंधस्थान एक इक्कीस का ही है; उदयस्थान नौ से लेकर तीन हैं *(९, ८, ७)*; सत्त्वस्थान अट्ठाइस ही का है ॥६५५॥

सत्तरसं णवयतियं अडचउवीसं पुणोवि सत्तरसं ।
णवचउ अडचउवीस य तिवीसतियमंसयं चउसु ॥६५६॥

सप्तदश नवकत्रयमष्टचतुर्विंशं पुनरपि सप्तदश ।
नवचतुष्कमष्टचतुर्विंशं च त्रयोविंशत्रयमंशकं चतुर्षु ॥६५६॥

टीका – मिश्र में बंधस्थान एक सत्रह ही का है; उदयस्थान नौ से लेकर

तीन हैं *(९, ८, ७)*; सत्त्वस्थान अट्ठाइस का और चौबीस का – दो हैं । असंयत में बंधस्थान सत्रह का एक ही है; उदयस्थान नौ से लेकर चार हैं *(९, ८, ७, ६)*; सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस के दो और तेइस से लेकर तीन *(२३, २२, २१)* – ऐसे पांच हैं । ये ही पांच सत्त्वस्थान अप्रमत्त तक जानना ॥६५६॥

तेरट्ठचऊ देसे पमदिदरे णव सगादिचत्तारि ।
तो णवगं छादितियं अडचउरिगिवीसयं च बंधतियं ॥६५७॥

त्रयोदशाष्टचतुष्कं देशे प्रमत्तेतरयोर्नव सप्तकादिचत्वारि ।
अतो नवकं षडादित्रयमष्टचतुरेकविंशकं च बंधत्रयं ॥६५७॥

टीका – देशसंयत में बंधस्थान तेरह का एक ही है; उदयस्थान आठ से लेकर चार हैं *(८, ७, ६, ५)*; सत्त्वस्थान पांच हैं । प्रमत्त, अप्रमत्त में बंधस्थान एक नौ का ही है; उदयस्थान सात से लेकर चार हैं; सत्त्वस्थान पांच हैं । अपूर्वकरण में बंधस्थान नौ का एक ही है; उदयस्थान छह से लेकर तीन् हैं *(६, ५, ४)*; सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के तीन हैं । क्षपक में इक्कीस ही का है ॥६५७॥

पंचादिपंचबंधो णवमगुणे दोण्णि एक्कमुदयो दु ।
अट्ठचदुरेक्कवीसं तेरादीअट्ठयं सत्तं ॥६५८॥

पंचादिपंचबंधो नवमगुणे द्वौ एक उदयस्तु ।
अष्टचतुरेकविंशं त्रयोदशाद्यष्टकं सत्त्वं ॥६५८॥

टीका – नौवें गुणस्थान में बंधस्थान पांच से लेकर पांच हैं *(५, ४, ३, २, १)*; उदयस्थान दो और एक प्रकृतिरूप दो हैं; सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के तीन हैं । क्षपकश्रेणीवाले के सत्त्वस्थान तेरह से लेकर आठ हैं *(१३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १)*, ऊपर मोह के बंध का अभाव है *(१० वें में)*, इसलिए उदय और सत्त्व दो ही कहना ॥६५८॥

लोहेक्कुदओ सुहुमे अडचउरिगिवीसमेक्कयं सत्तं ।
अडचउरिगिवीसंसा संते मोहस्स गुणठाणे ॥६५९॥

लोभैकोदयः सूक्ष्मे अष्टचतुरेकविंशमेकं सत्त्वं ।
अष्टचतुरेकविंशांशाः शांते मोहस्य गुणस्थाने ॥६५९॥

टीका – सूक्ष्मसाम्पराय में उदयस्थान एक सूक्ष्मलोभरूप ही है; सत्त्वस्थान उपशामक के अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के तीन तथा क्षपक के एक प्रकृतिरूप एक है । ऊपर *(११ वें में)* मोह का उदय नहीं है, सत्त्व ही है । उपशांतमोह में सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के तीन जानना । ऊपर *(१२ वें में)* मोह का सत्त्व नहीं है ॥६५९॥

आगे मोहनीय के बंध, उदय, सत्त्वस्थान के त्रिसंयोग में विशेष कहते हैं –

बंधपदे उदयंसा उदयट्ठाणेवि बंध सत्तं च ।
सत्ते बंधुदयपदं इगिअधिकरणे दुगाधेज्जं ॥६६०॥

बंधपदे उदयांशा उदयस्थानेऽपि बंधः सत्त्वं च ।
सत्त्वे बंधोदयपदमेकाधिकरणे द्विकाधेयं ॥६६०॥

टीका – बंधस्थान में उदयस्थान, सत्त्वस्थान-दो, उदयस्थान में बंधस्थान, सत्त्वस्थान-दो, तथा सत्त्वस्थान में बंधस्थान, उदयस्थान-दो ऐसे एक अधिकरण में दो आधेय होते हैं ।

जिसमें कहना हो उसे अधिकरण या आधार कहते हैं, उस अधिकरण में जिसको कहना हो, उसको आधेय कहते हैं । जहां इतनी-इतनी प्रकृतियों का बंध होता हो वहां उदय इतनी-इतनी प्रकृतियों का होता है और सत्त्व इतनी-इतनी प्रकृतियों का होता है – ऐसा जहां कथन करते हैं, वहां बंध तो अधिकरण हुआ और उदय, सत्त्व आधेय हुये । इसीतरह जहां उदयस्थान में बंधस्थान, सत्त्वस्थान कहते हैं, वहां उदयस्थान तो अधिकरण और बंधस्थान, सत्त्वस्थान आधेय जानना । सत्त्वस्थान में जहां बंधस्थान, उदयस्थान कहते हैं, वहां सत्त्वस्थान अधिकरण और बंधस्थान, उदयस्थान आधेय जानना ॥६६०॥

बावीसयादिबंधेसुदयंसा चदुतितिगिचउपंच ।
तिसु इगि छद्दो अट्ठ य एक्कं पंचेव तिट्ठाणे ॥६६१॥

द्वाविंशकादिबंधेषूदयांशश्चतुस्त्रित्रिकैकचतुः पंच ।
त्रिष्वेकः षट् द्वौ अष्ट च एकः पंचैव त्रिस्थाने ॥६६१॥

टीका – वहां प्रथम ही बंधस्थान में उदयस्थान, सत्त्वस्थान कहते हैं । बाइस आदि के बंधस्थानों में से प्रथम बाइस के स्थान में उदयस्थान चार *(१०, ९, ८, ७)* और सत्त्वस्थान तीन *(२८, २७, २६)* हैं । दूसरे बंधस्थान में *(२१ का सासादन में)* उदयस्थान तीन *(९, ८, ७)* और सत्त्वस्थान एक *(२८)* है । ऊपर के तीन बंधस्थानों में *(१७ का मिश्र, असंयत में; १३ का देशसंयत में; ९ का प्रमत्त, अप्रमत्त में)* उदयस्थान चार-चार *(असंयत में ९, ८, ७, ६; देशसंयत में ८, ७, ६, ५; प्रमत्त, अप्रमत्त में ७, ६, ५, ४)*; तथा सत्त्वस्थान पांच-पांच हैं *(२८, २४, २३, २२, २१)* । ऊपर एक बंधस्थान में *(५ का अनिवृत्तिकरण में)* उदयस्थान एक *(२ का)*, सत्त्वस्थान छह हैं । अन्य एक बंधस्थान *(४ का)* में उदयस्थान दो, सत्त्वस्थान आठ हैं । तीन बंधस्थानों में *(३ का, २ का, १ का)* उदयस्थान एक, सत्त्वस्थान पांच हैं ॥६६१॥

दसयचऊ पढमतियं णवतियमडवीसयं णवादिचऊ ।
अडचदुतिदुइगिवीसं अडचदु पुरवं व सत्तं तु ॥६६२॥

दशकचतुष्कं प्रथमत्रिकं नवत्रिकमष्टाविंशकं नवादिचतुष्कं ।
अष्टचतुस्त्रिद्व्येकविंशमष्टचतुष्कं पूर्वं व सत्त्वं तु ॥६६२॥

टीका – वहां बाइस के बंधस्थान में उदयस्थान दस के स्थान से लेकर चार हैं । सत्त्वस्थान अट्ठाइस का स्थान आदि तीन स्थान हैं ।

भावार्थ – जिस जीव के जिस काल में बाइस का बंध है, उसके उदय दस का पाया जाता है अथवा नौ का या आठ का या सात का भी पाया जाता है । तथा सत्त्व अट्ठाइस का या सत्ताइस का या छब्बीस का पाया जाता है – इसीतरह आगे भी कथन जान लेना । इक्कीस के बंधस्थान में उदयस्थान नौ का आदि तीन स्थान हैं; सत्त्वस्थान एक अट्ठाइस का ही है । सत्रह के बंधस्थान में उदयस्थान नौ का आदि चार हैं; सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस, इक्कीस के पांच हैं । तेरह के बंधस्थान में उदयस्थान आठ का आदि चार हैं, सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पांच हैं ॥६६२॥

सगचउ पुव्वं वंसा दुगमडचउरेक्कवीस तेरतियं ।
दुगमेक्कं च य सत्तं पुव्वं वा अत्थि पणगदुगं ॥६६३॥

सप्तचतुष्कं पूर्वं वांशा द्विकमष्टचतुरेकविंशं त्रयोदशत्रयं ।
द्विकमेकं च च सत्त्वं पूर्वं वा अस्ति पंचकद्विकं ॥६६३॥

टीका – नौ के बंधस्थान में उदयस्थान सात का आदि चार हैं, सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पांच हैं । पांच के बंधस्थान में उदयस्थान दो प्रकृति का एक ही स्थान है; सत्त्वस्थान उपशमक के अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के तीन और क्षपक के तेरह के आदि तीन हैं – ऐसे छह हैं *(२८, २४, २१, १३, १२, ११)* । चार के बंधस्थान में उदयस्थान दो प्रकृतिरूप और एक प्रकृतिरूप दो हैं, सत्त्वस्थान पूर्वोक्त छह तथा पांच का आदि दो ऐसे आठ हैं *(२८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४)* ॥६६३॥

तिसु एक्केक्कं उदओ अडचउरिगिवीससत्तसंजुत्तं ।
चदुतिदयं तिदयदुगं दो एक्कं मोहणीयस्स ॥६६४॥

त्रिषु एकैक उदयोऽष्ट चतुरेकविंशसत्त्वसंयुक्तं ।
चतुस्त्रितयं त्रितयद्विकं द्वे एकं मोहनीयस्य ॥६६४॥

टीका – तीन, दो, एक प्रकृतिरूप तीन बंधस्थानों में उदयस्थान एक प्रकृतिरूप ही है; सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस तीन *(उपशमक में)* तथा *(क्षपक में)* तीन के बंधस्थान में चार का और तीन का सहित पांच हैं; दो के बंधस्थान में तीन के, दो के सहित पांच हैं; एक के बंधस्थान में दो का, एक का सहित पांच सत्त्वस्थान हैं। ये बंधस्थान अधिकरण और उदयस्थान, सत्त्वस्थान आधेयरूप भंग हैं । वे गुणस्थान की विवक्षा से कहते हैं तथापि उन-उन प्रकृतियों की बंध और उदय की व्युच्छिति और क्षपणा-उद्वेलना द्वारा सत्त्व की व्युच्छिति को याद कर जानना ॥६६४॥

आगे उदयस्थान अधिकरण और बंध, सत्त्व, आधेय ऐसा भंग कहते हैं –

दसयादिसु बंधंसा इगितिय तियछक्क चारिसत्तं च ।
पणपण तियपण दुगपण इगितिग दुगछच्चऊणवयं ॥६६५॥

दशकादिषु बंधांशा एकत्रिकं त्रिकषट्कं चतुःसप्त च ।
पंचपंच त्रिकपंच द्विकपंच एकत्रिकं द्विकषट् चतुर्नवकं ॥६६५॥

टीका – दस का आदि जो उदयस्थान उनमें अनुक्रम से बंधस्थान और सत्त्वस्थान क्रम से एक, तीन और तीन, छह और चार, सात और पांच, पांच और तीन, पांच और दो, पांच और एक, तीन, और दो, छह और चार, नौ जानना ॥६६५॥

वे कौनसे हैं ? वह कहते हैं –

पढमं पढमतिचउपण सत्तरतिग चदुसु बंधयं कमसो ।
पढमतिछस्सगमडचउ तिदुइगिवीसंसयं दोसु ॥६६६॥

प्रथमं प्रथमत्रिचतुः पंच सप्तदशत्रिकं चतुर्षु बंधकं क्रमशः ।
प्रथमत्रिषट्सप्त अष्टचतुस्त्रिद्विकैकविंशांशकं द्वयोः ॥६६६॥

टीका -- दस का आदि पांच उदयस्थान *(१०, ९, ८, ७, ६)* उनमें से पहले में *(१० के उदयस्थान में)* बंधस्थान बाइस का है – जिस जीव के जिस काल में दस प्रकृतियों का उदय है, उसके उस काल में बाइस ही का बंध है, ऐसे ही और भी जान लेना । दूसरे में *(९ के उदयस्थान में)* बंधस्थान बाइस का आदि तीन हैं *(२२, २१, १७)* । तीसरे में *(८ के उदयस्थान में)* बाइस का आदि चार *(बंधस्थान)* हैं *(२२, २१, १७, १३)* । चौथे में *(७ के उदयस्थान में)* बाइस का आदि पांच *(बंधस्थान)* हैं *(२२, २१, १७, १३, ९)* । पांचवें में *(६ के उदयस्थान में)* सत्रह का आदि तीन *(बंधस्थान)* हैं *(१७, १३, ९)* ।

(अब सत्त्वस्थान कहते हैं ।) पहले उदयस्थान में *(१० के)* सत्त्वस्थान अट्ठाइस का आदि तीन हैं *(२८, २७, २६)* । जिस काल में दस का उदय है, उस काल में किसी के अट्ठाइस का, किसी के सत्ताइस का, किसी के छब्बीस का सत्त्व पाया जाता है – ऐसे अन्यत्र भी जानना । दूसरे में *(९ के उदयस्थान में)* अट्ठाइस का आदि छह *(सत्त्वस्थान)* हैं *(२८, २७, २६, २४, २३, २२)* । तीसरे में *(८ के उदयस्थान में)* अट्ठाइस का आदि सात *(सत्त्वस्थान)* हैं *(२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१)* । चौथे में और पांचवें में *(७ के और ६ के उदयस्थानों में)* इन दो में अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस, इक्कीस के पांच-पांच *(सत्त्वस्थान)* हैं ॥६६६॥

तेरदु पुव्वं वंसा णवमडचउरेक्कवीससत्तमदो ।
पणदुगमडचउरेक्कावीसं तेरसतियं सत्तं ॥६६७॥

त्रयोदशद्विकं पूर्वं वांशा नवममष्टचतुरेकविंशसत्त्वमतः ।
पंचद्विकमष्टचतुरेकविंशं त्रयोदशत्रिकं सत्त्वं ॥६६७॥

टीका – पांच के उदयस्थान में बंधस्थान तेरह का आदि दो हैं *(१३, ९)* तथा सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पांच हैं *(२८, २४, २३, २२, २१)* । चार के उदयस्थान में बंधस्थान नौ का ही है, सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के तीन हैं । इसके ऊपर दो के उदयस्थान में बंधस्थान पांच के आदि दो ही हैं *(५, ४)*; सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के और तेरह का आदि तीन हैं – ऐसे छह हैं *(२८, २४, २१, १३, १२, ११)* ॥६६७॥

चरमे चदुतिदुगेक्कं अट्ठयचदुरेक्कसंजुदं वीसं ।
एक्कारादीसव्वं कमेण ते मोहणीयस्स ॥६६८॥

चरमे चतुस्त्रिद्विकैकमष्टकचतुरेकसंयुतं विंशं ।
एकादशादिसर्वं क्रमेण तानि मोहनीयस्य ॥६६८॥

टीका – एक के उदयस्थान में बंधस्थान चार, तीन, दो, एक के चार हैं, सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के और ग्यारह से लेकर सर्व छह – ऐसे नौ हैं *(२८, २४, २१ उपशमक के और ११, ५, ४, ३, २, १ क्षपक के)* ये सर्व स्थान मोहनीय के जानना ॥६६८॥

आगे सत्त्वस्थान अधिकरण और बंधस्थान, उदयस्थान आधेयरूप भंग कहते हैं –

सत्तपदे बंधुदया दसणव इगिति दुसु अडड तिपण दुसु ।
अडसग दुगि दुसु बिबिगिगि दुगि तिसु इगिसुण्णमेक्कं च ॥६६९॥

सत्त्वपदे बंधोदया दशनव एकत्रिकं द्वयोरष्टाष्टत्रिपंचद्वयोः ।
अष्टसप्त द्व्येकं द्वयोर्द्विद्विकमेकैकं द्व्येकं त्रिषु एकशून्यमेकं च ॥६६९॥

टीका – अट्ठाइस से लेकर जो सत्त्वस्थान हैं *(२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १)* उनमें अनुक्रम से बंधस्थान और उदयस्थान *(इस प्रकार हैं –)* । पहले सत्त्वस्थान में दस *(बंधस्थान)*, नौ *(उदयस्थान)*, पश्चात् दो में *(२७ के, २६ के सत्त्वस्थान में)* एक *(बंधस्थान)* तीन *(उदयस्थान)*; एक में *(२४ के सत्त्वस्थान में)* आठ, आठ; दो में *(२३ के, २२ के सत्त्वस्थान में)* तीन, पांच; एक में *(२१ के सत्त्वस्थान में)* आठ, सात; दो में *(१३ के, १२ के सत्त्वस्थान में)* दो, एक; एक में *(११ के सत्त्वस्थान में)* दो, दो; एक में *(५ के सत्त्वस्थान में)* एक, एक; तीन में *(४ के, ३ के, २ के सत्त्वस्थान में)* दो, एक; एक में *(१ के सत्त्वस्थान में)* एक या शून्य *(बंधस्थान)* और एक *(उदयस्थान)* है ॥६६९॥

सत्त्व	२८	२७	२६	२४	२३	२२	२१	१३	१२	११	५	४	३	२	१
बंध	१०	१	१	८	३	३	८	२	२	२	१	२	२	२	१|०
उदय	९	३	३	८	५	५	७	१	१	२	१	१	१	१	१

[*बंध = कुल बंधस्थान, उदय = कुल उदयस्थान*]

वे स्थान कौनसे हैं ? वह कहते हैं –

सव्वं सयलं पढमं दसतिय दुसु सत्तरादियं सव्वं ।
णवयप्पहुदीसयलं सत्तरति णवादिपण दुपदे ॥६७०॥

सर्वं सकलं प्रथमं दशत्रिकं द्वयोः सप्तदशादिकं सर्वं ।
नवकप्रभृति सकलं सप्तदशत्रिकं नवादिपंच द्विपदे ॥६७०॥

टीका – अट्ठाइस के सत्त्वस्थान में बंधस्थान बाइस का आदि सर्व दस हैं। जिनके जिस काल में अट्ठाइस का सत्त्व है, उनमें से उस काल में किसी जीव के बाइस का, किसी जीव के इक्कीस का – इसतरह सर्व स्थानरूप प्रकृतियों का बंध पाया जाता है । ऐसे ही अन्यत्र भी कथन जानना । उदयस्थान भी दस का आदि सर्व नौ स्थान हैं । यहां भी अट्ठाइस का सत्त्व होनेपर किसी जीव के दस का, किसी जीव के नौ का इत्यादि उदय जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च सत्ताइस, छब्बीस के सत्त्वस्थान में बंधस्थान बाइस ही का है; उदयस्थान दस का आदि तीन स्थान हैं । चौबीस के सत्त्वस्थान में *(३ रे से ११ वे गुणस्थान तक)* बंधस्थान सत्रह का आदि सर्व आठ हैं; उदयस्थान नौ का आदि सर्व आठ हैं । तेइस, बाइस के दो सत्त्वस्थानों में *(४ थे से ७ वे गुणस्थान तक)* बंधस्थान सत्रह का आदि तीन स्थान हैं, उदयस्थान नौ का आदि पांच स्थान हैं ॥६७०॥

सत्तरसादि अडादीसव्वं पण चारि दोण्णि दुसु तत्तो ।
पंचचउक्क दुगेक्कं चदुरिगि चदुतिण्णि एक्कं च ॥६७१॥

सप्तदशादि अष्टादि सर्व पंच चत्वारि द्वे द्वयोस्ततः ।
पंचचतुष्कं द्विकैकं चतुरेकं चतुस्त्रीणि एकं च ॥६७१॥

टीका – इक्कीस के सत्त्वस्थान में *(४ थे से ११ वें गुणस्थान तक क्षायिक सम्यग्दृष्टि)* बंधस्थान सत्रह का आदि सर्व आठ हैं, उदयस्थान आठ का आदि सर्व सात हैं । तेरह, बारह के दो सत्त्वस्थानों में *(क्षपक ९ वें गुणस्थान में)* बंधस्थान पांच, चार के दो हैं, उदय दो ही का है *(दो प्रकृतिरूप एक उदयस्थान है)* । ग्यारह के सत्त्वस्थान में बंधस्थान पांच, चार के दो हैं, उदयस्थान दो, एक के दो हैं । पांच के सत्त्वस्थान में बंधस्थान चार का एक ही है, उदयस्थान एक का एक ही है । चार के सत्त्वस्थान में बंधस्थान चार, तीन के दो हैं, उदयस्थान एक का एक ही है ॥६७१॥

तत्तो तियदुगमेक्कं दुण्णयडीएक्कमेक्कठाणं च ।
इगिणभबंधो चरिमे एउदओ मोहणीयस्स ॥६७२॥

ततस्त्रिकद्विकमेकं द्विप्रकृत्येकमेकस्थानं च ।
एकनभोबंधश्चरमे एकोदयो मोहनीयस्य ॥६७२॥

टीका – उसके पश्चात् तीन के सत्त्वस्थान में बंधस्थान तीन, दो के दो हैं, उदयस्थान एक का एक ही है । दो के सत्त्वस्थान में बंधस्थान दो, एक के दो हैं, उदयस्थान एक का एक ही है । मोहनीय के एक के सत्त्वस्थान में *(९ वें, १० वें गुणस्थान में)* बंध एक का तथा शून्य अर्थात् बंध का अभाव है, उदयस्थान एक का एक ही है ॥६७२॥

आगे मोहनीय के बंध, उदय, सत्त्व में दो आधार, एक आधेय करके कहते हैं –

बंधुदये सत्तपदं बंधंसे णेयमुदयठाणं च ।
उदयंसे बंधपदं दुट्ठाणाधारमेक्कमाधेज्जं ॥६७३॥

बंधोदये सत्त्वपदं बंधांशे ज्ञेयमुदयस्थानं च ।
उदयांशे बंधपदं द्विस्थानाधारमेकमाधेयं ॥६७३॥

टीका – बंध-उदय के स्थान में सत्त्व, बंध-सत्त्वस्थान में उदय तथा उदय-सत्त्वस्थान में बंध – इसतरह दो स्थान आधार, एक स्थान आधेय, वे तीन प्रकार के जानना । वहां इतने का बंध और इतने का उदय जिसके होता है, उस किसी जीव के इतने का सत्त्व पाया जाता है, किसी के इतने का सत्त्व पाया जाता है ऐसा कहते हैं, वहां बंध-उदय तो आधार और सत्त्व आधेय जानना ।

पुनश्च इतने का बंध और इतने का सत्त्व जिस जीव के होता है, उस किसी जीव के इतने का उदय, किसी जीव के इतने का उदय पाया जाता है ऐसा कहते हैं, वहां बंध-सत्त्व आधार, उदय आधेय जानना ।

पुनश्च इतने का उदय और इतने का सत्त्व जिस जीव के होता है, उस किसी जीव के इतने का बंध, किसी के इतने का बंध पाया जाता है ऐसा कहते हैं, वहां उदय-सत्त्व आधार, बंध आधेय जानना । ऐसे तीन प्रकार कहे ॥६७३॥

वहां पहला प्रकार छह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

बावीसेण णिरुद्धे दसचउरुदये दसादिठाणतिये ।
अट्ठावीसति सत्तं सत्तुदये अट्ठवीसेव ॥६७४॥

द्वाविंशेन निरुद्धे दशचतुष्कोदये दशादिस्थानत्रये ।
अष्टाविंशत्रिकं सत्त्वं सप्तोदयेऽष्टविंशमेव ॥६७४॥

बं|उ	बं|स	उ|स
स	उ	बं

टीका – बाइस के बंध सहित जीव में दस का आदि चार उदयस्थान हैं । उनमें से दस का आदि तीन में *(१०, ९, ८)* तो सत्त्व अट्ठाइस का आदि तीन हैं *(२८, २७, २६)* । सात के उदयस्थान में अट्ठाइस का ही सत्त्व है ॥६७४॥

इगिवीसेण णिरुद्धे णवयतिये सत्तमट्ठवीसेव ।
सत्तरसे णवचदुरे अडचउतिदुगेक्कवीसंसा ॥६७५॥

एकविंशेन निरुद्धे नवकत्रये सत्त्वमष्टाविंशमेव ।
सप्तदशे नवचतुष्के अष्टचतुस्त्रिद्विकैकविंशांशाः ॥६७५॥

टीका – इक्कीस के बंध सहित जीव में नौ का आदि तीन का *(९, ८, ७ का)* उदय होता है, वहां सत्त्व अट्ठाइस ही का है । सत्रह के बंध सहित जीव के नौ का आदि चार *(९, ८, ७, ६)* के उदयस्थान होनेपर सत्त्व अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस, इक्कीस के हैं ॥६७५॥

वहां इतना विशेष है –

इगिवीसं ण हि पढमे चरिमे तिदुवीसयं ण तेरणवे ।
अडचउसगचउरुदये सत्तं सत्तरसयं व हवे ॥६७६॥

एकविंशं नहि प्रथमे चरमे त्रिद्विविंशकं न त्रयोदशनवके ।
अष्टचतुः सप्तचतुरुदये सत्त्वं सप्तदशकं व भवेत् ॥६७६॥

टीका – नौ का उदय होता है तब इक्कीस का सत्त्व नहीं होता और छह का उदय होता है, तब तेइस, बाइस का सत्त्व नहीं होता । पुनश्च तेरह के बंध सहित आठ के आदि चार *(८, ७, ६, ५)* उदयस्थान होते हैं, तथा नौ के बंध सहित सात के आदि चार *(७, ६, ५, ४)* उदयस्थान होते हैं, तब सत्त्व जैसे सत्रह के बंध सहित में कहा, वैसे जानना *(२८, २४, २३, २२, २१)* ॥६७६॥

इतना विशेष है –

णवरि य अपुव्वणवगे छादितियुदयेवि णत्थि तिदुवीसा ।
पणबंधे दोउदये अडचउरिगिवीसतेरसादितियं ॥६७७॥

नवरि चापूर्वनवके षडादित्रयोदयेऽपि नास्ति त्रिद्विविंशं ।
पंचबंधे द्विकोदये अष्टचतुरेकविंशत्रयोदशादित्रयं ॥६७७॥

टीका – अपूर्वकरण में नौ के बंध सहित छह के आदि तीन (६, ५, ४) के उदय होते हैं, तब तेईस, बाईस का सत्त्व नहीं है – इतना विशेष है । पुनश्च पांच का बंध सहित दो का उदय होते हुये सत्त्व अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के *(उपशमश्रेणी में)* और तेरह के आदि तीन हैं *(१३, १२, ११ के – क्षपकश्रेणी में)* ॥६७७॥

चदुबंधे दोउदये सत्तं पुव्व व तेण एक्कुदये ।
अडचउरेक्कावीसा एयारतिगं च सत्ताणि ॥६७८॥

चतुर्बंधे द्विकोदये सत्त्वं पूर्वं व तेन एकोदये ।
अष्टचतुरेकविंशानि एकादशत्रिकं च सत्त्वानि ॥६७८॥

टीका – चार के बंध सहित दो का उदय होते हुये, सत्त्व जैसे पांच के बंध सहित में कहा वैसे जानना । *(२८, २४, २१, १३, १२, ११)* । चार के बंध सहित एक का उदय होते हुये सत्त्व अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के तथा ग्यारह के आदि तीन जानना *(२८, २४, २१, ११, ५, ४)* ॥६७८॥

तिदुइगिबंधेक्कुदये चदुतियठाणेण तिदुगठाणेण ।
दुगिठाणेण य सहिता अडचउरिगिवीसया सत्ता ॥६७९॥

त्रिद्विकैकबंधे एकोदये चतुस्त्रिस्थानेन त्रिद्विकस्थानेन ।
द्विकैकस्थानेन च सहितानि अष्टचतुरेकविंशकानि सत्त्वानि ॥६७९॥

टीका – तीन, दोन, एक के बंध सहित एक का उदय होते हुये सत्त्वस्थान अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के *(उपशमश्रेणी में) (इन उपशमश्रेणी के सत्त्वस्थानों के साथ क्षपकश्रेणी के दो-दो स्थान और हैं वे इसप्रकार)* तीन के बंध सहित में चार और तीन के सत्त्वस्थान, दो के बंध सहित में तीन, दो के सत्त्वस्थान और एक के बंध सहित में दो, एक के सत्त्वस्थान मिलकर पांच-पांच सत्त्वस्थान पाये जाते हैं । यहां यह अर्थ है –

मोहनीय की सर्व बंध प्रकृतियों में से चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव बाइस का बंध करते हैं । उनके मिथ्यात्व सहित तथा अनंतानुबंधी सहित और रहित आठ कूट कहे थे । उनसे उत्पन्न हुये ऐसे अपुनरुक्त दस के आदि चार उदयस्थान एक जीव की अपेक्षा तो अनुक्रम से और नाना जीवों की अपेक्षा युगपत् पाये जाते हैं । उनमें से तीन उदयस्थानों में तो एक जीव की अपेक्षा अनुक्रम से और नाना जीवों की अपेक्षा युगपत् अट्ठाइस के आदि तीन सत्त्वस्थान *(२८, २७, २६ के)* पाये जाते हैं। ✗ सात के उदयस्थान में अट्ठाइस का ही सत्त्व है, सत्ताइस, छब्बीस का नहीं ।

क्यों ? क्योंकि असंयतादि चार में एक किसी गुणस्थान में अनंतानुबंधी का विसंयोजन करके मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हुआ, वहां प्रथम समय में बाइस का बंध किया । वहां अनंतानुबंधी का एक समयप्रबद्ध बंधा, उसकी उदीरणा अचलावली काल तक संभव नहीं है *(बंध के पश्चात् आवली काल तक उदीरणा आदि नहीं हो सकते, इस काल को बंधावली या अचलावली कहते हैं ।)* और अनंतानुबंधी के उदय रहित उस जीव के सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय का वेदककाल है, उपशमकाल नहीं है; इसलिए उसके सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय की उद्वेलना नहीं होती *(उद्वेलना पूर्ण नहीं हुयी है)* । पहले वेदककाल, उपशमकाल का लक्षण कह आये हैं *(गाथा ६१५)* तथा वेदककाल में इनकी उद्वेलना का अभाव कह आये हैं ।

पुनश्च चारों गति के सासादन में इक्कीस का बंध है, वहां एक जीव की अपेक्षा क्रम से और नाना जीवों की अपेक्षा युगपत् नौ का आदि तीन उदयस्थान हैं *(९, ८, ७)* उनमें अट्ठाइस का ही सत्त्व है, सत्ताइस या छब्बीस का नहीं है; क्योंकि उपशम सम्यक्त्व ही से भ्रष्ट होकर सासादन होता है । उसकी स्थिति एक समय से लेकर छह आवली तक एक-एक समय से बढ़ते हुये काल प्रमाण है । इसलिए सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय की उद्वेलना के अवसररूप उपशमकाल यहां संभव नहीं है । यहां चौबीस का भी सत्त्व नहीं है, क्योंकि अनंतानुबंधी का विसंयोजन वेदक सम्यग्दृष्टि ही के होता है और वेदक सम्यग्दृष्टि सासादन में आता नहीं है ।

पुनश्च चारों गति के मिश्र में सत्रह का बंध, वहां एक जीव की अपेक्षा क्रम से और नाना जीवों की अपेक्षा युगपत् नौ का आदि तीन उदयस्थान हैं *(९, ८,*

७); वहां अट्ठाइस और चौबीस ही का सत्त्व है, तेइस, बाइस का नहीं है, क्योंकि मिश्रमोहनीय का उदय होते हुये दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारंभ नहीं होता ।

पुनश्च चारों गति के असंयत में सत्रह का बंध, वहां एक जीव की अपेक्षा क्रम से नाना जीवों की अपेक्षा युगपत् चार उदयस्थान हैं *(९, ८, ७, ६)* । उनमें नौ का उदय होनेपर वेदक सम्यग्दृष्टिपना है; इसलिए दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारंभ होने से अनंतानुबंधी, मिथ्यात्व, मिश्रमोहनीय सहित और रहित सत्त्वस्थान पाये जाते हैं; इसलिए कर्मभूमिया मनुष्य में एक जीव की अपेक्षा क्रम से और नाना जीवों की अपेक्षा युगपत् अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस का सत्त्व पाया जाता है । इक्कीस का सत्त्व क्षायिक सम्यग्दृष्टि के ही होता है, इसलिए *(वेदक सम्यग्दृष्टि के नौ के उदयस्थान में)* नहीं पाया जायेगा । पुनश्च आठ और सात का उदय होनेपर प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तो अट्ठाइस का ही सत्त्व है, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में अट्ठाइस और चौबीस का सत्त्व है, वेदक सम्यक्त्व में अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस का सत्त्व एक जीव की अपेक्षा क्रम से और नाना जीवों की अपेक्षा युगपत् पाया जाता है । क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस का ही सत्त्व है । पुनश्च छह का उदय होनेपर सम्यक्त्वमोहनीय रहित होने के कारण क्षायिक सम्यग्दृष्टि में तो इक्कीस का सत्त्व है, उपशम सम्यग्दृष्टि में अट्ठाइस का और चौबीस का सत्त्व है ।

पुनश्च तेरह के बंध सहित देशसंयत में तिर्यंच और मनुष्य में औपशमिक और वेदक सम्यक्त्व होता है, क्षायिक सम्यक्त्व मनुष्य के ही होता है । वहां आठ का उदय होते हुये सत्त्व वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच में तो अट्ठाइस, चौबीस के दो हैं और मनुष्य में अट्ठाइस, चौबीस के दो; तेइस, बाइस के दो — ऐसे चार हैं । पुनश्च सात और छह का उदय होते हुये तिर्यंच, मनुष्य के उपशम सम्यक्त्व में तो अट्ठाइस, चौबीस के दो तथा वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच में वे ही दो हैं । वेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्य में वे दो और तेइस, बाइस के दो — ऐसे चार हैं । क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होता है, इसलिए इक्कीस का ही सत्त्व है । पुनश्च पांच का उदय होते हुये उपशम सम्यग्दृष्टि तिर्यंच, मनुष्य में अट्ठाइस और चौबीस का सत्त्व है, क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य में इक्कीस का ही सत्त्व है ।

पुनश्च नौ के बंध सहित प्रमत्त-अप्रमत्त के चार-चार उदयस्थान *(७, ६, ५, ४)* हैं । उनमें से सात का उदय होनेपर वेदक सम्यग्दृष्टि ही है; इसलिए अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस के चार सत्त्व हैं । पुनश्च छह और पांच का उदय होते हुये, उपशम सम्यक्त्व में तो अट्ठाइस, चौबीस का सत्त्व है, वेदक सम्यक्त्व में अट्ठाइस, चौबीस, तेइस, बाइस का सत्त्व है । क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस का ही सत्त्व है । पुनश्च चार का उदय होते हुये उपशम सम्यक्त्व में अट्ठाइस, चौबीस का सत्त्व है । क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस का ही सत्त्व है ।

पुनश्च नौ के बंध सहित अपूर्वकरण में छह, पांच या चार का उदय होते हुये, उपशम सम्यक्त्व में अट्ठाइस, चौबीस का सत्त्व है । क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस का ही सत्त्व है । पुनश्च पांच, चार का बंध, दो के उदय सहित अनिवृत्तिकरण में उपशम सम्यक्त्व में तो अट्ठाइस और चौबीस का, क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह का सत्त्व है । पुनश्च चार का बंध, एक के उदय सहित अनिवृत्तिकरण में उपशम सम्यक्त्व में अट्ठाइस, चौबीस का, क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस, ग्यारह, पांच, चार का सत्त्व है । पुनश्च तीन का बंध, एक का उदय सहित में उपशम सम्यक्त्व में तो अट्ठाइस, चौबीस का और क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस, चार, तीन का सत्त्व है । पुनश्च दो का बंध, एक के उदय सहित अनिवृत्तिकरण में उपशम सम्यक्त्व में अट्ठाइस, चौबीस का; क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस, तीन, दो का सत्त्व है ।

पुनश्च एक का बंध, एक के उदय सहित उपशम सम्यक्त्व में अट्ठाइस, चौबीस का; क्षायिक सम्यक्त्व में इक्कीस, दो, एक का सत्त्व है । यहां क्षपक अनिवृत्तिकरण में चार, तीन, दो, एक का बंध होते हुये क्रम से पांच, चार; चार, तीन; तीन, दो; दो, एक का सत्त्व है । वहां पहले-पहले के वेद और कषायों के नवकसमयप्रबद्ध के उच्छिष्टावली मात्र निषेक अवशेष रहे हैं, उनकी विवक्षा से जानना ॥६७९॥

आगे बंध, सत्त्व आधार; उदय आधेय को पांच गाथाओं द्वारा कहते हैं –

बावीसे अडवीसे दसचउरुदओ अणे ण सगवीसे ।
छव्वीसे दसयतियं इगिअडवीसे दु णवयतियं ॥६८०॥

द्वाविंशतौ अष्टविंशतौ दशचतुष्कोदयः अने न सप्तविंशतौ ।
षड्विंशतौ दशकत्रयमेकाष्टविंशतौ तु नवकत्रयं ॥६८०॥

टीका – बाइस के बंध सहित चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव में अट्ठाइस का सत्त्व होनेपर, उदयस्थान दस का आदि चार हैं *(१०, ९, ८, ७)* क्योंकि यहां अनंतानुबंधी रहित भी उदयस्थान पाये जाते हैं । बाइस के बंध सहित सत्ताइस, छब्बीस का सत्त्व होनेपर दस के आदि तीन ही स्थानों का उदय है क्योंकि यहां सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय की उद्वेलनायुक्तपने के कारण अनंतानुबंधी रहितपने का अभाव है । पुनश्च इक्कीस बंध सहित चारों गति के सासादन में अट्ठाइस का सत्त्व होते हुये, मिथ्यात्व के उदय के अभाव से नौ का आदि तीन उदयस्थान हैं *(९, ८, ७)* ॥६८०॥

सत्तरसे अडचदुवीसे णवयचदुरुदयमिगिवीसे ।
णो पढमुदओ एवं तिदुवीसे णंतिमस्सुदओ ॥६८१॥

सप्तदशाष्टचतुर्विंशे नवकचतुष्कोदय एकविंशे ।
नो प्रथमोदय एवं त्रिद्विविंशे नांतिमस्योदयः ॥६८१॥

टीका – सत्रह के बंध सहित चारों गति के जीवों में अट्ठाइस, चौबीस का सत्त्व होनेपर नौ का आदि चार उदयस्थान हैं *(९, ८, ७, ६)* । वहां मिश्र गुणस्थान में मिश्रमोहनीय सहित चार कूटों से उत्पन्न तीन ही उदयस्थान हैं *(९, ८, ७)* । असंयत में सम्यक्त्वमोहनीय सहित और रहित आठ कूटों से उत्पन्न ऐसे चार उदयस्थान हैं । सत्रह के बंध सहित इक्कीस का सत्त्व होनेपर चारों गति के असंयत में क्षायिक सम्यक्त्वपने से सम्यक्त्वमोहनीय सहित चार कूटों का अभाव होने से पहला नौ का उदयस्थान नहीं है; आठ का आदि तीन ही हैं । सत्रह के बंध सहित तेइस, बाइस का सत्त्व होनेपर दर्शनमोहनीय की क्षपणा संयुक्त मनुष्य वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत में सम्यक्त्वमोहनीय के उदय सहित ही कूट हैं, इसलिए अंत का छह का उदयस्थान नहीं है, नौ का आदि तीन ही हैं ॥६८१॥

तेरणवे पुव्वंसे अडादिचउ सगचउण्हमुदयाणं ।
सत्तरसं व वियारो पणगुवसंते सगेसु दो उदया ॥६८२॥

त्रयोदशनवमे पूर्वांशे अष्टादिचतुष्कं सप्तचतुष्कमुदयानां ।
सप्तदशं व विचार: पंचकोपशांते स्वकेषु द्वौ उदयौ ॥६८२॥

टीका – तेरह के बंध सहित तिर्यंच मनुष्य देशसंयत में, नौ के बंध सहित प्रमत्त-अप्रमत्त में, दोनों श्रेणी के अपूर्वकरण में – जैसे सत्रह के बंधसहित में सत्त्व कहा उस सत्त्व के होनेपर देशसंयत में आठ का आदि चार *(उदयस्थान ८, ७, ६, ५)* हैं । अवशेष में *(प्रमत्त-अप्रमत्त में)* सात का आदि चार-चार उदयस्थान हैं *(७, ६, ५, ४)* ।

इतना विशेष है कि इक्कीस का सत्त्व होनेपर तेरह के बंध सहित में तो पहला आठ का उदयस्थान नहीं है । नौ के बंध सहित में सात का उदयस्थान नहीं है । तेइस, बाइस का सत्त्व होनेपर तेरह के बंध सहित में अंत का पांच का उदयस्थान नहीं है, नौ के बंध सहित में चार का उदयस्थान नहीं है । यह विशेष विचार सत्रह के बंध में जैसे क्षायिक और दर्शनमोहनीय के क्षपक-वेदक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा कहा है, वैसे ही जानना । पुनश्च उपशांतमोह में कहे हुये जो अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के सत्त्व, उनके होनेपर पांच के बंध सहित अनिवृत्तिकरण में दो का उदय है । पांच और चार के बंध सहित में भी दो का उदय है ॥६८२॥

वह कहते हैं –

तेणेवं तेरतिये चदुबंधे पुव्वसत्तगेसु तहा ।
तेणुवसंतंसेयारतिए एक्को हवे उदओ ॥६८३॥

तेनैव त्रयोदशत्रये चतुर्बंधे पूर्वसत्त्वकेषु तथा ।
तेनोपशांतांशे एकादशत्रये एको भवेदुदय: ॥६८३॥

टीका – उस पांच के बंध सहित क्षपक अनिवृत्तिकरण में तेरह, बारह, ग्यारह का सत्त्व होनेपर तथा चार के बंध सहित में अट्ठाइस का आदि तीन *(२८, २४, २१)* और तेरह का आदि तीन *(१३, १२, ११)* का सत्त्व होनेपर दो का उदय है । पुनश्च चार के बंध सहित उपशांतमोह में कहे ऐसे अट्ठाइस का आदि तीन का सत्त्व होनेपर तथा ग्यारह का आदि तीन *(११, ५, ४)* का सत्त्व होनेपर अनिवृत्तिकरण में एक का उदय है ॥६८३॥

तिदुइगिबंधे अडचउरिगिवीसे चदुतिएण ति दुगेण ।
दुगिसत्तेण य सहिदे कमेण एक्को हवे उदओ ॥६८४॥

त्रिद्व्येकबंधे अष्टचतुरेकविंशे चतुस्त्रिकेण त्रिद्विकेन ।
द्व्येकसत्त्वेन च सहिते क्रमेणैको भवेदुदयः ॥६८४॥

टीका – तीन, दो, एक के बंध सहित अनिवृत्तिकरण में अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस का सत्त्व होनेपर तथा चार, तीन का सत्त्व होनेपर तथा तीन, दो का सत्त्व होनेपर तथा दो, एक का क्रम से सत्त्व होनेपर एक-एक ही का उदय है । यहां नवकसमयप्रबद्ध की विवक्षा-अविवक्षा करके दो-दो प्रकार से सत्त्व कहे हैं ॥६८४॥

आगे उदय, सत्त्व आधार; बंध आधेय को सात गाथाओं द्वारा कहते हैं –

दसगुदये अडवीसतिसत्ते बावीसबंध णवअट्ठे ।
अडवीसे बावीसतिचउबंधो सत्तवीसदुगे ॥६८५॥

दशकोदये अष्टविंशत्रिसत्त्वे द्वाविंशबंधो नवाष्टके ।
अष्टविंशतौ द्वाविंशतित्रिचतुर्बंधः सप्तविंशद्विके ॥६८५॥

टीका – दस के उदय सहित अट्ठाइस का आदि तीन *(२८, २७, २६)* का सत्त्व होनेपर बाइस का ही बंध है । यह मिथ्यादृष्टि सर्व मोहनीय के सत्त्व सहित *(२८)* वा सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वेलना सहित *(२७)* वा मिश्रमोहनीय की उद्वेलना सहित *(२६)* जानना । पुनश्च नौ के उदय सहित असंयत तक और आठ से उदय सहित देशसंयत तक में अट्ठाइस का सत्त्व होनेपर अनुक्रम से बाइस का आदि तीन *(२२, २१, १७)* और चार *(२२, २१, १७, १३)* बंधस्थान हैं ॥६८५॥

पुनश्च उन ही में सत्ताइस और छब्बीस का सत्त्व होनेपर कहते हैं –

बावीसबंध चदुतिदुवीसंसे सत्तरसयददुगबंधो ।
अट्ठुदये इगिवीसे सत्तरबंधं विसेसं तु ॥६८६॥

द्वाविंशबंधः चतुस्त्रिद्विविंशांशे सप्तदशायतद्विकबंधः ।
अष्टोदये एकविंशे सप्तदशबंधो विशेषस्तु ॥६८६॥

टीका – वहां बाइस ही का बंध है । उन पूर्वोक्त उदय सहित में मिश्र में तो चौबीस का सत्त्व होनेपर असंयत में चौबीस का आदि तीन *(२४, २३, २२)* सत्त्व होनेपर सत्रह का बंध है । आठ के उदयसहित चौबीस का आदि तीन *(२४, २३, २२)* सत्त्व होनेपर देशसंयत में तेरह का बंध है । इक्कीस का सत्त्व होनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत में सत्रह का बंध है ॥६८६॥

सत्तुदये अडवीसे बंधो बावीसपंचयंतेण ।
चउवीसतिगे अयदतिबंधो इगिवीसगयदुगबंधो ॥६८७॥

सप्तोदये अष्टविंशे बंधो द्वाविंशपंचकं तेन ।
चतुर्विंशत्रिके अयतत्रिबंध एकविंशे अयतद्विकबंध: ॥६८७॥

टीका – सात के उदय सहित अट्ठाइस का सत्त्व होनेपर बाइस का आदि पांच बंधस्थान हैं *(२२, २१, १७, १३, ९)* क्योंकि अनंतानुबंधी रहित मिथ्यादृष्टि में, भय जुगुप्सा रहित सासादन में और मिश्र में, वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत में, वेदक और उपशम सम्यग्दृष्टि देशसंयत में, वेदक सम्यग्दृष्टि प्रमत्त-अप्रमत्त में सात का उदय, अट्ठाइस का सत्त्व पाया जाता है । पुनश्च सात के उदय सहित चौबीस का आदि तीन *(२४, २३, २२)* सत्त्व होनेपर सत्रह का आदि तीन *(१७, १३, ९)* बंधस्थान हैं, क्योंकि चौबीस के सत्त्व संयुक्त तो भय-जुगुप्सा रहित मिश्र-असंयत में और तेइस, बाइस के सत्त्व संयुक्त दर्शनमोह क्षपणा प्रारंभक और चौबीस के सत्त्व संयुक्त अनंतानुबंधी के सत्त्व रहित मनुष्य असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती – इनमें सात का उदय पाया जाता है । पुनश्च सात का उदय, इक्कीस का सत्त्व होनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टि चारों गति के असंयत में सत्रह का बंध है । देशसंयत मनुष्य में तेरह का बंध है ॥६८७॥

छप्पणउदये उवसंतंसे अयदतिगदेसदुगबंधो ।
तेण तिदोवीसंसे देसदुणवबंधयं होदि ॥६८८॥

षट्पंचोदये उपशांतांशे अयतत्रिकदेशद्विकबंध: ।
तेन त्रिद्विविंशांशे देशद्विनवबंधकं भवति ॥६८८॥

टीका – छह के उदय सहित अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस का सत्त्व होनेपर सत्रह का आदि तीन *(१७, १३, ९)* बंधस्थान हैं । पांच के उदय सहित उक्त तीन सत्त्व होनेपर तेरह का आदि दो *(१३, ९)* बंधस्थान हैं, क्योंकि असंयतादि पांच गुणस्थानों में चौथे से आठवें तक छह का और उपशम, क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयतादि चार गुणस्थानों में *(पांचवें से आठवें तक)* पांच का उदय पाया जाता है । पुनश्च छह के उदय सहित वेदक सम्यग्दृष्टि में मिथ्यात्व का क्षय करके तेइस का सत्त्व होनेपर और मिश्रमोहनीय का क्षय करके बाइस का सत्त्व होनेपर देशसंयत में तेरह का बंध है । पांच के उदय सहित प्रमत्त-अप्रमत्त में नौ का बंध है ॥६८८॥

चउरुदयुवसंतंसे णवबंधो दोण्णिउदयपुव्वंसे ।
तेरसतियसत्तेवि य पण चउ ठाणाणि बंधस्स ॥६८९॥

चतुरुदयोपशांतांशे नवबंधो द्विकोदयपूर्वांशे ।
त्रयोदशत्रिसत्त्वेऽपि च पंचचतु:स्थानानि बंधस्य ॥६८९॥

टीका – चार के उदय सहित दोनों श्रेणी के अपूर्वकरण में, उपशांतमोह में पाये जाते हैं – ऐसे अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के सत्त्व होनेपर नौ का बंध है । दो के उदय सहित सवेद अनिवृत्तिकरण में उन तीन का *(२८, २४, २१)* सत्त्व होनेपर पुरुषवेद के उदय के चरमसमय तक पांच का बंध है ।

नपुंसकवेद, स्त्रीवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के वहां चार का बंध है । क्षपकश्रेणी में आठ कषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, पुरुषवेद की क्षपणारूप भागों में *(क्रम से)* इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह का सत्त्व होनेपर पांच का बंध है । अन्य वेद के उदय सहित तेरह, बारह का सत्त्व होनेपर चार का बंध है ॥६८९॥

एक्कुदयुवसंतंसे बंधो चदुरादिचारि तेणेव ।
एयारदु चदुबंधो चदुरंसे चदुतियं बंधे ॥६९०॥

एकोदयोपशांतांशे बंधश्चतुरादिचत्वारस्तेनैव ।
एकादशद्विके चतुर्बंध: चतुरंशे चतुस्त्रिको बंध: ॥६९०॥

टीका – एक के उदय सहित अनिवृत्तिकरण उपशमक में उपशांतमोह में कहे हुये अट्ठाइस, चौबीस, इक्कीस के सत्त्व होनेपर चार के आदि चार *(४, ३, २, १)* बंधस्थान हैं । एक के उदय सहित ग्यारह, पांच का सत्त्व होनेपर चार का बंध है । एक के उदय सहित चार का सत्त्व होनेपर चार का और तीन का बंध है ॥६९०॥

तेण तिये तिदुबंधो दुगसत्ते दोण्णि एक्कयं बंधो ।
एक्कंसे इगिबंधो गयणं वा मोहणीयस्स ॥६९१॥

तेन त्रये त्रिद्विबंधो द्विकसत्त्वे द्वौ एको बंधः ।
एकांशे एकबंधो गगनं वा मोहनीयस्य ॥६९१॥

टीका – उसी एक के उदय सहित अनिवृत्तिकरण में तीन का सत्त्व होनेपर तीन का और दो का बंध है । एक के उदय सहित दो का सत्त्व होनेपर दो का और एक का बंध है । एक का ही उदय और सत्त्व होनेपर, एक का ही बंध है अथवा गगन कहने से बंध का अभाव है । ऐसे मोहनीय के त्रिसंयोग भंग कहे ॥६९१॥

आगे नामकर्म के स्थानों के त्रिसंयोग कहते हैं –

णामस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु ।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ ॥६९२॥

नाम्नश्च बंधोदयसत्त्वस्थानानां सर्वभंगा हि ।
प्रत्येकोक्तं व भवेयुस्त्रिकसंयोगेऽपि सर्वत्र ॥६९२॥

टीका – नामकर्म के बंध, उदय, सत्त्व स्थानों के सर्व भंग जैसे प्रत्येक जुदे-जुदे कथन में पहले कहे थे, वैसे ही त्रिसंयोगी में भी सर्वत्र भंग हैं, ऐसे प्रकट जानना ॥६९२॥

छण्णवछत्तियसगइगि दुगतिगदुग तिण्णिअट्ठचत्तारि ।
दुगदुगचदु दुगपणचदु चदुरेयचदू पणेयचदू ॥६९३॥

एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ चदुमट्ठ केवलिजिणाणं ।
एगचदुरेगचदुरो दोचदु दोछक्क बंधउदयंसा ॥६९४॥ जुम्मं

षट्नवषट् त्रिकसप्तैकं द्विकत्रिकद्विकं त्रिकाष्टचत्वारि ।
द्विकद्विकचतुष्कं द्विकपंचचतुष्कं चतुरेकचतुष्कं पंचैकचतुष्कं ॥६९३॥

एकैकाष्ट एकैकाष्ट चतुरष्ट केवलिजिनानां ।
एकचतुष्कमेकचतुष्कं द्विचतुष्कं द्विषट्कं बंधोदयांशाः ॥६९४॥ युग्मं

टीका – उस नामकर्म के बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान अनुक्रम से गुणस्थानों में मिथ्यात्व में तो छह, नौ, छह; सासादन में तीन, सात, एक; मिश्र में दो, तीन, दो; असंयत में तीन, आठ, चार; देशसंयत में दो, दो, चार; प्रमत्तसंयत में दो, पांच, चार; अप्रमत्तसंयत में चार, एक, चार; अपूर्वकरण में पांच, एक, चार; अनिवृत्तिकरण में एक, एक, आठ; सूक्ष्मसाम्पराय में भी एक, एक, आठ हैं । ऊपर बंध का तो अभाव है । उदय और सत्त्वस्थान ही हैं – उपशांतमोह में एक, चार; क्षीणमोह में एक, चार; सयोगकेवली में दो, चार; अयोगकेवली में दो, छह जानना ॥६९३, ६९४॥

[*विशेषार्थ* –

गुण	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बंध	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उदय	९	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
सत्त्व	६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

]

णामस्स य बंधोदयसत्ताणि गुणं पडुच्च उत्ताणि ।
पत्तेयादो सव्वं भणिदव्वं अत्थजुत्तीए ॥६९५॥

नाम्नश्च बंधोदयसत्त्वानि गुणं प्रतीत्योक्तानि ।
प्रत्येकात्सर्वं भणितव्यमर्थयुक्तया ॥६९५॥

टीका – नामकर्म के बंध, उदय, सत्त्वस्थान गुणस्थानों में कहे, वे ही प्रत्येक जुदे-जुदे अर्थ की युक्ति से कहते हैं ॥६९५॥

तेवीसादी बंधा इगिवीसादीणि उदयठाणाणि ।
बाणउदादी सत्तं बंधा पुण अट्ठवीसतियं ॥६९६॥

त्रयोविंशादयो बंधा एकविंशादीनि उदयस्थानानि ।
द्वानवत्यादि सत्त्वं बंधाः पुनः अष्टविंशत्रयं ॥६९६॥

टीका – मिथ्यात्व में बंधस्थान तेइस का आदि छह हैं, उदयस्थान इक्कीस का आदि नौ है और सत्त्वस्थान बानबे का आदि छह हैं ।

[***विशेषार्थ*** – *मिथ्यात्व में –*

बंधस्थान – २३, २५, २६, २८, २९, ३० के कुल ६

उदयस्थान – २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ के कुल ९

सत्त्वस्थान – ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ के कुल ६]

सासादन में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि तीन हैं ॥६९६॥

इगिवीसादीएक्कत्तीसंता सत्तअट्ठवीसूणा ।
उदया सत्तं णउदी बंधा पुण अट्ठवीसदुगं ॥६९७॥

एकविंशाद्येकत्रिंशदंताः सप्ताष्टविंशोनाः ।
उदयाः सत्त्वं नवतिर्बंधाः पुनः अष्टविंशद्विकं ॥६९७॥

टीका – उदयस्थान इक्कीस का आदि सत्ताइस, अट्ठाइस के बिना इकतीस के तक सात हैं । सत्त्वस्थान नब्बे का ही है ।

[***विशेषार्थ*** - *सासादन में -*

बंधस्थान – २८, २९, ३० के कुल ३ ।

उदयस्थान – २१, २४, २५, २६, २९, ३०, ३१ के कुल ७ ।

सत्त्वस्थान – ९० का कुल १ ।]

मिश्र में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि दो हैं ॥ ६९७॥

एगुणतीसत्तिदयं उदयं बाणउदिणउदियं सत्तं ।
अयदे बंधट्ठाणं अट्ठावीसत्तियं होदि ॥६९८॥

एकोनत्रिंशत्त्रितयमुदयो द्वानवतिनवतिकं सत्त्वं ।
अयते बंधस्थानमष्टाविंशत्रयं भवति ॥६९८॥

टीका – उदयस्थान उनतीस का आदि तीन हैं । सत्त्वस्थान बानबे और नब्बे का दो हैं ।

[***विशेषार्थ*** – *मिश्र में –*

बंधस्थान – २८, २९ के कुल २ ।

उदयस्थान – २९, ३०, ३१ के कुल ३ ।

सत्त्वस्थान – ९२, ९० के कुल २ ।]

असंयत में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि तीन हैं ॥६९८॥

उदया चउवीसूणा इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता ।
सत्तं पढमचउक्कं अपुव्वकरणोत्ति णायव्वं ॥६९९॥

उदयाश्चतुर्विंशोना एकविंशप्रभृत्येकत्रिंशदंताः ।
सत्त्वं प्रथमचतुष्कमपूर्वकरण इति ज्ञातव्यं ॥६९९॥

टीका – उदयस्थान इक्कीस का आदि चौबीस के बिना इकतीस तक आठ हैं, क्योंकि चौबीस के स्थान का उदय एकेन्द्रिय ही के है । सत्त्वस्थान तिरानबे का आदि चार हैं । ये ही चार-चार सत्त्वस्थान अपूर्वकरण तक जानना ॥६९९॥

[***विशेषार्थ*** – *असंयत में –*

बंधस्थान – २८, २९, ३० के कुल ३ ।

उदयस्थान – २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ के कुल ८ ।

सत्त्वस्थान – ९३, ९२, ९१, ९० के कुल ४ ।]

अडवीसदुगं बंधो देसे पमदे य तीसदुगमुदओ ।
पणवीससत्तवीसप्पहुदीचत्तारि ठाणाणि ॥७००॥

अष्टाविंशद्विकं बंधो देशे प्रमत्ते च त्रिंशद्विकमुदयः ।
पंचविंशसप्तविंशप्रभृतिचत्वारि स्थानानि ॥७००॥

टीका – देशसंयत में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि दो हैं; उदयस्थान तीस का आदि दो हैं; सत्त्वस्थान असंयतवत् चार हैं । प्रमत्तसंयत में बंधस्थान देशसंयतवत् दो हैं; उदयस्थान पच्चीस का और सत्ताइस का आदि चार – ऐसे पांच हैं; सत्त्वस्थान चार ही हैं ॥७००॥

[***विशेषार्थ*** *– देशसंयत में –*

बंधस्थान – २८, २९ के कुल २ ।

उदयस्थान – ३०, ३१ के कुल २ ।

सत्त्वस्थान – ९३, ९२, ९१, ९० के कुल ४ ।

प्रमत्तसंयत में

बंधस्थान – २८, २९ के कुल २ ।

उदयस्थान – २५, २७, २८, २९, ३० के कुल ५ ।

सत्त्वस्थान – ९३, ९२, ९१, ९० के कुल ४ ।]

अपमत्ते य अपुव्वे अडवीसादीण बंधमुदओ दु ।
तीसमणियट्टिसुहुमे जसकित्ती एक्कयं बंधो ॥७०१॥

अप्रमत्ते चापूर्वे अष्टाविंशादीनां बंध उदयस्तु ।
त्रिंशदनिवृत्तिसूक्ष्मयोर्यशस्कीर्तिरेका बंध ॥७०१॥

टीका – अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि चार और पांच क्रम से जानना; उदयस्थान तीस ही का जानना । सत्त्वस्थान असंयतवत् चार जानना ।

[***विशेषार्थ*** *– अप्रमत्तसंयत में –*

बंधस्थान – २८, २९, ३०, ३१ के कुल ४ ।

उदयस्थान – ३० का कुल १ ।

सत्त्वस्थान – ९३, ९२, ९१, ९० के कुल ४ ।

अपूर्वकरण में –

बंधस्थान – २८, २९, ३०, ३१, १ के कुल ५ ।

उदयस्थान – ३० का कुल १ ।

सत्त्वस्थान – ९३, ९२, ९१, ९० के कुल ४ ।]

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में बंधस्थान एक यशस्कीर्तिरूप ही है ॥७०१॥

उदओ तीसं सत्तं पढमचउक्कं च सीदिचउ संत्ते ।
खीण उदओ तीसं पढमचऊ सीदिचउ सत्तं ॥७०२॥

उदयस्त्रिंशत सत्त्वं प्रथमचतुष्कं चाशीतिचतुष्कं शांते ।
क्षीणे उदयस्त्रिंशत्प्रथमचतुष्कमशीतिचतुष्कं सत्त्वं ॥७०२॥

टीका – उदयस्थान तीस ही का है । सत्त्वस्थान तिरानबे का आदि चार और अस्सी का आदि चार ऐसे आठ हैं ।

[**विशेषार्थ –** *अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में –*

बंधस्थान – १ का १ ही स्थान है ।

उदयस्थान – ३० का १ ही स्थान है ।

सत्त्वस्थान – उपशमक – ९३, ९२, ९१, ९० के ४ हैं ।
९३ का क्षय होनेपर क्षपक – ८०, ७९, ७८, ७७ के ४ हैं । } *कुल ८*

उपशांतमोह, क्षीणमोह में उदयस्थान तीस ही का है । सत्त्वस्थान उपशांतमोह में तिरानबे का आदि चार और क्षीणमोह में अस्सी का आदि चार हैं ॥७०२॥

[***विशेषार्थ*** **–** *उपशांतमोह में –*	*क्षीणमोह में –*
बंधस्थान – ०	*०*
उदयस्थान – ३० का १ ।	*३० का १ ।*
सत्त्वस्थान – ९३, ९२, ९१, ९० के ४ ।	*८०, ७९, ७८, ७७ के ४ ।*]

जोगिम्मि अजोगिम्मि य तीसिगितीसं णवदुयं उदओ ।
सीदादिचऊछक्कं कमसो सत्तं समुद्दिट्ठं ॥७०३॥

योगिन्ययोगिनि च त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्टकमुदयः ।
अशीत्यादिचतुःषट्कं क्रमशः सत्त्वं समुद्दिष्टं ॥७०३॥

टीका – सयोगकेवली और अयोगकेवली में उदयस्थान क्रम से तीस, इकतीस के दो और नौ, आठ के दो जानना । सत्त्वस्थान क्रम से अस्सी का आदि चार और छह जानना । सयोगकेवली में बंध ०, उदय ३०, ३१; सत्त्व ८०, ७९, ७८, ७७ । अयोगकेवली में बंध ०, उदय ९, ८; सत्त्व ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ ॥७०३॥

[***विशेषार्थ*** – *समुद्घात के समय उदयस्थान –*

दंड – ३०, ३१ के (सामान्य तथा तीर्थंकरकेवली के)

कपाट (मिश्र) – २६, २७ के

प्रत्तर + लोकपूरण – २०, २१ के

कपाट (मिश्र) – २६, २७ के

मूलशरीर में शरीरपर्याप्ति – २८, २९ के

उच्छ्वासपर्याप्ति – २९, ३० के

भाषापर्याप्ति – ३०, ३१ के]

आगे चौदह जीवसमासों में कहते हैं –

पणदोपणगं पणचदुपणगं बंधुदयसत्त पणगं च ।
पणछक्कपणगछछक्कपणगमट्ठट्ठमेयारं ॥७०४॥

सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बादरो चेव ।
बियतिंदिया य तिविहा होंति असण्णी कमा सण्णी ॥७०५॥ जुम्मं

पंचद्विपंचकं पंचचतुः पंचकं बंधोदयसत्त्वं पंचकं च ।
पंचषट्पंचकं षट्षट्पंचकमष्टाष्टैकादश ॥७०४॥

सप्तैवापर्याप्ताः स्वामिनः सूक्ष्मश्च बादरश्चैव ।
विकलेंद्रियाश्च त्रिविधा भवंत्यसंज्ञिनः क्रमात्संज्ञिनः ॥७०५॥ युग्मं

टीका – अपर्याप्त सात जीवसमासों में बंध, उदय, सत्त्वस्थान अनुक्रम से पांच, दो, पांच; सर्व सूक्ष्म जीवों में पांच, चार, पांच; सर्व बादर जीवों में पांच, पांच, पांच; विकलत्रय में पांच, छह, पांच; असंज्ञी में छह, छह, पांच और संज्ञी में आठ, आठ, ग्यारह जानना ॥७०४, ७०५॥

वे कौनसे हैं ? वह कहते हैं –

बंधा तियपणछण्णव वीसत्तीसं अपुण्णगे उदओ ।
इगिचउवीसं इगिछव्वीसं थावरतसे कमसो ॥७०६॥

बंधास्त्रिकपंचषण्णव विंशत्रिंशदपूर्णके उदयः ।
एकचतुर्विंश एकषड्विंश स्थावरत्रसे क्रमशः ॥७०६॥

टीका – अपर्याप्त सात जीवसमासों में बंधस्थान तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के पांच हैं । उदयस्थान स्थावर-लब्धिअपर्याप्त में तो इक्कीस और चौबीस के दो हैं, त्रस-लब्धिअपर्याप्त में इक्कीस और छब्बीस के दो हैं ॥७०६॥

बाणउदी णउदिचऊ सत्तं एमेव बंधयं अंसा ।
सुहुमिदरे वियलतिये उदया इगिवीसयादिचउपणयं ॥७०७॥

द्वानवतिनवतिचतुष्कं सत्त्वमेवमेव बंधकोंऽशाः ।
सूक्ष्मेतरयोर्विकलत्रये उदया एकविंशकादिचतुः पंचकं ॥७०७॥

टीका – सत्त्वस्थान बानबे का और नब्बे का आदि चार ऐसे पांच हैं । *(९२, ९०, ८८, ८४, ८२)* । पुनश्च सूक्ष्म, बादर और विकलत्रय में बंधस्थान और सत्त्वस्थान तो ऐसे ही अपर्याप्तवत् जानना । उदयस्थान सूक्ष्म में इक्कीस का आदि चार हैं; बादर में पांच हैं ॥७०७॥

इगिछक्कडणववीसं तीसिगितीसं च वियलठाणं वा ।
बंधतियं सण्णिदरे भेदो बंधदि हु अडवीसं ॥७०८॥

एकषट्कानष्टनवविंश त्रिंशदेकत्रिंशच्च विकलस्थानं वा ।
बंधत्रयं संज्ञीतरस्मिन् भेदो बध्नाति हि अष्टाविंशं ॥७०८॥

टीका – विकलत्रय में उदयस्थान इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस के छह हैं । असंज्ञी में बंध, उदय, सत्त्वस्थान विकलत्रयवत् जानना । विशेष इतना है कि असंज्ञी अट्ठाइस के स्थान को भी बांधता है, इसलिए बंधस्थान छह हैं ॥७०८॥

सण्णिम्मि सव्वबंधो इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता ।
चउवीसूणा उदओ दसणवपरिहीणसव्वयं सत्तं ॥७०९॥

संज्ञिनि सर्वबंध एकविंशप्रभृत्येकत्रिंशदंताः ।
चतुर्विंशोना उदयो दशनवपरिहीनसर्वकं सत्त्वं ॥७०९॥

टीका – संज्ञी में बंधस्थान सभी आठ हैं । उदयस्थान इक्कीस का आदि चौबीस को छोड़कर इकतीस के स्थान तक आठ हैं । सत्त्वस्थान दस का और नौ का छोड़कर सर्व ग्यारह हैं ॥७०९॥

आगे चौदह मार्गणाओं में कहते हैं –

दोछक्कट्ठचउक्कं णिरयादिसु णामबंधठाणाणि ।
पणणवएगारपणयं तिपंचबारसचउक्कं च ॥७१०॥

द्विषट्काष्टचतुष्कं निरयादिषु नामबंधस्थानानि ।
पंचनवैकादशपंचकं त्रिपंचद्वादशचतुष्कं च ॥७१०॥

टीका – नारक आदि चार गतियों में नामकर्म के बंधस्थान क्रम से दो, छह, आठ, चार; उदयस्थान पांच, नौ, ग्यारह, पांच और सत्त्वस्थान तीन, पांच, बारह, चार जानना ॥७१०॥

इन्द्रियमार्गणा में कहते हैं –

एगे विगले सयले पण पण अड पंच छक्केगार पणं ।
पणतेरं बंधादी सेसादेसेवि इदि णेयं ॥७११॥

एके विकले सकले पंच पंचाष्ट पंच षट्कैकादश पंच ।
पंचत्रयोदश बंधादीनि शेषादेशेऽपीति ज्ञेयं ॥७११॥

टीका – एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में बंधस्थान क्रम से पांच, पांच, आठ हैं; उदयस्थान पांच, छह, ग्यारह हैं; सत्त्वस्थान पांच, पांच, तेरह हैं । ऐसे ही अवशेष कायादि मार्गणाओं में जानना ॥७११॥

वे कौनसे हैं ? वह कहते हैं –

णिरयादिणामबंधा उगुतीसं तीसमादिमं छक्कं ।
सव्वं पणछक्कुत्तरवीसुगुतीसंदुगं होदि ॥७१२॥

निरयादिनामबंधा एकोनत्रिंशत् त्रिंशदादिमं षट्कं ।
सर्वं पंचषट्कोत्तर विंशैकोनत्रिंशद्विकं भवति ॥७१२॥

टीका – नामकर्म के बंधस्थान नरकगति में उनतीस और तीस के दो हैं । तिर्यंचगति में आदि के तेइस के आदि छह हैं *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)* । मनुष्यगति में सर्व हैं । देवगति में पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस के चार हैं ॥७१२॥

उदया इगिपणसगअडणववीसं एक्कवीसपहुदिणवं ।
चउवीसहीणसव्वं इगिपणसगअट्ठणववीसं ॥७१३॥

उदया एकपंचसप्ताष्ट नवविंशमेकविंशप्रभृतिनव ।
चतुर्विंशहीनं सर्वमेकपंचसप्ताष्टनवविंश ॥७१३॥

टीका – *(नामकर्म के)* उदयस्थान नरकगति में इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस के पांच हैं । तिर्यंचगति में इक्कीस के आदि नौ हैं *(२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* । मनुष्यगति में चौबीस के बिना सर्व हैं *(२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८)* । देवगति में इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस के पांच हैं ॥७१३॥

सत्ता बाणउदितियं बाणउदीणउदिअट्ठसीदितियं ।
बासीदिहीणसव्वं तेणुदिचउक्कयं होदि ॥७१४॥

सत्ता द्वानवतित्रयं द्वानवतिनवत्यष्टाशीतित्रयं ।
द्व्यशीतिहीनसर्वं त्रिनवतिचतुष्कं भवति ॥७१४॥

टीका – नामकर्म के सत्त्वस्थान नरकगति में बानबे के आदि तीन हैं *(९२, ९१, ९०)* । तिर्यंचगति में बानबे, नब्बे के और अट्ठासी के आदि तीन – ऐसे पांच हैं *(९२, ९०, ८८, ८४, ८२)* । मनुष्यगति में बयासी के बिना सर्व हैं *(९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९)* । देवगति में तिरानबे का आदि चार हैं *(९३, ९२, ९१, ९०)* ॥७१४॥

इगिविगल बंधठाणं अडवीसूणं तिवीसछक्कं तु ।
सयलं सयले उदया एगे इगिवीसपंचयं वियले ॥७१५॥

एकविकले बंधस्थानमष्टाविंशोनं त्रयोविंशषट्कं तु ।
सकलं सकले उदया एकस्मिन्नेकविंशपंचकं विकले ॥७१५॥

टीका – इन्द्रियमार्गणा में बंधस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय में अट्ठाइस के स्थान बिना तेइस के आदि पांच हैं । *(२३, २५, २६, २९, ३०)* । पंचेन्द्रिय में सर्व हैं । पुनश्च उदयस्थान एकेन्द्रियों में इक्कीस के आदि पांच हैं *(२१, २४, २५, २६, २७)* ॥७१५॥

इगिछक्कडणववीसं तीसदु चउवीसहीणसव्वुदया ।
णउदिचऊ बाणउदी एगे वियले य सव्वयं सयले ॥७१६॥

एकषट्काष्टनवविंशं त्रिंशद्विकं चतुर्विंशहीनं सर्वमुदयाः ।
नवतिचतुष्कं द्वानवतिः एके विकले च सर्व सकले ॥७१६॥

टीका – *(उदयस्थान)* विकलेन्द्रिय में इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस के छह हैं । पंचेन्द्रिय में चौबीस के बिना सर्व हैं *(२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* । पुनश्च सत्त्वस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय में बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बियासी के हैं, पंचेन्द्रिय में सर्व हैं *(९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९)* ॥७१६॥

पुढवीयादीपंचसु तसे कमा बंधउदयसत्ताणि ।
एयं वा सयलं वा तेउदुगे णत्थि सगवीसं ॥७१७॥

पृथिव्यादिपंचसु त्रसे क्रमात् बंधोदयसत्त्वानि ।
एकं वा सकलं वा तेजोद्विके नास्ति सप्तविंशं ॥७१७॥

टीका – कायमार्गणा में पृथ्वीकायिकादि पांच स्थावरों में बंधस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान एकेन्द्रियवत् जानना । त्रसकायिक में पंचेन्द्रियवत् जानना । विशेष इतना है कि तेजस्कायिक *(अग्निकायिक)* और वायुकायिक में सत्ताइस के स्थान का उदय नहीं है, क्योंकि सत्ताइस का स्थान आतप या उद्योतयुत है और इन प्रकृतियों का इनमें उदय नहीं है ॥७१७॥

मणवचि बंधुदयंसा सव्वं णववीसतीसइगितीसं ।
दसणवदुसीदिवज्जिदसव्वं ओरालतम्मिस्से ॥७१८॥

मनोवचसोर्बंधोदयांशाः सर्वं नवविंशत्रिंशदेकत्रिंशत् ।
दशनवद्व्यशीतिवर्जित सर्वमौरालतन्मिश्रे ॥७१८॥

टीका – योगमार्गणा में मनोयोग, वचनयोग में तो प्रत्येक में बंधस्थान सर्व हैं; उदयस्थान उनतीस, तीस, इकतीस के तीन हैं; सत्त्वस्थान दस का, नौ का, बयासी का बिना सर्व हैं ॥७१८॥

सव्वं तिवीसछक्कं पणुवीसादेक्कतीसपेरंतं ।
चउछक्कसत्तवीसं दुसु सव्वं दसयणवहीणं ॥७१९॥

सर्वं त्रयोविंशषट्कं पंचविंशादेकत्रिंशत्पर्यंतं ।
चतुःषट्कसप्तविंशं द्वयोः सर्व दशकनवहीनं ॥७१९॥

टीका – औदारिक *(काययोग)* में बंधस्थान सर्व हैं *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १)* । औदारिकमिश्र में बंधस्थान तेइस के स्थान से लेकर छह हैं *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)* । उदयस्थान औदारिक में पच्चीस के स्थान से

लेकर इकतीस के स्थान तक सात हैं *(२५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* । औदारिकमिश्र में चौबीस, छब्बीस, सत्ताइस के तीन उदयस्थान हैं । सत्त्वस्थान औदारिक और औदारिकमिश्र में दस के और नौ के बिना सर्व हैं ॥७१९॥

वेगुव्वे तम्मिस्से बंधंसा सुरगदीव उदयो दु ।
सगवीसतियं पणजुद वीसं आहारतम्मिस्से ॥७२०॥

वैगूर्वे तन्मिश्रे बंधांशाः सुरगतिरिवोदयस्तु ।
सप्तविंशत्रयं पंच युतविंशमाहारतन्मिश्रे ॥७२०॥

टीका – वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्र *(काययोग)* में बंधस्थान और सत्त्वस्थान तो देवगतिवत् जानना । *(बंधस्थान २५, २६, २९, ३०; सत्त्वस्थान ९३, ९२, ९१, ९०)* तथा उदयस्थान *(वैकियिक में)* सत्ताइस का आदि तीन हैं *(२७, २८, २९)* और वैक्रियिकमिश्र में पच्चीस ही का है ॥७२०॥

बंधतियं अडवीसदु वेगुव्वं वा तिणउदिबाणउदी ।
कम्मे वीसदुगदओ ओरालियमिस्सयं व बंधंसा ॥७२१॥

बंधत्रयमष्टाविंश द्विकं वैगुर्वं वा त्रिनवतिद्वानवती ।
कर्मणि विंशद्विकोदय औरालिकमिश्रकं च बंधांशाः ॥७२१॥

टीका – आहारक और आहारकमिश्र *(काययोग)* में बंधस्थान अट्ठाइस, उनतीस के दो हैं; उदयस्थान वैक्रियिकवत् सत्ताइस का आदि तीन हैं, आहारकमिश्र में पच्चीस ही का है तथा सत्त्वस्थान तिरानबे, बानबे के दो हैं । कार्माण *(काययोग)* में उदयस्थान बीस, इक्कीस के दो हैं । बंधस्थान और सत्त्वस्थान औदारिकमिश्रवत् हैं ॥७२१॥

वेदकसाये सव्वं इगिवीसणवं तिणउदिएक्कारं ।
थीपुरिसे चउवीसं सीदडसदरी ण थीसंढे ॥७२२॥

वेदकपाये सर्वमेकविंशनवं त्रिनवत्येकादश ।
स्त्रीपुरुषे चतुर्विंशमशीत्यष्टसप्तती न स्त्रीषंढे ॥७२२॥

टीका – वेदमार्गणा और कषायमार्गणा में बंधस्थान सर्व हैं; उदयस्थान इक्कीस का आदि नौ हैं *(२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* तथा सत्त्वस्थान तिरानबे के आदि ग्यारह हैं *(९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७)* । इतना विशेष है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेद में चौबीस के स्थान का उदय नहीं है, क्योंकि उसका *(२४ का)* उदय एकेन्द्रिय में ही है *(वहां नपुंसकवेद ही पाया जाता है।)* पुनश्च स्त्रीवेद, नपुंसकवेद में अस्सी, अठहत्तर के दो सत्त्वस्थान नहीं हैं, क्योंकि तीर्थंकर सत्त्व का धारी पुरुषवेद सहित ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है ॥७२२॥

अण्णाणदुगे बंधो आदीछ णउंसय व उदयो दु ।
सत्तं दुणउदिछक्कं विभंगबंधा हु कुमदिं व ॥७२३॥

अज्ञानद्विके बंध आदि षट् नपुंसकं व उदयस्तु ।
सत्त्वं द्विनवतिर्षट्कं विभंगबंधा हि कुमतिर्व ॥७२३॥

टीका – ज्ञानमार्गणा में कुमति, कुश्रुत में बंधस्थान तेइस के से लेकर छह हैं *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०)*; उदयस्थान नपुंसकवेदवत् नौ हैं; सत्त्वस्थान बानबे के से लेकर छह हैं *(९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२)* । विभंगज्ञान में बंधस्थान तो कुमतिवत् हैं ॥७२३॥

उदया उणतीसतियं सत्ता णिरयं व मदिसुदोहीए ।
अडवीसपंच बंधा उदयो पुरिसं व अट्ठेव ॥७२४॥

उदया एकोनत्रिंशत्त्रयं सत्ता निरयं व मतिश्रुतावधिषु ।
अष्टाविंशपंचबंधा उदयाः पुरुषो व अष्टैव ॥७२४॥

टीका – *(विभंगज्ञान में)* उदयस्थान उनतीस का आदि तीन हैं *(२९, ३०, ३१)*; सत्त्वस्थान नरकगतिवत् हैं । पुनश्च मति, श्रुत, अवधि में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि पांच हैं *(२८, २९, ३०, ३१, १)*; उदयस्थान पुरुषवेदवत् आठ हैं । *(२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* ॥७२४॥

पढमचऊसीदिचऊ सत्तं मणपज्जवम्हि बंधंसा ।
ओहिं व तीसमुदयं ण हि बंधो केवले णाणे ॥७२५॥

प्रथमचतुष्कमशीतिचतुष्कं सत्त्वं मनःपर्यये बंधांशाः ।
अवधिरिव त्रिंशदुदयो नहि बंधः केवलेज्ञाने ॥७२५॥

टीका – *(मति, श्रुत, अवधि ज्ञान में)* सत्त्वस्थान तिरानबे का आदि चार और अस्सी का आदि चार ऐसे आठ हैं । मनःपर्ययज्ञान में बंधस्थान, सत्त्वस्थान अवधिज्ञानवत् हैं । उदयस्थान तीस ही का है । केवलज्ञान में बंध नहीं हैं ॥७२५॥

उदयो सव्वं चउपण वीसूणं सीदिछक्कयं सत्तं ।
सुदमिव सामायियदुगे उदओ पणुवीससत्तवीसचऊ ॥७२६॥

उदयः सर्वं चतुःपंचविंशोनमशीतिषट्कं सत्त्वं ।
श्रुतमिव सामायिकद्विके उदयः पंचविंशसप्तविंशचतुष्कं ॥७२६॥

टीका – *(केवलज्ञान में)* उदयस्थान चौबीस, पच्चीस के बिना सर्व हैं *(२०, २१, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८)*; सत्त्वस्थान अस्सी का आदि छह हैं *(८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९)* । पुनश्च संयममार्गणा में सामायिक, छेदोपस्थापना में बंधस्थान, सत्त्वस्थान श्रुतज्ञानवत् हैं । उदयस्थान पच्चीस का और सत्ताइस का आदि चार – ऐसे पांच हैं *(२५, २७, २८, २९, ३०)* ॥७२६॥

परिहारे बंधतियं अडवीसचऊ य तीसमादिचऊ ।
सुहुमे एक्को बंधो मणं व उदयंसठाणाणि ॥७२७॥

परिहारे बंधत्रयमष्टाविंशचतुष्कं च त्रिंशमादिचतुष्कं ।
सूक्ष्मे एको बंधो मनो व उदयांशस्थानानि ॥७२७॥

टीका – परिहारविशुद्धिसंयम में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान क्रम से अट्ठाइस आदि चार का बंध *(२८, २९, ३०, ३१)*; तीस ही का उदय और तिरानबे आदि चार का सत्त्व *(९३, ९२, ९१, ९०)* जानना । सूक्ष्मसाम्पराय में

बंध एक का ही है । उदय और सत्त्व मनःपर्ययज्ञानवत् हैं ॥७२७॥

जहखादे बंधतियं केवलयं वा तिणउदिचउ अत्थि ।
देसे अडवीसदुगं तीसदु तेणउदिचारि बंधतियं ॥७२८॥

यथाख्याते बंधत्रयं केवलं वा त्रिनवतिचतुष्कमस्ति ।
देशे अष्टाविंशद्विकं त्रिंशद्विकं त्रिनवतिचत्वारि बंधत्रयं ॥७२८॥

टीका – यथाख्यातसंयम में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान केवलज्ञानवत् हैं । विशेष इतना है कि सत्त्व तिरानबे आदि चार का भी पाया जाता है *(ग्यारहवें गुणस्थान में इनका सत्त्व है)* । देशसंयम में बंधादिक तीन क्रम से *(इसप्रकार हैं –)* अट्ठाइस आदि दो का बंध *(२८, २९)*; तीस आदि दो का उदय *(३०, ३१)*; तथा तिरानबे आदि चार का सत्त्व *(९३, ९२, ९१, ९०)* हैं ॥७२८॥

अविरमणे बंधुदया कुमदिं व तिणउदिसत्तयं सत्तं ।
पुरिसं वा चक्खिदरे अत्थि अचक्खुम्मि चउवीसं ॥७२९॥

अविरमणे बंधोदयाः कुमतिर्व त्रिनवतिसप्तकं सत्त्वं ।
पुरुषं वा चक्षुरितरयोरस्ति अचक्षुषि चतुर्विंशं ॥७२९॥

टीका – असंयम में बंधस्थान, उदयस्थान कुमतिज्ञानवत् हैं, सत्त्वस्थान तिरानबे आदि सात का हैं *(९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२)* । पुनश्च दर्शनमार्गणा में चक्षु, अचक्षुदर्शन में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् हैं । विशेष इतना है कि अचक्षुदर्शन में चौबीस का भी उदयस्थान है ॥७२९॥

ओहिदुगे बंधतियं तण्णाण वा किलिट्ठेलेस्सतिये ।
अविरमणं वा सुहजुगलुदओ पुंवेदयं व हवे ॥७३०॥

अडवीसचऊ बंधा पणछव्वीसं च अत्थि तेउम्मि ।
पढमचउक्कं सत्तं सुक्के ओहिं व वीसयं चुदओ ॥७३१॥ जुम्मं

अवधिद्विके बंधत्रयं तज्ज्ञानं वा क्लिष्टलेश्यत्रये ।
अविरमणं वा शुभयुगुलोदयः पुंवेदको व भवेत् ॥७३०॥

अष्टाविंशचत्वारो बंधाः पंचषड्विंश चास्ति तेजसि ।
प्रथमचतुष्कं सत्त्वं शुक्लायामवधिर्व विंशकं चोदयः ॥७३१॥ युग्मं

टीका – अवधिदर्शन और केवलदर्शन में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान अवधिज्ञान और केवलज्ञानवत् जानना । पुनश्च लेश्यामार्गणा में कृष्णादिक तीन लेश्या में तो बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान असंयतवत् हैं । पीत, पद्म लेश्या में उदयस्थान पुरुषवेदवत् हैं । बंधस्थान पद्म में अट्ठाइस का आदि चार हैं *(२८, २९, ३०, ३१)* । पीत में वे चार और पच्चीस, छब्बीस के – ऐसे छह हैं । सत्त्वस्थान दोनों में आदि के चार हैं । शुक्ललेश्या में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान अवधिज्ञानवत् हैं । विशेष इतना है कि वहां बीस का भी उदयस्थान है ॥७३०, ७३१॥

भव्वे सव्वमभव्वे बंधुदया अविरदव्व सत्तं तु ।
णउदिचउ हारबंधण दुगहीणं सुदमिवुवसमे बंधो ॥७३२॥

भव्ये सर्वमभव्ये बंधोदया अविरत इव सत्त्वं तु ।
नवतिचतुष्कमाहारबंधन द्विकहीनं श्रुतमिवोपशमे बंधः ॥७३२॥

टीका – भव्यमार्गणा में *(भव्य में)* बंध, उदय, सत्त्व स्थान सर्व ही हैं । अभव्य में बंधस्थान, उदयस्थान असंयमवत् जानना । सत्त्वस्थान नब्बे का आदि चार जानना । इतना विशेष है कि बंधस्थान में उद्योतयुत तीस का बंधस्थान है, आहारकद्विकयुत तीस का बंधस्थान नहीं है । सम्यक्त्व मार्गणा में उपशम सम्यक्त्व में बंधस्थान श्रुतज्ञानवत् हैं । *(२८, २९, ३०, ३१, १)* ॥७३२॥

उदया इगिपणवीसं णववीसतियं च पढमचउ सत्तं ।
उवसम इव बंधंसा वेदगसम्मे ण इगिबंधो ॥७३३॥

उदया एकपंचविंशं नवविंशत्रयं च प्रथमचतुष्कं सत्त्वं ।
उपशम इव बंधांशा वेदकसम्ये नैकबंधः ॥७३३॥

टीका – उदयस्थान इक्कीस का, पच्चीस का तथा उनतीस का आदि तीन – ऐसे पांच हैं *(२१, २५, २९, ३०, ३१)* । सत्त्वस्थान तिरानबे का आदि चार हैं । वेदक सम्यक्त्व में बंधस्थान, सत्त्वस्थान तो उपशम सम्यक्त्ववत् है, विशेष इतना है कि एक का बंधस्थान नहीं है ॥७३३॥

उदया मदिं व खइये बंधादि सुदमिवत्थि चरिमदुगं ।
उदयंसे वीसं च य साणे अडवीसतियबंधो ॥७३४॥

उदया मतिर्व क्षायिके बंधादि श्रुतमिवास्ति चरमद्विकं ।
उदयांशे विंशं च च साने अष्टाविंशत्रिकबंध: ॥७३४॥

टीका – उदयस्थान मतिज्ञानवत् आठ हैं *(२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* । क्षायिक सम्यक्त्व में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान श्रुतज्ञानवत् पांच, आठ, आठ हैं । विशेष इतना है कि उदयस्थान और सत्त्वस्थान में अंत के दो-दो भी पाये जाते हैं और उदयस्थान में बीस का स्थान भी पाया जाता है ।

(बंधस्थान – २८, २९, ३०, ३१, १ के ।

उदयस्थान – २०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ के ।

सत्त्वस्थान – ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ के ।)

सासादनरुचि में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि तीन हैं *(२८, २९, ३०)* ॥७३४॥

उदया इगिवीसचऊ णववीसतियं च णउदियं सत्तं ।
मिस्से अडवीसदुगं णववीसतियं च बंधुदया ॥७३५॥

उदया एकविंशचत्वार: नवविंशत्रयश्च नवतिकं सत्त्वं ।
मिश्रेऽष्टाविंशद्विकं नवविंशत्रयं च बंधोदया: ॥७३५॥

टीका – उदयस्थान इक्कीस का आदि चार तथा उनतीस का आदि तीन – ऐसे सात हैं । वहां सत्ताइस, अट्ठाइस का उदय आने के काल तक सासादनपना एकेन्द्रियादिकों में सम्भव नहीं है, इसलिए नहीं कहे । सत्त्वस्थान नब्बे

ही का है । मिश्ररुचि *(सम्यग्मिथ्यात्व)* में बंधस्थान अट्ठाइस का आदि दो हैं *(२८, २९)*; उदयस्थान उनतीस का आदि तीन हैं *(२९, ३०, ३१)* ॥७३५॥

बाणउदिणउदिसत्तं मिच्छे कुमदिं व होदि बंधतियं ।
पुरिसं वा सण्णीये इदरे कुमदिं व णत्थि इगिणउदी ॥७३६॥

द्वानवतिनवतिसत्त्वं मिथ्ये कुमतिर्व भवति बंधत्रयं ।
पुरुषो वा संज्ञिनि इतरस्मिन् कुमतिर्व नास्त्येकनवतिः ॥७३६॥

टीका – सत्त्वस्थान बानबे, नब्बे के दो हैं । पुनश्च मिथ्यारुचि *(मिथ्यात्व)* में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान कुमतिज्ञानवत् जानना । संज्ञीमार्गणा में *(संज्ञी में)* बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् हैं । असंज्ञी में कुमतिज्ञानवत् हैं, विशेष इतना है कि इक्यानबे का सत्त्वस्थान नहीं है ॥७३६॥

आहारे बंधुदया संढं वा णवरि णत्थि इगिवीसं ।
पुरिसं वा कम्मंसा इदरे कम्मं व बंधतियं ॥७३७॥

आहारे बंधोदयाः षंढो वा नवरि नास्ति एकविंशं ।
पुरुषो वा कर्मांशाः इतरस्मिन् कर्म व बंधत्रयं ॥७३७॥

टीका – आहारमार्गणा में *(आहारक में)* बंधस्थान, उदयस्थान तो नपुंसकवेदवत् हैं, विशेष इतना है कि इक्कीस का उदयस्थान नहीं है; सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् हैं ।

(बंधस्थान — २३, २५, २६, [illegible], २८, २९, ३०, ३१, [illegible], १ ।

उदयस्थान — २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, [illegible] ।

सत्त्वस्थान — ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ ।)

पुनश्च अनाहारक में बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान कार्मणकाययोगवत् है, विशेष इतना है कि ... ॥७३७॥

अत्थि णवदु य दुदओ दसणवसत्तं च विज्जदे एत्थ ।
इदि बंधुदयप्पहुदी सुदणामे सारमादेसे ॥७३८॥

अस्ति नवाष्ट च द्व्युदयो दशनवसत्त्वं च विद्यतेऽत्र ।
इति बंधोदयप्रभृतिश्रुतनाम्नि सारमादेशे ॥७३८॥

टीका – वहां अनाहारक में अयोगी का उदयस्थान नौ का और आठ का है; सत्त्वस्थान दस का वा नौ का है । इसतरह नामकर्म में बंधस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान का त्रिसंयोग प्रकट है, उसे चौदह मार्गणाओं में सार-समीचीन कहा है ॥७३८॥

चारुसुदंसणधरणे कुवलयसंतोसणे समत्थेण ।
माधवचंदेण महावीरेणत्थेण वित्थरिदो ॥७३९॥

चारुसुदर्शनधरणे कुवलसंतोषणे समर्थेन ।
माधवचंद्रेण महावीरेणार्थेन विस्तरितः ॥७३९॥

टीका – चारु अर्थात् उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन को धारण करने में और पृथ्वीसमूह को आनंद उपजाने में समर्थ ऐसे जो 'माधवचंद्र' और 'महावीरस्वामी', उनके द्वारा ऐसा कथन परमार्थ से विस्ताररूप किया है । यहां माधवचंद्र तो नेमिनाथ तीर्थंकर और महावीर वर्धमान तीर्थंकर का नाम जानना । अथवा माधवचंद्र और वीरनंदी दोनों आचार्यों के नाम जानना ॥७३९॥

आगे इस त्रिसंयोग के एक आधार, दो आधेय को कहते हैं । वहां प्रथम ही बंध आधार तथा उदय और सत्त्व आधेय को दो गाथाओं द्वारा कहते हैं --

णवपंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णुवीस छव्वीसे ।
अट्ठचदुरट्ठवीसे णवसत्तुगु तीसतीसम्मि ॥७४०॥

एगेगं इगितीसे एगे एगुदयमट्ठसत्ताणि ।
उवरबंधे दस दस उदयंसा होंति णियमेण ॥७४१॥ जुम्मं

नवपंचोदयसत्तास्त्रयोविंशे पंचविंशे षड्विंशे ।
अष्टचतुष्कमष्टाविंशे नवसप्तैकोनत्रिंशत्यं शतोः ॥७४०॥

एकैकमेकत्रिंशतौ एकस्मिन्नेकोदयोष्टसत्त्वानि ।
उपरतबंधे दश दश उदयांशा भवंति नियमेन ॥७४१॥ युग्मं

टीका – तेइस, पच्चीस, छब्बीस के बंधस्थानों में उदयस्थान नौ और सत्त्वस्थान पांच हैं । अट्ठाइस के बंधस्थान में उदयस्थान आठ और सत्त्वस्थान चार हैं । उनतीस, तीस के बंधस्थानों में उदयस्थान नौ और सत्त्वस्थान सात हैं । इकतीस के बंधस्थान में उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान एक है । एक के बंधस्थान में उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान आठ हैं । 'उपरतबंध' अर्थात् बंधरहित स्थान में उदयस्थान और सत्त्वस्थान नियम से दस-दस हैं ।

भावार्थ – जिस जीव के जिस काल में इतनी-इतनी प्रकृतियों का बंध होता है, उस काल में उन जीवों में से किसी के कोई, किसी के कोई – ऐसे नाना जीवों की अपेक्षा उदयस्थान और सत्त्वस्थान पाये जाते हैं ॥७४०, ७४१॥

वे कौनसे हैं ? वह कहते हैं –

उदयंसट्ठाणाणि य सामित्तादो दु जाणिदव्वाणि ।
बंधुदयं च णिरुंभिय सत्तस्स य संभवगदीए ॥१॥

तियपणछवीसबंधे इगिवीसादेक्कतीस चरिमुदया ।
बाणउदी णउदिचऊ सत्तं अडवीसगे उदया ॥७४२॥

त्रिकपंचषड्विंशबंधे एकविंशादेकत्रिंशचरमोदयाः ।
द्वानवतिर्नवतिचतुष्कं सत्त्वमष्टाविंशके उदयाः ॥७४२॥

टीका – तेइस, पच्चीस, छब्बीस के बंधस्थानों में इक्कीस से लेकर इकतीस तक के उदयस्थान नौ हैं *(२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* । सत्त्वस्थान बानबे का और नब्बे का आदि चार – ऐसे पांच हैं *(९२, ९०, ८८, ८४, ८२)* ॥७४२॥

पुव्वं व ण चउवीसं बाणउदिचउक्कसत्तमुगुतीसे ।
तीसे पुव्वं वुदया पडमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४३॥

पूर्वं व न चतुर्विंश द्वानवतिचतुष्कसत्त्वमेकोनत्रिंशे ।
त्रिंशे पूर्वं वोदयाः प्रथमाद्यं सप्तकं सत्त्वं ॥७४३॥

टीका – अट्ठाइस के बंधस्थान में उदयस्थान पूर्ववत् नौ में चौबीस का नहीं है, इसलिए आठ हैं । सत्त्वस्थान बानबे का आदि चार हैं । पुनश्च उनतीस, तीस के बंधस्थान में उदयस्थान पूर्वोक्त नौ हैं और सत्त्वस्थान तिरानबे का आदि सात हैं ॥७४३॥

इगितीसे तीसुदओ तेणउदी सत्तयं हवे एगे ।
तीसुदओ पढमचऊ सीदादिचउक्कमवि सत्तं ॥७४४॥

एकत्रिंशे त्रिंशोदयस्त्रिनवतिः सत्त्वं भवति एकस्मिन् ।
त्रिंशोदयः प्रथमचतुष्कमशीत्यादिचतुष्कमपि सत्त्वं ॥७४४॥

टीका – इकतीस के बंधस्थान में उदयस्थान तीस का एक है, सत्त्वस्थान तिरानबे का एक है । पुनश्च एक के बंधस्थान में उदयस्थान तीस का एक है, सत्त्वस्थान तिरानबे का आदि चार और अस्सी का आदि चार – ऐसे आठ हैं ॥७४४॥

उवरबंधेसुदया चऊपणवीसूण सव्वयं होदि ।
सत्तं पढमचउक्कं सीदादीछक्कमवि होदि ॥७४५॥

उपरतबंधेषूदयाश्चतुःपंचविंशोनं सर्वं भवति ।
सत्त्वं प्रथमचतुष्कमशीत्यादिषट्कमपि भवति ॥७४५॥

टीका – उपरतबंध अर्थात् बंधरहित में उदयस्थान चौबीस, पच्चीस के बिना सर्व दस हैं । सत्त्वस्थान तिरानबे का आदि चार और अस्सी का आदि छह – ऐसे दस हैं । अब इनका स्वरूप दिखाते हैं – वहां प्रथम त्रिसंयोगी में तेइस के बंधस्थान में उदयस्थान नौ, सत्त्वस्थान पांच कहे; सो तेइस का बंध एकेन्द्रिय-अपर्याप्तयुत है, इसलिए इस स्थान को देवनारकी बिना अन्य त्रस, स्थावर तिर्यंच और मनुष्य-मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं । वहां एकेन्द्रियादि सर्व तिर्यंचों के जब बंध एकेन्द्रिय-अपर्याप्तयुत तेइस का होता है, तब उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । पुनश्च कर्मभूमिया मनुष्य के जब एकेन्द्रिय-अपर्याप्तयुत तेइस का बंध होता है तब उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है ।

पुनश्च पच्चीस का बंध एकेन्द्रिय-पर्याप्त वा त्रस-अपर्याप्तयुत है, इसलिए इसके तिर्यंच, मनुष्य, देव-मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं । वहां सर्व तिर्यंचों के जब एकेन्द्रिय-पर्याप्त या त्रस-अपर्याप्तयुत पच्चीस का बंध होता है, तब उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । मनुष्यों के जब वैसा ही बंध होता है, तब उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । भवनत्रिक, सौधर्मद्विक देवों के एकेन्द्रिय-पर्याप्तयुत ही पच्चीस का बंध है, वहां उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

छब्बीस का बंध एकेन्द्रिय पर्याप्त और उद्योत-आतप में से एक सहित है, इसलिए इसको तिर्यंच, मनुष्य, देव में मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं । वहां भी तेजस्कायिक, वायुकायिक, साधारण, सूक्ष्म, अपर्याप्तों के उसका उदय नहीं है । वहां तिर्यंचों के जब एकेन्द्रिय-पर्याप्त-उद्योत या आतपयुत छब्बीस का बंध होता है तब उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । मनुष्यों के जब वैसा बंध होता है, तब उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है ।

भवनत्रिक, सौधर्मद्विक देवों के जब वैसा ही *(२६ का)* बंध होता है, तब उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

पुनश्च अट्ठाइस का बंध नरकगति, देवगतियुत है, इसलिए संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंच और मनुष्य इसका बंध विग्रहगति और मिश्रशरीरकाल को उल्लंघकर पर्याप्तकाल में ही करते हैं । वहां तिर्यंचों के जब मिथ्यात्व में नरक, देवगतियुत अट्ठाइस का बंध होता है, तब उदय अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी का है । सासादन में देवगतियुत ही अट्ठाइस का बंध है, वहां सासादन में उदय तीस, इकतीस का; सत्त्व नब्बे का है । सम्यग्मिथ्यात्व में उदय तीस, इकतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । असंयत में उदय इक्कीस, छब्बीस,

अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । देशसंयत में उदय तीस, इकतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

बयासी के सत्त्व सहित तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव मरकर तिर्यंच में उपजते हैं, उनके विग्रहगति और मिश्रशरीरकाल में तिर्यंचगतियुत तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस का बंध होता है, तब बयासी का सत्त्व पाया जाता है । मनुष्यद्विकयुत पच्चीस, उनतीस का बंध होता है तब बयासी का सत्त्व नहीं पाया जाता ।

पुनश्च चौरासी का सत्त्व एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय के नारकचतुष्क की उद्वेलना होनेपर होता है, वे जीव मरकर पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में उपजते हैं उनके भी पूर्वोक्त दोनों कालों में *(विग्रहगति और मिश्रशरीरकाल में)* चौरासी का सत्त्व पाया जाता है । इसलिए अट्ठाइस का बंध होने के काल में बयासी, चौरासी का सत्त्व नहीं कहा ।

मनुष्यों के जहां मिथ्यात्व में नरक या देवगतियुत अट्ठाइस का बंध होता है, वहां उदय अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे, अट्ठासी का है । मनुष्यद्विक की उद्वेलना हुयी हो अथवा न हुयी हो, तेजस्कायिक और वायुकायिकों के मनुष्यायु के बंध का अभाव होने के कारण उनका मनुष्यों में उपजना नहीं है, इसलिए बयासी का सत्त्व नहीं है । पुनश्च नारकचतुष्क की उद्वेलना सहित एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय जीव मनुष्यों में उपजते हैं उनके विग्रहगति और मिश्रशरीरकाल में अट्ठाइस का बंध नहीं है, इसलिए चौरासी का भी सत्त्व नहीं है । शरीरपर्याप्ति होनेपर नरकचतुष्क या देवचतुष्क का बंध हो जाये, वहां अट्ठासी ही का सत्त्व है ।

पुनश्च पहले नरकायु के बंध सहित असंयत दूसरी, तीसरी पृथ्वी *(नरक)* में गमन करने के सन्मुख हो, वहां मिथ्यात्व में जाकर नरकगति सहित अट्ठाइस का बंध करता है, वहां तीस के उदय सहित इक्यानबे का सत्त्व पाया जाता है । मनुष्यों में सासादनादि में देवगतियुत में ही अट्ठाइस का बंध है । वहां सासादन में उदय तीस का, सत्त्व नब्बे का है और सम्यग्मिथ्यात्व में उदय तीस का और सत्त्व बानबे, नब्बे का है । *(अट्ठाइस का बंध करनेवाले)* असंयत में उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे का है । यहां इक्यानबे का सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ होने के पश्चात्, पूर्व में नरकायु के बंध बिना

सम्यक्त्व से भ्रष्टता नहीं होती और तीर्थकर का बंध निरंतर है, इसलिए देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का ही बंध होता है, अट्ठाइस का नहीं होता ।

(अट्ठाइस के बंध करनेवाले) देशसंयत में उदय तीस का, सत्त्व बानबे, नब्बे का है । प्रमत्त में उदय पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । अप्रमत्त में उदय तीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । अपूर्वकरण में उदय तीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

पुनश्च उनतीस का बंध द्वीन्द्रियादि त्रस-पर्याप्तयुत वा तिर्यचगति वा मनुष्यगतियुत वा देवगति-तीर्थंकरयुत होता है । इसको चारों गति के जीव बांधते हैं । वहां नारकी के मिथ्यात्व में पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है । यहां इक्यानबे का सत्त्व धर्मादि तीन नरकों में अपर्याप्त काल में ही पाया जाता है । सासादन में वैसा ही *(२९ का)* बंध होता है, वहां उदय उनतीस का, सत्त्व नब्बे का ही है । सम्यग्मिथ्यात्व में मनुष्ययुत ही उनतीस का बंध होता है, वहां उदय उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । असंयत में भी मनुष्ययुत ही उनतीस का बंध होता है, वहां धर्मा नरक में *(पहले नरक में)* तो उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे का है । वंशा, मेघा *(दूसरे, तीसरे नरक में)* उदय उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । अंजनादिकों में *(चौथे आदि नरकों में)* उदय उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

पुनश्च तिर्यंचों के मिथ्यात्व में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । सासादन में पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, चौबीस, छब्बीस, तीस, इकतीस का है । सत्त्व नब्बे का है । यहां पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का उदय नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्वादि तीन में उनतीस का बंध नहीं है; क्योंकि तिर्यंचों के तिर्यंचगति, मनुष्यगति की बंध की व्युच्छिति सासादन में ही होती है । यहां देवगतियुत अट्ठाइस का ही बंध है ।

पुनश्च मनुष्यों के मिथ्यात्व में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, का है । यहां मनुष्य में तेजस्कायिक, वायुकायिक नहीं उपजते, इसलिए बयासी का सत्त्व नहीं कहा । पुनश्च पहले जिसके नरकायु का बंध हुआ है, ऐसा जीव तीर्थंकर का बंध करके नरक को जाते हुये मिथ्यादृष्टि हुआ, वहां मनुष्यगतियुत उनतीस का बंध करता है, उसी के तीस के उदय सहित इक्यानबे का सत्त्व जानना । सासादन में पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, छब्बीस, तीस का; सत्त्व नब्बे का है । सम्यग्मिथ्यात्व में उनतीस का बंध ही नहीं है । असंयतादि में देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का बंध है । वहां असंयत में उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का; सत्त्व तिरानबे, इक्यानबे का है । देशसंयत में उदय तीस का; सत्त्व तिरानबे, इक्यानबे का है । प्रमत्त में उदय पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का; सत्त्व तिरानबे, इक्यानबे का है ।

पुनश्च देवों में भवनत्रिक से लेकर सहस्रार तक के मिथ्यादृष्टि में संज्ञी-पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । वहां सासादन में उदय इक्कीस, पच्चीस, उनतीस का; सत्त्व नब्बे का है । सम्यग्मिथ्यात्व में मनुष्ययुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

असंयत में मनुष्यगतियुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय भवनत्रिक के उनतीस ही का है, औरों के इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सत्त्व सर्व के बानबे, नब्बे का है ।

पुनश्च आनतादि उपरिम ग्रैवेयक तक के मनुष्यगतियुत ही उनतीस का बंध है । वहां मिथ्यात्व में उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन में उदय इक्कीस, पच्चीस, उनतीस का; सत्त्व नब्बे का है । सम्यग्मिथ्यात्व में उदय उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । असंयत में उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । अनुदिश,

अनुत्तर के असंयत में मनुष्यगतियुत उनतीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

तीस का बंध त्रस-पर्याप्त-उद्योत-तिर्यंचगतियुत वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत वा देवगति-आहारकद्विकयुत होता है । इसको चारों गति के जीव बांधते हैं । वहां सर्व नारकियों के मिथ्यात्व, सासादन में पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का बंध है । वहां मिथ्यात्व में उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन में उदय उनतीस का, सत्त्व नब्बे का है । मिश्र में तीस का बंध ही नहीं है । असंयत में मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का बंध होता है, वहां धर्मा में तो उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का; सत्त्व इक्यानबे का है । वंशा, मेघा में उदय उनतीस का; सत्त्व इक्यानबे का है । अंजनादि में ऐसा बंध नहीं है ।

तिर्यंच के मिथ्यात्व में तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस और इकतीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । सासादन में पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, चौबीस, छब्बीस, तीस, इकतीस का है; सत्त्व नब्बे का है मिश्रादि में ऐसा बंध ही नहीं है ।

मनुष्यों के मिथ्यात्व में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । सासादन में तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, छब्बीस, तीस का है, सत्त्व नब्बे का है । मिश्रादि चार में *(सम्यग्मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानों में)* तीस का बंध नहीं है । अप्रमत्त, अपूर्वकरण में देवगति-आहारकद्विकयुत तीस का बंध होता है, वहां उदय तीस का है; सत्त्व बानबे का है ।

देवों के भवनत्रिकादि सहस्रार तक तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का बंध होता है, वहां मिथ्यात्व में उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है, सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन में उदय इक्कीस, पच्चीस, उनतीस का है; सत्त्व नब्बे का है । भवनत्रिक के सम्यग्मिथ्यात्व और असंयत में तीस का बंध नहीं है, मनुष्यगतियुत

उनतीस ही का बंध है । पुनश्च सौधर्म से सहस्रार तक असंयत में मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है; सत्त्व तिरानबे, इक्यानबे का है । आनतादि उपरिम ग्रैवेयक तक मिथ्यात्वादि तीन *(गुणस्थानों)* में तीस का बंध नहीं है । आनतादि सर्वार्थसिद्धि तक असंयत में मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का बंध होता है, वहां उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का; सत्त्व तिरानबे, इक्यानबे का है ।

पुनश्च इकतीस का बंध देवगति-आहारकद्विक-तीर्थंकरयुत होता है, इसलिए इसका बंध अप्रमत्त, अपूर्वकरणवाले करते हैं, वहां उदय तीस का है; सत्त्व तिरानबे का है । पुनश्च जहां एक ही का बंध पाया जाता है, वहां अपूर्वकरण में उदय तीस का, सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । अनिवृत्तिकरण में उदय तीस का; सत्त्व तिरानबे आदि चार का तथा अस्सी आदि चार का है । सूक्ष्मसाम्पराय में उदय तीस का; सत्त्व तिरानबे आदि चार का तथा अस्सी आदि चार का है । पुनश्च जहां बंध नहीं पाया जाता वहां उपशांतमोह में उदय तीस का; सत्त्व तिरानबे का आदि चार हैं । क्षीणकषाय में उदय तीस का, सत्त्व अस्सी आदि चार का है । सयोगकेवली में स्वस्थानकेवली में *(समुद्घात रहित केवली में)* उदय तीस, इकतीस का; सत्त्व अस्सी आदि चार का है । समुद्घात-केवली में उदय बीस, इक्कीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है; सत्त्व अस्सी आदि चार का है । अयोगकेवली में उदय ~~बीस~~, ~~इक्कीस~~, नौ, आठ का है । सत्त्व अस्सी, उन्नासी, अठहत्तर, सतहत्तर, दस, नौ का है ॥७४५॥

आगे दूसरा भेद उदय आधार तथा बंध और सत्त्व आधेयरूप, उसको कहते हैं –

वीसादिसु बंधंसा णभदु छण्णव पणपणं च छसत्तं ।
छण्णव छड दुसु छद्दस अट्ठदसं छक्कछक्कं णभतिदुसु ॥७४६॥

विंशादिषु बंधांशा नभोद्विकं षण्णव पंच पंच च षट्सप्त ।
षण्णव षडष्ट द्वयोः षड्दश अष्टदश षट्कषट्कं नभस्त्रिकं द्वयोः ॥७४६॥

टीका – बीस से लेकर जो उदयस्थान हैं, उनमें बंधस्थान, सत्त्वस्थान क्रम

से *(इसप्रकार हैं)* – बीस के *(उदयस्थान)* में शून्य, दो; इक्कीस के *(उदयस्थान)* में छह नौ; चौबीस के *(उदयस्थान)* में पांच, पांच; पच्चीस के *(उदयस्थान)* में छह, सात; छब्बीस के *(उदयस्थान)* में छह, नौ; सत्ताइस, अट्ठाइस के *(उदयस्थान)* में छह, आठ; उनतीस के *(उदयस्थान)* में छह, दस; तीस के *(उदयस्थान)* में आठ, दस; इकतीस के *(उदयस्थान)* में छह, छह; नौ और आठ के *(उदयस्थान)* में शून्य, तीन जानना । इतनी-इतनी प्रकृतियों का उदय होते हुये किसी जीव के कोई, किसी जीव के कोई बंधस्थान, सत्त्वस्थान जानना ॥७४६॥

वे कौनसे हैं ? वह कहते हैं –

वीसुदये बंधो ण हि उणसीदीसत्तसत्तरी सत्तं ।
इगिवीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतया बंधा ॥७४७॥

विंशोदये बंधो नहि एकोनाशीतिसप्तसप्तती सत्त्वं ।
एकविंशे त्रयोविंशप्रभृतित्रिंशांतका बंधाः ॥७४७॥

टीका – बीस के उदयस्थान में बंध नहीं है; सत्त्व उन्नासी, सतहत्तर के दो हैं । इक्कीस के उदय में बंध तेइस का से लेकर तीस का तक छह हैं ॥७४७॥

सत्तं तिणउदिपहुदी सीदंता अट्ठसत्तरी य हवे ।
चउवीसे पढमतियं णववीसं तीसयं बंधो ॥७४८॥

सत्त्वं त्रिनवतिप्रभृत्यशीत्यंतानि अष्टसप्ततिश्च भवेत् ।
चतुर्विंशे प्रथमत्रयं नवविंशं त्रिंशत्कं बंधः ॥७४८॥

टीका – सत्त्व तिरानबे का से लेकर अस्सी का तक और अठहत्तर का है । चौबीस के उदय में बंधस्थान आदि के तीन तथा उनतीस, तीस का – ऐसे पांच *(स्थान)* हैं ॥७४८॥

बाणउदी णउदिचऊ सत्तं पणछस्सगट्ठणववीसे ।
बंधा आदिमछक्कं पढमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४९॥

द्वानवतिर्नवतिचतुष्कं सत्त्वं पंचषट्सप्ताष्टनवविंशे ।
बंधा आदिमषट्कं प्रथमाद्यं सप्तकं सत्त्वं ॥७४९॥

टीका – सत्त्व बानबे का तथा नब्बे आदि चार का – ऐसे पांच हैं । पुनश्च पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस के उदय में बंधस्थान तेइस का आदि छह हैं । पच्चीस के उदय में सत्त्वस्थान आदि के सात हैं ॥७४९॥

ते णवसगसदरिजुदा आदिमछस्सीदिअट्ठसदरीहिं ।
णवसत्तसत्तरीहिं सीदिचउक्केहिं सहिदाणि ॥७५०॥

तानि नवसप्तसप्ततियुतानि आदिमषडशीत्यष्टसप्ततिभिः ।
नवसप्तसप्ततिभिरशीतिचतुष्कैः सहितानि ॥७५०॥

टीका – छब्बीस के उदय में सत्त्वस्थान आदि के सात और उन्नासी, सतहत्तर के दो ऐसे नौ हैं । सत्ताइस के उदय में सत्त्व आदि के छह, अस्सी और अठहत्तर के दो ऐसे आठ हैं । अट्ठाइस के उदय में सत्त्व आदि के छह, उन्नासी, सतहत्तर के दो ऐसे आठ हैं । उनतीस के उदय में सत्त्व आदि के छह और अस्सी आदि चार ऐसे दस हैं ॥७५०॥

तीसे अट्ठवि बंधो ऊणत्तीसं व होदि सत्तं तु ।
इगितीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतयं बंधो ॥७५१॥

त्रिंशे अष्टापि बंध एकोनत्रिंशं व भवति सत्त्वं तु ।
एकत्रिंशे त्रयोविंशप्रभृतित्रिंशांतको बंधः ॥७५१॥

टीका – तीस के उदय में बंधस्थान आठ; सत्त्वस्थान उनतीस के उदयवत् दस हैं । इकतीस के उदय में बंध तेइस से लेकर तीस तक के छह हैं ॥७५१॥

सत्तं दुणउदिणउदी तिय सीदडहत्तरी य णवगट्ठे ।
बंधो ण सीदिपहुदी सुसमविसमं सत्तमुद्दिट्ठं ॥७५२॥

सत्त्वं द्विनवतिनवति त्रिकमष्टाशीत्यष्टसप्ततिश्च नवकाष्टसु ।
बंधो नाशीतिप्रभृति सुषमविषमं सत्त्वमुद्दिष्टं ॥७५२॥

टीका – सत्त्व बानबे का तथा नब्बे आदि तीन का और अस्सी, अठहत्तर दो का – ऐसे छह हैं । नौ के और आठ के उदय में बंध नहीं है; सत्त्व अस्सी का आदि का छह हैं, उनमें से नौ के उदय में समरूप तीन *(८०, ७८, १०)* और आठ के उदय में विषमरूप तीन *(७९, ७७, ९)* जानना । अब इनका विशेष कहते हैं –

बीस का उदय तीर्थंकर रहित सामान्यकेवली के समुद्घात में होता है, वहां बंध का अभाव है; सत्त्व उन्नासी, सतहत्तर के दो हैं ।

इक्कीस का उदय तीर्थंकर के *(समुद्घात अवस्था में)* प्रतर करने और समेटने में और लोकपूरण में होता है, वहां बंध नहीं है; सत्त्व अस्सी, अठहत्तर के दो हैं । पुनश्च आनुपूर्वी सहित इक्कीस का उदय चारों गति के विग्रहगतिकाल में होता है, वहां नारकियों के धर्मादि तीन नरकों के मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है । सासादन और मिश्र में इक्कीस का उदय ही नहीं है । असंयत में धर्मा नरक में ही इक्कीस का उदय है, वहां बंध मनुष्यगतियुत उनतीस का वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है । सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है । अंजनादि तीन नरकों में मिथ्यात्व में बंध पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का अथवा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे का है । यहां सासादनादि में इक्कीस का उदय नहीं है ।

पुनश्च *(२१ के उदयवाले)* तिर्यंच के मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । सासादन में बंध पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र, देशसंयत में इक्कीस का उदय नहीं है, असंयत में है; वहां बंध देवगतियुत अट्ठाइस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

मनुष्यों के इक्कीस का उदय होता है वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है । सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । सासादन में बंध पंचेन्द्रिय-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र में इक्कीस का उदय नहीं है । असंयत में बंध देवगतियुत अट्ठाइस वा देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का है । सत्त्व तिरानबे, बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है । देशसंयतादि में इक्कीस का उदय ही नहीं है ।

पुनश्च देवों में भवनत्रिक देवों और कल्पवासिनी स्त्रियों के इक्कीस का उदय होता है, वहां मिथ्यात्व में बंध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन में बंध पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-मनुष्ययुत उनतीस का तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र, असंयत में ऐसा उदय नहीं है ।

पुनश्च सौधर्म में ऐसा *(२१ का)* उदय होता है, वहां मिथ्यात्व में बंध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन में बंध तिर्यंच *(पंचेन्द्रिय)* वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र में *(२१ का उदय)* नहीं है । असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस का वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है ।

ऊपर के दस स्वर्गों में *(सहस्रार तक)* मिथ्यात्व में बंध संज्ञी-पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन, असंयत में सौधर्मद्विकवत् जानना ।

ऊपर के ग्रैवेयक तक मिथ्यात्व में बंधस्थान मनुष्ययुत उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन में बंध मनुष्ययुत उनतीस का; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र में *(२१ का उदय)* नहीं है । असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है ।

ऊपर के चौदह विमान *(नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर)* संबंधी असंयत में भी ऐसे ही दो बंध *(२९, ३०)* और चार सत्त्व *(९३, ९२, ९१, ९०)* हैं ।

पुनश्च चौबीस का उदय अपर्याप्त-एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के ही है । वहां लब्धिअपर्याप्त में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । ऐसे ही निर्वृत्तिअपर्याप्त में हैं । उसमें विशेष इतना है कि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के मनुष्यगतियुत बंधस्थानों के भेद छोड़ देना तथा सभी सूक्ष्म-अपर्याप्त-तेज, वायु और साधारणयुत, आतप-उद्योतयुत बंध छोड़ देना । *(उनके आतप-उद्योतरूप प्रशस्त प्रकृति नहीं बंधती ।)*

पुनश्च पच्चीस का उदय चारों गति के जीवों के अपर्याप्त काल में *(निर्वृत्तिअपर्याप्त देव, नारकी, आहारक मनुष्य, एकेन्द्रिय)* और पर्याप्त एकेन्द्रिय में

पाया जाता हैं । वहां पच्चीस का उदय होनेपर सर्व नारकी मिथ्यादृष्टि में वा धर्मानरक के असंयत में इक्कीस के उदयवत् बंध और सत्त्व जानना । नारकियों के अपर्याप्तकाल में अन्य गुणस्थान है नहीं ।

पुनश्च एकेन्द्रिय में परघातयुत पच्चीस का उदय होता है, वहां बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । त्रस में पच्चीस का उदय नहीं है, क्योंकि वहां अंगोपांग, संहनन सहित छब्बीस का ही उदय होता है । पुनश्च मनुष्य-प्रमत्त गुणस्थानवर्ती के आहारकशरीर में संहनन रहित अंगोपांग सहित पच्चीस का उदय है, वहां बंध देवयुत अट्ठाइस वा देव-तीर्थकरयुत उनतीस का है; सत्त्व तिरानबे, बानबे का है । पुनश्च देवों के पच्चीस का उदय होता है, वहां जैसे इक्कीस के उदय में बंध, सत्त्व कहे वैसे ही बंध सत्त्व जानना ।

छब्बीस का उदय त्रस लब्धिअपर्याप्त और निर्वृत्तिअपर्याप्त के संहनन सहित है । वहां मिथ्यात्व में बंधस्थान तेइस से लेकर अट्ठाइस बिना तीस तक के पांच है *(२३, २५, २६, २९, ३०)*; सत्त्वस्थान बानबे का तथा नब्बे आदि चार के है *(९२, ९०, ८८, ८४, ८२)* । एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के शरीरपर्याप्तिकाल में उद्योत वा आतप सहित वा उच्छ्वास सहित छब्बीस का उदय है । वहां बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी का है । *(एकेन्द्रिय के)* सासादन में छब्बीस का उदय नहीं है, क्योंकि इसका उदय होने से पहले ही सासादन को छोड़ देता है, वहां चौबीस का ही उदय है ।

पुनश्च तिर्यंच-पंचेन्द्रिय के सासादन में छब्बीस का उदय होता है, वहां बंध उनतीस, तीस के दो है; सत्त्व नब्बे ही का है । 'मिच्छदुगे देवचऊ ण' इस वचन से अट्ठाइस का बंध नहीं है । मिश्र में छब्बीस का उदय नहीं है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । देशसंयत में छब्बीस का उदय नहीं है ।

पुनश्च मनुष्य के छब्बीस का उदय होता है, वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है। सासादन में बंध तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र में ऐसा उदय नहीं है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस

का, देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । देशसंयतादि में ऐसा उदय नहीं है । तीर्थंकर बिना सामान्यकेवली के कपाट *(समुद्घात)* में छब्बीस का उदय होता है, वहां बंध नहीं है; सत्त्व उन्नासी वा सतहत्तर का है ।

पुनश्च सत्ताइस का उदय चारों गतियों में शरीरपर्याप्तिकाल में और एकेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में होता है । जहां सत्ताइस का उदय होता है, वहां नारकियों के धर्मादि तीन नरकों में मिथ्यात्व में बंध तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का होता है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । यहां तीर्थंकरयुत सत्त्वस्थान नहीं पाया जाता, क्योंकि शरीरपर्याप्ति के ऊपर तीर्थंकर सत्त्व सहित नारकियों के सम्यक्त्व ही हो जाता है, तब चौथा गुणस्थान होता है, सासादन, मिश्र में ऐसा उदय ही नहीं है । असंयत में धर्मादि में तो बंध मनुष्ययुत उनतीस वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है । वंशा, मेघा में बंध मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस ही का है; सत्त्व इक्यानबे का है ।

पुनश्च अंजनादि तीन में मिथ्यात्व में बंध तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । माघवी में बंध तिर्यंचयुत उनतीस वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादनादि में ऐसा *(२७ का)* उदय नहीं है ।

एकेन्द्रियों के उच्छ्वास-निश्वासयुत वा आतप, उद्योत में से एक सहित सत्ताइस का उदय होता है, वहां बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । तेजस्कायिक, वायुकायिक के बिना अन्य एकेन्द्रिय के उच्छ्वासपर्याप्ति काल में मनुष्यद्विक का बंध पाया जाता है, इसलिए बयासी का सत्त्व यथासंभव जानना ।

आहारकशरीरवाले के सत्ताइस का उदय होता है, वहां बंध देवयुत अट्ठाइस वा देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का है; सत्त्व तिरानबे, बानबे का है । तीर्थंकर का कपाट समुद्घात में सत्ताइस का उदय होता है, वहां बंध का अभाव है; सत्त्व अस्सी, अठहत्तर का है ।

देवों के भवनत्रिक देव, कल्पवासिनी स्त्रियों के तो मिथ्यात्व में बंध पच्चीस, छब्बीस, तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस तथा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व बानबे,

नब्बे का है । सासादनादि में ऐसा उदय ही नहीं है । यहां शरीरमिश्रकाल में सासादन छूटकर मिथ्यात्व हो जाता है; इसलिए सासादन भी नहीं कहा ।

सौधर्मद्विक के मिथ्यात्व में बंध और सत्त्व भवनत्रिकवत् है । सासादन, मिश्र में ऐसा उदय नहीं है । असंयत में बंध मनुष्यगतियुत उनतीस वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । ऊपर दस स्वर्गों में मिथ्यात्व में बंध तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योत तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन, मिश्र में *(यह २७ का उदयस्थान)* नहीं है । असंयत में सौधर्मद्विक वत् बंध, सत्त्व है । ऊपर के ग्रैवेयक तक मिथ्यात्व में बंध मनुष्ययुत उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । असंयत में और अनुदिश, अनुत्तर के असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है ।

पुनश्च अट्ठाइस का उदय तिर्यंच और मनुष्य के शरीरपर्याप्तिकाल में वा देव और नारकी के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में है । जहां अट्ठाइस का उदय होता है, वहां नारकी के घर्मा नरक में मिथ्यात्व में तो बंध तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे है । यहां इक्यानबे का सत्त्व नहीं है, क्योंकि इस सत्त्ववाला घर्मानरक में जाता है तो सम्यक्त्व से भ्रष्ट नहीं होता । सासादन, मिश्र में ऐसा उदय नहीं है । असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है ।

वंशा, मेघा में मिथ्यात्व में बंध और सत्त्व धर्मावत् । सासादन, मिश्र में *(अट्ठाइस का उदय)* नहीं है । असंयत में बंध मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का ही और सत्त्व इक्यानबे ही का है *(तीर्थंकर की सत्तावाला जीव ही शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही सम्यक्त्व प्राप्त करता है । अन्य जीव सभी पर्याप्ति पूर्ण करके अंतर्मुहूर्त में विशुद्धि कर फिर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं । इसलिए यह अट्ठाइस का स्थान अन्य असंयत के नहीं होता ।)* अंजनादि तीन *(नरकों)* में मिथ्यात्व में बंध और सत्त्व धर्मावत् है । सासादनादि में ऐसा उदय ही नहीं है । माघवी में मिथ्यात्व में बंध तिर्यंचयुत उनतीस का, तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादनादि में ऐसा उदय नहीं है ।

तिर्यंचों में अट्ठाइस का उदय होनेपर मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । सासादन, मिश्र में ऐसा उदय नहीं है । असंयत में बंध देवगतियुत अट्ठाइस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । देशसंयत में *(यह उदयस्थान)* नहीं है ।

मनुष्यों के मिथ्यात्व में बंध और सत्त्व तिर्यंचवत् है । सासादन, मिश्र में *(२८ का उदय)* नहीं है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस वा देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । देशसंयत में *(२८ का उदय)* नहीं है । आहारक के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में अट्ठाइस का उदय होता है, वहां बंध देवयुत अट्ठाइस का वा देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का है; सत्त्व तिरानबे, बानबे का है । तीर्थंकर रहित के दंड समुद्घात के औदारिक काययोग में अट्ठाइस का उदय होता है, वहां बंध का अभाव है; सत्त्व उन्नासी, सत्तहत्तर का है । पुनश्च देवों के जैसे सत्ताइस के उदय में बंध और सत्त्व कहे, वैसे ही अट्ठाइस का उदय होनेपर भी जानना ।

पुनश्च उनतीस का उदय नारकियों के भाषापर्याप्तिकाल में दुस्वर सहित होता है, वहां सर्व नारकियों के मिथ्यात्व में बंध मनुष्य या तिर्यंचयुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । वहां माघवी *(सातवें नरक)* में मनुष्ययुत का बंध नहीं है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सासादन में बंध मिथ्यात्ववत् है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र में बंध मनुष्ययुत उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । असंयत में घर्मा, वंशा, मेघा नरक में तो बंध मनुष्ययुत उनतीस वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, इक्यानबे का है । अंजनादि चार में बंध मनुष्ययुत उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

पुनश्च त्रस-तिर्यंचों के शरीरपर्याप्तिकाल में उद्योत सहित उनतीस का उदय होता है, वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । सासादन, मिश्र में *(२९ का उदय)* नहीं है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । देशसंयत में *(२९ का उदय)* नहीं है ।

पुनश्च मनुष्यों के उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में उच्छ्वासयुत उनतीस का उदय होता है,

वहां मिथ्यात्व में बंध और सत्त्व तिर्यंचवत् है । सासादन, मिश्र में *(२९ का उदय)* नहीं है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का वा देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । देशसंयत में *(२९ का उदय)* नहीं है । आहारकशरीर के भाषापर्याप्तिकाल में सुस्वर सहित उनतीस का उदय होता है, वहां बंध देवयुत अट्ठाइस, देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का; सत्त्व तिरानबे, बानबे का है । तीर्थंकरकेवली के दंड समुद्घात में उनतीस का उदय है, वहां बंध का अभाव है; सत्त्व अस्सी, अठहत्तर का है । तीर्थंकर रहित केवली के मूलशरीर में प्रवेश करते हुये उच्छ्वासयुत उनतीस का उदय होता है, वहां बंध का अभाव है; सत्त्व उन्नासी, सतहत्तर का है ।

देवों के भाषापर्याप्तिकाल में सुस्वर सहित उनतीस का उदय है, वहां मिथ्यात्व में भवनत्रिक, कल्पवासिनी स्त्रियों के और सौधर्मद्विक के बंध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है । बारह स्वर्गों में *(सहस्रार तक)* तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है, ऊपर अंतिम ग्रैवेयक तक मनुष्ययुत उनतीस ही का है; सत्त्व सर्वत्र बानवे, नब्बे का है । सासादन में भवनत्रिकादि बारहवें स्वर्ग तक तिर्यंच वा मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का, ऊपर अंतिम ग्रैवेयक तक मनुष्ययुत उनतीस ही का है; सत्त्व सर्वत्र नब्बे का है । मिश्र में सर्वत्र अंतिम ग्रैवेयक तक बंध मनुष्ययुत उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । असंयत में भवनत्रिक और कल्पवासिनी स्त्री के बंध मनुष्ययुत उनतीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । सौधर्म से अनुत्तरविमान तक बंध मनुष्ययुत उनतीस का वा मनुष्यगति-तीर्थंकरयुत तीस का है; सत्त्व तिरानबे, बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है ।

पुनश्च तीस का उदय तिर्यंच और मनुष्यों के ही संहनन सहित है । वहां तिर्यंचों के उच्छ्वासपर्याप्ति में उद्योत सहित तीस का उदय होता है, वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । सासादन, मिश्र में *(३० का उदय)* नहीं है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । देशसंयत में *(उद्योत सहित ३० का उदय)* नहीं है ।

पुनश्च भाषापर्याप्तिकाल में उद्योत रहित और सुस्वर-दुस्वर में से एक सहित भी तीस का उदय तिर्यंच के होता है । वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस,

छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का; सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का है । यहां अट्ठासी, चौरासी का सत्त्व विकलत्रय की अपेक्षा कहा है, क्योंकि विकलत्रय जीवों के सुरद्विक, नारकचतुष्क की उद्वेलना होनेपर फिर उनके बंध का अभाव है । सासादन में बंध देवयुत अट्ठाइस का, तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र, असंयत, देशसंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; सत्त्व बानबे, नब्बे का है ।

पुनश्च मनुष्यों में तीर्थंकर के *(समुद्घात के पश्चात्)* मूलशरीर में प्रवेश करते हुये उच्छ्वास सहित तीस का उदय होता है, वहां बंध का अभाव है; सत्त्व ~~उन्नासी~~ अस्सी वा ~~अठहत्तर~~ अठहत्तर का है ।

पुनश्च सामान्य मनुष्यों के भाषापर्याप्तिकाल में सुस्वर या दुस्वर सहित तीस का उदय होता है, वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का; सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे का है । यहां इक्यानबे का सत्त्व नरकगमन को सन्मुख तीर्थंकरसत्त्ववाले की अपेक्षा है । सासादन में बंध देवयुत अट्ठाइस, तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; सत्त्व नब्बे का है । मिश्र में बंध देवयुत अट्ठाइस का है; सत्त्व बानबे, नब्बे का है । असंयत से अपूर्वकरण के छठवें भाग तक बंध देवयुत अट्ठाइस का वा देव-तीर्थंकरयुत उनतीस का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । अपूर्वकरण के सातवें भाग में बंध एक का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय में बंध एक का है; सत्त्व तिरानबे आदि चार और अस्सी आदि चार का है । ऊपर *(के गुणस्थानों में)* बंध का अभाव है; सत्त्व उपशांतमोह में तिरानबे आदि चार का है; क्षीणकषाय, सयोगकेवली में अस्सी आदि चार का है; अयोगकेवली में तीस का उदय ही नहीं है ।

पुनश्च इकतीस का उदय त्रस-उद्योत सहित भाषापर्याप्तिकाल में सुस्वर या दुस्वर में से एक के साथ तिर्यंचों के होता है । वहां जैसे उद्योत रहित भाषापर्याप्तिकाल में तीस का उदय होनेपर तिर्यंच के बंध और सत्त्व कहे थे, वैसे ही यहां जानना। मनुष्य में क्षीणमोह तक इकतीस का उदय नहीं है, तीर्थंकर के भाषापर्याप्तिकाल में उदय है । वहां बंध का अभाव है; सत्त्व अस्सी, अठहत्तर का है ।

पुनश्च नौ का उदय तीर्थंकर के अयोगी में होता है, वहां सत्त्व अस्सी, अठहत्तर, दस का है । वहां ही सामान्यकेवली के आठ का उदय होता है, वहां सत्त्व उन्नासी, सतहत्तर, नौ का है । बंध का दोनों में अभाव है ॥७५२॥

इसतरह उदय आधार और बंध, सत्त्व आधेय का आगम के अनुसार कथन करके अब आगे सत्त्वस्थान आधार और बंध, उदय आधेय का कथन सात गाथाओं द्वारा करते हैं –

सत्ते बंधुदया चदु सग सगणव चदुसगं च सगणवयं ।
छण्णव पणणव पणचदु चदुसिगिछक्कं णभेक्क सुण्णेगं ॥७५३॥

सत्त्वे बंधोदया चतु:सप्त सप्तनव चतु:सप्त च सप्तनवकं ।
षण्णव पंचनव पंचचतुष्कं चतुर्ष्वेकषट्कं नभएकं शून्यमेकं ॥७५३॥

टीका – तिरानबे आदि जो सत्त्वस्थान उनमें बंधस्थान और उदयस्थान अनुक्रम से चार, सात और सात, नौ और चार, सात और सात, नौ और छह, नौ और पांच, नौ और पांच, चार तथा चार सत्त्वस्थानों में *(८०, ७९, ७८, ७७)* एक, छह हैं और *(१० के स्थान में)* शून्य, एक और *(९ के स्थान में)* शून्य, एक जानना । यहां इतना-इतना सत्त्व होनेपर किसी जीव के कोई, किसी जीव के कोई ऐसे बंधस्थान और उदयस्थान पाये जाते हैं – ऐसा कहते हैं ॥७५३॥

वे *(स्थान)* कौनसे हैं ? वह कहते हैं –

तेणउदीए बंधो उगुतीसादीचउक्कमुदओ दु ।
इगिपणछस्सगअट्ठय णववीसं तीसयं णेयं ॥७५४॥

त्रिनवत्यां बंध एकोनत्रिंशादिचतुष्कमुदयस्तु ।
एकपंचषट्सप्ताष्टक नवविंशं त्रिंशत्को ज्ञेय: ॥७५४॥

टीका – तिरानबे के सत्त्वस्थान में बंध उनतीस आदि चार का है *(२९, ३०, ३१, १)* और उदयस्थान इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस के हैं ॥७५४॥

बाणउदीए बंधा इगितीसूणाणि अट्ठठाणाणि ।
इगिवीसादीएक्कत्तीसंता उदयठाणाणि ॥७५५॥

द्वानवत्यां बंधा एकत्रिंशोनान्यष्टस्थानानि ।
एकविंशाद्येकत्रिंशांतानि उदयस्थानानि ॥७५५॥

टीका – बानबे के सत्त्वस्थान में बंधस्थान इकतीस के बिना सात हैं *(२३, २५, २६, २८, २९, ३०, १)* और उदयस्थान इक्कीस से इकतीस तक नौ हैं *(२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* ॥७५५॥

इगिणवदीए बंधा अडवीसत्तिदयमेक्कयं चुदओ ।
तेणउदिं वा णउदी बंधा बाणउदियं व हवे ॥७५६॥

एकनवत्यां बंधा अष्टविंशत्रितयमेकश्चोदयः ।
त्रिनवतिर्वा नवतिबंधा द्वानवतिर्व भवेत् ॥७५६॥

टीका – इक्यानबे के सत्त्वस्थान में बंधस्थान अट्ठाइस आदि तीन का और एक का ऐसे चार हैं *(२८, २९, ३०, १)* और उदयस्थान तिरानबे के समान सात हैं । पुनश्च नब्बे के सत्त्वस्थान में बंधस्थान बानबे के समान सात हैं ॥७५६॥

चरिमदुवीसूणुदयो तिसु दुसु बंधा छ तुरियहीणं च ।
बासीदी बंधुदया पुव्वं विगिवीसचत्तारि ॥७५७॥

चरमद्विविंशोनोदयस्त्रिषु द्वयोर्बंधाः षट् तुरीयहीनं च ।
द्व्यशीत्यां बंधोदयाः पूर्वमिवैकविंशचत्वारः ॥७५७॥

टीका – उदयस्थान अंत के दो तथा बीस का – इन तीन बिना नौ हैं *(२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)* । त्रिषु अर्थात् अट्ठासी, चौरासी के सत्त्वस्थान में भी ये ही नौ उदयस्थान हैं । अट्ठासी, चौरासी के सत्त्वस्थान में बंधस्थान तेइस आदि छह स्थानों में से चौथा स्थान अट्ठाइस - उसको छोड़कर पांच हैं *(२३, २५, २६, २९, ३०)* । बयासी के सत्त्वस्थान में बंधस्थान चौरासी के स्थानवत्

पांच हैं, उदयस्थान इक्कीस का आदि चार हैं । सत्त्व ८२; बंध २३, २५, २६, २९, ३०; उदय २१, २४, २५, २६ ॥७५७॥

सीदादिचउसु बंधा जसकित्ती समपदे हवे उदओ ।
इगिसगणवधियवीसं तीसेक्कत्तीसणवगं च ॥७५८॥

अशीत्यादिचतुर्षु बंधो यशस्कीर्तिः समपदे भवेदुदयः ।
एकसप्तनवाधिकविंशं त्रिंशैकत्रिंशनवकं च ॥७५८॥

टीका – अस्सी से लेकर चार सत्त्वस्थानों में *(८०, ७९, ७८, ७७ में)* बंधस्थान एक यशस्कीर्ति का है । उदयस्थान अस्सी, अठहत्तर के समगणनारूप स्थानों मे *(समसंख्यारूप ८०, ७८ में)* इक्कीस, सत्ताइस, उनतीन, तीस, इकतीस, नौ के हैं ॥७५८॥

वीसं छडणववीसं तीसं चट्ठं च विसमठाणुदया ।
दसणवगे ण हि बंधो कमेण णवअट्ठयं उदओ ॥७५९॥

विंशः षडष्टनवविंशं त्रिंशच्चाष्ट च विषमस्थानोदयाः ।
दशनवके न हि बंधः क्रमेण नवाष्टक उदयः ॥७५९॥

टीका – उन्नासी, सतहत्तर के विषमगणनारूप सत्त्वस्थानों में बीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, आठ के उदयस्थान हैं । दस और नौ के सत्त्वस्थानों में बंध का अभाव है । उदय क्रम से नौ का और आठ का है । इसतरह कहे हुये आधार-आधेय को चारों गतियों के गुणस्थानों में लगाते हैं –

वहां तिरानबे का सत्त्व कर्मभूमियां पर्याप्त और निवृत्तिअपर्याप्त मनुष्य और वैमानिक देवों के ही पाया जाता है । वहां भी तित्थाहार इत्यादि सूत्र से मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में तिरानबे का सत्त्व नहीं पाया जाता । वहां मनुष्य के जहां तिरानबे का सत्त्व पाया जाता है, वहां असंयत में बंध देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का, उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । देशसंयत में बंध देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का और उदय तीस का है । प्रमत्त में बंध देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस का, उदय पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । अप्रमत्त में बंध देवगति-तीर्थंकरयुत उनतीस

अथवा देव-तीर्थंकर-आहारकयुत इकतीस का और उदय तीस का है । उपशमक अपूर्वकरण में अप्रमत्तवत् बंध और सत्त्व है । अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में बंध एक का, उदय तीस का है । उपशांतमोह में बंध का अभाव, उदय तीस का है । क्षीणमोहादि में तिरानबे का सत्त्व नहीं है ।

पुनश्च वैमानिक देवों के असंयत में तिरानबे का सत्त्व होता है, वहां बंध मनुष्य-तीर्थंकरयुत तीस का, उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । यहां असंयतादि में अट्ठाइस को नहीं बांधता, क्योंकि नरक जाने के सन्मुख जीव के बिना अन्य तीर्थंकर के सत्त्ववाले जीव को तीर्थंकर-बंध का सर्वदा सद्भाव है ।

पुनश्च बानबे का सत्त्व चारों गतियों में पाया जाता है । नारकियों के जहां बानबे का सत्त्व पाया जाता है, वहां धर्मानरक में मिथ्यात्व में बंध तिर्यंच का मनुष्ययुत उनतीस का तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सासादन में बानबे का सत्त्व ही नहीं है । मिश्र में बंध मनुष्ययुत उनतीस का और उदय उनतीस का है । असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस का; उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । वंशा से मघवी *(दूसरे से छठवें नरक)* तक मिथ्यात्व में धर्मानरकवत् । सासादन में ऐसा *(९२ का)* सत्त्व नहीं है । मिश्र और असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस का और उदय उनतीस का है । माघवी *(सातवें नरक)* में मिथ्यात्व में बंध तिर्यंचयुत उनतीस वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का; उदय धर्मावत् है । सासादन में *(९२ का सत्त्व)* नहीं है । मिश्र और असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस का, उदय उनतीस का है ।

पुनश्च तिर्यंचों के जहां बानबे का सत्त्व पाया जाता है, वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । सासादन में *(९२ का सत्त्व)* नहीं है । मिश्र में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय तीस, इकतीस का है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । देशसंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय तीस इकतीस का है ।

पुनश्च मनुष्यों के जहां बानबे का सत्त्व पाया जाता है, वहां मिथ्यात्व में बंध

तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का; उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सासादन में बानबे का सत्त्व नहीं है । मिश्र में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय तीस का है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । देशसंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय तीस का है । प्रमत्त में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । अप्रमत्त, अपूर्वकरण में बंध देवयुत अट्ठाइस का वा देव-आहारकयुत तीस का; उदय तीस का है । अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय में बंध एक का; उदय तीस का है । उपशांतमोह में बंध का अभाव, उदय तीस का है । क्षीणमोहादि में बानबे का सत्त्व ही नहीं ।

पुनश्च देवों के जहां बानबे का सत्त्व पाया जाता है, वहां भवनत्रिक, सौधर्मद्विक के मिथ्यात्व में बंध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है; उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सासादन में *(९२ का सत्त्व)* नहीं है । मिश्र में बंध मनुष्ययुत उनतीस का; उदय उनतीस का है । असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस का; उदय भवनत्रिक के तो उनतीस ही का, सौधर्मद्विक के इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । पुनश्च मिथ्यात्व में ऊपर सहस्रार तक बंध तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । ऊपर अंतिम ग्रैवेयक तक मनुष्ययुत उनतीस ही का है; उदय ग्रैवेयक तक इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सासादन में *(९२ का सत्त्व)* नहीं है । मिश्र में अंतिम ग्रैवेयक तक बंध मनुष्ययुत उनतीस का; उदय उनतीस का है । असंयत में अनुत्तर विमान तक बंध मनुष्ययुत उनतीस का; उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है ।

पुनश्च इक्यानबे का सत्त्व 'तिरिये ण तित्थसत्तं' इस वचन से तिर्यंच बिना देव, नारकी, मनुष्य में ही है । जहां इक्यानबे का सत्त्व है, वहां नारकियों के धर्मानरक में मिथ्यात्व में तो बंध मनुष्ययुत उनतीस का; उदय इक्कीस, पच्चीस का है । सत्ताइस आदि का यहां उदय नहीं है, क्योंकि शरीरपर्याप्ति के ऊपर तिर्थंकरसत्त्ववाला मिथ्यादृष्टि नारकी सम्यग्दृष्टि ही हो जाता है । सासादन और मिश्र में इक्यानबे का सत्त्व ही नहीं है । असंयत में बंध मनुष्य तीर्थंकरयुत तीस का; उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । वंशा, मेघा में भी धर्मावत् है, विशेष

इतना है कि असंयत में उदय सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस ही का है । अंजनादि *(४ थे से ७ वें नरक तक)* में इक्यानबे का सत्त्व ही नहीं है ।

मनुष्यों के इक्यानबे का सत्त्व होता है, वहां मिथ्यात्व में बंध नरकयुत अट्ठाइस का वा मनुष्ययुत उनतीस का, उदय तीस का है । सासादन और मिश्र में *(९१ की सत्ता)* नहीं है । असंयत में बंध देव-तीर्थकरयुत उनतीस का; उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण के छठवें भाग तक देव-तीर्थकरयुत उनतीस का बंध है; अपूर्वकरण का सातवां भाग, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय में बंध एक का, उपशांतमोह में बंध नहीं है और उदय देशसंयत से उपशांतमोह तक तीस ही का है ।

पुनश्च देवों के इक्यानबे का सत्त्व भवनत्रिक और कल्पवासिनी *(देवियों)* बिना वैमानिक देवों के असंयत में ही होता है । वहां बंध मनुष्य-तीर्थकरयुत तीस का, उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है ।

पुनश्च नब्बे का सत्त्व नारकियों में हो, वहां सर्व नारकियों के मिथ्यात्व में बंध तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । वहां माघवी में मनुष्ययुत का बंध नहीं है । उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सासादन में बंध मिथ्यात्ववत् है, उदय उनतीस का है । मिश्र मे बंध मनुष्ययुत उनतीस का, उदय उनतीस का है । असंयत में बंध मनुष्ययुत उनतीस का है । उदय धर्मानरक में इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । वंशादिक में उदय उनतीस का ही है ।

पुनश्च तिर्यंच में नब्बे का सत्त्व हो, वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । सासादन में बंध देवयुत अट्ठाइस का वा तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । उदय इक्कीस, चौबीस, छब्बीस, तीस, इकतीस का है । मिश्र में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय तीस, इकतीस का है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । देशसंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय तीस, इकतीस का है ।

पुनश्च मनुष्यों के नब्बे का सत्त्व हो, वहां मिथ्यात्व में बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस,

अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है; उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । सासादन में बंध देवयुत अट्ठाइस का वा तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है; उदय इक्कीस, छब्बीस, तीस का है । मिश्र में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय तीस का है । असंयत में बंध देवयुत अट्ठाइस का; उदय इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त में बंध देवयुत अट्ठाइस का, अपूर्वकरण में बंध देवयुत अट्ठाइस का वा एक का, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में बंध एक का, उपशांतमोह में बंध का अभाव है। उदय देशसंयत से उपशांतमोह तक तीस ही का है ।

पुनश्च देवों के नब्बे का सत्त्व हो, वहां मिथ्यात्व में भवनत्रिक और सौधर्मद्विक के तो बंध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का है । सहस्रार तक तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । ऊपर अंतिम ग्रैवेयक तक मनुष्ययुत उनतीस ही का है । उदय अंतिम ग्रैवेयक तक इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है । सासादन में बंध सहस्रार तक *(भवनत्रिक से लेकर)* तिर्यंच या मनुष्ययुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का है । ऊपर अंतिम ग्रैवेयक तक मनुष्ययुत उनतीस ही का है । उदय अंतिम ग्रैवेयक तक इक्कीस, पच्चीस, उनतीस का है । मिश्र में अंतिम ग्रैवेयक तक बंध मनुष्ययुत उनतीस का, उदय उनतीस ही का है । असंयत में भवनत्रिक के उदय उनतीस ही का है, सौधर्म से अनुत्तर विमान तक उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस का है ।

पुनश्च अट्ठासी का सत्त्व देवद्विक की उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय, विकलत्रय के होता है तथा वे मरकर जहां उत्पन्न होते हैं वहां भी होता है । वह तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि के ही होता है । वहां बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । उदय तिर्यंचों के इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है । मनुष्यों के इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस का है । यह अट्ठासी का सत्त्व पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि शरीरपर्याप्तिकाल में नरकगतियुत अट्ठाइस का बंध करे वा तिर्यंच या मनुष्यगतियुत उनतीस का वा तिर्यंच-उद्योतयुत तीस का बंध करे, तब पाया जाता है । अथवा एकेन्द्रिय और विकलत्रय नारकचतुष्क की उद्वेलना करके मरके पंचेन्द्रिय तिर्यंच या

मनुष्य होकर शरीरपर्याप्तिकाल में देवचतुष्क को बांधता है, तब पाया जाता है ।

पुनश्च चौरासी का सत्त्व नारकचतुष्क की उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय के पाया जाता है अथवा वे मरकर मनुष्य या तिर्यंच में जहां उत्पन्न होते हैं वहां मिथ्यात्व में ही पाया जाता है, वहां बंध और उदय अट्ठासी के सत्त्व में कहा वैसे ही जानना । विशेष इतना है कि यहां अट्ठाइस का बंध नहीं है । यह चौरासी का सत्त्व शरीरपर्याप्तिकालादि में तिर्यंच या मनुष्यगति का बंध होनेपर होता है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों के देव या नरकगति का बंध होनेपर ऐसा सत्त्व नहीं होता *(अट्ठासी का होता है)* ।

पुनश्च बयासि का सत्त्व मनुष्यद्विक की उद्वेलना होनेपर तेजस्कायिकों और वायुकायिकों के होती है अथवा वे मरकर तिर्यंच में जहां उपजते हैं वहां होती है, वहां बंध तेइस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस का; उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस का है । यहां तेजस्कायिक, वायुकायिक में आतप या उद्योत का उदय नहीं है इसलिए *(शरीरपर्याप्तिकाल में)* पच्चीस ही का उदय है छब्बीस का नहीं ।

पुनश्च अस्सी का सत्त्व क्षपकश्रेणीवाले अनिवृत्तिकरणादि के वा तीर्थंकरकेवली के होता है । वहां अनिवृत्तकरण, सूक्ष्मसाम्पराय में बंध एक का, ऊपर बंध का अभाव है, उदय क्षीणमोह तक तीस का, सयोगी में स्वस्थान *(तीर्थंकर)* केवली के इकतीस ही का, समुद्घात *(तीर्थंकर)* केवली के इक्कीस, सत्ताइस, उनतीस, तीस, इकतीस का है, अयोगी *(तीर्थंकर)* में नौ का उदय है । *(यहां स्वस्थानकेवली के तीस ही का लिखा था वह अस्सी की सत्तावाले तीर्थंकरकेवली के नहीं हो सकता, हां समुद्घात के पश्चात उच्छ्वासपर्याप्तिकाल में तीस का उदय होता है ।)*

पुनश्च उन्नासी का सत्त्व तीर्थंकर रहित है । अठहत्तर का तीर्थंकर सहित और आहारकद्विक रहित है । सत्तहत्तर का सत्त्व तीर्थंकर और आहारकद्विक रहित है । इन तीनों में *(७९, ७८, ७७ में)* बंध, उदय, सत्त्व क्षपक अनिवृत्तिकरण से क्षीणमोह तक अस्सी में कहा वैसे ही जानना । सयोगकेवली में उन्नासी और सतहत्तर के सत्त्व में तो स्वस्थानकेवली के तीस का, समुद्घात-केवली के बीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, का उदय है । अठहत्तर के सत्त्व में अस्सी के सत्त्व में कहा वैसे

जानना । अयोगी में उन्नासी और सत्तहत्तर के सत्त्व में आठ का उदय तथा अठहत्तर के सत्त्व में नौ का उदय जानना ।

पुनश्च दस का और नौ का सत्त्व अयोगी के चरम समय में तीर्थंकर सहित और रहित है । वहां बंध का अभाव है । उदय क्रम से नौ का और आठ का जानना ॥७५९॥

इसतरह सत्त्वस्थान आधार में बंध और उदय आधेय करके कथन किया ।

आगे बंध और उदय दो तो आधार और सत्त्वस्थान एक आधेय, इसका नौ गाथाओं द्वारा कथन करते हैं । यहां इतने का बंध और इतने का उदय होनेपर सत्त्व कितने का पाया जाता है, इस प्रकार कथन करते हैं ।

तेवीसबंधगे इगिवीसणवुदयेसु आदिमचउक्के ।
बाणउदिणउदिअडचउ बासीदी सत्तठाणाणि ॥७६०॥

त्रयोविंशबंधके एकविंशनवोदयेषु आदिमचतुष्के ।
द्वानवतिनवत्यष्टचतुर्ब्यशीतिः सत्त्वस्थानानि ॥७६०॥

टीका – तेइस के बंध में इक्कीस आदि के नौ उदयस्थान हैं । उनमें से आदि के चार उदयस्थानों में तो बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासी के पांच सत्त्वस्थान हैं ॥७६०॥

तेणुवरिमपंचुदये ते चेवंसा विवज्ज बासीदिं ।
एवं पणछव्वीसे अडवीसे एक्कवीसुदये ॥७६१॥

तेनोपरिमपंचोदये ते चैवांशा विवर्ज्य द्व्यशीतिं ।
एवं पंचषड्विंशे अष्टविंशेन एकविंशोदये ॥७६१॥

टीका – उसी तेइस के बंधसहित ऊपर के सत्ताइस से लेकर पांच उदयस्थानों में उन पांच में से बयासी के बिना चार ही सत्त्वस्थान हैं । पुनश्च पच्चीस के और छब्बीस के बंध सहित उदयस्थान तेइस के सहितवत् हैं । उनमें सत्त्व भी तेइस के सहित में जैसे कहा वैसे ही हैं ॥७६१॥

अट्ठाइस के बंध सहित इक्कीस के उदय में कहते हैं –

बाणउदिणउदिसत्तं एवं पणुवीसयादिपंचुदये ।
पणसगवीसे णउदी विगुव्वणे अत्थि णाहारे ॥७६२॥

द्वानवतिनवतिसत्त्वमेवं पंचविंशतिकादिपंचकोदये ।
पंचसप्तविंशे नवतिर्विगूर्वणेऽस्ति नाहारे ॥७६२॥

टीका – बानबे, नब्बे का सत्त्व है । ऐसे ही अट्ठाइस के बंध सहित पच्चीस के आदि पांच उदय में सत्त्व है । इतना विशेष है कि पच्चीस, सत्ताइस के उदय में जो नब्बे का सत्त्व है वह वैक्रियिक की अपेक्षा है, आहारक की अपेक्षा नहीं है *(क्योंकि आहारक में बानबे की सत्ता है, यहां वैक्रियिकऋद्धिवाले की अपेक्षा है)* ॥७६२॥

तेण णभिगितीसुदये बाणउदिचउक्कमेक्कतीसुदये ।
णवरि ण इगिणउदिपदं णववीसिगिवीसबंधुदये ॥७६३॥

तेन नभ एकत्रिंशोदये द्वानवतिचतुष्कमेकत्रिंशोदये ।
नवरि न एकनवतिपदं नवविंशैकविंशबंधोदययोः ॥७६३॥

टीका – उसी अट्ठाइस के बंध सहित तीस, इकतीस का उदय होता है, वहां बानबे आदि चार का सत्त्व है । इतना विशेष है कि इकतीस के उदय में इक्यानबे का सत्त्व नहीं है ॥७६३॥

उनतीस के बंध सहित इक्कीस के उदय में कहते हैं –

तेणवदिसत्तसत्तं एवं पणछक्कवीसठाणुदये ।
चउवीसे बाणउदी णउदिचउक्कं च सत्तपदं ॥७६४॥

त्रिनवतिसप्तसत्त्वमेवं पंचषट्कर्विंशस्थानोदये ।
चतुर्विंशे द्वानवतिर्नवतिचतुष्कं च सत्त्वपदं ॥७६४॥

टीका – तिरानबे आदि सात का सत्त्व है । ऐसे ही उनतीस के बंध सहित पच्चीस, छब्बीस का उदय होनेपर भी सत्त्व है । उनतीस के बंध सहित चौबीस

के उदय में बानबे का और नब्बे आदि चार का सत्त्व है ॥७६४॥

सगवीसचउक्कुदये तेणउदीछक्कमेवमिगितीसे ।
तिगिणउदी ण हि तीसे इगिपणसगअट्ठणवयवीसुदये ॥७६५॥

सप्तविंशचतुष्कोदये त्रिनवतिषट्कमेवमेकत्रिंशे ।
त्र्येकनवतिर्नहित्रिंशे एक पंचसप्ताष्टनवकविंशोदये ॥७६५॥

टीका – उनतीस के बंध सहित सत्ताइस आदि चार का उदय होनेपर तिरानबे आदि छह का सत्त्व है । ऐसे ही इकतीस के उदय में भी *(तिर्यंच-उद्योत)* है । विशेष इतना है कि यहां तिरानबे, इक्यानबे का सत्त्व नहीं है ॥७६५॥

तीस के बंध सहित, इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस के उदय में कहते हैं –

तेणउदिछक्कसत्तं इगिपणवीसेसु अत्थि बासीदी ।
तेण छचउवीसुदये बाणउदी णउदिचसत्तं ॥७६६॥

त्रिनवतिषट्कसत्त्वमेकपंचविंशयोरस्ति द्व्यशीतिः ।
तेन षट्चतुर्विंशोदये द्वानवतिः नवतिचतुष्कं सत्त्वं ॥७६६॥

टीका – वहां तिरानबे आदि छह का सत्त्व है । इतना विशेष है कि बयासी का सत्त्व इक्कीस, पच्चीस का उदय होते हुये ही पाया जाता है, अन्य उदय होनेपर नहीं पाया जाता ।

पुनश्च उसी तीस के बंध सहित चौबीस, छब्बीस का उदय होता है, वहां बानबे का और नब्बे आदि चार का सत्त्व है ॥७६६॥

एवं खिगितीसे ण हि बासीदी एक्कतीसबंधेण ।
तीसुदये तेणउदी सत्तपदं एक्कमेव हवे ॥७६७॥

एवं खैकत्रिंशे न हि द्व्यशीतिरेकत्रिंशबंधेन ।
त्रिंशोदये त्रिनवतिः सत्त्वपदमेकमेव भवेत् ॥७६७॥

टीका – तीस के बंध सहित तीस, इकतीस का उदय होते हुये, सत्त्व चौबीस के उदय में कहा वैसे ही है, परंतु विशेष इतना है कि यहां बयासी का सत्त्व नहीं है । पुनश्च इकतीस के बंध सहित तीस का उदय है, वहां सत्त्व तिरानबे का एक ही है ॥७६७॥

इगिबंधट्ठाणेण दु तीसट्ठाणोदये णिरुंधम्मिं ।
पढमचऊसीदिचऊ सत्तट्ठाणाणि णामस्स ॥७६८॥

एकबंधस्थानेन तु त्रिंशस्थानोदये निरोधे ।
प्रथमचतुष्काशीति चतुष्कं सत्त्वस्थानानि नाम्नः ॥७६८॥

टीका – एक के बंध सहित तीस ही का उदय है वहां सत्त्व पहले तिरानबे आदि चार के वा अस्सी आदि चार के, सत्त्वस्थान नामकर्म के हैं ॥७६८॥

आगे बंध, सत्त्व आधार में उदयस्थान को आधेय करके छह गाथाओं में कहते हैं । वहां इतने का बंध, इतने का सत्त्व होनेपर उदय इतने-इतने का होता है, ऐसा कथन करते हैं –

तेवीसबंधठाणे दुखणउदडचदुसीदिसत्तपदे ।
इगिवीसादिणउदओ बासीदे एक्कवीसचऊ ॥७६९॥

त्रयोविंशबंधस्थाने द्विखनवत्यष्टचतुरशीतिसत्त्वपदे ।
एकविंशादिनवोदयो द्व्यशीतौ एकविंशचतुष्कं ॥७६९॥

टीका – तेइस के बंधस्थान सहित बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी का सत्त्व होनेपर इक्कीस का आदि नौ उदयस्थान हैं । तेइस के बंध सहित बयासी के सत्त्व में इक्कीस का आदि चार उदयस्थान हैं ॥७६९॥

एवं पणछव्वीसे अडवीसे बंधगे दुणउदंसे ।
इगिवीसादिणवुदया चउवीसट्ठाणपरिहीणा ॥७७०॥

एवं पंचषड्विंशे अष्टविंशे बंधके तु द्वानवत्यंशे ।
एकविंशादिनवोदयाश्चतुर्विंशस्थानपरिहीनाः ॥७७०॥

टीका – पच्चीस, छब्बीस के बंधस्थान सहित भी सत्त्वस्थान तेइस के सहित समान हैं । वहां उदयस्थान भी तेइस के सहित में जैसे कहे, वैसे ही हैं । पुनश्च अट्ठाइस के बंधसहित बानबे का सत्त्व होनेपर इक्कीस के आदि नौ में से चौबीस को छोड़कर शेष उदयस्थान *(आठ)* हैं ॥७७०॥

इगिणउदीए तीसं उदओ णउदीए तिरियसण्णि वा ।
अडसीदीए तीसदु णववीसे बंधगे तिणउदीए ॥७७१॥

एकनवत्यां त्रिंश उदयो नवत्यां तिर्यक्संज्ञी वा ।
अष्टाशीतौ त्रिंशद्विकं नवविंशे बंधके त्रिनवत्यां ॥७७१॥

टीका – अट्ठाइस के बंध सहित इक्यानबे का सत्त्व होनेपर उदय तीस का है । अट्ठाइस के बंध सहित नब्बे का सत्त्व होनेपर संज्ञी तिर्यंच में कहे ऐसे इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस, इकतीस के उदयस्थान हैं । पुनश्च अट्ठाइस के बंध सहित अट्ठासी का सत्त्व होनेपर तीस, इकतीस का उदय है ॥७७१॥

पुनश्च उनतीस के बंध सहित तिरानबे का सत्त्व होनेपर कहते हैं –

इगिवीसादट्ठुदओ चउवीसूणो दुणउदिणउदितिये ।
इगिवीसविगिणउदे णिरयं व छवीसतीसधिया ॥७७२॥

एकविंशादष्टौदयश्चतुर्विंशोनो द्विनवतिनवतित्रये ।
एकविंशनवैकनवत्यां निरयो व षड्विंशत्रिंशाधिकाः ॥७७२॥

टीका – चौबीस को छोड़कर इक्कीस का आदि आठ उदयस्थान हैं । उनतीस के बंध सहित बानबे का वा नब्बे आदि तीन का सत्त्व होनेपर इक्कीस का आदि नौ उदयस्थान हैं । पुनश्च उनतीस का बंध, इक्यानबे का सत्त्व होनेपर नरकगति में कहे ऐसे इक्कीस, पच्चीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस के और छब्बीस, तीस के उदयस्थान हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: यहां सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस लिखा है जो नारकी में घटित नहीं होता क्योंकि इक्यानबे के सत्त्ववाला नारकी उनतीस का बंध करता है तब वह तीर्थंकर की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि विग्रहगतिवाला इक्कीस के उदय सहित और*

शरीरमिश्रकालवाला २५ के उदय सहित ही होता है, पश्चात् सत्ताइस का उदय होनेपर वह नियम से सम्यग्दृष्टि हो जाता है और मनुष्य-तीर्थकरयुत तीस का बंध करने लगता है । इसके लिये देखिये गाथा ७५९ की टीका । आगे जो उदयस्थान लिखे हैं, वहां जो तीर्थंकर की सत्तावाला ९१ के सत्त्वसहित मनुष्य में जन्म लेता है वह विग्रहगति से ही देव-तीर्थकरयुत उनतीस का बंध करने लगता है इसलिए मनुष्य में इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस, तीस के उदयस्थान हैं ।

२९ के बंध में दुबारा विचार करते हैं ।

(१) **बंध** : २९ देवगति-तीर्थकरयुत

सत्त्व : ९३

उदय : २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०

यहां २५, २७ के स्थान आहारकशरीर संबंधी शरीरमिश्रकाल और शरीरपर्याप्तिकाल में होते हैं, २८, २९ के स्थान सामान्य मनुष्य तथा आहारकवाले के दोनों के होते हैं ।

(२) **बंध** : २९ द्वीन्द्रियादि तिर्यंच या मनुष्ययुत ।

सत्त्व : ९२, ९०, ८८, ८४

उदय : सभी नौ २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ।

(३) **बंध** : २९

सत्त्व : ८२

उदय : २१, २४, २५, २६

(४) **बंध** : २९ मनुष्यगतियुत बांधनेवाला नारकी मिथ्यादृष्टि ९१ का सत्त्ववाला विग्रहगति और शरीरमिश्रकालवाला । या देवगति-तीर्थकरयुत २९ को बांधनेवाला मनुष्य असंयतादि ।

सत्त्व : ९१

उदय : नारकी में २१, २५

सामान्य मनुष्य में २१, २६, २८, २९ ३०

आहारक में २५, २७, २८, २९]

बासीदे इगिचउपण छव्वीसा तीसबंधतिगिणउदी ।
सुरमिव दुणउदिणउदी चउसुदओ ऊणतीसं वा ॥७७३॥

द्व्यशीत्यामेकचतुः पंच षड्विंशः त्रिंशबंधे त्र्येकनवतौ ।
सुर इव द्विनवतिनवति चतुर्षूदय एकोनत्रिंशं वा ॥७७३॥

टीका – उनतीस के बंध सहित बयासी के सत्त्व में इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस के उदयस्थान हैं ।

पुनश्च तीस के बंध सहित तिरानबे, इक्यानबे का सत्त्व होनेपर देवगति में कहे ऐसे पांच उदयस्थान हैं *(२१, २५, २७, २८, २९)* । पुनश्च तीस के बंध सहित बानबे का और नब्बे आदि चार का सत्त्व होनेपर उनतीस के बंध सहित में कहे वैसे ही नौ उदयस्थान हैं । तीस का बंध, बयासी का सत्त्व होनेपर उनतीस के बंध सहितवत् चार उदयस्थान हैं *(२१, २४, २५, २६)* ॥७७३॥

इगितीसबंधठाणे तेणउदे तीसमेव उदयपदं ।
इगिबंध तिणउदिचऊ सीदिचउक्केवि तीसुदओ ॥७७४॥

एकत्रिंशबंधस्थाने त्रिनवत्यां त्रिंशमेव उदयपदं ।
एकबंधे त्रिनवतिचतुष्के अशीतिचतुष्केऽपि त्रिंशोदयः ॥७७४॥

टीका – इकतीस के बंधस्थान सहित तिरानबे का सत्त्व होनेपर तीस का ही उदयस्थान है । पुनश्च एक के बंध सहित तिरानबे आदि चार के वा अस्सी आदि चार के सत्त्वस्थान में भी उदयस्थान तीस ही का है । आगे बंध का अभाव है; इसलिए दो स्थान आधार, और एक स्थान आधेय पाया नहीं जा सकता ॥७७४॥

आगे उदयस्थान, सत्त्वस्थान आधार और बंधस्थान आधेय ऐसा दस गाथाओं द्वारा कहते हैं । वहां इतने का उदय, इतने का सत्त्व होनेपर, किसी के इतने का - किसी के इतने का बंध पाया जाता है, ऐसा कथन करते हैं –

इगिवीसट्ठाणुदये तिगिणउदे णवयवीसदुगबंधो ।
तेण दुखणउदिसत्ते आदिमछक्कं हवे बंधो ॥७७५॥

एकविंशस्थानोदये त्र्येकनवत्यां नवविंशद्विकबंधः ।
तेन द्विखनवतिसत्त्वे आदिमषट्कं भवेद् बंधः ॥७७५॥

टीका – इक्कीस के उदय सहित तिरानबे, इक्यानबे के सत्त्व में उनतीस, तीस के दो बंधस्थान हैं । पुनश्च इक्कीस का उदय, बानबे, नब्बे का सत्त्व होनेपर आदि के छह बंधस्थान हैं ॥७७५॥ *(**उदय** : २१, **सत्त्व** : ९३, ९१, **बंध** : देवतीर्थयुत २९, मनुष्यतीर्थयुत ३० तथा **उदय** : २१, **सत्त्व** : ९२, ९०, **बंध** : २३, २५, २६, २८, २९, ३०)*

एवमडसीदितिदये ण हि अडवीसं पुणोवि चउवीसे ।
दुखणउदडसीदितिये सत्ते पुव्वं व बंधपदं ॥७७६॥

एवमष्टाशीतित्रितये न ह्यष्टविंशं पुनरपि चतुर्विंशे ।
द्विखनवत्यष्टाशीतित्रये सत्त्वे पूर्वं व बंधपदं ॥७७६॥

टीका – इक्कीस के उदय सहित अट्ठासी आदि तीन का सत्त्व होनेपर बंधस्थान आदि के छह में से अट्ठाइस के बिना पांच हैं । *(**उदय** : २१, **सत्त्व** : ८८, ८४, ८२, **बंध** : २३, २५, २६, २९, ३०)*

पुनश्च चौबीस के उदयसहित बानबे, नब्बे तथा अट्ठासी आदि तीन का सत्त्व होनेपर वे ही पांच बंधस्थान हैं ॥७७६॥ *(**उदय** : २४, **सत्त्व** : ९२, ९०, ८८, ८४, ८२, **बंध** : २३, २५, २६, २९, ३०)*

पणवीसे तिगिणउदे एगुणतीसं दुगं दुणउदीए ।
आदिमछक्कं बंधो णउदिचउक्केवि णडवीसं ॥७७७॥

पंचविंशे त्र्येकनवतौ एकोनत्रिंशद्विकं द्विनवत्यां ।
आदिमषट्कं बंधो नवतिचतुष्केऽपि नाष्टाविंशं ॥७७७॥

टीका – पच्चीस के उदयसहित तिरानबे, इक्यानबे के सत्त्व में उनतीस, तीस के दो बंधस्थान हैं । पुनश्च पच्चीस का उदय, बानवे के सत्त्व में आदि के छह बंधस्थान हैं । पुनश्च पच्चीस का उदय, नब्बे आदि चार का सत्त्व होनेपर आदि के छह में अट्ठाइस के बिना पांच बंधस्थान हैं ॥७७७॥ *(**उदय** : २५, **सत्त्व** : ९३, ९१, **बंध** : २९, ३० तथा **उदय** : २५, **सत्त्व** : ९२, **बंध** : २३, २५, २६, २८, २९, ३० तथा **उदय** : २५, **सत्त्व** : ९०, ८८, ८४, ८२, **बंध** : २३, २५, २६, २९, ३०)*

छव्वीसे तिगिणउदे उणतीसं बंध दुगखणउदीए ।
आदिमछक्कं एवं अडसीदितिए ण अडवीसं ॥७७८॥

षडविंशे त्र्येकनवतौ एकोनत्रिंशं बंधो द्विकखनवत्यां ।
आदिमषट्कमेवमष्टाशीतित्रये नाष्टाविंशं ॥७७८॥

टीका – छब्बीस के उदय सहित तिरानबे, इक्यानबे का सत्त्व होनेपर उनतीस ही का बंधस्थान है । पुनश्च छब्बीस का उदय, बानबे, नब्बे का सत्त्व होनेपर आदि के छह बंधस्थान हैं । पुनश्च छब्बीस का उदय, अट्ठासी आदि तीन का सत्त्व होनेपर आदि के छह में से अट्ठाइस के बिना पांच बंधस्थान हैं ॥७७८॥ *(**उदय** : २६, **सत्त्व** : ९३, ९१, **बंध** : २९ तथा **उदय** : २६, **सत्त्व** : ९२, ९०, **बंध** : २३, २५, २६, २८, २९, ३० तथा **उदय** : २६, **सत्त्व** : ८८, ८४, ८२, **बंध** : २३, २५, २६, २९, ३०)*

सगवीसे तिगिणउदे णववीसदुबंधयं दुणउदीए ।
आदिमछण्णउदितिए एवं अडवीसयं णत्थि ॥७७९॥

सप्तविंशे त्र्येकनवतौ नवविंशद्विबंधको द्विनवत्यां ।
आदिमषण्णवतित्रये एवमष्टाविंशकं नास्ति ॥७७९॥

टीका – सत्ताइस के उदय सहित तिरानबे, इक्यानबे का सत्त्व होनेपर उनतीस, तीस के दो बंधस्थान हैं । पुनश्च सत्ताइस का उदय, बानबे का सत्त्व होनेपर आदि

के छह बंधस्थान हैं । पुनश्च सत्ताइस का उदय, नब्बे आदि तीन का सत्त्व होनेपर आदि के छह में से अट्ठाइस के बिना पांच बंधस्थान हैं ॥७७९॥ (***उदय*** : २७, ***सत्त्व*** : ९३, ९१, ***बंध*** : २९, ३० तथा ***उदय*** : २७, ***सत्त्व*** : ९२, ***बंध*** : २३, २५, २६, २८, २९, ३० तथा ***उदय*** : २७, ***सत्त्व*** : ९०, ८८, ८४, ***बंध*** : २३, २५, २६, २९, ३०)

अडवीसे तिगिणउदे उणतीसदु दुजुदणउदिणउदितिये ।
बंधा सगवीसं वा णउदीए अत्थि णडवीसं ॥७८०॥

अष्टाविंशे त्र्येकनवत्यामेकोनत्रिंशद्विकं द्वियुतनवतिनवतित्रये ।
बंधः सप्तविंशं वा नवतौ अस्ति नाष्टाविंशं ॥७८०॥

टीका – अट्ठाइस के उदय सहित तिरानबे, इक्यानबे का सत्त्व होनेपर उनतीस, तीस के दो बंधस्थान हैं । अट्ठाइस का उदय, बानबे का सत्त्व होनेपर या नब्बे आदि तीन का सत्त्व होनेपर सत्ताइस के उदय सहित में कहे वैसे ही बंधस्थान हैं; विशेष इतना है कि *(वहां सत्ताइस के उदय में)* ९० के सत्त्ववाले को २८ का बंध नहीं है ॥७८०॥ *(यहां ९०, ८८ के सत्त्व में २८ का बंध है – देखिये गाथा ७५२ की टीका, परंतु ८४ के सत्त्व में नहीं है ।)*

अडवीसमिवुणतीसे तीसे तेणउदिसत्तगे बंधो ।
णववीसेक्कत्तीसं इगिणउदी अट्ठवीसदुगं ॥७८१॥

अष्टाविंश इवैकोनत्रिंशे त्रिंशेत्रिनवतिसत्त्वके बंधः ।
नवविंशैकत्रिंशमेकनवत्यामष्टविंशद्विकं ॥७८१॥

टीका – उनतीस के उदय सहित तिरानबे, इक्यानबे के सत्त्व में वा बानबे, नब्बे के सत्त्व में वा अट्ठासी, चौरासी के सत्त्व में जैसे अट्ठाइस के उदय सहित में कहे, वैसे ही बंधस्थान हैं । पुनश्च तीस के उदय सहित तिरानबे के सत्त्व में उनतीस, इकतीस के दो बंधस्थान हैं । पुनश्च तीस का उदय, इक्यानबे के सत्त्व में नरकगमन के सन्मुख तीर्थंकर सत्त्ववाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य के अट्ठाइस वा उनतीस का बंध है ॥७८१॥

तेण दुणउदे णउदे अडसीदे बंधमादिमं छक्कं ।
चुलसीदेवि य एवं णवरि ण अडवीसबंधपदं ॥७८२॥

तेन द्विनवतौ नवतौ अष्टाशीतौ बंध आदिमषट्कं ।
चतुरशीत्यामपि च एवं नवरि नाष्टाविंशबंधपदं ॥७८२॥

टीका – तीस के उदय सहित बानबे, नब्बे, अट्ठासी के सत्त्व में आदि के छह बंधस्थान हैं । तीस का उदय, चौरासी के सत्त्व में भी उन्हीं छह में से अट्ठाइस को छोड़कर पांच बंधस्थान हैं ॥७८२॥

तीसुदयं विगितीसे सजोग्गबाणउदिणउदितियसत्ते ।
उवसंतचउक्कुदये सत्ते बंधस्स ण वियारो ॥७८३॥

त्रिंशोदयं वैकत्रिंशे स्वयोग्यद्वानवतिनवतित्रयसत्त्वे ।
उपशांतचतुष्कोदये सत्त्वे बंधस्य न विचार: ॥७८३॥

टीका – इकतीस के उदय सहित के अपने योग्य बानबे, नब्बे, अट्ठासी के सत्त्व में वा चौरासी के सत्त्व में तीस के उदय सहित में जैसे कहे वैसे आदि के छह वा अट्ठाइस के बिना पांच बंधस्थान हैं । उपशांतमोह आदि चार गुणस्थानों में जो उदयस्थान हैं उनमें बंधस्थानों का विचार नहीं हैं, क्योंकि उनमें बंध का अभाव है, उदय और सत्त्व ही है । वहां उपशांतमोह में उदय तीस का, सत्त्व तिरानबे आदि चार का है । क्षीणमोह में उदय तीस का, सत्त्व अस्सी आदि चार का है । सयोगी में उदय तीस का वा इकतीस का, सत्त्व अस्सी आदि चार का है । अयोगी में उदय नौ का वा आठ का है, सत्त्व अस्सी आदि चार का और दस वा नौ का है ॥७८३॥

णामस्स य बंधादिसु दुतिसंजोगा परूविदा एवं ।
सुदवणवसंतगुणगण सायरचंदेण सम्मदिणा ॥७८४॥

नाम्नश्च बंधादिषु द्वित्रिसंयोगा: प्ररूपिता एवं ।
श्रुतवनवसंतगुणगण सागरचंद्रेण सन्मतिना ॥७८४॥

टीका – इसतरह नामकर्म के बंध, उदय, सत्त्वस्थानों में द्विसंयोग वा त्रिसंयोग प्ररूपणा की है । किसने की है ? श्रुत जो जैनसिद्धांत वही हुआ वन, उसको प्रफुल्लित करने के लिये वसंतऋतु समान और गुणों का गण अर्थात् समूह वही हुआ सागर अर्थात् समुद्र उसको बढ़ाने के लिये चन्द्रमा समान ऐसे जो भलेज्ञान के धारक सन्मति-वर्धमानस्वामी उन्होंने प्ररूपणा की है । यहां द्विसंयोग, त्रिसंयोग में जो बंध, उदय, सत्त्वस्थान कहे हैं, उनका पहले जुदा-जुदा कथन गुणस्थानादि में किया है, उसको याद करके यथासंभव विचार करना ॥७८४॥

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका में कर्मकाण्ड में स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार नामक पांचवां अधिकार समाप्त हुआ ॥५॥

आस्रवाधिकार ॥६॥

॥ मंगलाचरण ॥

आस्रव भाव-अभाव तैं, भए स्वभाव-स्वरूप ।
नमौं सहज आनंदमय अचलित-अमल-अनूप ॥६॥

आगे प्रत्यय जो कर्म आने के कारण ऐसे आस्रव, उसके अधिकार का प्रारंभ करते हैं । वहां प्रथम ही निर्विघ्नपने से समाप्त होने के लिये अपने इष्ट गुरु को नमस्कार करते हैं —

णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥

नत्वाभयनंदिं श्रुतसागरपारगेंद्रनंदिगुरुं ।
वरवीरनंदिनाथं प्रकृतीनां प्रत्ययं वक्ष्ये ॥७८५॥

टीका – अभयनंदि नामक मुनीश्वर, बहुशास्त्र समुद्र के पारगामी इन्द्रनंदि नामक गुरु तथा उत्कृष्ट वीरनंदि नामक स्वामी — इन अपने गुरुओं को नमस्कार करके कर्मप्रकृतियों के प्रत्यय अर्थात् कारण ऐसे आस्रव, उसको कहूंगा ॥७८५॥

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति ।
पण बारस पणुवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥७८६॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगौ चास्रवा भवंति ।
पंच द्वादश पंचविंशं पंचदशं भवंति तद्भेदाः ॥७८६॥

टीका – मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, योग ये चार मूलआस्रव हैं । आस्रवंति अर्थात् इनके द्वारा कार्माण स्कंध कर्मरूपपने को प्राप्त होते हैं, इसलिए इनको आस्रव कहते हैं । उनके भेद क्रम से पांच, बारह, पच्चीस, पंद्रह जानना । वहां एकांत, विनय, संशय, विपरीत, अज्ञान — ये तो पांच मिथ्यात्व हैं । पांच इन्द्रिय, छठवें मन का अवशीभूतपना नहीं, पांच स्थावर, छठवें त्रस की दया नहीं — ऐसे बारह अविरत

हैं । अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन – क्रोध, मान, माया, लोभ – ये सोलह कषाय और हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद – ये नौ नोकषाय – ऐसे पच्चीस कषाय हैं । सत्य, असत्य, उभय, अनुभयरूप चार मनोयोग; सत्य, असत्य, उभय, अनुभयरूप चार वचनयोग; औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्माण रूप सात काययोग – ऐसे पंद्रह योग हैं । इसप्रकार सत्तावन उत्तरप्रत्यय हैं ॥७८६॥

आगे मूलप्रत्ययों को गुणस्थानों में कहते हैं –

चदुपच्चइगो बंधो पढमे णंतरतिगे तिपच्चइगो ।
मिस्सगबिदियं उवरिम दुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥७८७॥

चतु:प्रत्ययिको बंध: प्रथमेऽनंतरत्रिके त्रिप्रत्ययक: ।
मिश्रकद्वितीय उपरिम द्विकं च देशैकदेशे ॥७८७॥

टीका – मिथ्यात्व *(गुणस्थान)* में बंध चारों प्रत्यय से है । सासादनादि तीन *(दूसरे, तीसरे, चौथे गुणस्थान)* में मिथ्यात्व बिना तीन प्रत्यय से है । देश अर्थात लेश-किंचित्, एक जो है असंयम, उसको दिशति अर्थात् परिहरे-त्यागे, ऐसा देशैकदेश अर्थात् देशसंयत उसमें भी तीन प्रत्यय से ही बंध है । इतना विशेष है कि वहां अविरत है वह विरति से मिश्ररूप है ॥७८७॥

उवरिल्लपंचये पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं ॥७८८॥

उपरिमपंचके पुनर्द्विप्रत्ययौ योगप्रत्ययस्त्रयाणां ।
सामान्यप्रत्यया: खलु अष्टानां भवंति कर्मणां ॥७८८॥

टीका – ऊपर के पांच गुणस्थानों में दो ही प्रत्यय हैं – वे हैं योग और कषाय । उपशांतमोह आदि तीन में योग प्रत्यय एक ही है ।

इसतरह सामान्य प्रत्यय जो आठ कर्मों के कारण हैं, उन्हें गुणस्थानों में जानना ॥७८८॥

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
४	३	३	३	३	२	२	२	२	२	१	१	१	०

आगे उत्तरप्रत्ययों को गुणस्थानों में कहते हैं –

पणवण्णा पण्णासा तिदाल छादाल सत्ततीसा य ।
चदुवीसा बावीसा बावीसमपुव्वकरणोत्ति ॥७८९॥

थूले सोलसपहुदी एगूणं जाव होदि दसठाणं ।
सुहुमादिसु दस णवयं णवयं जोगिम्मि सत्तेव ॥७९०॥

पंचपंचाशत् पंचाशत् त्रिचत्वारिंशत् षट्चत्वारिंशत्सप्तत्रिंशश्च ।
चतुर्विंशतिर्द्वाविंशतिः द्वाविंशमपूर्वकरण इति ॥७८९॥

स्थूले षोडशप्रभृतय एकोना यावद्भवति दशस्थानं ।
सूक्ष्मादिषु दश नवकं नवकं योगिनि सप्तैव ॥७९०॥

टीका – उत्तरप्रत्यय गुणस्थानों में कहते हैं । वहां मिथ्यात्व में आहारक, आहारकमिश्र योग नहीं है, इसलिए पचपन प्रत्यय हैं । सासादन में पांच मिथ्यात्व नहीं हैं, इसलिए पचास हैं । मिश्र में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्माण योग, अनंतानुबंधी चतुष्क नहीं, इसलिए तैंतालीस हैं । असंयत में जो मिश्र में तीन योग घटाये थे उनके मिलाने से छियालीस हैं । देशसंयत में वे तीन योग, वैक्रियिक काययोग, त्रसहिंसारूप अविरति और अप्रत्याख्यान चार कषाय नहीं हैं, इसलिए सैंतीस हैं । प्रमत्त में अवशेष ग्यारह अविरति और प्रत्याख्यान चतुष्क ये पंद्रह नहीं हैं और आहारकद्विक मिले हैं, इसलिए चौबीस हैं ।

अप्रमत्त आदि दो में आहारकद्विक नहीं हैं, इसलिए बाइस हैं । स्थूल जो अनिवृत्तिकरण उसमें हास्यादि छह नोकषाय नहीं तब सोलह, नपुंसकवेद नहीं तब पंद्रह, स्त्रीवेद नहीं तब चौदह, पुरुषवेद नहीं तब तेरह, संज्वलन क्रोध नहीं तब बारह, मान नहीं तब ग्यारह, माया नहीं तब दस हैं । सूक्ष्मसाम्पराय में बादर लोभ नहीं, सूक्ष्मलोभ है, इसलिए यहां भी दस ही हैं । उपशांतमोह, क्षीणमोह में वह सूक्ष्मलोभ भी नहीं है, इसलिए नौ नौ हैं । सयोगी में सत्य, अनुभय मनोयोग, सत्य, अनुभय

वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण काययोग — ये सात प्रत्यय हैं । अयोगी में शून्य है अर्थात प्रत्यय का अभाव है ॥७८९, ७९०॥

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ								सू	उ	क्षी	स	अ
प्रत्ययव्युच्छित्ति	५	४	०	९	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१	१	१	०	४	७	०	
प्रत्ययोदय	५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	१०	९	९	७	०	
प्रत्ययानुदय	२	७	१४	११	२०	३३	३५	३५	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४७	४८	४८	५०	५७	

आगे प्रत्ययों की व्युच्छित्ति और अनुदय के वर्णनरूप केशव ब्रह्मचारी कृत छह गाथा कहते हैं —

पण चदु सुण्णं णवयं पण्णारस दोण्णि सुण्ण छक्कं च ।
एक्केक्कं दस जाव य एक्कं सुण्णं च चारि सग सुण्णं ॥१॥

दोण्णि य सत्त य चोद्दस णुदयेवि एयार वीस तेत्तीसं ।
पणतीस दुसिगिदालं सत्तेतालट्ठदाल दुसु पण्णं ॥२॥

पंच चतुष्कं शून्यं नवकं पंचदश द्वे शून्यं षट्कं च ।
एकैक दश यावच्च एकं शून्यं च चत्वारि सप्त शून्यं ॥१॥

द्वौ च सप्त च चतुर्दशानुदयेऽपि एकादश विंशं त्रयस्त्रिंशत् ।
पंचत्रिंशत् द्वयोरेकचत्वारिंशत्सप्तचत्वारिंशदष्टचत्वारिंशद् द्वयोः पंचाशत् ॥२॥

टीका – मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से पांच, चार, शून्य, नौ, पंद्रह, दो, शून्य, छह; पश्चात् दस आस्रव रहे वहां तक एक, एक, पुनश्च एक, शून्य, चार, सात, शून्य रूप आस्रवों की व्युच्छित्ति है । उन गुणस्थानों में अनुदय जो आस्रवों का अभाव, वह क्रम से दो, सात, चौदह, ग्यारह, बीस, तैंतीस, पैंतीस, पैंतीस, इकतालीस, सैंतालीस, अड़तालीस, अड़तालीस, पचास का जानना ॥१-२॥

वे व्युच्छित्ति किसकी है, वह कहते हैं —

मिच्छे पणमिच्छत्तं पढमकसायं तु सासणे मिस्से ।
सुण्णं अविरदसम्मे बिदियकसायं विगुव्वदुग कम्मं ॥३॥

ओरालमिस्स तसवह णवयं देसम्मि अविरदेक्कारा ।
तदियकसायं पण्णर पमत्तविरदम्मि हारदुगछेदो ॥४॥

सुण्णं पमादरहिदेऽपुव्वे छण्णोकसायवोच्छेदो ।
अणियट्टिम्मि य कमसो एक्केक्कं वेदतियकसायतियं ॥५॥

सुहुमे सुहमो लोहो सुण्णं उवसंतगेसु खीणेसु ।
अलीयुभयवयणमणचउ जोगिम्मि य सुणह वोच्छामि ॥६॥

सच्चाणुभयं वयणं मणं च ओरालकायजोगं च ।
ओरालमिस्स कम्मं उवयारेणेव सब्भाओ ॥७॥

मिथ्ये पंचमिथ्यात्वं प्रथमकषायस्तु सासादने मिश्रे ।
शून्यमविरतसम्ये द्वितीयकषायो वैगूर्वद्विकं कर्म ॥३॥

औरालमिश्रं त्रसवधो नवकं देशेऽविरता एकादश ।
तृतीयकषायः पंचदश प्रमत्तविरते आहारकद्विकच्छेदः ॥४॥

शून्यं प्रमादरहिते अपूर्वे षण्णोकषायव्युच्छेदः ।
अनिवृत्तौ च क्रमश एकैकं वेदत्रयकषायत्रयं ॥५॥

सूक्ष्मे सूक्ष्मो लोभः शून्यमुपशांतकेषु क्षीणेषु ।
अलीकोभयवचनमनश्चतुष्कं योगिनि च श्रृणुत वक्ष्यामि ॥६॥

सत्यानुभयं वचनं मनश्च औरालकाययोगश्च ।
औरालमिश्रं कार्मणमुपचारेणैव सद्भावः ॥७॥ कुलकं

टीका – मिथ्यात्व में पांच मिथ्यात्व की व्युच्छित्ति हुयी । ऊपर के गुणस्थानों में नहीं है । सासादन में प्रथम चार कषाय *(अंनतानुबंधी)*; मिश्र में शून्य; अविरत में दूसरे चार कषाय *(अप्रत्याख्यानावरण)*, वैक्रियिकद्विक, कार्माण, औदारिकमिश्र, त्रस हिंसा – ये नौ; देशविरत में ग्यारह अविरति, तीसरे चार कषाय *(प्रत्याख्यानावरण)* – ऐसे पंद्रह; प्रमत्त में आहारक, आहारकमिश्र काययोग; अप्रमत्त में शून्य; अपूर्वकरण

में छह नोकषाय; अनिवृत्तिकरण में क्रम से एक-एक करके तीन वेद, तीन कषाय *(ऐसे छह)*; सूक्ष्मसाम्पराय में सूक्ष्म लोभ; उपशांत मोह में शून्य; क्षीणमोह में असत्य-उभय मनोयोग, असत्य-उभय वचनयोग – इन चार की व्युच्छित्ति है । पुनश्च सयोगी में कहता हूँ, तुम सुनो । सत्य, अनुभय मन और वचन और औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण – ये सात योग हैं । वे उपचार से ही हैं ।।३ से ७।।

आगे आस्रवों के विशेष कथन के लिये अधिकार कहते हैं –

अवरादीणं ठाणं ठाणपयारा पयारकूडा य ।
कुडुच्चारणभंगा पंचविहा होंति इगिसमये ।।७९१।।

अवरादीनां स्थानं स्थानप्रकाराः प्रकारकूटाश्च ।
कूटोच्चारणभंगाः पंचविधा भवंति एकसमये ।।७९१।।

टीका – जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट स्थान, स्थानप्रकार, कूटप्रकार, कूटोच्चारणविधान और भंग ऐसे प्रत्ययों के पांच प्रकार हैं वे एक काल में होते हैं ।।७९१।।

उन प्रकारों को क्रम से छह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

दस अट्ठारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोण्हंपि ।
अट्ठ य चोद्दस पणयं सत्त तिये दुति दुगेगमेगमदो ।।७९२।।

दश अष्टादश दशकं सप्तदश नव षोडश च द्वयोरपि ।
अष्ट च चतुर्दश पंचकं सप्त त्रिके द्वित्रिकं द्विकैकमेकमतः ।।७९२।।

टीका – एक जीव के एक काल में पाये जाते हैं ऐसे प्रत्ययों के समूह को स्थान कहते हैं । उनको गुणस्थानों में कहते हैं –

मिथ्यात्व में जघन्य दस का, मध्यम एक एक अधिक जब तक उत्कृष्ट अठारह का स्थान होता है ।

भावार्थ – मिथ्यात्व में एक जीव के एक काल में सत्तावन आस्रवों में से जघन्य तो दस होते हैं, मध्यम ग्यारह या बारह या तेरह या चौदह या पंद्रह या

सोलह, या सत्रह होते हैं । उत्कृष्ट अठारह होते हैं । ऐसे ही अन्यत्र जानना । सासादन में जघन्य दस का, मध्यम वैसे ही एक-एक अधिक, उत्कृष्ट सत्रह का स्थान है । मिश्र में जघन्य नौ का मध्यम वैसे ही एक-एक अधिक, उत्कृष्ट सोलह का स्थान है । 'द्वयोरपिच' इस वचन से अविरत में भी मिश्रवत् स्थान हैं । देशसंयत में जघन्य आठ का, मध्यम वैसे ही एक-एक अधिक, उत्कृष्ट चौदह का स्थान है ।

प्रमत्तादि तीन में प्रत्येक में जघन्य पांच का, मध्यम छह का, उत्कृष्ट सात का स्थान है । अनिवृत्तिकरण में जघन्य दो का, मध्यम नहीं हैं, उत्कृष्ट तीन का स्थान है । सूक्ष्मसाम्पराय में जघन्यादि भेद बिना दो का एक ही स्थान है । उपशांतमोहादि में जघन्यादि भेद बिना एक का एक ही स्थान है । अयोगी में शून्य है ॥७९२॥

जो ये स्थान कहे, वे कितने कितने प्रकार से पाये जाते हैं उसका कथन अब स्थानप्रकार द्वारा कहते हैं –

एक्कं च तिण्णि पंच य हेट्ठुवरीदो दु मज्झिमे छक्कं ।
मिच्छे ठाणपयारा इगिदुगमिदरेसु तिण्णि देसोत्ति ॥७९३॥

एकश्च त्रयः पंच च अधस्तनोपरितस्तु मध्यमे षट्कं ।
मिथ्ये स्थानप्रकाराः एकद्विकमितरेषु त्रयोदश इति ॥७९३॥

टीका – मिथ्यात्व में नौ स्थान कहे, उनमें से दस, ग्यारह, बारह के नीचे के तीन स्थान और अठारह, सत्रह, सोलह के ऊपर के तीन स्थान इनमें तो क्रम से एक, तीन, पांच प्रकार हैं ।

भावार्थ – दस और अठारह के स्थान तो एक-एक प्रकार के ही हैं । ग्यारह, सत्रह के स्थान तीन-तीन प्रकार के हैं । बारह, सोलह के स्थान पांच-पांच प्रकार के हैं । ऐसे ही अन्यत्र जानना । मध्य के तेरह, चौदह, पंद्रह के तीन स्थान छह-छह प्रकार के हैं ।

सासादन से देशसंयत तक नीचे का पहला और दूसरा स्थान तथा ऊपर का अंतिम और उपांत स्थान *(क्रम से)* एक और दो प्रकार के हैं । पहला और अंत का स्थान तो एक-एक प्रकार के हैं । दूसरा तथा अंत स्थान से नीचे का

स्थान दो-दो प्रकार के हैं । इनके मध्य में जितने-जितने स्थान रहे, वे सर्व तीन प्रकार के हैं । प्रमत्तादिक के सर्व ही स्थान एक-एक प्रकार के हैं ॥७९३॥

ये कहे स्थानप्रकार, उनको जानने के लिये कूटप्रकार आगे कहते हैं –

मिथ्यात्व

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१	३	५	६	६	६	५	३	१

सासादन

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
१	२	३	३	३	३	२	१

मिश्र

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	३	३	३	२	१

असंयत

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	३	३	३	२	१

देशसंयत

८	९	१०	११	१२	१३	१४
१	२	३	३	३	२	१

प्रमत्त

५	६	७
१	१	१

अप्रमत्त

५	६	७
१	१	१

अपूर्व

५	६	७
१	१	१

अनिवृ.

२	३
१	१

सूक्ष्म

२
१

उप.

१
१

क्षी.

१
१

स.

१
१

भयदुगरहियं पढमं एक्कदरजुदं दुसहियमिदि तिण्णं ।
सामण्णा तियकूडा मिच्छा अणहीणतिण्णिवि य ॥७९४॥

भयद्विकरहितं प्रथममेकतरयुतं द्विसहितमिति त्रयः ।
सामान्यानि त्रिकूटानि मिथ्या अनहीनत्रीण्यपि च ॥७९४॥

टीका – कूट के आकार की रचना करना । वहां सबसे नीचे पांच मिथ्यात्व में से एक जीव के एक काल में एक ही होता है, इसलिए पांच मिथ्यात्व बराबर स्थापित करना । उनकी सहनानी *(चिन्ह-संदृष्टि)* पांच जगह एक-एक लिखना । उनके ऊपर पांच इन्द्रिय, एक मन – इन छहों में से एक जीव के एक काल में एक ही के विषय में प्रवृत्ति होती है, इसलिए इनको स्थापित करना । इनकी सहनानी छह जगह एक-एक लिखना ।

उनके ऊपर छह काय की हिंसा में एक जीव के एक काल में एक काय की हिंसा होगी वा दो काय की हिंसा वा तीन, चार, पांच वा छह काय की हिंसा होगी, इनको स्थापित करना । इनकी सहनानी एक, दो, तीन, चार, पांच, छह के अंक बराबर क्रम से लिखना । उनके ऊपर सोलह कषायों में से एक जीव के एक काल में अनंतानुबंधी आदि चार क्रोध वा चार मान वा चार माया वा चार लोभ का उदय पाया जाता है, इसलिए इनको स्थापित करना । इनकी सहनानी चार जगह चार का अंक लिखना ।

उसके ऊपर तीन वेदों में से एक जीव के एक काल में एक वेद ही का उदय होता है, इसलिए इनको स्थापित करना । इनकी सहनानी तीन जगह एक का अंक लिखना । उसके ऊपर एक जीव के एक काल में हास्य-रति होगी या शोक-अरति होगी, इसलिए इनको स्थापित करना । इनकी सहनानी दो जगह दो का अंक लिखना । उनके ऊपर पंद्रह योगों में से आहारकद्विक मिथ्यात्व में नहीं हैं; इसलिए तेरह योगों में से एक जीव के एक काल में एक ही योग पाया जाता है, इसलिए इनको स्थापित करना । इनकी सहनानी तेरह जगह एक का अंक लिखना । ऐसे-ऐसे तीन कूट करना ।

उनमें से पहला कूट भय-जुगुप्सा रहित है, इसलिए सबसे ऊपर बिंदी लिखना । दूसरा कूट भय जुगुप्सा में से एक के सहित है, इसलिए सबसे ऊपर दो जगह एक का अंक लिखना । तीसरा कूट भय जुगुप्सा दोनों सहित है, इसलिए सबसे ऊपर दो का अंक एक जगह लिखना । किसी जीव के किसी काल में भय-जुगुप्सा दोनों नहीं होंगे या दोनों में से एक होगा या दोनों ही होंगे ।

अनंतानुबंधीसहित मिथ्यादृष्टि के कूट ३

०	१ १	२
१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
२ २	२ २	२ २
१ १ १	१ १ १	१ १ १
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४
१ २ ३ ४ ५ ६	१ २ ३ ४ ५ ६	१ २ ३ ४ ५ ६
१ १ १ १ १ १	१ १ १ १ १ १	१ १ १ १ १ १
१ १ १ १ १	१ १ १ १ १	१ १ १ १ १

इसलिए ऐसे तीन कूट किये, ये तीन तो मूलकूट हुये । अनंतानुबंधी की विसंयोजनावाला मिथ्यात्व में जाता है, उसके आवलीकाल तक अनंतानुबंधी का उदय नहीं होता । इसलिए तीन कूट अनंतानुबंधी रहित करना । जहां चार जगह चार-चार कषाय लिखे हैं, वहां तीन तीन लिखना । यह अनंतानुबंधी की विसंयोजनावाला पर्याप्त ही है, इसलिए तेरह योग की जगह दस ही योग लिखना । ऐसे मिलकर मिथ्यात्व में छह कूट हुये ।

सासादन में उन सामान्य कूटों में नीचे ही नीचे पांच मिथ्यात्व लिखे थे वहां बिंदी लिखना, ऐसे तीन कूट होते हैं । मिश्र में अनंतानुबंधी नहीं हैं, इसलिए चार-चार कषायों की जगह तीन-तीन ही लिखना । यहां तीन मिश्रयोग नहीं हैं, इसलिए तेरह योग लिखे थे, वहां दस ही लिखना — ऐसे तीन कूट ही करना । असंयत में तीन योग मिल गये, इसलिए तेरह योग लिखना — ऐसे तीन कूट करना ।

देशसंयत में चार अप्रत्याख्यान भी नहीं हैं, इसलिए कषायों के स्थान में चार जगह दो-दो लिखना । और त्रसहिंसा नहीं है, इसलिए कायहिंसा की जगह छह का अंक नहीं लिखना तथा तीन मिश्रयोग और एक वैक्रियिक योग नहीं है, इसलिए तेरह योग की जगह नौ ही लिखना — ऐसे तीन कूट करना ।

प्रमत्त में बारह अविरति नहीं हैं, इसलिए इन्द्रिय *(असंयम)* और कायहिंसा की जगह सर्वत्र बिंदी लिखना । प्रत्याख्यान कषाय नहीं हैं, इसलिए कषाय *(चार जगह)* एक-एक ही लिखना । आहारकद्विक मिलने से योग ग्यारह लिखना — ऐसे तीन कूट करना ।

अप्रमत्त में आहारकद्विक नहीं हैं, इसलिए नौ योग ही लिखना — ऐसे तीन कूट करना । ऐसे ही अपूर्वकरण में तीन कूट करना । अनिवृत्तिकरण में जिस-जिस भाग में वेद, कषाय और हास्यादिक छह का अभाव हुआ हो, उस-उस भाग में उस-उस जगह बिंदी लिखकर एक-एक ही कूट करना । इन सर्व ही कूटों में भय, जुगुप्सा का अभाव है, इसलिए एक-एक ही कूट होता है ।

सूक्ष्मसाम्पराय में बादर लोभ नहीं है, सूक्ष्मलोभ है, इसलिए जहां सर्व कषाय लिखे हैं वहां तीन जगह बिंदी और एक जगह एक लिखना — ऐसा एक कूट करना । उपशांतमोह और क्षीणमोह में सूक्ष्म लोभ भी नहीं है इसलिए सर्व कषायों की जगह बिंदी लिखना — ऐसा एक-एक कूट करना । सयोगी में असत्य और उभय मन और वचन *(योग)* नहीं है, इसलिए योग सात ही लिखना — ऐसा एक कूट करना । अयोगी में सर्वत्र शून्य ही है ।

ऐसे इन कहे हुये कूटों में से अनंतानुबंधी रहित मिथ्यादृष्टि के पहले कूट में मिथ्यात्व में से एक, इन्द्रियों में से एक, षट्कायहिंसा में से एक, पृथ्वीकाय की हिंसा, क्रोधादि चार कषायों में अनंतानुबंधी बिना चार त्रिक में से एक त्रिक, वेदों में से एक, दो युगलों में से एक युगल, यह पर्याप्त ही है इसलिए दस योगों में से एक योग, ऐसे मिलकर दस का आस्रव होता है । इनमें से पृथ्वी की हिंसा घटाकर पृथ्वी आदि दो की हिंसा मिलानेपर, ग्यारह का आस्रव होता है । पृथ्वी आदि दो की हिंसा को घटाकर पृथ्वी आदि तीन की हिंसा मिलानेपर, बारह का आस्रव होता है । तीन की हिंसा को घटाकर पृथ्वी आदि चार की हिंसा मिलानेपर, तेरह का आस्रव होता है । चार की हिंसा को घटाकर पृथ्वी आदि पांच की हिंसा को मिलानेपर चौदह का आस्रव होता है, पांच की हिंसा को घटाकर पृथ्वी आदि छह की हिंसा मिलानेपर पंद्रह का आस्रव होता है ।

इसतरह अनंतानुबंधी रहित प्रथम कूट में दस से लेकर छह स्थान हुये । इसीप्रकार दूसरे कूट में भय, जुगुप्सा में से एक-एक के मिलने से ग्यारह से लेकर छह स्थान होते हैं । तीसरे कूट में भय, जुगुप्सा दोनों के मिलने से बारह से लेकर छह स्थान होते हैं ।

पुनश्च अनंतानुबंधी सहित तीन कूटों में एक अनंतानुबंधी कषाय अधिक है, इसलिए प्रथम कूट में ग्यारह से लेकर छह स्थान, दूसरे कूट में बारह से लेकर छह स्थान, तीसरे कूट में तेरह से लेकर छह आस्रवस्थान होते हैं । इसतरह इन कूटों में दस का और अठारह का आस्रव तो एक-एक प्रकार का ही है; क्योंकि दस का आस्रव तो अनंतानुबंधी रहित प्रथम कूट में ही है, और अठारह का आस्रव अनंतानुबंधी सहित अंत कूट में ही है, अन्यत्र नहीं है ।

इसीतरह कूटों में विचार कर ग्यारह और सत्रह के आस्रव के स्थान तीन-तीन प्रकार हैं; बारह और सोलह के पांच-पांच प्रकार के हैं; तेरह, चौदह और पंद्रह के छह-छह प्रकार के हैं ।

इसीप्रकार सासादनादि में जो कूट कहे उनका विचार करके आस्रवों के स्थान और उन स्थानों के प्रकार जानना । ऐसा मन में रखकर आचार्यों ने पहली दो गाथाओं द्वारा स्थान और स्थानप्रकार का प्रतिपादन *(कथन)* किया है ॥७९४॥

यहां जो स्थानप्रकार कहे, उनका कथन किसप्रकार से करना यह जानने के लिये कूटोच्चारण विधान कहते हैं –

मिच्छत्ताणण्णदरं एक्केणक्खेण एक्ककायादी ।
तत्तो कसायवेददु जुगलाणेक्कं च जोगाणं ॥७९५॥

मिथ्यात्वानामन्यतरमेकेनाक्षेण एककायादि ।
ततः कषायवेदद्वि युगलानामेक च योगानां ॥७९५॥

टीका – मिथ्यात्व में से कोई एक, छह इन्द्रिय में से एक, इनसे संयुक्त एक, दो आदि काय की हिंसा, कषायों में से एक जाति, वेदों में से एक, दो युगल में से एक और चकार से पाये जानेवाले स्थान में भय और जुगुप्सा में से एक या दोनों और योगों में से एक ऐसा कथन करना यह कूटों के उच्चारण का विधान है । वही कहते हैं –

जीवकाण्ड के गुणस्थान अधिकार में विकथादि के अक्षसंचारादि द्वारा जैसे प्रमाद के भंग किये हैं, वैसे पांच मिथ्यात्व आदि के अक्षसंचारादि द्वारा आस्रवों के भंग जानना । वहां अनंतानुबंधी रहित प्रथम कूट में एकांत मिथ्यात्व, स्पर्शनइन्द्रिय, पृथ्वीकाय

की हिंसा, तीन प्रकार के क्रोध, नपुंसकवेद, हास्य-रति का युगल, सत्यमनोयोग इनमें अक्ष को रखनेपर एकांत मिथ्यादृष्टि, स्पर्शनइन्द्रिय के वशीभूत, पृथ्वीकाय का हिंसक, तीन प्रकार के क्रोध का धारक, नपुंसकवेदी, हास्य-रतिसंयुक्त, सत्य मनोयोगी ऐसे जीव के आस्रव का एक भंग हुआ । पुनश्च जहां पृथ्वी का हिंसक कहा वहां जल का या अग्नि का या वायु का या वनस्पति का या त्रस का क्रम से कहने से ऐसे प्रत्येक भंग छह हुये । पुनश्च पृथ्वी-जल, पृथ्वी-अग्नि इत्यादि दो के संयोगरूप पंद्रह भेदों में से एक-एक का हिंसक कहने से द्विसंयोगी भंग पंद्रह होते हैं ।

पुनश्च पृथ्वी-जल-अग्नि का अथवा पृथ्वी-जल-वायु का इत्यादि तीन के संयोगरूप बीस भेदों में से एक-एक का हिंसक कहनेपर त्रिसंयोगी भंग बीस होते हैं । पुनश्च पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु का वा पृथ्वी-जल-अग्नि-वनस्पति का इत्यादि चार के संयोगरूप पंद्रह भेदों में से एक-एक का हिंसक कहनेपर चतुःसंयोगी भंग पंद्रह होते हैं । पुनश्च पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-वनस्पति का वा पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-त्रस का वा जल-अग्नि-वायु-वनस्पति-त्रस का इत्यादि पांच के संयोगरूप छह भेदों में से एक-एक का हिंसक कहनेपर पंचसंयोगी भंग छह होते हैं । पुनश्च पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-वनस्पति और त्रस इन छहों के संयोगरूप एक भंग, उसका हिंसक कहनेपर छह संयोगी भंग एक होता है । ऐसे सर्व मिलकर तिरसठ भंग हुये ।

पुनश्च जहां एकांत मिथ्यात्वी कहा था, वहां विपरीत मिथ्यात्वी कहकर पूर्वोक्त प्रकार तिरसठ भंग करना । इसतरह पांच मिथ्यात्व के तीन सौ पंद्रह भंग हुये ।

इन सबमें जहां स्पर्शनइन्द्रिय के वशीभूत कहा, वहां रसनाइन्द्रिय के वशीभूत कहना, तब उतने ही भंग हुये । ऐसे पांच इन्द्रिय और छठवें मन के द्वारा अठारह सौ नब्बे भंग होते हैं ।

इन सबमें जहां तीन प्रकार के क्रोध संयुक्त कहा था, वहां तीन प्रकार के मान संयुक्त करनेपर भी उतने ही भंग होते हैं । ऐसे लोभ तक चार कषायों के द्वारा पचहत्तर सौ साठ भंग होते हैं ।

इन सबमें जहां नपुंसकवेदी कहा, वहां स्त्रीवेदी कहनेपर उतने ही होते हैं और पुरुषवेदी कहनेपर भी उतने ही होते हैं । ऐसे तीन वेदों के द्वारा बाइस हजार छ सौ अस्सी भंग होते हैं ।

इन सर्व भेदों में जहां हास्य-रति संयुक्त कहा, वहां अरति-शोक संयुक्त कहनेपर भी उतने ही भंग होते हैं । ऐसे पैंतालीस हजार तीन सौ साठ भंग हुये । इस कूट में भय, जुगुप्सा है ही नहीं ।

इन सबमें जहां सत्यमनोयोग कहा वहां असत्यमनोयोग कहनेपर भी उतने ही भंग होते हैं । इसतरह वैक्रियिक योग तक पर्याप्त दस योगों द्वारा चार लाख तिरपन हजार छह सौ भंग होते हैं । मिथ्यात्व में अनंतानुबंधी का अनुदय पर्याप्त दशा में ही होता है, इसलिए औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्माण ये तीन योग यहां नहीं लिये ।

इसतरह अनंतानुबंधी रहित मिथ्यादृष्टि के कूट में इतने भंग हुये । यहां जब अक्ष अपने अंतस्थान तक पहुंचता है, तब उस सहित पहले हुये अक्ष – वे सब आदिस्थान को प्राप्त होते हैं, उत्तर अक्ष अपने दूसरे स्थान को प्राप्त होता है । जैसे, पांच मिथ्यात्व का अक्ष अज्ञान तक पहुंचा उसके पश्चात् मिथ्यात्व का अक्ष तो एकांत को प्राप्त हुआ और उत्तर इन्द्रियअक्ष था, वह रसनारूप द्वितीय स्थान को प्राप्त हुआ । इसीतरह होते-होते सर्व अक्ष अंतस्थान को पहुंचे, तब वहां अक्षसंचार होकर समाप्त होता है । यह अक्षसंचार का विधान प्रमाद के कथन में जैसे पहले *(सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका-जीवकाण्ड में)* कहा था, वैसे यहां भी जान लेना । इसतरह अनंतानुबंधी रहित मिथ्यादृष्टि के प्रथम कूट का कूटोच्चारणविधान पूर्ण हुआ ।

इसीप्रकार मिथ्यादृष्टि के अवशेष कूट तथा सासादनादि के कूट, उनका भी कूटोच्चारणविधान जितने अक्ष और अक्षों का प्रमाण हो, उनसे जानना ॥७९५॥

आगे इन भंगों का प्रमाण लाने के लिये भंगानयन प्रकार कहते हैं –

अणरहिदसहिदकूडे बावत्तरिसय सयाण तेणउदी ।
सट्ठी धुवा हु मिच्छे भयदुगसंजोगजा अधुवा ॥७९६॥

अनरहितसहितकूटे द्वासप्ततिशतं शतानां त्रिनवतिः ।
षष्ठिर्ध्रुवा हि मिथ्ये भयद्विकसंयोगजा अध्रुवाः ॥७९६॥

टीका – मिथ्यात्वादिकों की संख्या को परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, वही अक्षसंचार द्वारा भंगों का प्रमाण होता है; इसलिए मिथ्यात्व गुणस्थान में

अनंतानुबंधी रहित कूटों में तो मिथ्यात्व पांच, इन्द्रिय छह, कषायत्रिक चार, वेद तीन, हास्य वा अरति युगल दो, योग दस; ५, ६, ४, ३, २, १० इनको परस्पर गुणा करनेपर बहत्तर सौ होते हैं । पुनश्च अनंतानुबंधी सहित कूट में मिथ्यात्व पांच, इन्द्रिय छह, कषायचतुष्क चार, वेद तीन, हास्य, अरति युगल दो, योग तेरह; ५, ६, ४, ३, २, १३ इनको परस्पर गुणा करनेपर तिरानबे सौ साठ होते हैं । दोनों मिलानेपर सोलह हजार पांच सौ साठ तो ध्रुवगुण्य होते हैं ।

पुनश्च एक-एक के प्रति भय-जुगुप्सा रहित, भय सहित, जुगुप्सा सहित और भय-जुगुप्सा सहित ये चार भंग पाये जाते हैं, कायहिंसा के तिरसठ भंग पाये जाते हैं । इसलिए चार और तिरसठ अध्रुव गुणकार हैं । उस ध्रुव गुण्य को चार से तथा तिरसठ से गुणा करनेपर मिथ्यात्व गुणस्थान में सब प्रत्ययभंग इकतालीस लाख तिहत्तर हजार एक सौ बीस होते हैं । यहां मिथ्यात्वादि में तो एक-एक ही अवश्य निश्चल होता है, इसलिए ध्रुव संज्ञा कही । भयद्विक और कायहिंसा में कदाचित् कुछ, कदाचित् कुछ चलरूप पाये जाते हैं; इसलिए ध्रुव संज्ञा नहीं कही ।

सासादन में छह इन्द्रिय, चार कषायजाति, तीन वेद, दो युगल, वैक्रियिकमिश्र बिना बारह योग इनको परस्पर गुणा करनेपर सत्रह सौ अट्ठाइस और वैक्रियिकमिश्र में नपुंसकवेद नहीं है, इसलिए इन्द्रिय छह, कषाय चार, वेद दो, युगल दो, योग एक को परस्पर गुणा करनेपर छानबे – दोनों मिलकर अठारह सौ चौबीस ध्रुवगुण्य हुये । इनको चार और तिरसठ अध्रुव गुणकार से गुणा करनेपर सर्व भंग चार लाख उनसठ हजार छह सौ अड़तालीस होते हैं ।

मिश्र में इन्द्रिय छह, कषाय चार, वेद तीन, युगल दो, योग दस परस्पर गुणा करनेपर चौदह सौ चालीस ध्रुवगुण्य हुये । इसको चार और तिरसठ अध्रुवगुणकार से गुणा करनेपर तीन लाख बासठ हजार आठ सौ अस्सी भंग होते हैं ।

असंयत में इन्द्रिय छह, कषाय चार, वेद तीन, युगल दो, योग पर्याप्त संबंधी दस – इनको परस्पर गुणा करनेपर चौदह सौ चालीस और वैक्रियिकमिश्र तथा कार्माण में स्त्रीवेद नहीं है; इसलिए इन्द्रिय छह, वेद दो, युगल दो, योग दो इनको गुणा करनेपर एक सौ बानबे तथा औदारिक मिश्र में एक पुरुषवेद ही है; इसलिए

इन्द्रिय छह, कषाय चार, वेद एक, युगल दो, योग एक इनको गुणा करनेपर अड़तालीस – इन सबको मिलानेपर ध्रुवगुण्य सोलह सौ अस्सी हुये । इनको चार और तिरसठ अध्रुवगुणकार से गुणा करनेपर सर्व भंग चार लाख तेइस हजार तीन सौ साठ होते हैं ।

देशसंयत में वैक्रियिकयोग भी नहीं है; इसलिए इन्द्रिय छह, कषाय चार, वेद तीन, युगल दो, योग नौ – इनको परस्पर गुणा करनेपर बारह सौ छानबे होते हैं । इनको चार तो भय-जुगुप्सा संबंधी तथा यहां त्रसहिंसा नहीं है इसलिए पांच स्थावर संबंधी हिंसा की अपेक्षा ही एकसंयोगी आदि *(पांच संयोगी तक)* कायहिंसा संबंधी इकतीस अध्रुवगुणकार से गुणा करनेपर *(२ × २ × २ × २ × २ – १ = ३१)* एक लाख साठ हजार सात सौ चार भंग होते हैं ।

प्रमत्त में कषाय चार, वेद तीन, युगल दो, योग नौ इनको परस्पर गुणा करनेपर दो सौ सोलह और आहारक योग में कषाय चार, वेद एक पुरुषवेद, युगल दो, योग दो – इनको गुणा करनेपर सोलह, मिलकर दो सौ बत्तीस हुये । इनको भय-जुगुप्सा संबंधी ही चार अध्रुवगुणकार से गुणा करनेपर सर्व भंग नौ सौ अट्ठाइस होते हैं ।

अप्रमत्त में कषाय चार, वेद तीन, युगल दो, योग नौ इनको गुणा करनेपर दो सौ सोलह इनको अध्रुवगुणकार चार से गुणा करनेपर आठ सौ चौंसठ भंग होते हैं ।

अपूर्वकरण में भी ऐसे ही आठ सौ चौंसठ भंग होते हैं ।

अनिवृत्तिकरण के वेद सहित भाग में कषाय चार, वेद तीन, योग नौ – इनको परस्पर गुणा करनेपर एक सौ आठ होते हैं । यहां से अध्रुवगुणकार का अभाव है *(क्योंकि आठवें गुणस्थान में नोकषायों के उदय की व्युच्छिति हुयी है)* । उस वेद सहित भाग में ही कषाय चार, वेद दो, योग नौ – गुणा करनेपर बहत्तर होते हैं । वेद रहित भाग में कषाय चार, योग नौ – गुणा करनेपर छत्तीस होते हैं । क्रोध रहित भाग में कषाय तीन, योग नौ – गुणा करनेपर सत्ताइस होते हैं । मान रहित भाग में कषाय दो, योग नौ – गुणा करनेपर अठारह होते हैं । माया रहित भाग में कषाय एक, योग नौ – गुणा करनेपर नौ होते हैं । सर्व मिलकर अनिवृत्तिकरण में दो सौ सत्तर भंग होते हैं ।

सूक्ष्मसाम्पराय में कषाय एक, योग नौ – गुणा करनेपर नौ भंग होते हैं । उपशांतमोह में नौ योग ही हैं, इसलिए नौ भंग होते हैं । क्षीणमोह में भी नौ ही भंग होते हैं । सयोगी में योगों से ही सात भंग होते हैं । अयोगी में प्रत्यय का अभाव है ॥७९६॥

ऐसे कहे हुये भंगों को कहते हैं –

चउवीसट्ठारसयं तालं चोद्दस असीदि सोलसयं ।
छण्णउदी बारसयं बत्तीसं बिसद सोल बिसदं च ॥७९७॥

सोलस बिसदं कमसो धुवगुणगारा अपुव्वकरणोत्ति ।
अद्धुवगुणिदे भंगा धुवभंगाणं ण भेदादो ॥७९८॥ जुम्मं

चतुर्विंशाष्टदशशतं चत्वारिंशच्चतुर्दशाशीतिः षोडशशतं ।
षण्णवतिर्द्वादशशतं द्वात्रिंशद्द्विशतं षोडशद्विशतं च ॥७९७॥

षोडश द्विशतं क्रमशो ध्रुवगुणकारा अपूर्वकरण इति ।
अध्रुवगुणिते भंगा ध्रुवभंगानां न भेदात् ॥७९८॥ युग्मं

टीका – ध्रुवगुण्य अपूर्वकरण तक क्रम से मिथ्यात्व में तो पूर्वोक्त *(१६५६० – गाथा ७९६)*, सासादन में अठारह सौ चौबीस, मिश्र में चौदह सौ चालीस, असंयत में सोलह सौ अस्सी, देशसंयत में बारह सौ छानबे, प्रमत्त में दो सौ बत्तीस, अप्रमत्त में दो सौ सोलह, अपूर्वकरण में दो सौ सोलह । इन ध्रुवगुण्यों को अपने अध्रुवगुणकार से गुणा करनेपर वहां भंग होते हैं । ऊपर केवल ध्रुवभंग ही है, वहां भय, जुगुप्सा, अविरति का अभाव है, इसलिए अध्रुवगुणकार नहीं है ॥७९७, ७९८॥

पहले कायहिंसा में प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी इत्यादि भंग कहकर अक्षसंचार कहा, उन भंगों को साधने के लिये अन्य उपाय कहते हैं –

छप्पंचादेयंतं रूवुत्तरभाजिदे कमेण हदे ।
लद्धं मिच्छचउक्के देसे संजोगगुणगारा ॥७९९॥

षट्पंचादेकांतं रूपोत्तरभाजिते क्रमेण हते ।
लब्धं मिथ्यचतुष्के देशे संयोगगुणकाराः ॥७९९॥

टीका – जहां प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी इत्यादि भेद करने हो, वहां विवक्षित का जो प्रमाण हो, उस प्रमाण से लेकर एक-एक हीन अंक एक तक अनुक्रम से लिखना – ये तो भाज्य हुये और उनके नीचे एक आदि एक-एक बढ़ता हुआ उस प्रमाण के अंक तक क्रम से अंक लिखना – ये भागहार हुये । भाज्य को अंश और भागहार को हार कहते हैं । भिन्नगणित में भाग प्रभाग विधान है, उससे क्रम से पूर्व अंश से अगले अंश को और पूर्व हार से अगले हार को गुणा करके जो-जो अंशों का प्रमाण हो, उसको हार के प्रमाण का भाग देनेपर जो-जो प्रमाण आयेगा, उतने-उतने वहां भंग जानना । यहां मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानों में कायहिंसा का प्रमाण छह है, वहां छह, पांच, चार, तीन, दो, एक ये तो अंश क्रम से लिखना और उनके नीचे एक, दो, तीन, चार, पांच, छह ये हार क्रम से लिखना ।

६	५	४	३	२	१
१	२	३	४	५	६

वहां प्रथम अंश छह, उसको हार एक का भाग देनेपर छह आये, इसलिए प्रत्येक भंग तो छह हैं । पूर्व छह से अगले पांच को गुणा करनेपर तीस अंश हुये, उसको पूर्व एक से अगले दो को गुणा करनेपर दो हार हुये, उसका भाग *(तीस को)* देनेपर पंद्रह आये – इतने द्विसंयोगी भंग हैं । पूर्व तीस से अगले चार को गुणा करनेपर एक सौ बीस अंश हुये, उसको पूर्व दो से अगले तीन को गुणा करनेपर छह हार हुये, उसका भाग देनेपर बीस आये – इतने त्रिसंयोगी भंग हैं ।

पूर्व एक सौ बीस से अगले तीन को गुणा करनेपर तीन सौ साठ अंश हुये, उसको पूर्व छह से अगले चार को गुणा करके चौबीस हार हुये, उसका भाग देनेपर पंद्रह आये – इतने चतुःसंयोगी भंग हैं ।

पूर्व तीन सौ साठ से आगे के दो को गुणा करनेपर सात सौ बीस अंश हुये, उनको पूर्व चौबीस से आगे के पांच को गुणा करनेपर एक सौ बीस हार हुये, उसका भाग देनेपर छह आये – इतने पंचसंयोगी भंग हैं ।

पूर्व सात सौ बीस से आगे के एक को गुणा करनेपर सात सौ बीस अंश

हुये, उनको पूर्व एक सौ बीस से आगे के छह को गुणा करनेपर सात सौ बीस हार हुये, उनका भाग देनेपर एक आया — छह संयोगी भंग एक है ।

ऐसे सर्व मिलाकर तिरसठ भंग हैं ।

देशसंयत में त्रसवध *(त्रसहिंसा)* नहीं है, इसलिए पांच ही की हिंसा है । इसलिए पांच से लेकर एक तक के अंक क्रम से लिखना । उनके नीचे एक से लेकर पांच तक हार क्रम से लिखना ।

५	४	३	२	१
१	२	३	४	५

वहां पूर्वोक्त प्रकार से पांच को एक का भाग देनेपर पांच आये, सो पांच तो प्रत्येक भंग हैं । पांच गुणा चार अंश को एक गुणा दो हार का भाग देनेपर दस आये — इतने द्विसंयोगी भंग हैं । बीस गुणा तीन अंश को दो गुणा तीन हार का भाग देनेपर दस आये — इतने त्रिसंयोगी भंग हैं । साठ गुणा दो अंश को छह गुणा चार हार का भाग देनेपर पांच आये — इतने चतुःसंयोगी भंग हैं । एक सौ बीस गुणा एक अंश को चौबीस गुणा पांच हार का भाग देनेपर एक आया, सो पंचसंयोगी भंग एक है ।

ऐसे मिलकर देशसंयत में कायहिंसा के इकतीस भंग हुये । इतने कायहिंसा संबंधी अध्रुवगुणकार है, इसलिए छहकायहिंसा में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस की एक-एक की हिंसा से प्रत्येक भेद तो छह हुये । पुनश्च पृथ्वी-जल, पृथ्वी-अग्नि, पृथ्वी-वायु, पृथ्वी-वनस्पति, पृथ्वी-त्रस की; जल-अग्नि, जल-वायु, जल-वनस्पति, जल-त्रस की; अग्नि-वायु, अग्नि-वनस्पति, अग्नि-त्रस की, वायु-वनस्पति, वायु-त्रस की और वनस्पति-त्रस की हिंसा के भेद से द्विसंयोगी भंग पंद्रह हुये । ऐसे ही अन्य जान लेना ॥७९९॥

आगे प्रत्ययों के उदय के कार्यभूत ऐसे जीव के जो परिणाम, उनके ज्ञानावरणादि कर्म के बंध का कारणभूतपना दिखाते हैं —

पडिणीगमंतराए उवघादो तप्पदोसणिण्हवणे ।
आवरणदुगं भूयो बंधदि अच्चासणाएवि ॥८००॥

प्रत्यनीकमंतराय उपघातस्तत्प्रदोषनिह्नवने ।
आवरणद्विकं भूयो बध्नाति अत्यासादनयापि ॥८००॥

टीका – शास्त्र या शास्त्र के धारक आदि में अविनयरूप प्रवृत्तियों से प्रतिकूल होना, वह प्रत्यनीक है । ज्ञान में विच्छेद करना वह अंतराय है । मन से वा वचन से प्रशस्तज्ञान का दोषी होना *(दूषण लगाना)* वा अभ्यासक जीवों को क्षुधादि बाधा करना, वह उपघात है । तत्त्वज्ञान में हर्ष का अभाव अथवा मोक्ष के साधनभूत तत्त्वज्ञान का उपदेश होता हुआ किसी को न सुहावें — अच्छा न लगे — उसके अंतरंग में दुष्टता होना वह प्रद्वेष है । किसी कारण से स्वयं जानते हुये भी ऐसा नहीं है या मैं नहीं जानता ऐसा कहना अथवा जिससे अपने को ज्ञान प्राप्त हुआ है वह यदि जगत में प्रसिद्ध नहीं है, उस अप्रसिद्ध गुरु का नाम छिपाकर जगत में प्रसिद्ध व्यक्ति को — तीर्थंकरादि को अपना गुरु बतलाना निन्हव है । काय और वचन से अनुमोदना न करना अथवा काय से, वचन से और कार्य के प्रकाशन से ज्ञानाभ्यास का वर्जन *(तिरस्कार)* आसादन है । इन छह कार्यों के होनेपर ज्ञानावरण और दर्शनावरण को भूयः अर्थात् स्थिति और अनुभाग की प्रचुरता युक्त बांधता है ।

यहां संदेह *(आशंका)* होता है कि बंध तो प्रतिसमय निरंतर है — यहां इनके होनेपर ही बंध कैसे कहा ?

(समाधान –) इसीलिए आचार्य ने भूयः ऐसा विशेषण कहा । इन कार्यों के होनेपर स्थिति और अनुभाग की बहुलता से *(अधिकता से)* बंध होता है, इन कार्यों के न होनेपर स्थिति और अनुभाग की हीनता युक्त बंध होता है । ऐसे अन्य संबंधी भी जान लेना ।

पुनश्च ये छहों एक साथ *(युगपत्)* ज्ञानावरण और दर्शनावरण दोनों के बंध के कारण हैं अथवा विषयभेद से आस्रव में भेद है । यदि ज्ञान के संबंध में वे छह हो, तो ज्ञानावरण का बंध प्रचुर होता है और यदि दर्शन के संबंध में वे छह हो, तो दर्शनावरण का बंध प्रचुर होता है ॥८००॥

भूदाणुकंपवदजोगजुंजिदो खंतिदाणगुरुभत्तो ।
बंधदि भूयो सादं विवरीयो बंधदे इदर ॥८०१॥

भूतानुकंपव्रतयोगयुजितः क्षांतिदानगुरुभक्तः ।
बध्नाति भूयः सातं विपरीतो वध्नातीतरत् ॥८०१॥

टीका – कर्म के उदय से नाना गतियों में जो होते हैं अर्थात् उपजते हैं उन्हें भूत या प्राणी कहते हैं । उनमें अनुकम्पा-दया, हिंसादि के त्यागरूप व्रत और समाधि-सम्यक् परिणाम वह योग, इनसे जो जीव युक्त होता है तथा क्रोधादि के त्यागरूप क्षमा, चार प्रकार के दान और पंचपरमेष्ठी की भक्ति से युक्त होता है, वह जीव सातावेदनीय को तीव्र अनुभाग के साथ प्रचुरता से बांधता है ।

यहां तीव्र अनुभाग ही कहा, स्थिति न कही, उसका कारण यह है कि स्थितिबंध की अधिकता विशुद्ध परिणामों से नहीं होती ।

पूर्वोक्त से विपरीत अदया आदि का धारक जो जीव है, वह तीव्र स्थिति और अनुभाग सहित असातावेदनीय को प्रचुर बांधता है ॥८०१॥

अरहंतसिद्ध चेदियतवसुदगुरुधम्मसंघपडिणीगो ।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥८०२॥

अर्हत्सिद्धचैत्य तपः श्रुतगुरुधर्मसंघप्रत्यनीकः ।
बध्नाति दर्शनमोहमनंतसांसारिको येन ॥८०२॥

टीका – जो जीव अरहंत, सिद्ध, चैत्य अर्थात प्रतिमा, तपश्चरण, जैनशास्त्र, निर्ग्रंथ गुरु, जिनप्रणीतधर्म और मुनि आदि के समूहरूप संघ इनसे प्रतिकूल होता है – इनके स्वरूप से विपरीत का ग्रहण करता है; वह जीव दर्शनमोहनीय का बंध करता है, जिसके उदय से जीव अनंतसंसारी होता है ॥८०२॥

तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणदो रागदोससंतत्तो ।
बंधदि चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघादी ॥८०३॥

तीव्रकषायो बहुमोहपरिणतो रागद्वेषसंतप्तः ।
बध्नति चारित्रमोहं द्विविधमपि चारित्रगुणघाती ॥८०३॥

टीका – जो जीव तीव्र कषाय और नोकषाय युक्त है, बहुत मोहरूप परिणमकर रागद्वेष में आसक्त है, चारित्रगुण का नाश करने का जिसका स्वभाव है, वह जीव कषाय, नोकषाय भेद से दो प्रकार के चारित्रमोहनीय का बंध करता है ॥८०३॥

मिच्छो हु महारंभो णिस्सीलो तिव्वलोहसंजुत्तो ।
णिरयाउगं णिबंधइ पावमई रुद्दपरिणामी ॥८०४॥

मिथ्यो हि महारंभो निश्शीलः तीव्रलोभसंयुक्तः ।
निरयायुष्कं निबध्नाति पापमतिः रुद्रपरिणामी ॥८०४॥

टीका – जो जीव मिथ्यामतरूप मिथ्यादृष्टि है, बहुत आरम्भयुक्त है, या शील रहित है, तीव्र लोभयुक्त है, रौद्रपरिणामी है, जिसकी बुद्धि पापकार्य में लगती है, वह जीव नरकायु को बांधता है ॥८०४॥

उम्मग्गदेसगो मग्गणासगो गूढहियय माइल्लो ।
सठसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधदे जीवो ॥८०५॥

उन्मार्गदेशको मार्गनाशको गूढहृदयो मायावी ।
शठशीलश्च सशल्यः तिर्यगायुष्कं बध्नाति जीवः ॥८०५॥

टीका – जो जीव विपरीत मार्ग का उपदेशक है, सम्यक् मार्ग का नाशक है, गूढ हृदय अर्थात् औरों के जानने में न आये ऐसा जिसके परिणाम है, मायाचारी-कपटी है, जो शठ अर्थात् मूर्खता युक्त है, मिथ्यात्वादि शल्यों से संयुक्त है वह जीव तिर्यंचायु को बांधता है ॥८०५॥

पयडीए तणुकसाओ दाणरदी सीलसंजमविहीणो ।
मज्झिमगुणेहिं जुत्तो मणुवाउं बंधदे जीवो ॥८०६॥

प्रकृत्या तनुकषायो दानरतिः शीलसंयमविहीनः ।
मध्यमगुणैर्युक्तो मानवायुष्कं बध्नाति जीवः ॥८०६॥

टीका – जो जीव विचार बिना स्वभाव-प्रकृति से ही मंद कषायी है, दान में प्रीतियुक्त है, शील-संयम से रहित है, जिसमें न उत्कृष्ट गुण है न उत्कृष्ट दोष ऐसे मध्यम गुणों से युक्त है, वह जीव मनुष्यायु को बांधता है ॥८०६॥

अणुवदमहव्वदेहिं य बालतवाकामणिज्जराए य ।
देवाउगं णिबंधइ सम्माइट्ठी य जो जीवो ॥८०७॥

अणुव्रतमहाव्रतैश्च बालतपोऽकामनिर्जरया च ।
देवायुष्कं निबध्नाति सम्यग्दृष्टिश्च यो जीवः ॥८०७॥

टीका – जो जीव सम्यग्दृष्टि है, वह केवल सम्यक्त्व से वा साक्षात अणुव्रत, महाव्रतों से देवायु को बांधता है । जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह उपचाररूप अणुव्रत, महाव्रतों से या अज्ञानरूप बालतपश्चरण से या बिना इच्छा बंधादिक से हुयी अकामनिर्जरा से देवायु को बांधता है ॥८०७॥

मणवयणकायववक्को माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो ।
असुहं बंधदि णामं तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं ॥८०८॥

मनोवचनकायववक्रो मायावी गारवैः प्रतिबद्धः ।
अशुभं बध्नाति नाम तत्प्रतिपक्षैः शुभनाम ॥८०८॥

टीका – जो जीव मन, वचन, काय से वक्र परिणामी है-सरल नहीं है, मायाचारी-कपटी है, तीन प्रकार के गारव अर्थात् बड़ाई से युक्त है, वह जीव नरकगति, तिर्यंचगति आदि अशुभ अर्थात् अप्रशस्त नामकर्म को बांधता है । जो जीव पूर्वोक्त से विपरीत सरल, निष्कपट, गारव रहित है, वह शुभ-प्रशस्त नामकर्म को बांधता है ॥८०८॥

अरहंतादिसु भत्तो सुत्तरुची पढणुमाणगुणपेही ।
बंधदि उच्चागोदं विवरीओ बंधदे इदरं ॥८०९॥

अर्हदादिषु भक्तः सूत्ररुचिः पठनानुमननगुणदर्शी ।
बध्नाति उच्चगोत्रं विपरीतो बध्नातीतरत् ॥८०९॥

टीका – जो जीव अरहंतादि में भक्तिवंत है, गणधरादि द्वारा कथित शास्त्र में जिसकी रुचि है और अध्ययन के लिये विचार, विनय आदि गुणों का प्रेक्षक-दर्शक है-दर्शानेवाला है, वह जीव उच्चगोत्र को बांधता है । उस पूर्वोक्त से विपरीत जीव नीचगोत्र को बांधता है ॥८०९॥

पाणवधादीसु रदो जिणपूजामोक्खमग्गविग्घयरो ।
अज्जेइ अंतरायं ण लहइ जं इच्छियं जेण ॥८१०॥

प्राणवधादिषु रतो जिनपूजामोक्षमार्गविघ्नकरः ।
अर्जयति अंतरायं न लभते यदीप्सितं येन ॥८१०॥

टीका – जो जीव स्वयं या अन्य द्वारा की हुयी एकेन्द्रियादि प्राणियों की हिंसा में प्रीतिवंत है, जिनेश्वर की पूजा और रत्नत्रय की प्राप्तिरूप मोक्षमार्ग में स्वयं के लिये भी और अन्य जीवों के लिये भी विघ्न करता है, वह जीव अंतराय कर्म को उपजाता है, जिसके उदय आने से जीव को अपने वांछित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती ॥८१०॥

इस विषय संबंधी विशेष परिज्ञान के लिये तत्त्वार्थसार चौथा अधिकार श्लोक १३ से ५८ तक तथा सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिकगत छठवां अध्याय सूत्र १० से २७ तक वृत्ति एवं वार्तिक देखिये ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका में कर्मकाण्ड में आस्रवाधिकार नामक छठवां अधिकार समाप्त हुआ ॥६॥

भावचूलिकाधिकार ॥७॥

॥ मंगलाचरण ॥

करि अभाव भवभाव सब सहज भाव निज पाय ।
जय अपुनर्भवभावमय भये परम शिवराय ॥१॥

अब भावचूलिका का प्रारंभ करते हैं । वहां प्रथम निर्विघ्न समाप्त होने के लिये अपने इष्टदेव को नमस्कार करते हैं —

गोम्मटजिणिंदचंदं पणमिय गोम्मटपयत्थसंजुत्तं ।
गोम्मटसंगहविसयं भावगयं चूलियं वोच्छं ॥८११॥

गोम्मटजिनेन्द्रचंद्रं प्रणम्य गोम्मटपदार्थसंयुक्तां ।
गोम्मटसंग्रहविषयां भावगतां चूलिका वक्ष्ये ॥८११॥

टीका – गोम्मट जिनेन्द्र अर्थात् वर्धमानस्वामी वा नेमिनाथस्वामी का प्रतिबिम्ब, वही है चन्द्रमा, उसको नमस्कार करके समीचीन पद, शब्द और अर्थ से संयुक्त अथवा समीचीन पदार्थों के वर्णन से संयुक्त ऐसी जो गोम्मटसार ग्रंथ में है और तीर्थंकर के शास्त्र के गोचर भावों के कथन को जो प्राप्त है ऐसी भावगतचूलिका को मैं कहूंगा ॥८११॥

जेहिं दु लक्खिज्जंते उवसमआदीसु जणिदभावेहिं ।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥८१२॥

येस्तु लक्ष्यंते उपशमादिषु जनितभावैः ।
जीवास्ते गुणसंज्ञा निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ॥८१२॥

टीका – जिन अपने प्रतिपक्षी कर्मों के उपशमादि के होनेपर उत्पन्न हुये औपशमिकादि भावों से जीव पहचाने जाते हैं, उनको सर्वदर्शी *(सर्वज्ञ भगवान)* ने भाव अर्थात गुण संज्ञा से कहा है ॥८१२॥

उवसम खइओ मिस्सो ओदयियो पारिणामियो भावो ।
भेदा दुग णव तत्तो दुगुणिगिवीसं तियं कमसो ॥८१३॥

औपशमिकः क्षायिको मिश्र औदयिकः पारिणामिको भावः ।
भेदा द्विकं नव ततो द्विगुणमेकविंशतिस्त्रयः क्रमशः ॥८१३॥

टीका – वे मूलभाव पांच हैं – औपशमिक, क्षायिक, मिश्र *(क्षायोपशमिक)*, औदयिक, पारिणामिक । उसके पश्चात् उनके भेद अनुक्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस, तीन जानना ॥८१३॥

कम्मुवसमम्मि उवसमभावो खीणम्मि खइयभावो दु ।
उदयो जीवस्स गुणो खओवसमिओ हवे भावो ॥८१४॥

कर्मोपशमे उपशमभावः क्षीणे क्षायिकभावस्तु ।
उदयो जीवस्य गुणः क्षायोपशमिको भवेत् भावः ॥८१४॥

टीका – प्रतिपक्षी कर्म के उपशम होनेपर औपशमिक भाव होता है । प्रतिपक्षी कर्म का सम्पूर्ण क्षय होनेपर क्षायिक भाव होता है । प्रतिपक्षी कर्म का उदय भी हो और जीव का गुण भी जहां प्रकट हो, वहां दोनों के मिश्ररूप क्षायोपशमिक भाव होता है ॥८१४॥

कम्मुदयजकम्मिगुणो ओदियियो तत्थ होदि भावो दु ।
कारणणिरवेक्खभवो सभावियो होदि परिणामो ॥८१५॥

कर्मोदयजकर्मिगुण औदयिकस्तत्र भवति भावस्तु ।
कारणनिरपेक्षभवः स्वाभाविको भवति परिणामः ॥८१५॥

टीका – कर्म के उदय से उत्पन्न संसारी जीव के गुण को औदयिकभाव कहते हैं, उदय के होनेपर होनेवाला वह औदयिकभाव है । उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदय की अपेक्षा से रहित ऐसा जो भाव, वह पारिणामिक भाव है ॥८१५॥

आगे उत्तरभावों को कहते हैं –

उवसमभावो उवसमसम्मं चरणं च तारिसं खइओ ।
खाइय णाणं दंसण सम्म चरित्तं च दाणादी ॥८१६॥

उपशमभाव उपशमसम्यक्त्वं चरणं च तादृशः क्षायिकः ।
क्षायिक ज्ञानं दर्शनं सम्यक्त्व चारित्रं च दानादयः ॥८१६॥

टीका – औपशमिक भाव दो प्रकार के हैं – उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र । क्षायिकभाव नौ प्रकार के हैं – क्षायिक ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ॥८१६॥

खाओवसमियभावो चउणाण तिदंसणं तिअण्णाणं ।
दाणादिपंच वेदगसरागचारित्तदेसजमं ॥८१७॥

क्षायोपशमिकभावश्चतुर्ज्ञानं त्रिदर्शनं त्र्यज्ञानं ।
दानादिपंच वेदकसरागचारित्रदेशयमं ॥८१७॥

टीका – क्षायोपशमिकभाव अठारह प्रकार के हैं – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ये चार ज्ञान; चक्षु, अचक्षु, अवधि – ये तीन दर्शन; कुमति, कुश्रुत, विभंग – ये तीन अज्ञान और क्षयोपशमरूप दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य – ये पांच; वेदक सम्यक्त्व, सरागचारित्र और देशसंयम । मतिज्ञानावरणादि का क्षयोपशम होनेपर मतिज्ञानादिक होते हैं, इसलिए इनको क्षयोपशमिकभाव कहते हैं ॥८१७॥

ओदयिया पुण भावा गदिलिंगकसाय तह य मिच्छत्तं ।
लेस्सासिद्धा संजम अण्णाणं होंति इगवीसं ॥८१८॥

औदयिकाः पुनर्भावा गतिलिंगकषायास्तथा च मिथ्यात्वं ।
लेश्यासिद्धासंयमाज्ञानं भवंति एकविंशतिः ॥८१८॥

टीका – औदयिकभाव इक्कीस प्रकार के हैं – चार गति, तीन वेद, चार कषाय, एक मिथ्यात्व, छह लेश्या, सामान्य कर्म के उदयरूप सिद्धपद का अभाव वह असिद्धत्व, चारित्रमोह के सर्वघाति के उदय से चारित्र का अभाव वह असंयम, ज्ञानावरण के उदय से जो ज्ञान प्रकट नहीं है वह अज्ञान, छद्मस्थ के जितना ज्ञान प्रकट हुआ है वह क्षयोपशमरूप है और जितना ज्ञान प्रकट नहीं है वह औदयिक अज्ञानरूप है ॥८१८॥

जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तादी हवंति परिणामा ।
इदि मूलुत्तरभावा भंगवियप्पे बहू जाणे ॥८१९॥

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वादयो भवंति परिणामाः ।
इति मूलोत्तरभावाः भंगविकल्पे बहवो जानीहि ॥८१९॥

टीका – पारिणामिकभाव तीन प्रकार के हैं – जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व । जीवत्व तो द्रव्यस्वभाव है ही और भव्यत्व, अभव्यत्व भी किसी कर्म के निमित्त से नहीं है; अनादि से जैसे हैं वैसे ही हैं, इसलिए इनको भी पारिणामिक कहा है ।

इसतरह मूलभाव पांच हैं, उत्तरभाव तिरपन हैं और भंगविकल्पों से बहुत हैं, ऐसे जानना ॥८१९॥

ओघादेसे संभवभावं मूलुत्तरं ठवेदूण ।
पत्तेये अविरुद्धे परसगजोगेवि भंगा हु ॥८२०॥

ओघादेशे संभवभावं मूलोत्तरं स्थापयित्वा ।
प्रत्येके अविरुद्धे परस्वकयोगेऽपि भंगा हि ॥८२०॥

टीका – ओघ अर्थात् गुणस्थान, आदेश अर्थात् मार्गणास्थान इनमें पाये जानेवाले ऐसे जो मूलभाव और उत्तरभाव, उनको स्थापित कर जैसे गुणस्थानाधिकार में प्रमादों का कथन करते समय अक्षसंचार विधान कहा, वैसे ही यहां अक्षसंचार विधान से भावों के बदलने से प्रत्येकभंग और विरुद्धरहित परसंयोगी और स्वसंयोगी भंग होते हैं । जहां जुदे-जुदे भाव कहते हैं, वहां प्रत्येक भंग जानना । जहां अन्य-अन्य भाव के संयोगरूप भंग होते हैं, वहां परसंयोगी कहते हैं ।

जैसे औदयिक का कोई भेद जहां पाया जाता है, वहीं पर औपशमादि कोई भेद पाया जाये, वहां औदयिक-औपशमादि के संयोगरूप परसंयोगी होता है । ऐसे ही अन्यत्र भी जानना ।

जहां निजभाव के भेदों के संयोगरूप ही भंग होते हैं, वहां स्वसंयोगी कहते हैं । जैसे औदयिक का कोई भेद जहां पाया जाता है, वहीं पर औदयिक का अन्य

भेद भी पाया जाये, वहां औदयिक में औदयिक ऐसा स्वसंयोगी भंग होता है — ऐसे ही अन्यत्र भी जानना । इसे गुणस्थानों में कहते हैं —

नाना जीवों के नाना काल अपेक्षा भाव कहना सुगम है, क्योंकि पहले सब का कथन हो चुका है, तथापि मंदबुद्धियों के समझने के लिये कहते हैं — वहां मूलभाव मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में औदयिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक — ऐसे तीन-तीन हैं । असंयतादि आठ में सर्व पांच-पांच हैं । क्षीणमोह में औपशमिक बिना चार हैं । सयोगी, अयोगी में औदयिक, क्षायिक, पारिणामिक — ये तीन-तीन हैं । सिद्धों में क्षायिक, पारिणामिक — ये दो हैं ।

अब उत्तरभाव कहते हैं —

मिथ्यात्व में औदयिक के इक्कीस; तीन अज्ञान, दो दर्शन, पांचलब्धि ये क्षयोपशमिक के दस और पारिणामिक के तीन — ऐसे चौंतीस भाव हैं । सासादन में मिथ्यात्व बिना औदयिक के बीस और तीन अज्ञान, दो दर्शन, पांच लब्धि — ये क्षायोपशमिक के दस और जीवत्व, भव्यत्व ये पारिणामिक के दो — ऐसे बत्तीस भाव हैं । मिश्र गुणस्थान में मिथ्यात्व बिना औदयिक के बीस; मिश्ररूप तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पांच लब्धि ये क्षायोपशमिक के ग्यारह *(मिश्र गुणस्थान में दो ही दर्शन कहे हैं — जीवकाण्ड और धवला में भी दो ही दर्शन कहे हैं, उसके अनुसार दस भाव होते हैं)*; भव्यत्व, जीवत्व ये पारिणामिक के दो — ऐसे तैंतीस *(बत्तीस)* भाव होते हैं । असंयत में मिथ्यात्व बिना औदयिक के बीस; तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पांच लब्धि, एक सम्यक्त्व — ये क्षायोपशमिक बारह और औपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व और जीवत्व, भव्यत्व — ये पारिणामिक — ऐसे छत्तीस भाव हैं ।

देशसंयत में मनुष्यगति, तिर्यंचगति दो, चार कषाय, तीन लिंग, तीन शुभलेश्या, असिद्धत्व, अज्ञान — ये औदयिक के चौदह; तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पांच लब्धि, सम्यक्त्व, देशचारित्र — ये क्षायोपशमिक के तेरह; औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व और जीवत्व, भव्यत्व पारिणामिक ऐसे इकतीस भाव हैं । इनमें से तिर्यंचगति, देशचारित्र घटाकर मनःपर्ययज्ञान, सरागचारित्र मिलानेपर प्रमत्त-अप्रमत्त में इकतीस-इकतीस भाव हैं । इनमें से पीत और पद्म लेश्या तथा क्षायोपशमिक

सम्यक्त्व और चारित्र घटाकर औपशमिक चारित्र, क्षायिक चारित्र मिलानेपर अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण में उनतीस-उनतीस भाव हैं । इनमें से लोभ बिना तीन कषाय और तीन वेद घटानेपर सूक्ष्मसाम्पराय में तेइस भाव हैं । इनमें से लोभ कषाय, क्षायिक चारित्र घटानेपर उपशांतमोह में इक्कीस भाव हैं । इनमें से औपशमिक के दो घटाकर क्षायिक चारित्र मिलानेपर क्षीणमोह में बीस भाव होते हैं । पुनश्च मनुष्यगति, शुक्ललेश्या, असिद्धत्व – ये औदयिक के तीन, क्षायिक के सर्व नौ, जीवत्व-भव्यत्व पारिणामिक ऐसे सयोगी में चौदह भाव हैं । इनमें से शुक्ललेश्या घटानेपर अयोगी में तेरह भाव हैं । सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य – ये क्षायिक के चार और जीवत्व पारिणामिक ऐसे सिद्ध में पांच भाव हैं । *(यह अभेद अपेक्षा है । सम्यक्त्व में चारित्र और वीर्य में अन्य चार गर्भित हैं, इसलिए भेद अपेक्षा दस भाव हैं ।)*

इसतरह नाना जीव; नाना काल अपेक्षा जानना ।

अब यहां एक जीव के एक काल में जितने-जितने भाव पाये जाते हैं, उसकी अपेक्षा कथन करते हैं –

मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में मूलभाव तीन-तीन पाये जाते हैं । वहां परसंयोग में प्रत्येक भंग तीन – औदयिक, मिश्र और पारिणामिक ये जुदे-जुदे जानना । द्विसंयोगी भंग तीन – औदयिक-मिश्र, औदयिक-पारिणामिक, मिश्र-पारिणामिक । औदयिक, मिश्र और पारिणामिक इन तीनों के संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक है । पुनश्च स्वसंयोगी में भंग तीन – औदयिक में औदयिक, मिश्र में मिश्र और पारिणामिक में पारिणामिक – इसतरह सर्व मिलकर दस भंग हुये ।

प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंग लाने का विधान जैसे आस्रवाधिकार में कहा था, वैसे ही जानना । विवक्षित संख्या के प्रमाणरूप अंक से लेकर एक-एक कम संख्यारूप लिखना, वे अंश जानना । उनके नीचे एक से लेकर एक-एक अधिक अंक लिखना, वे हार जानना । वहां पूर्व अंश से आगे के अंश को और पूर्व हार से आगे के हार को गुणा करके अंशप्रमाण को हारप्रमाण का भाग देनेपर क्रम से प्रत्येक, द्विसंयोगी आदि भंगों का प्रमाण आता है ।

यहां मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में *(प्रत्येक में)* तीन मूलभाव हैं । तीन से एक-एक

३	२	१
१	२	३

कम अंक लिखना — तीन, दो, एक का अंक लिखना । उसके नीचे एक, दो, तीन के अंक लिखना । वहां पहले तीन को एक का भाग देनेपर तीन आये, इसलिए तीन तो प्रत्येकभंग हैं । तीन से दो को गुणा करके, उसको एक गुणा दो का भाग देनेपर तीन आये, इसलिए द्विसंयोगी भंग तीन हैं । छह से एक को गुणा करके उसको दो गुणा तीन का भाग देनेपर एक आया, इसलिए त्रिसंयोगी भंग एक है । इसी विधान द्वारा आगे मूलभाव और उत्तरभावों के कथन में भी प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंगों का विधान जानना ।

५	४	३	२	१
१	२	३	४	५

पुनश्च असंयतादि चार गुणस्थानों में मूलभाव पांच-पांच पाये जाते हैं । वहां पूर्वोक्त विधान से परसंयोगी में प्रत्येक भंग पांच पाये जाते हैं । द्विसंयोगी भंग दस होते हैं, उनमें से यहां औपशमिक-क्षायिक के संयोगरूप एक भंग नहीं है, इसलिए नौ ही हैं, क्योंकि यहां औपशमिक का और क्षायिक का कोई भी भेद परस्पर मिलता नहीं है ।

त्रिसंयोगी भंग दस होते हैं, परंतु उनमें से औपशमिक, क्षायिक और एक औदयिक अथवा क्षायोपशमिक अथवा पारिणामिक में से कोई, इनके संयोगरूप तीन भंग यहां नहीं हैं, इसलिए सात ही हैं ।

चतुःसंयोगी भंग पांच हैं, उनमें से औपशमिक और क्षायिक के साथ दो औदयिक-क्षायोपशमिक अथवा क्षायोपशमिक-पारिणामिक अथवा औदयिक-परिणामिक इनके संयोगरूप तीन भंग यहां नहीं हैं, इसलिए दो ही हैं । पुनश्च उपशम, क्षायिक का मिलन नहीं है, इसलिए पंचसंयोगी भंग का अभाव है ।

स्वसंयोगी भंग तीन हैं — मिश्र में मिश्र, औदयिक में औदयिक, पारिणामिक में पारिणामिक । यहां उपशम सम्यक्त्व में उपशम चारित्र वा क्षायिक सम्यक्त्व में क्षायिक चारित्र नहीं पाया जाता, इसलिए औपशमिक में औपशमिक और क्षायिक में क्षायिक ये दो भंग नहीं कहे — इसतरह मिलकर छब्बीस भंग हुये ।

पुनश्च उपशमश्रेणी के चार गुणस्थानों में पांच-पांच मूलभाव हैं । वहां परसंयोगी में प्रत्येक भंग पांच, द्विसंयोगी दस, त्रिसंयोगी दस, चतुःसंयोगी पांच और पंचसंयोगी एक भंग है । यहां क्षायिक सम्यक्त्व के होते हुये उपशम चारित्र पाया जाता है, इसलिए

उपशम-क्षायिक का भी संयोग जानना । स्वसंयोगी में क्षायिक में क्षायिक नहीं है, क्योंकि यहां क्षायिक सम्यक्त्व में अन्य कोई क्षायिक चारित्रादि का भेद नहीं पाया जाता; इसलिए अवशेष चार भावों संबंधी चार भंग जानना । इसतरह सर्व मिलकर पैंतीस भंग हुये ।

पुनश्च क्षपकश्रेणी के चार गुणस्थानों में क्षायिक, मिश्र, औदयिक, पारिणामिक ये चार-चार ही भाव हैं । वहां परसंयोग में प्रत्येकभंग चार, द्विसंयोगी छह, त्रिसंयोगी चार, चतुःसंयोगी एक भंग है । स्वसंयोगी में यहां क्षायिक सम्यक्त्व में क्षायिक चारित्र भी पाया जाता है; इसलिए चारों भावों की अपेक्षा चार भंग हैं । ऐसे मिलकर उन्नीस भंग हुये ।

पुनश्च सयोगी और अयोगी में क्षायिक, औदयिक, पारिणामिक ये तीन-तीन भाव हैं । वहां परसंयोगी में प्रत्येकभंग तीन, द्विसंयोगी तीन, त्रिसंयोगी एक है । स्वसंयोगी तीनों भावों की अपेक्षा तीन — ऐसे मिलकर दस भंग हुये ।

पुनश्च सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक — ये मूलभाव दो हैं । वहां प्रत्येक भंग दो, द्विसंयोगी एक, स्वसंयोगी दो — सब मिलकर पांच भंग हुये ॥८२०॥

उक्त मूलभावों की संख्या और स्वपर के संयोगरूप संख्या कहते हैं —

मिच्छतिये तिचउक्के दोसुवि सिद्धेव मूलभावा हु ।
तिग पग पणगं चउरो तिग दोण्णि य संभवा होंति ॥८२१॥

मिथ्यत्रये त्रिचतुष्के द्वयोरपि सिद्धेऽपि मूलभावा हि ।
त्रिकं पंच पंचकं चत्वारः त्रिकं द्वौ च संभवा भवंति ॥८२१॥

टीका – मिथ्यात्वादि तीन, असंयतादि चार, उपशमश्रेणी के चार, क्षपकश्रेणी के चार, सयोगी आदि दो और सिद्ध में पाये जानेवाले मूलभाव क्रम से तीन, पांच, पांच, चार, तीन, दो हैं ॥८२१॥

तत्थेव मूलभंगा दस छव्वीसं कमेण पणतीसं ।
उगुवीसं दस पणगं ठाणं पडि उत्तरं वोच्छं ॥८२२॥

तत्रैव मूलभंगा दश षट्विंशं क्रमेण पंचत्रिंशत् ।
एकोनविंशं दश पंचकं स्थानं प्रति उत्तरं वक्ष्यामि ॥८२२॥

टीका – उन्हीं पूर्वोक्त छह में मूलभंग क्रम से दस, छब्बीस, पैंतीस, उन्नीस, दस और पांच हैं ॥८२२॥

आगे गुणस्थानों में उत्तरभावों को कहेंगे –

उत्तरभंगा दुविहा ठाणगया पदगयात्ति पढमम्मि ।
सगजोगेण य भंगा णयणं णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥८२३॥

उत्तरभंगा द्विविधाः स्थानगताः पदगता इति प्रथमे ।
स्वयोगेन च भंगानयनं नास्तीति निर्दिष्टं ॥८२३॥

टीका – उत्तरभावों के भंग दो प्रकार के हैं – स्थानगत और पदगत । वहां एक जीव के एक काल में जितने-जितने भाव पाये जाते हैं, उनके समूह का नाम स्थान है, उनकी अपेक्षा जो भंग किये जाते हैं, उनको स्थानगत कहते हैं । तथा एक जीव के एक काल में जो भाव पाये जाते हैं उनकी एक जाति का वा जुदे-जुदे का नाम पद है, उनकी अपेक्षा जो भंग किये जाते हैं, उनको पदगत कहते हैं । वहां एक जीव के एक काल में एक स्थान में अन्य कोई स्थान सम्भव न होने से स्थानगत भंगों में स्वसंयोगी भंग प्राप्त नहीं होते ऐसा कहा है ॥८२३॥

मिच्छदुगे मिस्सतिये पमत्तसत्ते य मिस्सठाणाणि ।
तिग दुग चउरो एक्कं ठाणं सव्वत्थ ओदयियं ॥८२४॥

मिथ्यद्विके मिश्रत्रये प्रमत्तसप्तके च मिश्रस्थानानि ।
त्रिकं द्विकं चत्वारि एकं स्थानं सर्वत्र औदयिकं ॥८२४॥

टीका – मिथ्यात्वादि दो, मिश्रादि तीन और प्रमत्तादि सात गुणस्थानों में क्षायोपशमिक भावों के स्थान अनुक्रम से तीन, दो, चार जानना । औदयिकभाव का स्थान सर्व चौदह गुणस्थानों में एक-एक ही जानना ॥८२४॥

तत्थावरणजभावा पणछस्सत्तेव दाणपंचेव ।
अयदचउक्के वेदगसम्मं देसम्मि देसजमं ॥८२५॥

तत्रावरणजभावा पंचषट्सप्तैव दानपंचैव ।
अयतचतुष्के वेदकसम्यं देशे देशयमं ॥८२५॥

टीका – पूर्वोक्त तीन में क्षायोपशमिक के ज्ञानावरण, दर्शनावरण के निमित्त से हुये ऐसे भाव मिथ्यात्व, सासादन में तीन अज्ञान और दो दर्शन ऐसे पांच हैं । मिश्रादि तीन में आदि के तीन ज्ञान, तीन दर्शन हैं, प्रमत्तादि सात में मनःपर्यय सहित चार ज्ञान, तीन दर्शन हैं । पुनश्च दानादि पांच भाव मिथ्यात्व से लेकर क्षीणमोह तक हैं । वेदक सम्यक्त्व असंयतादि चार में है । देशसंयम देशसंयत में है ॥८२५॥

रागजमं तु पमत्ते इदरे मिच्छादिजेट्ठट्ठाणाणि ।
वेभंगेण विहीणं चक्खुविहीणं च मिच्छदुगे ॥८२६॥

रागयमं तु प्रमत्ते इतरस्मिन् मिथ्यादिजेष्ठस्थानानि ।
वैभंगेन विहीनं चक्षुर्विहीनं च मिथ्यद्विके ॥८२६॥

टीका – सरागचारित्र प्रमत्त, अप्रमत्त में ही है । ऐसे यथासम्भव भाव मिलानेपर मिथ्यात्व से क्षीणमोह तक क्षायोपशमिक के उत्कृष्ट स्थान अनुक्रम से दस, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, चौदह, बारह, बारह, बारह, बारह, बारह रूप जानना । वहां मिथ्यात्व, सासादन में तीन अज्ञान, दो दर्शन, पांच दानादिक ऐसे दस, दस का उत्कृष्ट स्थान जानना । उत्कृष्ट इतने भाव होते हैं । मिश्र में तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पांच दानादि ऐसे ग्यारह का है । असंयत में वेदक सम्यक्त्व सहित बारह का है । देशसंयत में देशसंयम सहित तेरह का है । प्रमत्त, अप्रमत्त में देशसंयम बिना सरागचारित्र, मनःपर्ययज्ञान सहित चौदह का है । अपूर्वकरण से क्षीणमोह तक चार ज्ञान, तीन दर्शन, पांच दानादिक ऐसे बारह-बारह का उत्कृष्ट स्थान है । मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानों में एक तो दस का उत्कृष्टस्थान, एक विभंगज्ञान रहित नौ का स्थान और एक चक्षुदर्शन से भी रहित आठ का स्थान – ऐसे तीन, तीन स्थान हैं ॥८२६॥

अवधिदुगेण विहीणं मिस्सतिए होदि अण्णठाणं तु ।
मणणाणेणवधिदुगेणुभयेणूणं तदो अण्णे ॥८२७॥

अवधिद्विकेन विहीनं मिश्रत्रये भवत्यन्यत्स्थानं तु ।
मनोज्ञानेनावधिद्विकेनोभयेनोनं ततोऽन्यानि ॥८२७॥

टीका – मिश्रादि तीन गुणस्थानों में एक अपना-अपना उत्कृष्टस्थान; अवधिज्ञान और अवधिदर्शन रहित मिश्र में नौ का, असंयत में दस का, देशसंयत में ग्यारह का स्थान है – ऐसे *(मिश्रादि तीन में)* दो-दो स्थान हैं । प्रमत्तादि सात में एक-एक अपना उत्कृष्टस्थान, एक-एक मनःपर्ययज्ञान रहित, एक-एक अवधिज्ञान, अवधिदर्शन रहित और एक-एक अवधिज्ञान, अवधिदर्शन, मनःपर्ययज्ञान रहित – ऐसे प्रमत्त, अप्रमत्त में तेरह, बारह, ग्यारह और अपूर्वकरणादि पांच में ग्यारह, दस, नौ के तीन-तीन स्थान – ऐसे चार-चार स्थान जानना ।

औदयिक के इक्कीस भावों में से एक जीव के एक काल में मिथ्यात्व में चार गति, तीन वेद, चार कषाय, छह लेश्या इनमें से एक-एक तथा मिथ्यात्व, असिद्धत्व, असंयम, अज्ञान ऐसे आठ भाव पाये जाते हैं । सासादनादि तीन में मिथ्यात्व बिना सात-सात पाये जाते हैं । देशसंयत से अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग तक असंयम बिना छह-छह पाये जाते हैं । अवेद भाग में और सूक्ष्मसाम्पराय में वेद बिना पांच पाये जाते हैं । उपशांतमोह और क्षीणमोह में कषाय बिना चार-चार पाये जाते हैं । सयोगी में अज्ञान बिना तीन पाये जाते हैं । अयोगी में लेश्या बिना मनुष्यगति और असिद्धत्व – ये दो पाये जाते हैं ॥८२७॥

उक्त औदयिक स्थानों में भावों के बदलने से जो भंग होते हैं, उनको गुणस्थानों में कहते हैं –

लिंगकसाया लेस्सा संगुणिदा चदुगदीसु अविरुद्धा ।
बारस बावत्तरियं तत्तियमेत्तं च अडदालं ॥८२८॥

लिंगकषाया लेश्याः संगुणिताश्चतुर्गतिष्वविरुद्धाः ।
द्वादश द्वासप्ततिः तावन्मात्रं चाष्टचत्वारिंशत् ॥८२८॥

टीका – चार गतियों में अविरुद्ध यथासंभव लिंग, कषाय, लेश्याओं को परस्पर में गुणा करना । वहां नरकगति में तो नपुंसकवेद, चार कषाय,तीन अशुभलेश्या को

परस्पर में गुणा करनेपर बारह होते हैं । तिर्यंचगति और मनुष्यगति में तीन वेद, चार कषाय, छह लेश्या को परस्पर में गुणा करनेपर बहत्तर-बहत्तर होते हैं । देवगति में स्त्रीवेद-पुरुषवेद ये दो वेद, चार कषाय, तीन शुभलेश्या तथा भवनत्रिक के अपर्याप्त दशा में तीन अशुभलेश्या भी होती हैं – इसलिए छह लेश्या – इनको परस्पर में गुणा करनेपर अड़तालीस होते हैं – ऐसे सर्व मिलकर दो सौ चार हुये । इतने तो मिथ्यात्व और सासादन में गुण्य जानना । जिसको गुणकार से गुणा करते हैं, उसको गुण्य कहते हैं । इनका आगे गुणकार से गुणा किया जायेगा, इसलिए इनको गुण्य कहा । यहां अक्षसंचार द्वारा भावों के बदलने से जितने भंग होते हैं, उतने ही परस्पर में गुणा करने से भंग होते हैं; इसलिए गुणनविधान द्वारा अक्षभंग कहे हैं ॥८२८॥

णवरि विसेसं जाणे सुर मिस्से अविरदे य सुहलेस्सा ।
चदुवीस तत्थ भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८२९॥

नवरि विशेषं जानीहि सुरे मिश्रेऽविरते च शुभलेश्याः ।
चतुर्विंशं तत्र भंगा असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥८२९॥

टीका – मिश्र में और असंयत में पूर्ववत् नरकगति में बारह, तिर्यंचगति और मनुष्यगति में बहत्तर-बहत्तर, देव में यहां तीन शुभलेश्या हैं, इतना नवीन विशेष जानना; क्योंकि भवनत्रिक का अपर्याप्तपना यहां संभव नहीं है । इसलिए स्त्री-पुरुष वेद, चार कषाय, तीन शुभलेश्या को परस्पर में गुणा करनेपर देवगति में चौबीस ही भंग हुये – ऐसा असहाय पराक्रमी श्री वर्धमानस्वामी ने कहा है । ये सर्व मिलकर एक सौ अस्सी गुण्य हुआ ।

देशसंयत में तीन लिंग, चार कषाय, तीन शुभलेश्या को परस्पर में गुणा करनेपर तिर्यंचगति और मनुष्यगति में छत्तीस, छत्तीस होते हैं, मिलकर बहत्तर हुये । प्रमत्त और अप्रमत्त में मनुष्यगति में तीन वेद, चार कषाय, तीन शुभलेश्या को परस्पर में गुणा करनेपर छत्तीस हुये । अपूर्वकरण और सवेद अनिवृत्तिकरण में मनुष्यगति में तीन वेद, चार कषाय, एक शुक्ललेश्या से बारह हुये ।

अवेद अनिवृत्तिकरण में मनुष्यगति में चार कषाय, शुक्ललेश्या से चार हुये ।

अनिवृत्तिकरण के मानभाग में मनुष्यगति, तीन कषाय, शुक्ललेश्या से तीन हुये । मायाभाग में मनुष्यगति, दो कषाय, शुक्ललेश्या से दो हुये । लोभभाग में मनुष्यगति, बादरलोभ, शुक्ललेश्या से एक ही हुआ । सूक्ष्मसाम्पराय में मनुष्यगति, सूक्ष्मलोभ, शुक्ललेश्या से एक ही हुआ । उपशांतमोह आदि तीन में मनुष्यगति, कषाय का अभाव, शुक्ललेश्या से एक हुआ । अयोगी में मनुष्यगतिरूप एक हुआ ।

ऐसे जो ये भंग हुये, उन्हें गुण्यरूप से स्थापित करना ॥८२९॥

चक्खूण मिच्छसासणसम्मा तेरिच्छगा हवंति सदा ।
चारिकसायतिलेस्साणब्भासे तत्थ भंगा हु ॥८३०॥

चक्षुरूनं मिथ्यसासनसम्यंच तैरश्चिका भवंति सदा ।
चतु:कषायत्रिलेश्यानामभ्यासे तत्र भंगा हि ॥८३०॥

टीका – चक्षुदर्शन रहित मिथ्यादृष्टि और सासादन सदा तिर्यंच ही हैं, इसलिए वहां तिर्यंचगति में नपुंसकवेद, चार कषाय, तीन अशुभलेश्या को परस्पर में गुणा करनेपर बारह भंग प्रकटपने जानना ॥८३०॥

खाइयअविरदसम्मे चउ सोल बिहत्तरी य बारं च ।
तद्देसो मणुसेव य छत्तीसा तब्भवा भंगा ॥८३१॥

क्षायिकाविरतसम्ये चत्वार: षोडश द्वासप्ततिश्च द्वादश च ।
तद्देशो मनुष्य एव षट्त्रिंशत्तद्भवा भंगा: ॥८३१॥

टीका – क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत में – नरकगति में तो नपुंसकवेद, चार कषाय, कपोत लेश्या से चार ही भंग होते हैं । तिर्यंचगति में पुरुषवेद, चार कषाय, चार लेश्या से सोलह भंग हैं । मनुष्यगति में तीन वेद, चार कषाय, छह लेश्या से बहत्तर भंग हैं । देवगति में पुरुषवेद, चार कषाय, तीन शुभलेश्या से बारह भंग हैं – ऐसे मिलकर एक सौ चार भंग हैं । क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत मनुष्य ही हैं, वहां तीन वेद, चार कषाय, तीन शुभलेश्या से छत्तीस भंग हैं ॥८३१॥

परिणामो दुट्ठाणो मिच्छे सेसेसु एक्कठाणो दु ।
सम्मे अण्णं सम्मं चारित्ते णत्थि चारित्तं ॥८३२॥

परिणामो द्विस्थानो मिथ्ये शेषेषु एकस्थानस्तु ।
सम्ये अन्यत्सम्यं चारित्रे नास्ति चारित्रं ॥८३२॥

टीका – पारिणामिकभाव के मिथ्यात्व में दो स्थान हैं – जीवत्व-भव्यत्व और जीवत्व-अभव्यत्व । अवशेष गुणस्थानों में और सिद्ध में जीवत्व-भव्यत्व ऐसा एक ही स्थान है । आगे गुणस्थानों में प्रत्येक, द्विसंयोगी आदि भेद कहने के लिये कहते हैं –

सम्यक्त्व सहित स्थान में अन्य सम्यक्त्व नहीं होता । चारित्र सहित स्थान में अन्य चारित्र नहीं होता । जैसे, जहां उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है वहां वेदक या क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता । ऐसे ही अन्य में भी जानना ॥८३२॥

मिच्छदुगयदचउक्के अट्ठाणेण खयियठाणेण ।
जुद परजोगजभंगा पुध आणिय मेलिदव्वा हु ॥८३३॥

मिथ्याद्विकायतचतुष्के अष्टस्थानेन क्षायिकस्थानेन ।
युतं परयोगजभंगाः पृथगानीय मेलयितव्या हि ॥८३३॥

टीका – मिथ्यात्व और सासादन में चक्षुदर्शन रहित क्षायोपशमिक आठ के स्थान में औदयिक के भंग कहे उनसे युक्त और असंयतादि चार में क्षायिक सम्यक्त्व के स्थान में औदयिक के भंग कहे, उनसे युक्त परसंयोग से उत्पन्न भंगों को जुदा-जुदा विचार कर अपने-अपने राशि में मिलाना ॥८३३॥

पूर्वोक्त गुण्य के गुणकार और क्षेप प्रकट करते हैं –

उदयेणक्खे चडिदे गुणगारा एव होंति सव्वत्थ ।
अवसेसभावठाणेणक्खे संचारिदे खेवा ॥८३४॥

उदयेनाक्षे चटिते गुणकारा एव भवंति सर्वत्र ।
अवशेषभावस्थानेनाक्षे संचारिते क्षेपाः ॥८३४॥

टीका – गुणस्थानों में पूर्व में कहे मिश्र, औदयिक और पारिणामिक भाव के स्थानों को अक्षसंचार विधान से बदलने से भंग उत्पन्न करने के लिये अनुक्रम से स्थापित करके वहां औदयिक भावों के स्थान में अक्षसंचार द्वारा जो भंग होते हैं, वे भंग गुणकार जानना और अवशेष भावों के स्थान में अक्षसंचार द्वारा जो भंग होते हैं, वे क्षेप जानना ।

भावार्थ – भावों के जो स्थान कहे उनको यथसंभव पृथक् पृथक् कहना वे प्रत्येक भंग जानना । वहां औदयिक के स्थानरूप जो प्रत्येकभंग हैं, वे तो गुणकाररूप जानना । अवशेष भावों के स्थानरूप जो प्रत्येकभंग हैं, वे क्षेपरूप जानना । जहां दो, तीन आदि भावों के स्थानों के संयोग करते हैं, वहां द्विसंयोगी, तीनसंयोगी आदि भंग होते हैं उनमें जहां औदयिक भाव के संयोग सहित द्विसंयोगी आदि भंग होते हैं, वे भंग तो गुणकाररूप जानना । तथा जहां औदयिक भाव का तो संयोग न हो, अन्य भावों के ही संयोग से द्विसंयोगी आदि भंग हो, वे भंग क्षेपरूप जानना । जिससे गुणा करते हैं उसको गुणकार कहते हैं और जिनको मिलाते हैं उनको क्षेप कहते हैं । पूर्व में जो-जो गुण्य कहा था उसको यहां कहते हैं –

गुणकार से गुणा करना और गुणा करनेपर जो प्रमाण आयेगा, उसमें क्षेप का जो प्रमाण हो, उसे मिलाना । ऐसा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने वहां भंग जानना । ऐसा विधान करने से जितने होते हैं, उतने ही यथासंभव भावों के स्थान बदलने से भंग होते हैं । इसलिए उनका प्रमाण थोड़े में निकालने के लिये ऐसा विधान कहा है । वही कहते हैं –

मि	औ	पा
१०	८	भ
९	०	अ

मिथ्यात्व में दस का और नौ का ऐसे दो स्थान, औदयिक का आठ का एक स्थान, पारिणामिक के जीवत्व सहित भव्य वा अभव्यरूप दो स्थान – ऐसे पांच स्थान हैं । इन पांच प्रत्येक भंगों में से औदयिक का आठ का स्थानरूप एक प्रत्येक भंग तो गुणकार जानना, अवशेष मिश्र के दो और पारिणामिक के दो ऐसे चार भंग क्षेप जानना । पुनश्च द्विसंयोगी भंग में औदयिक के आठ के स्थान सहित मिश्र का दस का और नौ का स्थानरूप दो भंग तथा पारिणामिक के भव्य वा अभव्य के स्थानरूप दो भंग – ऐसे चार भंग तो गुणकाररूप जानना ।

पुनश्च मिश्र के दस के स्थान सहित पारिणामिक के भव्य, अभव्यरूप दो स्थान द्वारा दो भंग और मिश्र के नौ के स्थान सहित पारिणामिक के उन्हीं दो स्थान के संयोगरूप दो भंग – ऐसे चार भंग क्षेपरूप जानना ।

पुनश्च तीनसंयोगी में औदयिक के आठ के स्थान और मिश्र के दस के स्थान सहित पारिणामिक के दो स्थानों से दो भंग होते हैं । पुनश्च औदयिक के आठ के स्थान और मिश्र के नौ के स्थान सहित पारिणामिक के दो स्थानों से दो भंग – ऐसे चार भंग गुणकाररूप जानना । यहां औदयिक के संयोग बिना त्रिसंयोगी नहीं है, इसलिए त्रिसंयोगी में क्षेप नहीं है ।

इसतरह सर्व मिलकर नौ तो गुणकार और आठ क्षेप हुये । पहले औदयिक भाव के भंगों द्वारा मिथ्यात्व में दो सौ चार गुण्य कहा था उसको गुणकार नौ से गुणा करनेपर अठारह सौ छत्तीस होते हैं, उनमें आठ क्षेप मिलानेपर अठारह सौ चौवालीस भंग होते हैं ।

मि	औ	पा
८	८	भ
		अ

पुनश्च चक्षुदर्शन रहित मिथ्यादृष्टि में मिश्र का आठ ही का एक स्थान, औदयिक का आठ का एक स्थान और पारिणामिक के भव्य, अभव्यरूप दो स्थान – ऐसे चार स्थान हैं । यहां प्रत्येक भंग चार – उनमें से एक मिश्र के आठ के स्थानरूप प्रत्येकभंग ही ग्रहण करना क्योंकि अन्य तीन प्रत्येकभंग पुनरुक्त हैं । चक्षुदर्शन सहित मिथ्यादृष्टि में पूर्वोक्त समान हैं, इसलिए एक ग्रहण किया, वह क्षेपरूप है ।

पुनश्च द्विसंयोगी में मिश्र का आठ का स्थान और औदयिक का आठ का स्थान इन दोनों के संयोगरूप एक भंग गुणकार जानना । औदयिक का स्थान और भव्य, अभव्य *(पारिणामिक)* के स्थान के संयोग से जो द्विसंयोगी होते हैं, वे पुनरुक्त हैं, इसलिए ग्रहण नहीं किये । पुनश्च मिश्र का आठ का स्थान और भव्य-अभव्यरूप पारिणामिक के दो स्थान इनके संयोग से द्विसंयोगी दो भंग होते हैं, वे क्षेपरूप जानना । त्रिसंयोगी में मिश्र का आठ का स्थान, औदयिक का आठ का स्थान इनके भव्य और अभव्यरूप दो स्थानों के संयोग से दो भंग हुये, वे गुणकाररूप हैं । इसतरह चक्षुदर्शन रहित मिथ्यादृष्टि के पहले जो बारह गुण्य कहे थे, उनके सर्व मिलकर तीन

गुणकार और तीन क्षेप हुये । वहां गुण्य *(१२)* को गुणकार *(३)* से गुणा करके क्षेप *(३)* को मिलानेपर उनतालीस भंग हुये ।

इसतरह चक्षुदर्शन सहित और रहित मिथ्यादृष्टि के सर्व भंग मिलानेपर अठारह सौ तिरासी भंग हुये ।

इसीप्रकार सासादनादि में भी जितने भावों के स्थान पाये जाते हैं, उतने तो प्रत्येक भंग जानना । वहां औदयिक का जो स्थान है वह गुणकार जानना । अन्य भावों के जो स्थान हैं, वे क्षेपरूप जानना । पुनश्च दो, तीन आदि भावों के संयोग से जो भंग होते हैं वे द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि जानना । वहां औदयिक भाव और अन्य किसी भाव के संयोग से जो द्विसंयोगी आदि भंग होते हैं, वे गुणकाररूप जानना तथा औदयिकभाव के बिना अन्य ही भावों के संयोग से जो द्विसंयोगी आदि भंग होते हैं, वे क्षेपरूप जानना । वहां पहले जो भंग कहे हैं उन्हीं के समान दुबारा जो भंग हो, वे पुनरुक्त जानना, उनका ग्रहण नहीं करना । ऐसे करनेपर जो गुणकार हो उनको मिलानेपर जो प्रमाण हो, उससे पहले जो गुण्य कहे आये थे उनको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसमें क्षेप को जोड़नेपर जो प्रमाण होता है, उसको मिलाना। ✱ ऐसा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतने भंग जानना ।

मि	औ	पा
१०	७	भ
९		

सासादन में मिश्र के दस का और नौ का दो स्थान, औदयिक का सात का एक स्थान, पारिणामिक का भव्यरूप एक स्थान – ऐसे चार स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप तीन, द्विसंयोगी में गुणकार तीन, क्षेप दो तथा त्रिसंयोगी में गुणकार दो – सर्व मिलकर गुणकार छह, क्षेप पांच हैं । वहां गुण्य दो सौ चार को यथोक्त करनेपर बारह सौ उनतीस भंग हुये ।

मि	औ	पा
८	७	भ

चक्षुदर्शन रहित सासादन में मिश्र का आठ का स्थान, औदयिक का सात का स्थान, पारिणामिक का भव्य का स्थान ऐसे तीन स्थान हैं । वहां प्रत्येक भंग में क्षेप एक, अन्य पुनरुक्त हैं; द्विसंयोगी में गुणकार एक, क्षेप एक; त्रिसंयोगी में गुणकार एक – मिलकर गुणकार दो, क्षेप दो। ✱ वहां पूर्वोक्त गुण्य बारह को यथोक्त करनेपर सर्व भंग छब्बीस हुये । दोनों मिलानेपर सासादन में सर्व भंग बारह सौ पचपन होते हैं ।

मि.	औ.	पा.
११	७	भ
९		

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में मिश्र के ग्यारह, नौ के दो स्थान, औदयिक का सात का और पारिणामिक का भव्यरूप – ऐसे चार स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप तीन और द्विसंयोगी में गुणकार तीन, क्षेप दो और त्रिसंयोगी में गुणकार दो – मिलकर गुणकार छह, क्षेप पांच, पूर्वोक्त गुण्य एक सौ अस्सी को यथोक्त करनेपर सर्व भंग एक हजार पचासी होते हैं ।

औ. स	क्षायो.	औ.	पा भ
	१२	७	
	१०		

असंयत में औपशमिक का उपशम सम्यक्त्वरूप एक, मिश्र के बारह और दस के दो, औदयिक का सात का एक, पारिणामिक का भव्यत्वरूप एक – ऐसे पांच स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप चार; द्विसंयोगी में गुणकार चार, क्षेप पांच; त्रिसंयोगी में गुणकार पांच, क्षेप दो; चतुःसंयोगी में गुणकार दो – सर्व मिलकर गुणकार बारह, क्षेप ग्यारह, पूर्वोक्त गुण्य एक सौ अस्सी *(पूर्वोक्त करनेपर)* सर्व भंग इक्कीस सौ इकहत्तर होते हैं ।

पुनश्च क्षायिक सम्यग्दृष्टि के क्षायिक का क्षायिक सम्यक्त्वरूप एक, मिश्र के बारह और दस के दो, औदयिक का सात का एक, पारिणामिक का भव्यत्वरूप एक – ऐसे पांच स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में क्षेप एक; द्विसंयोगी में गुणकार एक, क्षेप तीन; त्रिसंयोगी में गुणकार तीन, क्षेप दो; चतुःसंयोगी में गुणकार दो हैं । अवशेष गुणकार और क्षेप पुनरुक्त जानना । मिलकर गुणकार छह, क्षेप छह, पूर्वोक्त गुण्य एक सौ चार, सर्व भंग छह सौ तीस होते हैं । दोनों को मिलानेपर असंयत में सर्व भंग अट्ठाइस सौ एक होते हैं ।

पुनश्च देशसंयत में औपशमिक का उपशम सम्यक्त्वरूप एक, मिश्र के तेरह, ग्यारह के दो, औदयिक का छह का एक, पारिणामिक का भव्यत्वरूप एक – ऐसे पांच स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप चार; द्विसंयोगी में गुणकार चार, क्षेप पांच; त्रिसंयोगी में गुणकार पांच, क्षेप दो; चतुःसंयोगी में गुणकार दो – मिलकर गुणकार बारह, क्षेप ग्यारह, पूर्वोक्त गुण्य बहत्तर, सर्व भंग आठ सौ पचहत्तर होते हैं । पुनश्च क्षायिक सम्यक्त्व में औपशमिक के स्थान के जगह क्षायिक

सम्यक्त्वरूप क्षायिक का स्थान कहना, अन्य पूर्ववत् । वहां प्रत्येकभंग में क्षेप एक; द्विसंयोगी में गुणकार एक, क्षेप तीन; त्रिसंयोगी में गुणकार तीन, क्षेप दो; चतुःसंयोगी में गुणकार दो – अवशेष गुणकार और क्षेप पुनरुक्त जानना । सर्व मिलकर गुणकार छह, क्षेप छह, पूर्वोक्त गुण्य छत्तीस, सर्व भंग दो सौ बाइस होते हैं । दोनों मिलकर देशसंयत में सर्व भंग एक हजार सत्तानबे होते हैं ।

प्रमत्त में औपशमिक का उपशम सम्यक्त्वरूप एक, क्षायिक का क्षायिक सम्यक्त्वरूप एक; मिश्र के चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह के चार; औदयिक का छह का एक; पारिणामिक का भव्यत्वरूप एक – ऐसे आठ स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप सात; द्विसंयोगी में गुणकार सात, क्षेप चौदह; त्रिसंयोगी में गुणकार चौदह, क्षेप आठ; चतुःसंयोगी में गुणकार आठ – मिलकर गुणकार तीस, क्षेप उनतीस, पूर्वोक्त गुण्य छत्तीस, सर्व भंग ग्यारह सौ नौ हैं ।

अप्रमत्त में प्रमत्तवत् स्थान आठ, गुणकार तीस, क्षेप उनतीस, पूर्वोक्त गुण्य छत्तीस, सर्व भंग ग्यारह सौ नौ हैं ।

पुनश्च क्षपकश्रेणी में अपूर्वकरण में क्षायिक का सम्यक्त्व, चारित्ररूप एक स्थान *(क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र)*; मिश्र के बारह, ग्यारह, दस, नौ के चार स्थान; औदयिक का छह का एक; पारिणामिक का भव्यत्वरूप एक – ऐसे सात स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप छह; द्विसंयोगी में गुणकार छह, क्षेप नौ; त्रिसंयोगी में गुणकार नौ, क्षेप चार; चतुःसंयोगी में गुणकार चार – मिलकर गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस, पूर्वोक्त गुण्य बारह, भंग दो सौ उनसठ होते हैं ।

अनिवृत्तिकरण में वेद सहित भाग में अपूर्वकरणवत् चार भाव के सात स्थान हैं । वहां गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस, पूर्वोक्त गुण्य बारह, भंग दो सौ उनसठ जानना । वेद रहित भाग में भी वैसे ही चार भाव के सात स्थान हैं । विशेष इतना है कि यहां औदयिक का पांच का एक स्थान है । वहां अपूर्वकरणवत् गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस । यहां पूर्वोक्त गुण्य चार, भंग निन्यानबे हैं । पुनश्च क्रोधरहित भाग में वैसे ही वेद रहित भागवत् जानना । वहां गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस, पूर्वोक्त गुण्य तीन, भंग उन्नासी जानना । मान रहित भाग में भी वैसे ही हैं । वहां गुणकार बीस,

क्षेप उन्नीस, पूर्वोक्त गुण्य दो, भंग उनसठ जानना । माया रहित भाग में भी वैसे ही जानना, वहां गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस, पूर्वोक्त गुण्य एक, भंग उनतालीस जानना ।

सूक्ष्मसाम्पराय में भी वैसे ही गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस, गुण्य एक, भंग उनतालीस हैं ।

क्षीणमोह में भी वैसे ही गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस, गुण्य एक, भंग उनतालीस हैं ।

सयोगी में क्षायिक का एक, औदयिक का तीन का एक, पारिणामिक का एक — ऐसे तीन स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप दो; द्विसंयोगी में गुणकार दो, क्षेप एक; त्रिसंयोगी में गुणकार एक — मिलकर गुणकार चार, क्षेप तीन, गुण्य एक, भंग सात जानना ।

अयोगी में क्षायिक का एक, औदयिक का दो का एक, पारिणामिक का एक — ऐसे तीन स्थान हैं । वहां सयोगीवत् गुणकार चार, क्षेप तीन, गुण्य एक, भंग सात जानना ।

पुनश्च सिद्ध में क्षायिक का एक, पारिणामिक का जीवत्वरूप एक — ऐसे दो स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में क्षेप दो; द्विसंयोगी में एक क्षेप — मिलकर तीन भंग हैं ।

पुनश्च उपशमश्रेणी में अपूर्वकरण से उपशांतमोह तक औपशमिकभाव का उपशम सम्यक्त्व-चारित्ररूप एक स्थान; क्षायिक का सम्यक्त्वरूप एक स्थान; मिश्र के बारह, ग्यारह, दस, नौ के चार स्थान; औदयिक का अपूर्वकरण और वेदसहित अनिवृत्तिकरण में छह का और ऊपर उपशांतमोह तक पांच का एक स्थान; पारिणामिक का भव्यत्वरूप एक स्थान — ऐसे आठ-आठ स्थान हैं । वहां प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप सात; द्विसंयोगी में गुणकार सात, क्षेप पंद्रह; त्रिसंयोगी में गुणकार पंद्रह, क्षेप तेरह; चतुःसंयोगी में गुणकार तेरह, क्षेप चार; पंच संयोगी में गुणकार चार — मिलकर गुणकार चालीस, क्षेप उनतालीस हुये ।

वहां अपूर्वकरण में गुण्य बारह, भंग पांच सौ उन्नीस; अनिवृत्तिकरण के वेद सहित भाग में गुण्य बारह, भंग पांच सौ उन्नीस; वेद रहित भाग में गुण्य चार, भंग एक सौ निन्यानबे; क्रोध रहित भाग में गुण्य तीन, भंग एक सौ उनसठ; मान रहित भाग में गुण्य दो, भंग एक सौ उन्नीस; माया रहित भाग में गुण्य एक, भंग उन्नासी; सूक्ष्मसाम्पराय में गुण्य एक, भंग उन्नासी; उपशांतमोह में गुण्य एक, भंग उन्नासी जानना ॥८३४॥

इन पूर्वोक्त गुण्यादिकों को कहते हैं –

दुसु दुसु देसे दोसुवि चउरुत्तरदुसदमसीदिसहिदसदं ।
बावत्तरि छत्तीसा बारमपुव्वे गुणिज्जपमा ॥८३५॥

बारचउतिदुगमेक्कं थूले तो इगि हवे अजोगित्ति ।
पुण बार बार सुण्णं चउसद छत्तीस देसोत्ति ॥८३६॥ जुम्मं

द्वयोर्द्वयोर्देशे द्वयोरपि चतुरुत्तरद्विशतकमशीतिसहितशतं ।
द्वासप्ततिः षट्त्रिंशद् द्वादश अपूर्वे गुण्यप्रमाः ॥८३५॥

द्वादशचतुस्त्रिद्विकैकं स्थूलेऽत एको भवेदयोगीति ।
पुनर्द्वादश द्वादश शून्यं चतुःशतं षट्त्रिंशद्देश इति ॥८३६॥ युग्मं

टीका – औदयिक के गुण्यरूप भंग मिथ्यात्वादि दो में प्रत्येक में चार अधिक दो सौ *(२०४)* हैं । मिश्रादि दो में अस्सी अधिक सौ *(१८०)* हैं । देशसंयत में बहत्तर हैं । प्रमत्तादि दो में छत्तीस हैं । अपूर्वकरण में बारह हैं । अनिवृत्तिकरण के भागों में क्रम से बारह, चार, तीन, दो, एक हैं । उसके ऊपर अयोगी तक एक एक हैं । पुनश्च मिथ्यात्व से देशसंयत तक चक्षुदर्शन रहित वा क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा बारह, बारह, शून्य, एक सौ चार, छत्तीस गुण्यरूप भंग हैं ॥८३५, ८३६॥

वामे दुसु दुसु दुसु तिसु खीणे दोसुवि कमेण गुणगारा ।
णव छब्बारस तीसं बीसं बीसं चउक्कं च ॥८३७॥

वामे द्वयोर्द्वयोर्द्वयोस्त्रिषु क्षीणे द्वयोरपि क्रमेण गुणकाराः ।
नव षट् द्वादश त्रिंशं विंशं विंशं चतुष्कं च ॥८३७॥

टीका – उन गुण्यों को जिनके द्वारा गुणा करते हैं ऐसे गुणकार क्रम से मिथ्यात्व में नौ, सासादनादि दो में छह, असंयतादि दो में बारह, प्रमत्तादि दो में तीस, अपूर्वकरणादि तीन और क्षीणमोह में बीस, सयोगी और अयोगी में चार हैं ॥८३७॥

पुणरवि देसोत्ति गुणो तिदुणभछच्छक्कयं पुणो खेवा ।
पुव्वपदे अड पंचयमेगारमुगुतीसमुगुवीसं ॥८३८॥

पुनरपि देश इति गुणस्त्रिद्विनभः षट्षट्कं पुनः क्षेपाः ।
पूर्वपदे अष्ट पंचकमेकादश एकोनत्रिंशमेकोनविंशं ॥८३८॥

टीका – चक्षुदर्शन रहित वा क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा मिथ्यात्व से देशसंयत तक में गुणकार क्रम से तीन, दो, शून्य, छह, छह जानना । गुण्य को गुणकार से गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उसमें जिनको मिलाया जाता है – ऐसे क्षेप पूर्वोक्त गुणस्थानों में प्रत्येक में – मिथ्यात्व में आठ, सासादनादि दो में पांच, असंयतादि दो में ग्यारह, प्रमत्तादि दो में उनतीस, अपूर्वकरणादि तीन में उन्नीस हैं ॥८३८॥

उगुवीस तियं तत्तो तिदुणभछच्छक्कयं च देसोत्ति ।
चउसुवसमगेसु गुणा तालं रूउणया खेवा ॥८३९॥

एकोनविंशं त्रयस्ततस्त्रिद्विनभः षट्षट्कं च देश इति ।
चतुर्षूपशामकेषु गुणाः चत्वारिंशत् रूपोनाः क्षेपाः ॥८३९॥

टीका – क्षीणकषाय में उन्नीस, सयोगी-अयोगी में तीन हैं । चक्षुदर्शन रहित वा क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा मिथ्यात्व से देशसंयत तक क्रम से तीन, दो, शून्य, छह, छह क्षेप हैं । उपशमश्रेणी के चार गुणस्थानों में गुणकार चालीस, क्षेप उनतालीस हैं ॥८३९॥

मिच्छादिठाणभंगा अट्ठारसया हवंति तेसीदा ।
बारसया पणवण्णा सहस्ससहिया हु पणसीदा ॥८४०॥

मिथ्यादिस्थानभंगा अष्टादशशतं भवंति त्रयशीतिः ।
द्वादशशतं पंचपंचाशत् सहस्रसहिता हि पंचाशीतिः ॥८४०॥

टीका – पूर्वोक्त गुण्य को गुणकार से गुणा करके क्षेप को मिलानेपर उत्तरभावों के स्थानों के भंग मिथ्यात्व में अठारह सौ तिरासी, सासादन में बारह सौ पचपन, मिश्र में एक हजार पचासी होते हैं ॥८४०॥

रूवहियडवीससया सगणउदा दससया णवेणहिया ।
एक्कारसया दोण्हं खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८४१॥

रूपाधिकाष्टविंश शतानि सप्तनवतिर्दशशतानि नवेनाधिकाः ।
एकादशशतानि द्वयोः क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥८४१॥

टीका – असंयत में अट्ठाइस सौ एक, देशसंयत में सत्तानबे अधिक दस सौ *(१०९७)*, प्रमत्तादि दो में नौ अधिक ग्यारह सौ *(११०९)* भंग होते हैं । क्षपकश्रेणीवालों में यथाक्रम कहते हैं ॥८४१॥

पुव्वे पंचणियट्टी सुहुमे खीणे दहाण छव्वीसा ।
तत्तियमेत्ता दसअड छच्चदुचदुचदुय एगूणं ॥८४२॥

अपूर्वे पंचानिवृत्ति सूक्ष्मे क्षीणे दशानां षड्विंशतिः ।
तावन्मात्रा दशाष्टषट्चतुश्चतुश्चतुष्कमेकोनं ॥८४२॥

टीका – अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के पांच भाग, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणमोह इन आठों क्षपकों में क्रम से दसगुणा छब्बीस में एक कम ऐसे दो सौ उनसठ *(२५९)*, पुनश्च उतने ही दो सौ उनसठ, पुनश्च दसगुणा दस में से एक कम ऐसे निन्यानबे *(९९)* , दसगुणा आठ में से एक कम ऐसे उन्नासी *(७९)*, दसगुणा छह में एक कम ऐसे उनसठ *(५९)*, दसगुणा चार में एक कम ऐसे उनतालीस *(३९)*, दसगुणा चार में एक कम उनतालीस *(३९)* और दसगुणा चार में एक कम उनतालीस *(३९)* भंग हैं ॥८४२॥

उवसामगेसु दुगुणं रूवहियं होदि सत्त जोगिम्हि ।
सत्तेव अजोगिम्मि य सिद्धे तिण्णेव भंगा हु ॥८४३॥

उपशामकेषु द्विगुणं रूपाधिकं भवति सप्त योगिनि ।
सप्तैवायोगिनि च सिद्धे त्रय एवं भंगा हि ॥८४३॥

टीका – उपशमक के चारों गुणस्थानों में, क्षपकश्रेणी के चार गुणस्थानों में

जितने भंग कहे उनके दोगुणा से एक अधिक भंग होते हैं । सयोगी में सात, अयोगी में सात, सिद्धों में तीन भंग जानना । इनका कथन पहले कर चुके हैं । इसतरह स्थानभंग का कथन किया ॥८३४॥

आगे पदभंग कहते हैं –

दुविहा पुण पदभंगा जादिगपदसव्वपदभवात्ति हवे ।
जातिपदखइगमिस्से पिंडेव य होदि सगजोगो ॥८४४॥

द्विविधाः पुनः पदभंगा जातिगपदसर्वपदभवा इति भवेत् ।
जातिपदक्षायिकमिश्रे पिंडे एव च भवति स्वकयोगः ॥८४४॥

टीका – पदभंग दो प्रकार के हैं । जातिपदभंग और सर्वपदभंग । जहां एक जाति का ग्रहण किया जाता है, जैसे – मिश्रभाव में ज्ञान के चार भेद होनेपर भी एक ज्ञानजाति का ग्रहण करना । इसतरह जातिग्रहण से जो भंग किये जाते हैं, वे जातिपद भंग जानना । तथा जुदे-जुदे सर्व भावों का ग्रहण करके जो भंग किये जाते हैं, वे सर्वपद भंग जानना । यहां जातिरूप क्षायिकभाव और मिश्रभाव के पिंडरूप जो भाव हैं, उनमें स्वसंयोगी भंग भी पाये जाते हैं । क्षायिक में लब्धि के पांच भेद हैं, इसलिए लब्धि पिंडपदरूप हैं । मिश्र में ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि ये पिंडपदरूप हैं, इनमें से एक भेद होनेपर जहां अन्य भेद पाया जाता है – जैसे दान होनेपर लाभ पाया जाता है – वहां स्वसंयोगी भंग भी पाये जाते हैं ॥८४४॥

अयदुवसमगचउक्के एक्कं दो उवसमस्स जादिपदो ।
खइगपदं तत्थेक्कं खवगे जिणसिद्धगेसु दु पण चदू ॥८४५॥

अयतौपशमिकचतुष्के एकं द्वे उपशमस्य जातिपदं ।
क्षायिकपदं तत्रैकं क्षपके जिनसिद्धकेषु द्वे पंच चत्वारि ॥८४५॥

टीका – औपशमिकभाव के जातिपद असंयतादि चार में तो सम्यक्त्वरूप एक ही है । उपशमश्रेणी के चार गुणस्थानों में सम्यक्त्व और चारित्र – ऐसे दो जातिपद हैं । पुनश्च क्षायिकभाव के जातिपद असंयतादि चार में क्षायिक सम्यक्त्वरूप एक

है । क्षपकश्रेणी के चार गुणस्थानों में सम्यक्त्व और चारित्र ऐसे दो हैं । सयोगी, अयोगी में सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लब्धि ऐसे पांच हैं । सिद्ध में चारित्र बिना चार हैं ॥८४५॥

मिच्छतिये मिस्सपदा तिण्णि य अयदम्मि होंति चत्तारि ।
देसतिये पंचपदा तत्तो खीणोत्ति तिण्णिपदा ॥८४६॥

मिथ्यत्रये मिश्रपदानि त्रीणी चायते भवंति चत्वारि ।
देशत्रये पंचपदानि ततः क्षीण इति त्रिपदानि ॥८४६॥

टीका – मिश्रभाव के जातिपद मिथ्यात्व, सासादन में अज्ञान, दर्शन और लब्धि तथा सम्यग्मिथ्यात्व में ज्ञान, दर्शन, लब्धि – ऐसे तीन हैं । असंयत में ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व ऐसे चार हैं । देशसंयतादि तीन में ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व चार तो ये और देशसंयत में देशसंयम, प्रमत्त-अप्रमत्त में सरागसंयम – ऐसे पांच हैं । वहां ऊपर क्षीणमोह तक ज्ञान, दर्शन, लब्धि – ऐसे तीन हैं ॥८४६॥

मिच्छे अट्ठुदयपदा ते तिसु सत्तेव तो सवेदोत्ति ।
छस्सुहुमोत्ति य पणगं खीणोत्ति जिणेसु चदुतिदुगं ॥८४७॥

मिथ्येऽष्टोदयपदानि तानि त्रिषु सप्तैवातः सवेदे इति ।
षट् सूक्ष्म इति च पंचकं क्षीण इति जिनेषु चतुस्त्रिद्विकं ॥८४७॥

टीका – औदयिकभाव के जातिपद मिथ्यात्व में आठ हैं – गति, कषाय, लिंग *(वेद)*, लेश्या, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व । सासादनादि तीन में मिथ्यात्व बिना सात, ऊपर अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग तक असंयम बिना छह, ऊपर सूक्ष्मसाम्पराय तक वेद बिना पांच, ऊपर क्षीणकषाय तक कषाय बिना चार, सयोगी में अज्ञान बिना तीन, अयोगी में लेश्या बिना दो जानना ॥८४७॥

मिच्छे परिणामपदा दोण्णि य सेसेसु होदि एक्कं तु ।
जातिपदं पडि वोच्छं मिच्छादिसु भंगपिंडं तु ॥८४८॥

मिथ्ये परिणामपदे द्वे च शेषेषु भवति एकं तु ।
जातिपदं प्रति वक्ष्यामि मिथ्यादिषु भंगपिंडं तु ॥८४८॥

टीका – पारिणामिक के जातिपद मिथ्यात्व में भव्य-अभव्यरूप दो, अवशेष गुणस्थानों में और सिद्ध में भव्य और जीवत्वरूप ही एक जानना । पुनश्च जातिपद अपेक्षा गुणस्थानों में भंगों का समुदाय कहते हैं –

जातिपद – दो औपशमिक के, पांच क्षायिक के, सात क्षायोपशमिक के, आठ औदयिक के, तीन पारिणामिक के हैं । वहां यथासंभव औदयिक के जितने जातिपद पाये जाते हैं उतने तो गुण्य जानना । उसके गुणकार और क्षेप कहने के लिये प्रत्येकभंगादि करने में मिश्रादि के तो जितने जातिपद हैं उतने भेद ग्रहण करना और औदयिक के जातिपद का समूहरूप एक ही भेद ग्रहण करना – ऐसा करके प्रत्येकभंग में औदयिक का भेद तो गुणकाररूप जानना, अन्य भावों के भेद क्षेपरूप जानना ।

पुनश्च द्विसंयोगी आदि भंगों में औदयिक के भेद और अन्य भावों के भेद सहित जो भंग हो, वे गुणकाररूप जानना । और औदयिक बिना अन्य भावों के ही संयोग से जो द्विसंयोगी आदि भंग होते हैं, वे क्षेपरूप जानना । पुनश्च क्षायिक और मिश्र के एक जातिपद के भेद में उसीका अन्य भेद जहां पाया जाये, वहां स्वसंयोगी भंग होते हैं, वे क्षेपरूप जानना । इसप्रकार गुण्य को गुणकार से गुणा करके क्षेप को मिलानेपर जितने हो, उतने वहां भंग जानना ।

मिथ्यात्व गुणस्थान में मिश्र के अज्ञान, दर्शन, लब्धि – ये तीन; औदयिक के आठ; पारिणामिक के भव्य-अभव्यरूप दो जातिपद हैं । वहां औदयिक के आठ हैं, वे गुण्य जानना । प्रत्येकभंग में औदयिक का आठ का समूहरूप एक तो गुणकार जानना और तीन मिश्र के और दो पारिणामिक के ये पांच क्षेप जानना । द्विसंयोगी में औदयिक के आठ के समूहरूप एक सहित तीन मिश्र के और दो पारिणामिक के ऐसे पांच तो गुणकार जानना । तीन मिश्र के संयोग सहित दो पारिणामिक के भेदरूप छह द्विसंयोगी क्षेप जानना ।

पुनश्च त्रिसंयोगी में औदयिक का आठ का समूहरूप एक और भव्य पारिणामिक इनके संयोग सहित तीन मिश्र के तथा औदयिक का आठ का समूहरूप एक और अभव्य पारिणामिक इनके संयोग सहित तीन मिश्र के ऐसे छह भंग गुणकाररूप जानना ।

पुनश्च स्वसंयोगी में एक अज्ञान होते अन्य अज्ञान पाया जाता है । जैसे कुमति होते हुये कुश्रुतादि पाये जाते हैं । तथा एक दर्शन होते हुये अन्य दर्शन पाया जाता है, जैसे चक्षुदर्शन होते हुये अन्य दर्शन पाया जाता है । तथा एक लब्धि होते हुये अन्य लब्धि पायी जाती है, जैसे दान होते हुये लाभादि पाये जाते हैं । ऐसे ये तीन भंग क्षेप जानना । मिलकर गुण्य आठ, गुणकार बारह, क्षेप चौदह । वहां गुण्य को गुणकार से गुणा करके क्षेप को मिलानेपर एक सौ दस भंग होते हैं ।

इसीप्रकार सासादन में मिश्रभाव के अज्ञान, दर्शन, लब्धिरूप तीन, औदयिक के सात, पारिणामिक का भव्यरूप एक जातिपद है । वहां गुण्य सात; प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप चार, द्विसंयोगी भंग में गुणकार चार, क्षेप तीन; त्रिसंयोगी में गुणकार तीन, स्वसंयोगी में क्षेप तीन, मिलकर गुण्य सात, गुणकार आठ, क्षेप दस, भंग छासठ हैं ।

सम्यग्मिथ्यात्व में मिश्र के ज्ञान, दर्शन लब्धि ये तीन; औदयिक के सात; पारिणामिक का भव्यरूप एक जातिपद है । वहां गुण्य सात, प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप चार; द्विसंयोगी भंग में गुणकार चार, क्षेप तीन; त्रिसंयोगी भंग में गुणकार तीन; स्वसंयोगी भंग में क्षेप तीन मिलकर गुण्य सात, गुणकार आठ, क्षेप दस और भंग छासठ हैं ।

असंयत में औपशमिक का एक सम्यक्त्व, क्षायिक का एक सम्यक्त्व, मिश्र के तीन *(चार)* – ज्ञान, दर्शन, लब्धि, *(वेदक सम्यक्त्व)* औदयिक के सात; पारिणामिक का एक भव्यरूप जातिपद हैं । वहां गुण्य सात, प्रत्येकभंग में गुणकार एक क्षेप सात; द्विसंयोगी में गुणकार सात, क्षेप बारह; त्रिसंयोगी में गुणकार बारह, क्षेप छह; चतु:संयोगी में गुणकार छह; पंचसंयोगी का अभाव है; क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व और उपशम सम्यक्त्व का संयोग नहीं है । स्वसंयोगी में क्षेप तीन, मिलकर गुण्य सात, गुणकार छब्बीस, क्षेप अट्ठाइस, भंग दो सौ दस हैं ।

देशसंयतादि तीन में औपशमिक का एक सम्यक्त्व, क्षायिक का एक सम्यक्त्व; मिश्र के चार *(पांच) (देखिये गाथा ८४६)* – ज्ञान, दर्शन, लब्धि, वेदक सम्यक्त्व, चारित्र; औदयिक के छह, पारिणामिक का एक भव्यत्व – ऐसे जातिपद हैं । वहां गुण्य छह,

प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप आठ; द्विसंयोगी में गुणकार आठ, क्षेप पंद्रह; त्रिसंयोगी में गुणकार पंद्रह, क्षेप आठ; चतु:संयोगी में गुणकार आठ; स्वसंयोगी में क्षेप तीन, मिलकर गुण्य छह, गुणकार बत्तीस, क्षेप चौंतीस, भंग दो सौ छब्बीस हैं ।

उपशमश्रेणी में अपूर्वकरण और वेद सहित अनिवृत्तिकरण में औपशमिक के दो — सम्यक्त्व और चारित्र; क्षायिक का एक सम्यक्त्व; मिश्र के तीन — ज्ञान, दर्शन, लब्धि; औदयिक के छह और पारिणामिक का एक भव्यत्व — ऐसे जातिपद हैं । वहां गुण्य छह, प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप सात; द्विसंयोगी में गुणकार सात, क्षेप सोलह; त्रिसंयोगी में गुणकार सोलह, क्षेप तेरह; चतु:संयोगी में गुणकार तेरह, क्षेप तीन; पंचसंयोगी में गुणकार तीन — यहां क्षायिक सम्यक्त्व के होनेपर उपशम चारित्र पाया जाता है; इसलिए पंचसंयोगी भी है । स्वसंयोगी में क्षेप तीन, मिलकर गुण्य छह, गुणकार चालीस, क्षेप बयालीस, भंग दो सौ बयासी हैं ।

पुनश्च वेद रहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में औपशमिक के दो — उपशम सम्यक्त्व और चारित्र; क्षायिक का एक सम्यक्त्व; मिश्र के तीन — ज्ञान, दर्शन, लब्धि; औदयिक के पांच और पारिणामिक का एक भव्यत्व — ऐसे जातिपद हैं । यहां गुण्य पांच, प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप सात; द्विसंयोगी में गुणकार सात, क्षेप सोलह; त्रिसंयोगी में गुणकार सोलह, क्षेप तेरह; चतु:संयोगी में गुणकार तेरह, क्षेप तीन; पंचसंयोगी में गुणकार तीन; स्वसंयोगी में क्षेप तीन, मिलकर गुण्य पांच, गुणकार चालीस, क्षेप बयालीस, भंग दो सौ बयालीस हैं । यहां कषाय का जातिपद एक ग्रहण किया, इसलिए कषाय रहित भागों के विशेष नहीं किये ।

उपशांतमोह में भी सूक्ष्मसाम्परायवत् जातिपद हैं । विशेष इतना — औदयिक के चार ही हैं । वहां गुण्य चार, गुणकार और क्षेप पूर्वोक्त प्रकार चालीस और बयालीस हैं, भंग दो सौ दो हैं ।

पुनश्च क्षपकश्रेणी में अपूर्वकरण और वेद सहित अनिवृत्तिकरण में क्षायिक के दो — सम्यक्त्व और चारित्र; मिश्र के तीन — ज्ञान, दर्शन, लब्धि; औदयिक के छह और पारिणामिक का एक भव्यत्व — ऐसे जातिपद हैं । वहां गुण्य छह, प्रत्येकभंग में गुणकार एक, क्षेप छह; द्विसंयोगी में गुणकार छह, क्षेप ग्यारह; त्रिसंयोगी में

गुणकार ग्यारह, क्षेप छह; चतु:संयोगी में गुणकार छह, स्वसंयोगी में क्षेप तीन — मिलकर गुण्य छह, गुणकार चौबीस, क्षेप छब्बीस, भंग एक सौ सत्तर हैं ।

पुनश्च वेद रहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में भी अपूर्वकरणवत् जातिपद हैं । विशेष इतना — यहां औदयिक के पांच ही हैं । इसलिए यहां गुण्य पांच । गुणकार चौबीस, क्षेप छब्बीस, भंग एक सौ छियालीस हैं ।

क्षीणमोह में भी वैसे ही जातिपद हैं । विशेष इतना — यहां औदयिक के चार ही हैं; इसलिए गुण्य चार, गुणकार चौबीस, क्षेप छब्बीस, भंग एक सौ बाइस हैं ।

सयोगी में क्षायिक के पांच — ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, लब्धि; औदयिक के तीन, पारिणामिक का एक भव्यत्व — ऐसे जातिपद हैं । वहां गुण्य तीन; प्रत्येक भंग में गुणकार एक, क्षेप छह; द्विसंयोगी में गुणकार छह, क्षेप पांच; त्रिसंयोगी में गुणकार पांच, स्वसंयोगी में किसी एक क्षायिक लब्धि में अन्य क्षायिक लब्धि पायी जाती है, इसलिए क्षेप एक — मिलकर गुण्य तीन, गुणकार बारह, क्षेप बारह, भंग अड़तालीस हैं ।

अयोगी में भी सयोगीवत् जातिपद हैं । विशेष इतना — यहां औदयिक के दो ही हैं । इसलिए गुण्य दो, गुणकार बारह, क्षेप बारह, भंग छत्तीस हैं ।

सिद्ध में क्षायिक के चार — सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्यरूपलब्धि और पारिणामिक का एक जीवत्व जातिपद हैं । वहां प्रत्येकभंग में क्षेप पांच; द्विसंयोगी में क्षेप चार, मिलकर नौ भंग हुये ॥८४८॥

अब इन पूर्वोक्त गुण्यादि की संख्या कहते हैं —

अट्ठ गुणिज्जा वामे तिसु सग छच्चउसु छक्क पणगं च ।
थूले सुहुमे पणगं दुसु चउतियदुगमदो सुण्णं ॥८४९॥

अष्ट गुण्यानि वामे त्रिषु सप्त षट् चतुर्षु षट्कं पंचकं च ।
स्थूले सूक्ष्मे पंचकं द्वयोश्चतुस्त्रिकद्विकमतः शून्यं ॥८४९॥

टीका – जिनको गुणा करते हैं, वे गुण्य हैं । वे मिथ्यात्व में आठ, सासादनादि तीन में सात, देशसंयतादि तीन और क्षपक-उपशमक अपूर्वकरण में छह,

अनिवृत्तिकरण में छह और पांच, सूक्ष्मसाम्पराय में पांच, उपशांतमोह और क्षीणमोह में चार, सयोगी में तीन, अयोगी में दो, सिद्ध में शून्य जानना ॥८४९॥

बारट्ठछवीसं तिसु तिसु बत्तीसयं च चउवीसं ।
तो तालं चउवीसं गुणगारा बार बार णभं ॥८५०॥

द्वादशाष्टाष्ट षड्विंशं त्रिषु त्रिषु द्वात्रिंशत् च चतुर्विंशं ।
अतश्चत्वारिंशच्चतुर्विंशं गुणकारा द्वादश द्वादश नभः ॥८५०॥

टीका – जिनके द्वारा गुणा करते हैं वे गुणकार हैं । वे मिथ्यात्व में बारह, सासादनादि दो में आठ-आठ, असंयत में छब्बीस, देशसंयतादि तीन में बत्तीस, क्षपक -अपूर्वकरणादि तीन में चौबीस, उपशमक-अपूर्वकरणादि चार में चालीस, क्षीणमोह में चौबीस, सयोगी, अयोगी में बारह, सिद्ध में शून्य जानना ॥८५०॥

वामे चउदस दुसु दस अडवीसं तिसु हवंति चोत्तीसं ।
तिसु छव्वीस दुदालं खेवा छव्वीस बार बार णवं ॥८५१॥

वामे चतुर्दश द्वयोः दश अष्टाविंशं त्रिषु भवंति चतुस्त्रिंशत् ।
त्रिषु षड्विंशं द्विचत्वारिंशत्क्षेपाः षड्विंशं द्वादश द्वादश नव ॥८५१॥

टीका – जिनको मिलाया जाता है, वे क्षेप हैं । वे मिथ्यात्व में चौदह, सासादन-मिश्र में दस, असंयत में अट्ठाइस, देशसंयतादि तीन में चौंतीस, क्षपक-अपूर्वकरणादि तीन में छब्बीस, उपशमक-अपूर्वकरणादि चार में बयालीस, क्षीणमोह में छब्बीस, सयोगी, अयोगी में बारह-बारह, सिद्ध में नौ जानना ॥८५१॥

एक्कारं दसगुणियं दुसु छावट्ठी दसाहियं बिसयं ।
तिसु छव्वीसं बिसयं वेदुवसामोत्तिदुसय बासीदी ॥८५२॥

एकादश दशगुणितं द्वयोः षट्षष्टिः दशाधिकं द्विशतं ।
त्रिषु षड्विंशं द्विशतं वेदोपशम इति द्विशतं द्व्यशीतिः ॥८५२॥

टीका – गुण्य को गुणकार से गुणा करके क्षेप को मिलानेपर जो भंग होते

हैं, वे मिथ्यात्व में एक सौ दस; सासादन-मिश्र में छासठ; असंयत में दस अधिक दो सौ *(२१०)*; देशसंयतादि तीन में छब्बीस अधिक दो सौ *(२२६)* उपशमक-अपूर्वकरण, सवेद अनिवृत्तिकरण में दो सौ बयासी हैं ।

बादालं बेण्णिसया तत्तो सुहुमोत्ति दुसय दोसहियं ।
उवसंतम्मि य भंगा खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८५३॥

द्वाचत्वारिंशद्द्विशतं ततः सूक्ष्म इति द्विशतं द्विसहितं ।
उपशांते च भंगाः क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥८५३॥

टीका – उससे ऊपर उपशमक-वेद रहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में दो सौ बयालीस, उपशांतमोह में दो सौ दो भंग हैं ॥८५३॥

अब क्षपक में यथाक्रम कहते हैं –

सत्तरसं दसगुणिदं वेदित्ति सयाहियं तु छादालं ।
सुहुमोत्ति खीणमोहे बावीससयं हवे भंगा ॥८५४॥

सप्तदश दशगुणितं वेद इति शताधिकं तु षट्चत्वारिंशत् ।
सूक्ष्म इति क्षीणमोहे द्वाविंशशतं भवेयुर्भंगाः ॥८५४॥

टीका – अपूर्वकरण और सवेद अनिवृत्तिकरण में दसगुणा सत्रह उनके एक सौ सत्तर; वेद रहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय में एक सौ छियालीस, क्षीणमोह में एक सौ बाइस भंग हैं ॥८५४॥

अडदालं छत्तीसं जिणेसु सिद्धेसु होंति णव भंगा ।
एत्तो सव्वपदं पडि मिच्छादिसु सुणह वोच्छामि ॥८५५॥

अष्टचत्वारिंशत् षट्त्रिंशत् जिनेषु सिद्धेषु भवंति नव भंगाः ।
एतस्मात्सर्वपदं प्रति मिथ्यादिषु श्रृणुत वक्ष्यामि ॥८५५॥

टीका – सयोगी में अड़तालीस, अयोगी में छत्तीस, सिद्ध में नौ भंग हैं ॥८५५॥

यहां से आगे सर्वपदों के आश्रय से मिथ्यात्वादि में भंग कहता हूँ, तुम सुनो –

भव्विदराणण्णदरं गदीण लिंगाण कोहपहुदीणं ।
इगिसमये लेस्साणं सम्मत्ताणं च णियमेण ॥८५६॥

भव्येतरयोरन्यतरत् गतीनां लिंगानां क्रोधप्रभृतीनां ।
एकसमये लेश्यानां सम्यक्त्वानां च नियमेन ॥८५६॥

टीका – वे सर्वपद दो प्रकार के हैं – पिंडपद और प्रत्येकपद । वहां जिस भावसमूह में से एक काल में एक जीव के एक-एक ही पाया जाये, सर्व नहीं पाये जाते, उस भावसमूह को पिंडपद कहते हैं । जैसे, चारों गतियों में से एक जीव के, एक काल में एक में एक गति ही पायी जाती हैं, चारों नहीं पायी जाती ।

पुनश्च जो भाव एक जीव के, एक काल में युगपत् भी पाये जाते हैं, ऐसे भावों को प्रत्येकपद कहते हैं । वहां भव्य-अभव्य, गति, लिंग *(वेद)*, क्रोधादि चार, लेश्या और सम्यक्त्व – ये पिंडपद हैं । इनमें से एक जीव के, एक काल में, गुणस्थानों में यथायोग्य एक-एक ही नियम से युगपत् पाया जाता है ॥८५६॥

पत्तेयपदा मिच्छे पण्णरसा पंच चेव उवजोगा ।
दाणादी ओदयिये चत्तारि य जीवभावो य ॥८५७॥

प्रत्येकपदानि मिथ्ये पंचदश पंच चैव उपयोगाः ।
दानादय औदयिके चत्वारि च जीवभावश्च ॥८५७॥

टीका – युगपत् पाये जानेवाले प्रत्येकपद मिथ्यात्व में पंद्रह ही हैं । वे कौनसे हैं ? तीन अज्ञान, दो दर्शन – ये पांच उपयोग और दानादि पांच क्षयोपशमलब्धि तथा औदयिक में मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व – ये चार और जीवत्व पारिणामिक – ऐसे पंद्रह जानना ॥८५७॥

पिंडपदा पंचेव य भव्विदरदुगं गदी य लिंगं च ।
कोहादी लेस्सावि य इदि वीसपदा हु उड्ढेण ॥८५८॥

पिंडपदानि पंचैव च भव्येतरद्विकं गतिश्च लिंगं च ।
क्रोधादयः लेश्या अपि च इति विंशपदानि हि वृद्धया ॥८५८॥

टीका – उन पंद्रह प्रत्येकपदों के ऊपर पिंडपद मिथ्यात्व में पांच हैं । वे कौनसे हैं ? भव्य-अभव्य युगल, गति, लिंग, क्रोधादि और लेश्या ऐसे पांच हैं, मिलकर बीस पद हुये । वे ऊर्ध्वरूप ऊपर-ऊपर स्थापन करना ।

पत्तेयाणं उवरिं भव्विदरदुगस्स होदि गदिलिंगे ।
कोहादिलेस्ससम्मत्ताणं रयणा तिरिच्छेण ॥८५९॥

प्रत्येकानामुपरि भव्येतरद्विकस्य भवति गतिलिंगयोः ।
क्रोधादिलेश्यासम्यक्त्वानां रचना तिरश्चा ॥८५९॥

टीका – प्रत्येकपदों के ऊपर स्थापित भव्य-अभव्य, गति, लिंग, क्रोधादि, लेश्या और सम्यक्त्व इनकी रचना तिर्यक्रूप बराबर करना ।

भावार्थ – नीचे तो प्रत्येकपद एक के ऊपर एक लिखना । उनके ऊपर मूलपिंडपद ऊपर-ऊपर लिखना और वहां अपने-अपने पिंडपद के भेद *(एक पंक्ति में)* आगे बराबर लिखना । यह रचना आगे लिखेंगे *(संदृष्टि अधिकार में)* वहां देख लेना । *(वाचकों की सुविधा के लिये मैंने यहां लिख दी है)* ।

मिथ्यात्व में रचना	भेद
कृ. नी. क. पी. प. शु.	६५ = | ३२६४
क्रो. मा. मा. लो.	६५ = | २८८
पु. स्त्री. न.	६५ = | ३६
न. ति. म. दे.	६५ = | ८
भ. अ.	६५ =
जीवत्व	१६३८४
असिद्धत्व	८१९२
असंयम	४०९६
अज्ञान	२०४८
मिथ्यात्व	१०२४
वीर्य	५१२
उप	२५६
भोग	१२८
लाभ	६४
दान	३२
अचक्षु	१६
चक्षु	८
विभंग	८
कुश्रुत	२
कुमति	१

एक्कादी दुगुणकमा एक्केक्कं रुधिऊण हेट्ठम्मि ।
पदसंजोगे भंगा गच्छं पडि होंति उवरुवरिं ॥८६०॥

एकादि द्विगुणक्रमादेकैकं रुद्धवा अधस्तने ।
पदसंयोगे भंगा गच्छं प्रति भवंत्युपर्युपरि ॥८६०॥

टीका – एक से लेकर दोगुणा-दोगुणा अनुक्रम से एक-एक पद के अवलंबन से नीचे के-नीचे के पदों के संयोग से गच्छ अर्थात् जितनेवां पद हो, उसके प्रमाण के प्रति ऊपर- ऊपर भंग होते हैं । वही कहते हैं – मिथ्यात्व में प्रत्येकपद सबसे नीचे कुमति स्थापित किया । उसमें प्रत्येकभंग एक ही है । उसके ऊपर कुश्रुत – उसमें प्रत्येकभंग एक और इसके नीचे के कुमति के संयोग से द्विसंयोगी भंग एक – ऐसे दो भंग हुये। ✗ उसके ऊपर विभंग – उसमें प्रत्येकभंग एक और इसके नीचे के कुमति और कुश्रुत के संयोग से द्विसंयोगी भंग दो तथा तीनों के संयोग से त्रिसंयोगी भंग एक – ऐसे चार भंग हुये । उसके ऊपर चक्षुदर्शन – उसमें प्रत्येकभंग एक, इसके नीचे के विभंग, कुश्रुत, कुमति के चक्षुदर्शन के संयोग से उत्पन्न द्विसंयोगी भंग तीन; तथा चक्षु-कुमति-कुश्रुत वा चक्षु-कुमति-विभंग वा चक्षु-कुश्रुत-विभंग के संयोग से त्रिसंयोगी भंग तीन; तथा चारों के संयोग से चतु:संयोगी भंग एक – ऐसे आठ भंग हुये ।

उसके ऊपर अचक्षुदर्शन – उसमें प्रत्येकभंग एक, इसके नीचे के चक्षुदर्शन, विभंग, कुश्रुत, कुमति के संयोग क्रम से अचक्षुदर्शन से करनेपर द्विसंयोगी भंग चार होते हैं । पुनश्च अचक्षु-चक्षु-कुमति वा अचक्षु-चक्षु-कुश्रुत वा अचक्षु-चक्षु-विभंग वा अचक्षु-कुमति-कुश्रुत वा अचक्षु-कुमति-विभंग वा अचक्षु-कुश्रुत-विभंग के संयोग से त्रिसंयोगी भंग छह हैं । पुनश्च अचक्षु-चक्षु-कुमति-कुश्रुत वा अचक्षु-चक्षु-कुमति-विभंग वा अचक्षु-चक्षु-कुश्रुत-विभंग वा चक्षु-कुमति-कुश्रुत-विभंग के संयोग से चतु:संयोगी भंग चार हैं । पुनश्च अचक्षु-चक्षु-विभंग-कुश्रुत-कुमति इन पांचों के संयोग से पंचसंयोगी भंग एक- सब मिलकर सोलह हुये ।

इसीप्रकार ऊपर दानलब्धि में प्रत्येकभंग एक, इसके नीचे के अचक्षु आदि के संयोग से द्विसंयोगी भंग पांच, त्रिसंयोगी दस, चतु:संयोगी दस, पंचसंयोगी पांच, छहसंयोगी एक – मिलकर बत्तीस भंग हुये ।

ऐसे ही ऊपर-ऊपर एक-एक पद प्रति दोगुणे-दोगुणे भंग होते हैं, उनमें प्रत्येकभंग तो एक, द्विसंयोगी आदि भंग नीचे के भावों के संयोग के बदलने से जितने-जितने हो, उतने-उतने जानना । इसतरह लाभलब्धि में चौंसठ, भोग में एक सौ अट्ठाइस, उपभोग में दो सौ छप्पन, वीर्य में पांच सौ बारह, मिथ्यात्व में एक हजार चौबीस, अज्ञान में दो हजार अड़तालीस, असंयम में चार हजार छानबे, असिद्धत्व में इक्यासी सौ बानबे, जीवत्व में सोलह हजार तीन सौ चौरासी भंग होते हैं ।

वहां पंद्रहवें जीवत्व पद में इतने भंग कैसे होते हैं, वह कहते हैं –

प्रत्येकभंग तो एक, द्विसंयोगी और चौदहसंयोगी चौदह-चौदह हैं । त्रिसंयोगी और तेरहसंयोगी भंग दो कम गच्छप्रमाण का एक बार संकलनमात्र है – इसलिए इक्यानबे-इक्यानबे हैं । चतु:संयोगी और बारहसंयोगी भंग तीन कम गच्छ का दो बार संकलनमात्र हैं – वे तीन सौ चौंसठ-तीन सौ चौंसठ हैं । पंचसंयोगी और ग्यारहसंयोगी भंग चार कम गच्छ का तीन बार संकलनमात्र हैं । वे एक हजार एक-एक हजार एक भंग हैं । छहसंयोगी और दशसंयोगी भंग पांच कम गच्छ का चार बार संकलनमात्र हैं – वे दो हजार दो-दो हजार दो भंग हैं । सातसंयोगी और नौसंयोगी भंग छह कम गच्छ का पांच बार संकलनमात्र हैं । वे तीन हजार तीन-तीन हजार तीन भंग हैं । आठसंयोगी भंग सात कम गच्छ का छह बार संकलनमात्र हैं, वे चौंतीस सौ बत्तीस भंग हैं ।

ऐसे सर्व मिलकर पंद्रहवें जीवत्वपद में सोलह हजार तीन सौ चौरासी भंग जानना । वह पण्णट्ठी का चौथा भाग है, क्योंकि पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस रूप प्रमाण की पण्णट्ठी ऐसी संज्ञा है ।

यहां एक बार, दो बार आदि संकलन का विधान और भंग लाने का विधान जैसे जीवकाण्ड के ज्ञानमार्गणा अधिकार में पर्यायसमास श्रुतज्ञान का वर्णन करते समय, 'प्रत्येकभंगमेगं' इत्यादि सूत्र द्वारा कहा था, वैसे यहां भी जानना । यहां जीवत्वपद पंद्रहवां है, इसलिए गच्छ का प्रमाण पंद्रह जानना । वहां दो कम गच्छ का एक बार संकलन करने के लिये पूर्वोक्त सूत्र के अनुसार तेरह, चौदह को परस्पर गुणा करके उसको दो, एक को परस्पर गुणा करके उसका भाग देनेपर इक्यानबे होते हैं ।

पुनश्च तीन कम गच्छ का दो बार संकलन करने के लिये बारह, तेरह, चौदह को

परस्पर में गुणा करके उसको तीन, दो, एक को परस्पर में गुणा करके उसका भाग देनेपर तीन सौ चौंसठ होते हैं । पुनश्च चार कम गच्छ का तीन बार संकलन करने के लिये ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह को परस्पर में गुणा करके उसको चार, तीन, दो, एक को परस्पर में गुणा करके उसका भाग देनेपर एक हजार एक होते हैं ।

पुनश्च पांच कम गच्छ का चार बार संकलन करने के लिये दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह को परस्पर में गुणा करके उसको पांच, चार, तीन, दो, एक को परस्पर में गुणा करके उसका भाग देनेपर दो हजार दो होते हैं ।

पुनश्च छह कम गच्छ का पांच बार संकलन करने के लिये नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह को परस्पर में गुणा करके उसको छह, पांच, चार, तीन, दो, एक को परस्पर में गुणा करके उसका भाग देनेपर तीन हजार तीन होते हैं । पुनश्च सात कम गच्छ का छह बार संकलन लाने के लिये आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह को परस्पर में गुणा करके उसको सात, छह ,पांच, चार, तीन, दो, एक को परस्पर में गुणा करके उसका भाग देनेपर चौंतीस सौ बत्तीस होते हैं । ऐसा विधान जानना ॥८६०॥

आगे भंगों को मिलाने के लिये *(जोड़ देने के लिये)* संकलनसूत्र कहते हैं –

इट्ठपदे रूऊणे दुगसंवग्गम्मि होदि इट्ठधणं ।
असरित्थाणंतधणं दुगुणेगूणे सगीयसव्वधणं ॥८६१॥

इष्टपदे रूपोने द्विकसंवर्गे भवतीष्टधनं ।
असदृशानामंतधनं द्विगुणे एकोने स्वकीयसर्वधनं ॥८६१॥

टीका – विवक्षित जितनेवां पद हो उसमें से एक कम करके जितने हो, उतने दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर विवक्षित पद में भंगों के प्रमाणरूप इष्टधन होता है । जैसे जीवत्वपद पंद्रहवां है, उसमें से एक कम करनेपर चौदह हुये, इसलिए चौदह जगह दो लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर सोलह हजार तीन सौ चौरासी हुये – इतने ही जीवत्वपद में भंग हैं । पुनश्च इस इष्टधन को दोगुणा करके उसमें से एक घटानेपर जो प्रमाण होता हो, उतना प्रथम पद से लेकर विवक्षित पद तक सर्व पदों के भंगों के जोड़रूप सर्वधन होता है ।

जैसे, विवक्षित जीवत्वपद पंद्रहवां – उसका इष्टधन पण्णट्ठी का चौथा भाग, उसको दोगुणा करके उसमें से एक कम करनेपर प्रथम पद से पंद्रहवें पद तक के सर्वपदों के भंगों का जोड़रूप प्रमाण होता है । पुनश्च जो जीवत्वपद में इष्टधन कहा उसको दोगुणा करनेपर आधे पण्णट्ठीप्रमाण भव्यभाव के भंग होते हैं और इतने ही अभव्यभाव के भंग होते हैं । मिलकर दोनों के पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं । उनको दोगुणा करनेपर एक गति के भंग होते हैं, इसलिए नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवगति के इतने इतने भंग जानना । चारों गति के भंग जोड़नेपर पण्णट्ठी से आठगुणा हुये । एक गति के पण्णट्ठी से दोगुणा भंग कहे, उनको दोगुणा करनेपर एक लिंग के भंग होते हैं, उनको नरकगति में एक लिंग, तिर्यंच में तीन लिंग, मनुष्य में तीन लिंग, देव में दो लिंग – मिलकर नौ हुये उनसे गुणा करनेपर पण्णट्ठी से छत्तीसगुणा भंग होते हैं ।

पुनश्च एक लिंग के पण्णट्ठी से चौगुणे भंग, उनको दोगुणे करनेपर एक कषाय के भंग होते हैं, उनको नरकगति में एक लिंग सहित चार कषाय वहां चार से गुणा करना; तिर्यंच में तीन लिंग सहित चार कषाय वहां बारह से गुणा करना; मनुष्य में तीन लिंग सहित चार कषाय वहां बारह से गुणा करना । देव में दो लिंग सहित चार कषाय वहां आठ से गुणा करना – सब मिलकर छत्तीस द्वारा पण्णट्ठी से आठगुणा भंगों को गुणा करनेपर पण्णट्ठी से दो सौ अट्ठासी गुणा भंग हुये ।

एक कषाय के पण्णट्ठी से आठगुणा भंग, उनको दोगुणा करनेपर एक लेश्या के भंग होते हैं, उनको नरक में एक लिंग, चार कषाय सहित तीन लेश्या – वहां बारह से गुणा करके, तिर्यंच में तीन लिंग, चार कषाय सहित छह लेश्या – वहां बहत्तर से गुणा करके, मनुष्य में तीन लिंग, चार कषाय सहित छह लेश्या – वहां बहत्तर से गुणा करके, देव में दो लिंग चार कषाय सहित छह लेश्या वहां अड़तालीस से गुणा करके भंग होते हैं – मिलकर दो सौ चार से पण्णट्ठी से सोलहगुणा भंगों को गुणा करनेपर पण्णट्ठी से बत्तीस सौ चौंसठ गुणा भंग होते हैं । सर्व मिलकर पिंडपदों के भंग १ | ८ | ३६ | २८८ | ३२६४ *(कुल)* पण्णट्ठी से पैंतीस सौ सत्तानबे गुणा होते हैं । इनमें नीचे के प्रत्येकपदों के भंग एक कम पण्णट्ठी से आधे कहे थे उनको मिलानेपर मिथ्यादृष्टी में सर्वपद भंग पण्णट्ठी को सात हजार एक सौ पंचानबे के आधे प्रमाण से गुणा करके उसमें से एक घटानेपर जो प्रमाण हो, उतने भंग होते हैं ।

मिथ्यात्व में प्रत्येकपद — पिंडपद की रचना ।

पण्णट्ठी की संदृष्टी ६५

नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	कुल भंग
लिं. १, क. ४, ले. ३ १२ × ६५ = | १६ (६५ = | ११२)	लिं. ३, क. ४, ले. ६ ७२ × ६५ = | १६ (६५ = | ११५२)	लिं. ३, क. ४, ले. ६ ७२ × ६५ = | १६ (६५ = | ११५२)	लिं. २, क. ४, ले. ६ ४८ × ६५ = | १६ (६५ = | ७६८)	६५ = | ३२६४
लिं. १, क. ४ ४ × ६५ = | ८ (६५ = | ३२)	लिं. ३, क. ४ १२ × ६५ = | ८ (६५ = | ९६)	लिं. ३, क. ४ १२ × ६५ = | ८ (६५ = | ९६)	लिं. २, क. ४ ८ × ६५ = | ८ (६५ = | ६४)	६५ = | २८८
लिं. १ ६५ = | ४ (६५ = | ४)	लिं. ३ ३ × ६५ = | ४ (६५ = | १२)	लिं. ३ ३ × ६५ = | ४ (६५ = | १२)	लिं. २ २ × ६५ = | ४ (६५ = | ८)	६५ = | ३६
नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्यगति	देवगति	कुल भंग
६५ = | २	६५ = | २	६५ = | २	६५ = | २	६५ = | ८

भव्य	अभव्य	कुल भंग
६५ = | १ २	६५ = | १ २	६५ =

(पिंडपदों के कुलभंग ६५ = \| ३५९७)

(उसमें प्रत्येक पदों के कुल भंग (६५ = \| १) — १ मिलाना वे निम्नप्रकार हैं ।)
२

जीवत्व	असिद्धत्व	असं.	अज्ञा.	मि.	वीर्य	उ	भो	ला	दा	अ	च	वि	कुश्रु	कुम
१६३८४	८१९२	४०९६	२०४८	१०२४	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६	८	४	२	१

(पिंडपद + प्रत्येकपद कुल भंग (३५९७ $\frac{१}{२}$ — १) पण्णट्ठी अर्थात् ($\frac{७१९५}{२}$ — १) पण्णट्ठी, इनकी ऊर्ध्व और तिर्यक् लिखने की रचना दिखाते हैं —

कुमति आदि प्रत्येकपद नीचे लिखना, उनके ऊपर भव्य, अभव्य बराबर *(एक पंक्ति में)* लिखना । उनके ऊपर चार गति बराबर लिखना, उनके ऊपर यथासंभव लिंग बराबर लिखना । उनके ऊपर चार-चार कषाय बराबर लिखना । उनके ऊपर

यथासंभव लेश्या बराबर लिखना । ऐसी इनकी रचना करना ।

पुनश्च जैसे मिथ्यात्व में भंग और रचना का विधान कहा वैसे ही सासादनादि में यथासंभव भंग और रचना का विधान जानना । वहां सासादन में मिथ्यात्व प्रत्येकपद का तो अभाव है तथा भव्य, अभव्य पिंडपद कहा था, यहां अभव्यत्व का अभाव है; इसलिए प्रतिपक्षी के अभाव के कारण भव्यत्व को भी प्रत्येकपद कहेंगे । ऐसे प्रत्येकपद पंद्रह और पिंडपद चार हैं । वहां पूर्वोक्त प्रकार कुमति १, कुश्रुत २, विभंग ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, दान ३२, लाभ ६४, भोग १२८, उपभोग २५६, वीर्य ५१२, अज्ञान १०२४, असंयम २०४८, असिद्धत्व ४०९६, जीवत्व ८१९२, भव्यत्व १६३८४ इनके दोगुणे-दोगुणे भंग जानना ।

वहां भव्य के पण्णट्ठी के चौथे भागप्रमाण भंग कहे उनको दोगुणे-दोगुणे करनेपर पण्णट्ठी के आधे एक-एक गति के भंग होते हैं । उनको चौगुणे करनेपर चार गतियों के भंग मिलकर पण्णट्ठी से दोगुणे होते हैं । पुनश्च एक गति के भंग दोगुणे करनेपर पण्णट्ठीप्रमाण एक लिंग के भंग होते हैं । उनको नरक में एक, तिर्यंच में तीन, मनुष्य में तीन, देव में दो लिंग – मिलकर नौ से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से नौगुणा भंग हुये । पुनश्च एक लिंग के भंगों से दोगुणे एक-एक कषाय के भंग पण्णट्ठी से दोगुणा होते हैं । उनको नरक में एक वेद सहित चार कषाय, तिर्यंच में तीन वेद सहित चार कषाय, मनुष्य में तीन वेद सहित चार कषाय, देव में दो वेद सहित चार कषाय *(कुल ३६)* से गुणा करनेपर मिलकर दोगुणा पण्णट्ठी से छत्तीसगुणे भंग होते हैं ।

एक कषाय के भंगों से दोगुणा एक लेश्या के पण्णट्ठी से चौगुणे भंग होते हैं, उनको नरक में एक लिंग, चार कषाय सहित तीन लेश्या; तिर्यंच में तीन वेद, चार कषाय सहित छह लेश्या; मनुष्य में तीन वेद, चार कषाय सहित छह लेश्या; देव में दो वेद, चार कषाय सहित छह लेश्या से *(१२ + ७२ + ७२ + ४८ = २०४)* गुणा करनेपर – मिलकर पण्णट्ठी को चौगुणा करके दो सौ चार गुणे करें इतने अर्थात् पण्णट्ठी से आठ सौ सोलह गुणे भंग होते हैं । इसतरह प्रत्येकपद, पिंडपद के मिलकर सासादन में पण्णट्ठी को सत्रह सौ निन्यानबे के आधे से गुना करके उसमें से एक कम इतने सर्वपद भंग हुये।

[***विशेषार्थ*** : *भव्यत्व तक प्रत्येकपद १५, उनके कुल भंग* $\frac{प}{२}-१$

पिंडपदों के कुल भंग — ४ गति के २ प
वेदों के ९ प
(प = पण्णट्ठी) कषाय के ७२ प } *कुल भंग* $\frac{१७९९प}{२}-१$
लेश्या के ८१६ प

प्रत्येक पदों के भंग $\frac{प}{२}-१$]

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में प्रत्येकपद - मिश्ररूप मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, अवधिदर्शन ३२, दान ६४, लाभ १२८, भोग २५६, उपभोग ५१२, वीर्य १०२४, अज्ञान २०४८, असंयम ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, जीवत्व १६३८४, भव्यत्व ३२७६८ हैं — इनमें दोगुणे-दोगुणे भंग जानना । *(कुल भंग प - १)* । पिंडपद गति, लिंग, कषाय, लेश्या हैं ।

वहां भव्यत्व के पण्णट्ठी के आधे भंग, उनको दोगुणे करनेपर (पण्णट्ठीप्रमाण) एक गति के भंग होते हैं । नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चारों गतियों के मिलाकर पण्णट्ठी से चौगुणे भंग होते हैं *(४ प)* । एक गति के भंगों से एक लिंग के भंग दोगुणे अर्थात् पण्णट्ठी से दोगुणे होते हैं । उनको नरक में एक, तिर्यंच में तीन, मनुष्य में तीन, देव में दो लिंगों से *(९ से)* गुणा करके मिलानेपर पण्णट्ठी को दोगुणा करके नौगुणे करें, इतने भंग होते हैं *(१८ प)* ।

एक लिंग के भंगों से दोगुणे एक कषाय के भंग पण्णट्ठी से चौगुणे होते हैं । उनको नरक में एक वेद सहित चार कषाय, तिर्यंच में तीन वेद सहित चार कषाय, मनुष्य में तीन वेद सहित चार कषाय, देव में दो वेद सहित चार कषाय से गुणा करके मिलकर पण्णट्ठी को चौगुणे करके छत्तीसगुणे करें, इतने भंग होते हैं *(१४४ प)* ।

पुनश्च एक कषाय के भंगों से दोगुणे एक लेश्या के भंग पण्णट्ठी से आठगुणे होते हैं, उनको नरक में एक वेद, चार कषाय सहित तीन लेश्या; तिर्यंच में तीन वेद, चार कषाय सहित छह लेश्या, मनुष्य में तीन वेद, चार कषाय सहित छह लेश्या, देव में दो वेद, चार कषाय सहित तीन लेश्या *(क्योंकि मिश्र गुणस्थान पर्याप्तों में ही*

होता है - वहां शुभलेश्या ही होती हैं ।) से गुणा करना — मिलकर पण्णट्ठी को आठगुणा करके एक सौ अस्सी गुणे करें, इतने भंग होते हैं *(१८० प)* ।

ऐसे प्रत्येकपद और पिंडपद के मिलकर मिश्र गुणस्थान में पण्णट्ठी को सोलह सौ सात से गुणा करके उसमें से एक कम करनेपर जो प्रमाण होता है उतने सर्वपद भंग होते हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: प्रत्येकपद १६ हैं — उनके कुल भंग प — १ । पिंडपदों में गति के ४ प, लिंग के १८ प, कषाय के १४४ प, लेश्या के १४४० प, ∴ कुल भंग १६०६ प ।*

१६०६ प + प — १ = १६०७ प — १)]

असंयत में प्रत्येकपद सोलह — मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, अवधिदर्शन ३२, दान ६४, लाभ १२८, भोग २५६, उपभोग ५१२, वीर्य १०२४, अज्ञान २०४८, असंयम ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, जीवत्व १६३८४, भव्यत्व ३२७६८ हैं । उनमें दोगुणे-दोगुणे भंग जानना । पिंडपद पूर्वोक्त चार और एक सम्यक्त्व ऐसे पांच हैं ।

उनमें भव्यत्व में पण्णट्ठी से आधे भंग हुये उनको दोगुणा करनेपर पण्णट्ठीप्रमाण एक गति के भंग होते हैं । नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के प्रत्येक के भंग मिलानेपर पण्णट्ठी से चौगुणे हुये *(४ प)* ।

पुनश्च एक गति के भंगों से दोगुणे एक लिंग के भंग पण्णट्ठी से दोगुणे होते हैं । उनको नरक में एक लिंग, तिर्यंच में तीन लिंग, मनुष्य में तीन लिंग, देव में दो लिंग से गुणा करना, मिलकर पण्णट्ठी को दोगुणा करके नौ गुणा करें, इतने भंग होते हैं *(१८ प)* ।

एक लिंग के भंगों से दोगुणे एक कषाय के भंग पण्णट्ठी से चौगुणे हुये । उनको नरक में एक लिंग सहित चार कषाय, तिर्यंच में तीन लिंग सहित चार कषाय, मनुष्य में तीन लिंग सहित चार कषाय, देव में दो लिंग सहित चार कषायों से गुणा करना, मिलकर पण्णट्ठी को चौगुणा करके छत्तीसगुणा करें, इतने भंग होते हैं *(१४४ प)* ।

एक कषाय के भंगों से दोगुणे एक लेश्या के भंग पण्णट्ठी से आठगुणे हैं । उनको नरक में एक लिंग, चार कषाय सहित तीन अशुभ लेश्या; तिर्यंच में तीन लिंग, चार कषाय सहित छह लेश्या; मनुष्य में तीन लिंग,चार कषाय सहित छह लेश्या; देव में दो लिंग, चार कषाय सहित तीन शुभलेश्या से गुणा करना – मिलकर पण्णट्ठी को आठगुणा करके एक सौ अस्सी गुणा करें, इतने भंग होते हैं *(१४४० प)* ।

पुनश्च एक लेश्या के भंगों से दोगुणे एक सम्यक्त्व के भंग पण्णट्ठी से सोलह गुणे हैं, उनको नरक में एक लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या; तिर्यंच में तीन लिंग, चार कषाय, छह लेश्या; मनुष्य में तीन लिंग, चार कषाय, छह लेश्या; देव में दो लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या से गुणा करके मिलानेपर वे पण्णट्ठी को सोलहगुणा करके एक सौ अस्सी गुणा करें, इतने भंग *(२८८० प)* उपशम सम्यक्त्व के और इतने ही भंग वेदक सम्यक्त्व के हैं ।

क्षायिक सम्यक्त्व का जुदा कथन है । एक लेश्या के भंगों से दोगुणा क्षायिक सम्यक्त्व के भंग पण्णट्ठी से सोलहगुणे हैं । उनको नरक में एक लिंग, चार कषाय, एक लेश्या; तिर्यंच में एक लिंग, चार कषाय, चार लेश्या; मनुष्य में तीन लिंग, चार कषाय, छह लेश्या; देव में एक लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या से गुणा करके मिलानेपर पण्णट्ठी को सोलहगुणा करके एक सौ चार गुणा करें, इतने भंग हुये *(१६६४ प)* ।

[***विशेषार्थ*** :

प्रत्येक पद १६, उनके कुल भंग प – १

गति के ४ प

लिंग के १८ प

कषाय के १४४ प

लेश्या के १४४० प

औपशमिक और वेदक सम्यक्त्व के ५७६० प (२८८० प × २)

७३६७ प – १

\+

क्षायिक सम्यक्त्व के १६६४ प

९०३१ प – १]

ऐसे असंयत में प्रत्येकपदों-पिंडपदों के भंग जोड़नेपर पण्णट्ठी से तिहत्तर सौ सड़सठ गुणा करके उसमें से एक कम इतने सर्वपद भंग होते हैं । क्षायिक सम्यक्त्व के पण्णट्ठी से सोलह सौ चौंसठ गुणा भंग होते हैं ।

देशसंयत में असंयम की जगह देशसंयम हुआ, देव और नरकगति का अभाव हुआ *(तथा लेश्या तीन शुभ ही हैं)* वहां प्रत्येकपद सोलह – मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, अवधिदर्शन ३२, दान ६४, लाभ १२८, भोग २५६, उपभोग ५१२, वीर्य १०२४, अज्ञान २०४८, देशसंयम ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, जीवत्व १६३८४, भव्यत्व ३२७६८ हैं । उनके दोगुणे-दोगुणे भंग जानना *(कुल प – १)* ।

भव्यत्व में पण्णट्ठी से आधे भंग, उनसे दोगुणे पण्णट्ठीप्रमाण एक गति के भंग हैं, उनको तिर्यंच, मनुष्य दो गति से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से दोगुणा भंग होते हैं । *(२ प)* । एक गति से दोगुणे एक लिंग के भंग पण्णट्ठी से दोगुणा होते हैं । उनको तिर्यंच में तीन लिंग, मनुष्य में तीन लिंग से गुणा करके मिलानेपर पण्णट्ठी को दोगुणा करके छहगुणा करें, इतने भंग हुये *(१२ प)* ।

पुनश्च एक लिंग के भंगों से दोगुणे एक कषाय के भंग पण्णट्ठी से चौगुणे हैं । उनको तिर्यंच में तीन लिंग सहित चार कषाय; मनुष्य में तीन लिंग सहित चार कषाय से गुणा करके मिलानेपर पण्णट्ठी को चौगुणा करके चौबीसगुणा करें, इतने भंग हुये *(९६ प)* ।

एक कषाय के भंगों से दोगुणे एक लेश्या के भंग पण्णट्ठी से आठगुणे हैं । उनको तिर्यंच में तीन लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या; मनुष्य में तीन लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या से गुणा करके मिलानेपर पण्णट्ठी को आठगुणा करके बहत्तरगुणा करें, इतने भंग होते हैं *(५७६ प)* ।

पुनश्च एक लेश्या के भंगों से दोगुणे एक सम्यक्त्व के भंग पण्णट्ठी से सोलहगुणे हैं । उनको तिर्यंच में तीन लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या; मनुष्य में तीन लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या से गुणा करके मिलानेपर पण्णट्ठी को सोलहगुणा करके बहत्तरगुणा करें, इतने भंग हुये *(११५२ प)* – इतने उपशम सम्यक्त्व के और इतने ही वेदक सम्यक्त्व के जानना ।

क्षायिक सम्यक्त्व में एक लेश्या के भंगों से दोगुणे पण्णट्ठी से सोलहगुणे भंग हैं । उनको मनुष्यगति में तीन लिंग, चार कषाय, तीन लेश्या से गुणा करके पण्णट्ठी को सोलहगुणा करके छत्तीसगुणा करें, इतने भंग हुये *(५७६ प)* ।

ऐसे सर्व मिलकर देशसंयत में पण्णट्ठी से उनतीस सौ इक्यानबे गुणा करके उसमें से एक कम इतने और क्षायिक सम्यक्त्व अपेक्षा पण्णट्ठी से पांच सौ छिहत्तर गुणा सर्वपद भंग होते हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: प्रत्येकभंग प – १, गति – २ प; लिंग – १२ प; कषाय – ९६ प; लेश्या – ५७६ प; सम्यक्त्व (उप + वेदक) ११५२ प + ११५२ प । (कुल २९९१ प – १) और क्षायिक सम्यक्त्व अपेक्षा ५७६ प भंग हैं । इनको मिलानेपर ३५६७ प – १ भंग होते हैं ।*]

प्रमत्त में मन:पर्ययज्ञान प्रत्येकपद में अधिक हुआ, देशसंयम की जगह सरागसंयम हुआ तथा अन्य गति के अभाव के कारण मनुष्यगति भी प्रत्येकपद ही हुआ । ऐसे प्रत्येकपद अठारह – मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मन:पर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, सरागसंयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५=। २ हैं । उनके दोगुणे-दोगुणे भंग जानना । पिंडपद लिंग, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व उनमें मनुष्यगति के भंग पण्णट्ठी से दोगुणे हुये उनसे दोगुणे एक लिंग के भंग पण्णट्ठी से चौगुणे हैं, उनको तीन वेद (लिंग) से गुणा करके पण्णट्ठी से बारहगुणा हुये *(१२ प)* ।

पुनश्च एक लिंग के भंगों से दोगुणे एक कषाय के भंग पण्णट्ठी से आठगुणे हैं । उनको तीन वेद सहित चार कषाय से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से छानबेगुणे भंग होते हैं । पुनश्च एक कषाय के भंगों से दोगुणे एक लेश्या के भंग पण्णट्ठी से सोलहगुणे हैं, उनको तीन लिंग, चार कषाय सहित तीन लेश्या से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से पांच सौ छिहत्तर गुणा भंग होते हैं *(५७६ प)* । एक लेश्या के भंगों से दोगुणे एक सम्यक्त्व के भंग पण्णट्ठी से बत्तीसगुणे हैं; उनको तीन वेद, चार कषाय, तीन लेश्या सहित तीन सम्यक्त्व से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से चौंतीस सौ छप्पन गुणा भंग होते

हैं । मिलकर प्रमत्त में पण्णट्ठी से इकतालीस सौ चौवालीस गुणा करके उसमें से एक कम इतने सर्वपद भंग होते हैं ।

[***विशेषार्थ*** : *प्रत्येकभंग ४ प – १, लिंग – १२ प; कषाय – ९६ प; लेश्या – ५७६ प; सम्यक्त्व – ३४५६ प । कुलभंग ४१४४ प – १ ।*]

अप्रमत्त में भी प्रमत्तवत् पण्णट्ठी से इकतालीस सौ चौवालीस गुणा करके उसमें से एक कम इतने भंग हैं ।

पुनश्च उपशमश्रेणी में अपूर्वकरण में अन्य लेश्या के अभाव से शुक्ललेश्या भी प्रत्येकपद है । वहां मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, उपशमचारित्र १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५=। २ शुक्ललेश्या ६५=। ४ हैं – उनके दोगुणे-दोगुणे भंग हैं । पिंडपद – लिंग, कषाय, सम्यक्त्व हैं । उनमें शुक्ललेश्या के भंग पण्णट्ठी से चौगुणे उनसे दोगुणे एक लिंग के भंग पण्णट्ठी से आठगुणे हैं । उनको तीन लिंग से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से चौबीसगुणे हुये *(२४ प)* ।

एक लिंग के भंगों से दोगुणे एक कषाय के भंग पण्णट्ठी से सोलहगुणे हैं । उनको तीन वेद सहित चार कषायों से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से एक सौ बानबे गुणे भंग होते हैं *(१९२ प)* । एक कषाय के भंगों से दोगुणे एक सम्यक्त्व के भंग पण्णट्ठी से बत्तीसगुणे हैं । उनको तीन वेद, चार कषाय सहित दो सम्यक्त्व से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से सात सौ अड़सठ गुणा भंग होते हैं *(७६८ प)* मिलकर अपूर्वकरण में पण्णट्ठी से नौ सौ बानबे गुणा करके उसमें से एक कम – इतने सर्वपद भंग होते हैं ।

[***विशेषार्थ*** : *प्रत्येकपद – शुक्ललेश्यातक कुल भंग ८ प – १, लिंग – २४ प; कषाय – १९२ प; सम्यक्त्व – ७६८ प । कुल ९९२ प – १*]

वेद सहित अनिवृत्तिकरण में भी अपूर्वकरणवत् पण्णट्ठी से नौ सौ बानबे गुणा करके उसमें से एक कम इतने भंग हैं ।

वेद रहित अनिवृत्तिकरण में प्रत्येकपद – मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४,

मन:पर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, उपशम ~~सम्यक्त्व~~ चारित्र १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५=।२ शुक्ललेश्या ६५=।४ हैं, उनके दोगुणे-दोगुणे भंग हैं ।

पुनश्च पिंडपद में शुक्ललेश्या के पण्णट्ठी से चौगुणे भंग, उनसे दोगुणे एक कषाय के पण्णट्ठी से आठगुणे भंग हैं, उनको चार कषायों से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से बत्तीसगुणे भंग होते हैं *(३२ प)* । एक कषाय के भंगों से दोगुणे पण्णट्ठी से सोलहगुणे एक सम्यक्त्व के भंग हैं, उनको चार कषाय सहित दो सम्यक्त्व से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से एक सौ अट्ठाइस गुणा भंग होते हैं *(१२८ प)* । प्रत्येकपद और पिंडपद के भंग मिलकर पण्णट्ठी से एक सौ अड़सठ गुणा करके उसमें से एक कम इतने सर्वपद भंग हुये ।

[***विशेषार्थ*** *: प्रत्येकपद के भंग (शुक्ललेश्या तक) – ८ प – १, कषाय – ३२ प; सम्यक्त्व – १२८ प । कुलभंग १६८ प – १*]

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय में प्रत्येकपद – मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मन:पर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६,असिद्धत्व ८१९२, उपशमसंयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५=।२ शुक्ललेश्या ६५=।४, सूक्ष्मलोभ ६५=।८ हैं – उनके दोगुणे-दोगुणे भंग जानना । पिंडपद में सूक्ष्मलोभ के पण्णट्ठी से आठगुणे भंगों से दोगुणे एक सम्यक्त्व के भंग हैं । उनको उपशम और क्षायिक सम्यक्त्व से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से बत्तीसगुणे भंग हुये *(३२ प)* । प्रत्येकपद, पिंडपद के मिलकर पण्णट्ठी से अड़तालीसगुणा करके उसमें से एक कम इतने सर्वपद भंग हुये ।

[***विशेषार्थ*** *: प्रत्येकपद के भंग – सूक्ष्मलोभ तक १६ प – १, पिंडपद के भंग ३२ प, कुल भंग ४८ प – १*]

उपशांतमोह में प्रत्येकपद – मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मन:पर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, उपशमसंयम

१६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५=।२ शुक्ललेश्या ६५=।४ हैं — उनके दोगुणे-दोगुणे भंग हैं । पिंडपद में शुक्ललेश्या के पण्णट्ठी से चौगुणे भंगों से दोगुणे एक सम्यक्त्व के पण्णट्ठी से आठगुणे भंग -इतने ही उपशम सम्यक्त्व के और इतने ही क्षायिक सम्यक्त्व के मिलकर पण्णट्ठी से सोलहगुणे हुये ।

प्रत्येकपद, पिंडपद के मिलकर पण्णट्ठी से चौबीसगुणे करके उसमें से एक कम इतने सर्वपद भंग हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: प्रत्येकपद के भंग — शुक्ललेश्यातक ८ प — १, पिंडपद के १६ प । कुल भंग २४ प — १।*]

क्षपकश्रेणी में अपूर्वकरण में मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मन:पर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, क्षायिक संयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५=।२ शुक्ललेश्या ६५=।४, क्षायिक सम्यक्त्व ६५=।८, उनके दोगुणे-दोगुणे भंग हैं । क्षायिक सम्यक्त्व के पण्णट्ठी से आठगुणे भंगों से दोगुणा एक लिंग के भंग हैं । उनको तीन लिंग *(वेद)* से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से अड़तालीसगुणा हुये *(४८ प)* । एक लिंग के भंगों से दोगुणे एक कषाय के भंग पण्णट्ठी से बत्तीसगुणे हैं, उनको तीन वेदसहित चार कषाय से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से तीन सौ चौरासी गुणा हुये ।

सर्व प्रत्येकपद, पिंडपद मिलकर पण्णट्ठी से चार सौ अड़तालीस गुणा करके उसमें से एक कम इतने सर्वपद भंग हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: प्रत्येकभंग — १६ प — १; लिंग ४८ प, कषाय ३८४ प, कुलभंग ४४८ प — १*]

उसीप्रकार अपूर्वकरणवत् वेद सहित अनिवृत्तिकरण में भी पण्णट्ठी से चार सौ अड़तालीस गुणा करके उसमें से एक कम — इतने सर्वपद भंग हैं ।

वेद रहित अनिवृत्तिकरण में मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मन:पर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग

१०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, क्षायिक संयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५ =। २ शुक्ललेश्या ६५ =। ४, क्षायिक सम्यक्त्व ६५ =। ८ हैं, उनके दोगुणे-दोगुणे भंग हैं.। पिंडपद में क्षायिक सम्यक्त्व के पण्णट्ठी से आठगुणे भंगों से दोगुणे एक कषाय के भंग हैं । उनको चार कषायों से गुणा करनेपर पण्णट्ठी से चौंसठगुणा हुये । प्रत्येकपद, पिंडपद के मिलकर सर्वपद भंग पण्णट्ठी से अस्सीगुणा करके उसमें से एक कम — इतने हुये ।

[***विशेषार्थ*** : *प्रत्येकपद भंग — १६ प — १, पिंडपद — ६४ प, कुलभंग ८० प — १*]

सूक्ष्मसाम्परायादि में प्रत्येकपद ही हैं, पिंडपद नहीं हैं । वहां मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, क्षायिक संयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५ =। २, शुक्ललेश्या ६५ =। ४, क्षायिक सम्यक्त्व ६५ =। ८, सूक्ष्मलोभ ६५ =। १६ हैं । उनके दोगुणे-दोगुणे भंग मिलकर सर्वपद पण्णट्ठी से बत्तीसगुणा करके उसमें से एक कम इतने हैं *(३२ प — १)* ।

क्षीणमोह में मति १, श्रुत २, अवधिज्ञान ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधिदर्शन ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, क्षायिक संयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=, मनुष्यगति ६५ =। २, शुक्ललेश्या ६५ =। ४, क्षायिक सम्यक्त्व ६५ =। ८ प्रत्येकपद बीस हैं । उनके दोगुणे-दोगुणे भंग मिलकर **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि करणसूत्र से पण्णट्ठी से सोलहगुणा करके उसमें से एक कम इतने होते हैं ।

सयोगकेवली में केवलज्ञान १, केवलदर्शन १, क्षायिक सम्यक्त्व ४, यथाख्यातचारित्र ८, क्षायिक दान १६, क्षायिक लाभ ३२, क्षायिक भोग ६४, क्षायिक उपभोग १२८, क्षायिक वीर्य २५६, असिद्धत्व ५१२, जीवत्व १०२४, भव्यत्व २०४८, मनुष्यगति ४०९६, शुक्ललेश्या ८१९२ प्रत्येकपद हैं । उनके

दोगुणे-दोगुणे भंग मिलकर दो सौ छप्पन से चौंसठगुणा करके उसमें से एक कम करें, इतने *(१६३८३)* भंग होते हैं ।

अयोगकेवली में केवलज्ञान १, केवलदर्शन २, क्षायिक सम्यक्त्व ४, यथाख्यातचारित्र ८, क्षायिक दान १६, क्षायिक लाभ ३२, क्षायिक भोग ६४, क्षायिक उपभोग १२८, क्षायिक वीर्य २५६, असिद्धत्व ५१२, जीवत्व १०२४, भव्यत्व २०४८, मनुष्यगति ४०९६ प्रत्येकपद हैं । उनके दोगुणे-दोगुणे भंग मिलकर दो सौ छप्पन से बत्तीसगुणा करके उसमें से एक कम करें, इतने *(८१९१)* सर्वपद भंग होते हैं ।

सिद्ध में केवलज्ञान १, केवलदर्शन २, क्षायिक सम्यक्त्व ४, अनंतवीर्य ८, जीवत्व १६ प्रत्येकपद हैं । उनके दोगुणे-दोगुणे भंग मिलकर इकतीस भंग होते हैं ।

इसतरह प्रत्येकपद, पिंडपद के भंग कहे । प्रत्येकपद का नाम असदृशपद भी है, क्योंकि इनके प्रतिपक्ष से समानता नहीं है, और पिंडपद का नाम सदृशपद भी है, क्योंकि इनके प्रतिपक्ष से समानता पायी जाती है ॥८६१॥

आगे इसी कथन को गाथाओं द्वारा कहते हैं –

तेरिच्छा हु सरित्था अविरददेसाण खयियसम्मत्तं ।
मोत्तूण संभवं पडि खयिगस्सवि आणए भंगे ॥८६२॥

तिर्यंचि हि सदृशानि अविरतदेशयोः क्षायिकसम्यक्त्वं ।
मुक्त्वा संभवं प्रति क्षायिकस्याप्यानयेद्भंगान् ॥८६२॥

टीका – गुणस्थानों में कहे हुये पिंडपदरूप भावों को तिर्यक्रूप अर्थात् बराबर रचनारूप करके वहां असंयत और देशसंयत में क्षायिक सम्यक्त्व का जुदा ही कथन होने से उसको छोड़कर अन्य भावों में गुणस्थानों के आश्रय से यथासंभव भंग जानना । वहां क्षायिक सम्यक्त्व के भी यथासंभव जुदे भंग जानना ॥८६२॥

उड्ढतिरिच्छपदाणं दव्वसमासेण होदि सव्वधणं ।
सव्वपदाणं भंगे मिच्छादिगुणेसु णियमेण ॥८६३॥

ऊर्ध्वतिर्यक्पदानां द्रव्यसमासेन भवति सर्वधनं ।
सर्वपदानां भंगे मिथ्यादिगुणेषु नियमेन ॥८६३॥

टीका – सर्वपद भंगों के जानने के लिये मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में ऊर्ध्वरूप जिनकी रचना कही ऐसे प्रत्येकपदों के भंगरूप धन और तिर्यक्रूप जिनकी रचना कही ऐसे पिंडपदों के भंगरूप धन – इन दोनों को पृथक्-पृथक् जानकर दोनों का समास अर्थात् मिलाना-जोड़ देना – उसके द्वारा नियम से उस गुणस्थान के सर्वपदों के भंगरूप सर्वधन होता है ॥८६३॥

मिच्छादीणं दुति दुसु अपुव्वअणियट्टिखवगसमगेसु ।
सुहुमुवसमगे संते सेसे पत्तेयपदसंखा ॥८६४॥

पण्णर सोलट्ठारस वीसुगुवीसं च वीसमुगुवीसं ।
इगिवीस वीसचउदस तेरसपणगं जहाकमसो ॥८६५॥ जुम्मं

मिथ्यादीनां द्वित्रिषु द्वयोरपूर्वानिवृत्तिक्षपकोपशमकेषु ।
सूक्ष्मोपशमके शांते शेषे प्रत्येकपदसंख्या ॥८६४॥

पंचदश षोडशाष्टादश विंशैकोनविंशं च विंशमेकोनविंशं ।
एकविंशं विंशचर्तुदश त्रयोदशपंचकं यथाक्रमशः ॥८६५॥ युग्मं

टीका – वे प्रत्येकपद क्रम से मिथ्यात्वादि दो में पंद्रह, मिश्रादि तीन में सोलह, प्रमत्तादि दो में अठारह, दोनों श्रेणी के अपूर्वकरणादि दो में बीस और उन्नीस, उपशमक सूक्ष्मसाम्पराय में बीस, उपशांतमोह में उन्नीस, क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय में इक्कीस, क्षीणमोह में बीस, सयोगी में चौदह, अयोगी में तेरह, सिद्ध में पांच जानना ॥८६४, ८६५॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुदिं खीणकसाओत्ति सव्वपदभंगा ।
पण्णट्ठिं च सहस्सा पंचसया होंति छत्तीसा ॥८६६॥

मिथ्यादृष्टिप्रभृति क्षीणकषाय इति सर्वपदभंगाः ।
पंचषष्टिश्च सहस्राणि पंचशतानि भवंति षट्त्रिंशत् ॥८६६॥

टीका – मिथ्यात्व से क्षीणमोह तक सर्वपद भंग कहते हैं । वहां पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस गुण्य जानना, इस प्रमाण ही का नाम पण्णट्ठी है । इस गुण्य को आगे कहे जानेवाले गुणकारों से गुणा करते हैं ॥८६६॥

तग्गुणगारा कमसो पण णउदेयत्तरीसयाण दलं ।
ऊणट्ठारसयाणं दलं तु सत्तहियसोलसयं ॥८६७॥

तद्गुणकाराः क्रमशः पंच नवत्येकसप्ततिशतानां दलं ।
एकोनैमष्टादशशतानां दलं तु सप्ताधिकषोडशशतं ॥८६७॥

टीका – उस गुण्य के गुणकार क्रम से मिथ्यात्व में इकहत्तर सौ पंचानबे के आधे प्रमाण हैं । सासादन में एक कम अठारह सौ का आधा प्रमाण है । मिश्र में सात अधिक सोलह सौ हैं ॥८६७॥

तेवत्तरिं सयाइं सत्तावट्ठी य अविरदे सम्मे ।
सोलस चेव सयाइं चउसट्ठी खयियसम्मस्स ॥८६८॥

त्रिसप्ततिशतानि सप्तषष्टिश्च अविरते सम्ये ।
षोडश चैव शतानि चतुःषष्टि क्षायिकसम्यस्य ॥८६८॥

टीका – असंयत सम्यग्दृष्टी में तिहत्तर सौ सड़सठ हैं, वहींपर क्षायिक सम्यक्त्व में सोलह सौ चौंसठ हैं ॥८६८॥

ऊणत्तीससयाइं एक्काणउदी य देसविरदम्मि ।
छावत्तरि पंचसया खइयणरे णत्थि तिरियम्मि ॥८६९॥

एकोनत्रिंशच्छतानि एकनवतिश्च देशविरते ।
षट्सप्ततिः पंचशतानि क्षायिकनरे नास्ति तिरश्चि ॥८६९॥

टीका – देशसंयत में उनतीन सौ इक्यानबे हैं । वहीं क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्य में पांच सौ छिहत्तर हैं । वहां तिर्यंच में गुण्य गुणकार नहीं हैं, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टी तिर्यंच देशव्रती नहीं होता ॥८६९॥

इगिदालं च सयाइं चउदालं च य पमत्त इदरे य ।
पुव्वुवसमगे वेदाणियट्टिभागे सहस्समट्ठूणं ॥८७०॥

एकचत्वारिंशच्छतानि चतुश्चत्वारिंशच्च च प्रमत्ते इतरस्मिंश्च ।
अपूर्वोपशमके वेदा निवृत्तिभागे सहस्रमष्टोनं ॥८७०॥

टीका – प्रमत्त और अप्रमत्त में इकतालीस सौ चौवालीस हैं । उपशमश्रेणी में अपूर्वकरण और सवेद अनिवृत्तिकरण में आठ कम एक हजार हैं ॥८७०॥

अडसट्ठी एक्कसयं कसायभागम्मि सुहुमगे संते ।
अडदालं चउवीसं खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८७१॥

अष्टषष्टिः एकशतं कषायभागे सूक्ष्मके शांते ।
अष्टचत्वारिंशच्चतुर्विंशं क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥८७१॥

टीका – कषाय सहित वेद रहित अनिवृत्तिकरण के भाग में एक सौ अड़सठ हैं । सूक्ष्मसाम्पराय में अड़तालीस हैं । उपशांतमोह में चौबीस हैं । अब क्षपकश्रेणी में यथाक्रम कहते हैं ॥८७१॥

अडदालं चारिसयापुव्वे अणियट्टिवेदभागे य ।
सीदी कसायभागे तत्तो बत्तीस सोलं तु ॥८७२॥

अष्टचत्वारिंशत् चतुःशतान्यपूर्वे अनिवृत्तिवेदभागे च ।
अशीतिः कषायभागे ततो द्वात्रिंशत् षोडश तु ॥८७२॥

टीका – अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग में चार सौ अड़तालीस हैं । अनिवृत्तिकरण के कषायभाग में अस्सी हैं । ऊपर सूक्ष्मसाम्पराय में बत्तीस ——————→हैं । क्षीणमोह में सोलह हैं ।

ऐसे ये पण्णट्ठी के गुणकार कहे ॥८७२॥

जोगिम्मि अजोगिम्मि य बेसदछप्पण्णयाण गुणगारा ।
चउसट्ठी बत्तीसा गुणगुणिदेक्कूणया सव्वे ॥८७३॥

योगिन्ययोगिनि च द्विशतषट्पंचाशतां गुणकाराः ।
चतुःषष्टिः द्वात्रिंशत् गुण्यगुणिते एकोनकाः सर्वे ॥८७३॥

टीका – सयोगी, अयोगी में 'बेसदछप्पण्ण' अर्थात् दो सौ छप्पन गुण्य जानना । उसके गुणकार सयोगी में चौंसठ, अयोगी में बत्तीस हैं । ऐसे गुणकार से गुण्य को गुणा करके जो-जो प्रमाण आयेगा, उस-उसमें से सर्वत्र एक-एक कम करना – ऐसा करनेपर सर्वपद भंगों का प्रमाण आता है ॥८७३॥

सिद्धेसु सुद्धभंगा एक्कत्तीसा हवंति णियमेण ।
सव्वपदं पडि भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८७४॥

सिद्धेषु शुद्धभंगा एकत्रिंशत् भवंति नियमेन ।
सर्वपद प्रति भंगा असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥८७४॥

टीका – सिद्धों में शुद्ध गुण्य-गुणकार के भेद रहित नियम से इकतीस ही सर्वपद भंग हैं, ऐसे सहाय रहित पराक्रम शक्ति के धारक वर्धमानस्वामी ने सर्व प्रतिभंग कहे हैं ॥८७४॥

आदेसेवि य एवं संभवभावेहिं ठाणभंगाणि ।
पदभंगाणि य कमसो अव्वामोहेण आणेज्जो ॥८७५॥

आदेशेऽपि च एवं संभावभावैः स्थानभंगाः ।
पदभंगाश्च क्रमशः अव्यामोहेन आनेयाः ॥८७५॥

टीका – जैसे गुणस्थानों में भंग कहे वैसे ही आदेश अर्थात् मार्गणास्थानों में यथासंभव भावों के आश्रय से क्रम से स्थानभंग और पदभंग मोहरहित सावधान होकर यथासंभव जानना ॥८७५॥

आगे जिनमें सर्वथा एक नय का ग्रहण पाया जाता है, ऐसे एकांतमतों के भेद कहते हैं –

असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं च आहु चुलसीदी ।
सत्तट्ठण्णाणीणं वेणयियाणं तु बत्तीस ॥८७६॥

अशीतिशतं क्रियाणामक्रियाणां चाहुश्चतुरशीतिः ।
सप्तषष्टिरज्ञानिनां वैनयिकानां तु द्वात्रिंशत् ॥८७६॥

टीका – क्रियावादियों के एक सौ अस्सी, अक्रियावादियों के चौरासी, अज्ञानवादियों के सड़सठ, वैनयिकवादियों के बत्तीस भेद हैं ॥८७६॥

वहां क्रियावादियों के मूलभंग कहते हैं –

अत्थि सदो परदोवि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था ।
कालीसरप्पणियदिसहावेहि य ते हि भंगा हु ॥८७७॥

अस्ति स्वतः परतोऽपि च नित्यानित्यत्वेन च नवार्थाः ।
कालेश्वरात्मनियति स्वभावैश्च ते हि भंगा हि ॥८७७॥

टीका – प्रथम तो अस्ति ऐसा एक पद लिखना । उसके ऊपर स्वयं से, परसे, नित्यपने से, अनित्यपने से ऐसे चार पद लिखना । उसके ऊपर जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष, ऐसे नौ पद लिखना । उनके ऊपर काल, ईश्वर, आत्मा, नियति, स्वभाव ऐसे पांच पद लिखना । उनमें जैसे जीवकाण्ड के गुणस्थानाधिकार में प्रमादों के भंग करते समय अक्षसंचार विधान कहा था, वैसे इन पदों के बदलने से अक्षसंचार से एक, चार, नौ, पांच के परस्पर गुणनरूप एक सौ अस्सी भंग होते हैं । वही कहते हैं –

काल, ईश्वर, आत्मा, नियति, स्वभाव ५
जी अ पु पा आ सं नि बं मो ९
स्वयं से, पर से, नित्यपने से, अनित्यपने से ४
अस्ति

स्वयं से जीव काल द्वारा अस्ति करता है, पर से जीव काल द्वारा अस्ति करता है, नित्यपने से जीव काल द्वारा अस्ति करता है, अनित्यपने से जीव काल द्वारा अस्ति करता है – ऐसे चार भंग हुये । जीव की जगह क्रम से अजीव आदि कहनेपर चार-चार भंग होते हैं – वहां नौ पदार्थ के बदलने से एक काल सहित छत्तीस भंग हुये ।

काल की जगह क्रम से ईश्वरादि कहनेपर छत्तीस-छत्तीस भंग होते हैं । इन पांच पदों के बदलने से क्रियावादियों के एक सौ अस्सी भंग होते हैं ॥८७७॥

अत्थि सदो परदोवि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था ।
एसिं अत्था सुगमा कालादीणं तु वोच्छामि ॥८७८॥

अस्ति स्वतः परतोऽपि च नित्यानित्यत्वेन च नवार्थाः ।
एषामर्थाः सुगमाः कालादीनां तु वक्ष्यामि ॥८७८॥

टीका – अस्ति स्वयं से, पर से, नित्यपने से, अनित्यपने से नौ पदार्थ इनका अर्थ तो सुगम है । अस्ति का तो 'है' ऐसा अर्थ है, क्रियावादी वस्तु को अस्तिरूप ही मानकर क्रिया का स्थापन करता है । वहां स्वयं से कहनेपर अपने स्वरूप चतुष्टय की अस्ति मानता है, और पर से कहनेपर परचतुष्टय से भी अस्तिरूप ही मानता है। नित्यपने से अर्थात् शाश्वत अस्तिरूप मानता है । अनित्यपने से अर्थात् क्षणिक अस्तिरूप मानता है । ऐसे जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्षरूप नौ पदार्थों को मानता है, इन चौदह का तो अर्थ सुगम है । इसलिए इनका विशेष कथन नहीं किया । कालवाद आदि का अर्थ क्रम से कहता हूँ ॥८८७॥

कालो सव्वं जणंयदि कालो सव्वं विणस्सदे भूदं ।
जागत्ति हि सुत्तेसु वि ण सक्कदे वंचिदुं कालो ॥८७९॥

कालः सर्वं जनयति कालः सर्वं विनायशति भूतं ।
जागर्ति हि सुप्तेष्वपि न शक्यते वंचितुं कालः ॥८७९॥

टीका – काल ही सब को उत्पन्न करता है, काल ही सबका नाश करता है, सोते हुये प्राणियों में भी काल ही प्रकट जागता है, काल को कोई नहीं ठग सकता- उसे धोखा देने को कोई समर्थ नहीं है । इसतरह काल ही से सबका मानना – यह कालवाद का अर्थ है ॥८७९॥

अण्णाणी हु अणीसो अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च ।
सग्गं णिरयं गमणं सव्वं ईसरकयं होदि ॥८८०॥

अज्ञानी ह्यनीश आत्मा तस्य च सुखं च दु:खं च ।
स्वर्गं निरयं गमनं सर्वमीश्वरकृतं भवति ॥८८०॥

टीका – आत्मा अज्ञानी-ज्ञानरहित है तथा अनीश अर्थात् अनाथ कुछ करने के लिये समर्थ नहीं है, उस आत्मा के सुखदु:ख, स्वर्ग नरकादि में गमनागमन आदि सर्व ईश्वर का किया हुआ है –

इसतरह सबको ईश्वर द्वारा किया हुआ मानना, वही ईश्वरवाद का अर्थ है ॥८८०॥

एक्को चेव महप्पा पुरिसो देवो य सव्ववावी य ।
सव्वंगणिगूढोवि य सचेयणो णिग्गुणो परमो ॥८८१॥

एकश्चैव महात्मा पुरुषो देवश्च सर्वव्यापी च ।
सर्वांगनिगूढोऽपि च सचेतनो निर्गुण: परम: ॥८८१॥

टीका – एक ही महात्मा है, वही पुरुष है, देव है, सर्व में व्यापक है, सर्वांगपने से निगूढ अर्थात् अगम्य है, चेतना सहित है, निर्गुण है, परमउत्कृष्ट है । इसप्रकार एक आत्मा ही से सबको मानना वह आत्मवाद का अर्थ है ॥८८१॥

जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा ।
तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु ॥८८२॥

यत्तु यदा येन यथा यस्य च नियमेन भवति तत्तु तदा ।
तेन तथा तस्य भवेदिति वादो नियतिवादस्तु ॥८८२॥

टीका – जो जिस काल में, जिसके द्वारा, जैसा, जिसके नियम से होना है, वह उस काल में, उसके द्वारा, वैसा, उसी के होता है, ऐसा नियम से *(सर्वथा)* सबको मानना वह नियतिवाद का अर्थ है ॥८८२॥

को करइ कंटयाणं तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं ।
विविहत्तं तु सहाओ इदि सव्वंपि य सहाओत्ति ॥८८३॥

कः करोति कंटकानां तीक्ष्णत्वं मृगविहंगमादीनां ।
विविधत्वं तु स्वभाव इति सर्वमपि च स्वभाव इति ॥८८३॥

टीका – कांटा आदि जो तीक्ष्ण वस्तुयें हैं, उनको कौन तीक्ष्ण करता है ? मृग तथा विहंगी पक्षी इत्यादि के अनेक प्रकार पाये जाते हैं, उसे कौन करता है ? ऐसा प्रश्न होनेपर ऐसा ही उत्तर देता है कि उसका कारण स्वभाव ही है । इसतरह सबको कारण बिना स्वभाव ही से मानना, वह स्वभाववाद का अर्थ है ।

इसतरह पूर्वोक्त प्रकार से कालादि द्वारा एकांतग्रहण करने से क्रियावाद होता है ॥८८३॥

आगे अक्रियावादियों के भंग कहते हैं –

णत्थि सदो परदोवि य सत्तपयत्था य पुण्णपाऊणा ।
कालादियादिभंगा सत्तरि चदुपंतिसंजादा ॥८८४॥

नास्ति स्वतः परतोऽपि च सप्तपदार्थाश्च पुण्यपापोनाः ।
कालादिकादिभंगाः सप्ततिश्चतुःपंक्तिसंजाताः ॥८८४॥

टीका – प्रथम नास्ति पद लिखना, उसके ऊपर स्वयं से और पर से दो पंद लिखना । उनके ऊपर पुण्य पाप बिना सात पदार्थ लिखना । उनके ऊपर काल से लेकर पांच पद लिखना । ऐसी चार पंक्ति करना । उनमें पूर्वोक्त अक्षसंचार विधान से भंग होते हैं ।

का	ई	आ	नि	स्व	५	
जी	अ	आ	सं	नि	बं	मो ७
स्वतः, परतः २						
नास्ति १						

स्वयं से जीव काल द्वारा नास्ति है, पर से जीव काल द्वारा नास्ति है । ऐसे ही जीव की जगह अजीवादिक कहनेपर चौदह भंग एक काल द्वारा होते हैं । काल की जगह ईश्वर आदि कहने से सत्तर भंग होते हैं ।

भावार्थ – अक्रियावादी वस्तु को नास्तिरूप मानकर क्रिया का स्थापन नहीं करता ॥८८४॥

णत्थि य सत्तपदत्था णियदीदो कालदो तिपंतिभवा ।
चोद्दस इदि णत्थित्ते अक्किरियाणं च चुलसीदी ॥८८५॥

नास्ति च सप्तपदार्था नियतितः कालतस्त्रिपंक्तिभवाः ।
चतुर्दश इति नास्तित्वे अक्रियाणां च चतुरशीतिः ॥८८५॥

टीका – प्रथम नास्ति पद लिखना । उसके ऊपर सात पदार्थ लिखना । उसके ऊपर नियति और काल दो पद लिखना । वहां अक्षसंचार द्वारा जीव नियति से नास्ति है, जीव काल से नास्ति है ।

पुनश्च जीव की जगह अजीवादि कहनेपर चौदह भेद होते हैं ।

यहां अक्रियावाद के जैसे प्रकार हैं, वैसे सत्तर भेद जुदे-जुदे कहे, मिलकर अक्रियावादियों के चौरासी भेद हुये ॥८८५॥

नियति काल २
जी अ आ सं नि बं मो ७
नास्ति १

आगे अज्ञानवाद के भेद कहते हैं –

को जाणइ णवभावे सत्तमसत्तं दयं अवच्चमिदि ।
अवयणजुद सत्ततयं इदि भंगा होंति तेसट्ठी ॥८८६॥

को जानाति नवभावेषु सत्त्वमसत्त्वं द्वयमवाच्यमिति ।
अवचनयुतं सप्ततयमिति भंगा भवंति त्रिषष्टिः ॥८८६॥

टीका – जीवादि नौ पदार्थों में से एक-एक को सात भंगों की अपेक्षा नहीं जानना । जीव अस्ति *(है)* ऐसा कौन जानता है ? जीव नास्ति *(नहीं है)* ऐसा कौन जानता है ? जीव अस्ति-नास्ति ऐसा कौन जानता है ? जीव अवक्तव्य ऐसा

कौन जानता है ? जीव अस्ति-अवक्तव्य ऐसा कौन जानता है ? जीव नास्ति-अवक्तव्य ऐसा कौन जानता है ? जीव अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य ऐसा कौन जानता है ? इसीतरह जीव की जगह अजीवादि कहनेपर तिरसठ भंग होते हैं ॥८८६॥

को जाणइ सत्तचऊ भावं सुद्धं खु दोण्णिपंतिभवा ।
चत्तारि होंति एवं अण्णाणीणं तु सत्तट्ठी ॥८८७॥

को जानाति सत्त्वचतुष्कं भावं शुद्धं खलु द्विपंक्तिभवाः ।
चत्वारो भवंति एवमज्ञानिनां तु सप्तषष्टिः ॥८८७॥

टीका – प्रथम शुद्धपदार्थ पद लिखना, उसके ऊपर अस्ति, नास्ति आदि चार लिखना । इन दो पंक्तियों से उत्पन्न चार भंग होते हैं ।

अस्ति नास्ति अस्तिनास्ति अवक्तव्य ४
शुद्धपदार्थ १

शुद्धपदार्थ अस्ति *(है)* ऐसा कौन जानता है ? शुद्धपदार्थ नास्ति *(नहीं है)* ऐसा कौन जानता है ? शुद्धपदार्थ अस्ति-नास्ति *(है)* ऐसा कौन जानता है ? शुद्धपदार्थ अवक्तव्य *(है)* ऐसा कौन जानता है ? ऐसे चार तो ये और पूर्वोक्त तिरसठ मिलकर अज्ञानवाद सड़सठ होते हैं ।

भावार्थ – अज्ञानवादवाले वस्तु का न जानना ही मानते हैं ॥८८७॥

आगे वैनयिकवादों के मूलभंग कहते हैं –

मणवयणकायदाणगविणवो सुरणिवइणाणिजदिवुड्ढे ।
बाले मादुपिदुम्मि च कायव्वो चेदि अट्ठचऊ ॥८८८॥

मनोवचनकायदान विनयः सुरनृपतिज्ञानियतिवृद्धे ।
बाले मातृपित्रोश्च कर्तव्यश्चेत्यष्टचतुष्कं ॥८८८॥

टीका – देव, राजा, ज्ञानी, यति, बूढ़ा, बालक, माता, पिता इन आठों का मन से, वचन से, काय से, दान देने से, चार प्रकार विनय करना – ऐसे वैनयिकवाद बत्तीस हैं ।

भावार्थ – विनयवादी गुण-अगुण *(औगुण)* की परीक्षा रहित विनय ही से सिद्धि मानते हैं ॥८८८॥

सच्छंददिट्ठीहिं वियप्पियाणि तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि ।
पाखंडिणं वाउलकारणाणि अण्णाणिचित्ताणि हरंति ताणि ॥८८९॥

स्वच्छंददृष्टिभिर्विकल्पितानि त्रिषष्टियुक्तानि शतानि त्रीणी ।
पाखंडिनां व्याकुलकारणानि अज्ञानिचित्तानि हरंति तानि ॥८८९॥

टीका – स्वच्छंद मनकल्पित दृष्टी अर्थात् श्रद्धानवाले जीवों के द्वारा कल्पित तीन सौ तिरसठ पाखंडियों के वचन जीवों में व्याकुलता उत्पन्न करते हैं, मिथ्यात्व के उदय से अज्ञानी जीवों के चित्त को मोहित कर लेते हैं ॥८८९॥

आगे और भी एकांतवाद कहते हैं –

आलसड्ढो णिरुच्छाहो फलं किंचिं ण भुंजदे ।
थणक्खीरादिपाणं वा पउरुसेण विणा ण हि ॥८९०॥

आलस्याढ्यो निरुत्साहः फलं किंचिन् भुंक्ते ।
स्तनक्षीरादिपानं वा पौरुषेण विना नहि ॥८९०॥

टीका – जो आलस्य से युक्त है, उत्साह-उद्यम रहित है, वह कुछ भी फल नहीं भोगता । जैसे स्तन का दूध उद्यम से ही पीने में आता है, पौरुष के बिना पीने में नहीं आता, वैसे सर्व कार्य पौरुष से ही सिद्ध होते हैं । यह पौरुषवाद है ।

भावार्थ – पौरुषवादी पुरुषार्थ से ही *(सर्वथा पुरुषार्थ से ही)* सर्वसिद्धि मानता है ॥८९०॥

दइवमेव परं मण्णे धिप्पउरुसमणत्थयं ।
एसो सालसमुत्तुंगो कण्णो हण्णइ संगरे ॥८९१॥

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकं ।
एष सालसमुत्तुंगः कर्णो हन्यते संगरे ॥८९१॥

टीका – मैं केवल दैव को ही मानता हूँ, पौरुष निरर्थक है, उसका धिक्कार हो । देखो, सालवृक्ष की तरह ऊंचा कर्ण नामक राजा युद्ध *(महाभारत के युद्ध)* में मारा गया – यह दैववाद है ।

भावार्थ – दैववादी दैव ही से सर्वसिद्धि मानता है ॥८९१॥

सजोगमेवेति वदंति तण्णा णेवेक्कचक्केण रहो पयादिं ।
अंधो य पंगू य वणं पविट्ठा ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा ॥८९२॥

संयोगमेवेति वदंति तज्ज्ञा नैवेकचक्रेण रथः प्रयाति ।
अंधश्च पंगुश्च वनं प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ ॥८९२॥

टीका – तज्ञ अर्थात् यथार्थ ज्ञानी संयोग ही को कहते हैं, एक पहिये से रथ नहीं चलता । जैसे एक अंध और एक पंगु वन में थे, वे संयोग करके अंधे के कंधे पर पंगु चढ़कर दोनों ने नगर में प्रवेश किया – यह संयोगवाद है ।

भावार्थ – संयोगवादी वस्तुओं के मिलाप से ही कार्यसिद्धि मानते हैं ॥८९२॥

सइउट्ठिया पसिद्धी दुव्वारा मेलिदेहिंवि सुरेहिं ।
मज्झिमपंडवखित्ता माला पंचसुवि खित्तेव ॥८९३॥

सकृदुत्थिता प्रसिद्धिर्दुर्वारा मिलितैरपि सुरैः ।
मध्यमपांडवक्षिप्ता माला पंचस्वपि क्षिप्तैव ॥८९३॥

टीका – एक बार जो बात लोक में फैल जाती है-प्रसिद्ध होती है – उसे सब देव भी मिलकर मिटा नहीं सकते । जैसे द्रौपदी ने मध्यम पाण्डव अर्थात् अर्जुन के गले में वरमाला ड़ाली थी, परंतु उसने पांचों ही पांडवों के गले में माला ड़ाली ऐसा लोक में प्रसिद्ध हो गया – यह लोकवाद है ।

भावार्थ – लोकवादी लोक में जो प्रवृत्तिरूप है उसी को मानते हैं । बहुत कहने से क्या ? ॥८९३॥

जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा ।
जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया ॥८९४॥

यावंतो वचनपथाः तावंतश्चैव भवंति नयवादाः ।
यावंतो नयवादास्तावंतश्चैव भवंति परसमयाः ॥८९४॥

टीका – जितने वचन के मार्ग हैं, उतने ही नयवाद हैं । जितने नयवाद हैं, उतने ही परसमय हैं ।

भावार्थ – जो कुछ वचन बोले जाते हैं, वह किसी अपेक्षा से बोले जाते हैं, वहां उस अपेक्षारूप वही नय जानना । परंतु जहां उसीको अन्य अपेक्षा रहित *(सर्वथा)* ग्रहण करते हैं, वहां मिथ्यामत होता है । इसलिए जितने वचन के प्रकार हैं, उतने नय हैं, और जितने नय हैं, उतने मिथ्यामत हैं ॥८९४॥

वहां परसमयी मिथ्यामतियों के वचन असत्य कैसे कहते हैं ? उसका कारण कहते हैं –

परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होइ सव्वहा वयणा ।
जेणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचिवयणादो ॥८९५॥

परसमयानां वचनं मिथ्या खलु भवंति सर्वथा वचनात् ।
जैनानां पुनर्वचनं सम्यक् खलु कथंचिद्वचनात् ॥८९५॥

टीका – परसमयी मिथ्यामतियों के वचन असत्य हैं, क्योंकि उनके सर्वथा वचन हैं ।

परसमयी जिस वचन को कहते हैं उसीको सर्वथा एकांतपने से कहते हैं, उसके प्रतिपक्षी को नहीं कहते । वस्तु तो उसरूप भी है और उसके प्रतिपक्षस्वरूप भी है । इसलिए उनका वचन असत्य है । जैसे, वस्तु तो नित्य, अनित्य दोनोंरूप है, कोई उसको नित्य ही कहता है और कोई अनित्य ही कहता है – उनके वचन प्रमाण कैसे हो सकते हैं ? तथा जिनदेव के उपासक जैनी हैं, उनके वचन सम्यक् हैं – सत्य हैं; क्योंकि इनके कथंचित् *(किसी अपेक्षा से)* वचन हैं ।

जैनमत स्याद्वादरूप है । स्यात् शब्द का अर्थ कथंचित् है । जैनी जिस वचन को कहते हैं, उसको किसी एक प्रकार से कहते हैं । सर्वथा नियम नहीं

कहते । वस्तु भी उसरूप किसी एक प्रकार से ही है । जैसे, वस्तु द्रव्य अपेक्षा नित्य है, पर्याय अपेक्षा अनित्य है, इसलिए जैनियों के वचन सत्य हैं ।

भावार्थ – जितने वचन के मार्ग हैं, उतने नय हैं, उनको प्रतिपक्षी की अपेक्षा रहित एकांतपने से ग्रहण करनेपर मिथ्यारूप होते हैं और प्रतिपक्षी की सापेक्षता से स्याद्वादपने ग्रहण करनेपर सम्यक्रूप होते हैं ॥८९५॥

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका में कर्मकाण्ड में भावचूलिका नामक सातवां अधिकार समाप्त हुआ ॥७॥

त्रिकरणचूलिकाधिकार ॥८॥

॥ मंगलाचरण ॥

करि निज कारज करणकरि कर्मसमूह खिपाय ।
भए शुद्ध परमातमा नमौं-नमौं शिवराय ॥८॥

णमह गुणरयणभूसण सिद्धंतामियमहद्धिभवभावं ।
वरवीरणंदिचंदं णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं ॥८९६॥

नमत गुणरत्नभूषण सिद्धांतामृतमहाब्धिभवभावं ।
वरवीरनंदिचंद्रं निर्मलगुणमिंद्रनंदिगुरुं ॥८९६॥

टीका – जिसके गुणरूपी रत्न के आभूषण हैं ऐसे चामुंडराय को संबोधन करते हैं कि – हे गुणरत्नभूषण ! तुम उत्कृष्ट वीरनंदी नामक आचार्य जो चन्द्रमा समान है, उन्हें नमस्कार करो । लोक में चन्द्रमा को समुद्र से उत्पन्न हुआ कहते हैं । वीरनंदी आचार्यरूप चन्द्रमा सिद्धांतरूपी अमृतमयी महासागर से प्रकट हुये हैं। ✱ पुनश्च जिनमें निर्मल गुण हैं ऐसे इन्द्रनंदी नामक गुरु को तुम नमस्कार करो । इसतरह श्रोतृजन को सावधान करके तीन करणों का व्याख्यान करते हैं । जीवकाण्ड के गुणस्थानाधिकार में प्रसंग पाकर तीन करणों का स्वरूप कहा । यहां आचार्य पृथक् अधिकार द्वारा कहते हैं । यदि यहां कोई अर्थ स्पष्ट जानने में न आये, तो वहां देख लेना ॥८९६॥

इगिवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं ।
पढमं अधापवत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो ॥८९७॥

एकविंशतिमोहक्षपणोपशमननिमित्तानि त्रिकरणानि तस्मिन् ।
प्रथममधःप्रवृत्तं करणं तु करोत्यप्रमत्तः ॥८९७॥

टीका – अनंतानुबंधी चतुष्क के बिना अवशेष चारित्रमोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों की क्षपणा और उपशम के कारणभूत ऐसे *(तीन प्रकार के परिणाम)*

अध:प्रवृत्तकरण *(अध:करण)*, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण तीन हैं । उनमें से पहले अध:प्रवृत्तकरण को सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती ही करता है ॥८९७॥

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥८९८॥

यस्मादुपरितनभावा अधस्तनभावैः सदृशका भवंति ।
तस्मात्प्रथमं करणमधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टं ॥८९८॥

टीका – क्योंकि इस करण में ऊपर के समय संबंधी भाव नीचे के समय संबंधी भावों के समान हो सकते हैं । जैसे किसी जीव के दूसरे, तीसरे आदि *(ऊपर के)* समय में जैसा भाव होता है, वैसा ही भाव किसी अन्य जीव के पहले ही समय में होता है । इसलिए पहला करण अध:प्रवृत्त है ऐसा कहा है ॥८९८॥

अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा ।
लोगाणमसंखपमा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥८९९॥

अंतर्मुहूर्तमात्रस्तत्कालो भवति तत्र परिणामाः ।
लोकानामसंख्यप्रमा उपर्युपरि सदृशवृद्धिगताः ॥८९९॥

टीका – उस अध:प्रवृत्तकरण का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है । उस काल में पाये जानेवाले विशुद्धिरूप कषायों के परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण हैं । वे परिणाम पहले समय से लेकर ऊपर-ऊपर समान चय से बढ़ते हैं । पहले समय के परिणामों से दूसरे समय के परिणाम जितने अधिक हैं, उतने ही दूसरे समय के परिणामों से तीसरे समय के परिणाम अधिक हैं । इसतरह अंतिम समय तक समान वृद्धि जानना ॥८९९॥

बावत्तरितिसहस्सा सोलस चउ चारि एक्कयं चेव ।
धणअद्धाणविसेसे तियसंखा होइ संखेज्जे ॥९००॥

द्वासप्ततित्रिसहस्राणि षोडश चतुष्कं चत्वारि एकं चैव ।
धनाध्वानविशेषाः त्रयसंख्या भवति संख्येये ॥९००॥

टीका – वहां प्रथम अंकों की सहनानी *(चिन्ह)* द्वारा कथन दिखाते हैं । वहां सर्वधन तीन हजार बहत्तर, ऊर्ध्वरूप अध्वान अर्थात् गच्छ सोलह, तिर्यक्रूप गच्छ चार, ऊर्ध्वरूप विशेष *(चय)* चार, तिर्यक्रूप विशेष एक, चय का प्रमाण निकालने के लिये संख्यात की सहनानी तीन है ।

वहां करण के सर्वसमय संबंधी परिणामों का समूह, वह सर्वधन है । करणकाल के जितने समय हो उनकी ऊपर-ऊपर रचना करना, इसलिए उस काल के समयों का प्रमाण ऊर्ध्वगच्छ वा पद जानना । एक समयवर्ती किन्ही जीवों के कितने परिणाम पाये जाते हैं, किन्ही के कितने परिणाम पाये जाते हैं – ऐसे एक समय में जितने खण्ड होते हैं, उनकी विवक्षित समय की रचना के बराबर रचना करना । इसलिए उन खण्डों के प्रमाण को अनुकृष्टि का तिर्यक्गच्छ या पद कहते हैं । प्रतिसमय जितने परिणाम क्रम से बढ़ते हैं उसको ऊर्ध्वरूप अनुकृष्टि का विशेष या चय या प्रचय या उत्तर कहते हैं । प्रत्येक खण्ड में जितने-जितने परिणाम क्रम से बढ़ते हैं, उसको तिर्यक्रूप अनुकृष्टि का विशेष या चय या प्रचय या उत्तर कहते हैं । आगे चय का प्रमाण जानने के लिये संख्यात का भाग देंगे, वहां अंकसंदृष्टि में संख्यात की जगह तीन का अंक जानना ॥९००॥

आदिधणादो सव्वं पचयधणं संखभागपरिमाणं ।
करणे अधापवत्ते होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥९०१॥

आदिधनात्सर्वं प्रचयधनं संख्यभागपरिमाणं ।
करणेऽध:प्रवृत्ते भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥९०१॥

टीका – अध:प्रवृत्तकरण में सर्व प्रचयधन आदिधन के संख्यातवें भागप्रमाण है । सर्वसमय संबंधी जो चय उनका जोड़ देनेपर जो प्रमाण होता है वह प्रचयधन *(चयधन)* है । जो-जो चय बढ़ते हैं उनके बिना सर्व समय संबंधी आदि के प्रमाण का जोड़ देनेपर जो प्रमाण आता है, उसे आदिधन कहते हैं । वहां 'पदकृत्या संख्यातेन सर्वधने भक्ते ऊर्ध्वचयप्रमाणं स्यात' अर्थात् पद की कृति *(वर्ग)* और संख्यात का भाग सर्वधन को देनेपर ऊर्ध्वचय का प्रमाण होता है । वहां पद अर्थात् गच्छ सोलह, उसकी

कृति अर्थात् वर्ग दो सौ छप्पन और संख्यात की सहनानी तीन, इनका भाग सर्वधन तीन हजार बहत्तर को देनेपर चार आये, वही ऊर्ध्वचय का प्रमाण जानना । पुनश्च 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' अर्थात् एक कम पद के आधे को चय से और गच्छ से गुणा करनेपर प्रचयधन होता है । वहां एक कम गच्छ-पंद्रह-उसका आधा साढ़े सात, उसको चय *(४)* से गुणा करनेपर तीस होते हैं, उसको गच्छ से गुणा करनेपर चार सौ अस्सी होते हैं, वही उत्तरधन जानना । इसको सर्वधन तीन हजार बहत्तर में से घटानेपर पच्चीस सौ बानबे रहे, वह आदिधन जानना ।

पुनश्च प्रमाणराशि चार सौ अस्सी, फलराशि शलाका एक, इच्छाराशि पच्चीस सौ बानबे; वहां फलराशि से इच्छा राशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर सत्ताइस के पांचवें भागप्रमाण शलाका हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि शलाका सत्ताइस का पांचवां भाग, फलराशि पच्चीस सौ बानबे, इच्छाराशि एक शलाका करनेपर, वहां फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर, चार सौ अस्सी आये । इसतरह त्रैराशिक करके आदिधन पच्चीस सौ बानबे को सत्ताइस के पांचवें भाग का भाग देना, तब उत्तरधन *(चयधन)* चार सौ अस्सी होता है इसलिए आदिधन के संख्यातवें भागप्रमाण उत्तरधन कहा है ॥९०१॥

उभयधणे संमिलिदे पदकदिगुणसंखरूवहदपचयं ।
सव्वधणं तं तम्हा पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं ॥९०२॥

उभयधने संमिलिते पदकृतिगुणसंख्यरूपहतप्रचयः ।
सर्वधनं तत्तस्मात् पदकृतिसंख्येन भाजिते प्रचयं ॥९०२॥

टीका – आदिधन और प्रचयधन दोनों मिलानेपर सर्वधन होता है । इसलिए गच्छ के वर्ग को संख्यात से और चय से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना होता है । यहां गच्छ सोलह, उसका वर्ग दो सौ छप्पन, संख्यात की सहनानी तीन, उससे गुणा करनेपर सात सौ अड़सठ, उसे चय चार से गुणा करनेपर तीन हजार बहत्तर होते हैं – वही आदिधन और उत्तरधन मिलानेपर होता है; इसलिए पद का वर्ग और संख्यात का भाग सर्वधन को देनेपर जो प्रमाण होता है वही चय का प्रमाण कहा है ॥९०२॥

चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं ।
आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं ॥९०३॥

चयधनहीनं द्रव्यं पदभक्ते भवति आदिपरिमाणं ।
आदौ चये वृद्धे प्रतिसमयधनं तु भावानां ॥९०३॥

टीका – उस सर्वधन तीन हजार बहत्तर में से चयधन चार सौ अस्सी कम करनेपर पच्चीस सौ बानबे होते हैं उसको पद अर्थात् गच्छ सोलह का भाग देनेपर एक सौ बासठ आये, वही प्रथम समय संबंधी विशुद्ध परिणामों का प्रमाण जानना । उसमें एक चय चार मिलानेपर एक सौ छासठ दूसरे समय संबंधी जानना । उसमें एक चय मिलानेपर एक सौ सत्तर तीसरे समय संबंधी जानना । ऐसे ऊपर-ऊपर रचना द्वारा एक-एक चय बढ़ानेपर समय-समय प्रति अध:प्रवृत्तकरण के विशुद्ध परिणामों का प्रमाण आता है । १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ ॥९०३॥

पचयधणस्साणयणे पचयं पभवं तु पचयमेव हवे ।
रूऊणपदं तु पदं सव्वत्थवि होदि णियमेण ॥९०४॥

प्रचयधनस्यानयने प्रचय: प्रभवस्तु प्रचय एव भवेत् ।
रूपोनपदं तु पदं सर्वत्रापि भवति नियमेन ॥९०४॥

टीका – प्रचयधन लाने के लिये आदि-उत्तर गच्छ स्थापित कर श्रेणी व्यवहार विधान कहते हैं – वहां प्रचय अर्थात् उत्तर *(चय)* अर्थात् जितना-जितना बढ़ता है वह है और प्रभव अर्थात् आदि में हो वह आदि – ये दोनों तो यहां प्रचय का जो प्रमाण है, उसप्रमाण जानना । पहले स्थान में चय का अभाव है इसलिए यहां गच्छ का प्रमाण विवक्षित गच्छ के प्रमाण से एक कम जानना । यहां ऊर्ध्वरचना में चय का प्रमाण चार है, इसलिए आदि चार, उत्तर चार और गच्छ का प्रमाण सोलह में से एक घटानेपर गच्छ पंद्रह । वहां –

पदमेगेण विहीणं दु भाजिदं उत्तरेण संगुणिदं ।
पभवजुदं पदगुणिदं पदगुणिदं होदि सव्वत्थ ॥ त्रि. सार-१६४॥

इस करणसूत्र से जोड़ते हैं । एक कम पद *(गच्छ)* को दो का भाग देकर चय से गुणा करके आदि को मिलाकर गच्छ से गुणा करते हैं तब गच्छ का जोड़ होता है । इसतरह यहां गच्छ पंद्रह में से एक घटानेपर एक कम पद चौदह हुये । उसको दो का भाग देनेपर सात उसको चय चार से गुणा करनेपर अट्ठाइस, उसमें आदि चार मिलानेपर बत्तीस, उसको गच्छ पंद्रह से गुणा करनेपर चार सौ अस्सी होते हैं । वही प्रचयधन का प्रमाण जानना ॥९०४॥

आगे अनुकृष्टि अर्थात् नीचे के और ऊपर के समयों में समानता के खण्ड कहते हैं । वहां प्रथम खण्ड का प्रमाण कहते हैं –

पडिसमयधणेवि पदं पचयं पभवं च होइ तेरिच्छे ।
अणुकट्टिपदं सव्वद्धाणस्स य संखभागो हु ॥९०५॥

प्रतिसमयधनेऽपि पदं प्रचयः प्रभवश्च भवति तिरश्चि ।
अनुकृष्टिपदं सर्वाध्वानस्य च संख्यभागो हि ॥९०५॥

टीका – अनुकृष्टि का प्रतिसमय धन लाने के लिये अनुकृष्टि का गच्छ चय आदि सर्व तिर्यक्रूप ही है । जहां पहले समय संबंधी परिणाम लिखे थे, उसी के आगे बरोबर पहले समय संबंधी अनुकृष्टि के खण्डों के परिणाम लिखना । ऐसे ही सर्व समयों प्रति तिर्यक्रचना जानना । वहां अनुकृष्टि का गच्छ ऊर्ध्वगच्छ के संख्यातवें भागप्रमाण है । अंकों की सहनानी *(संदृष्टि)* द्वारा – ऊर्ध्वगच्छ सोलह को संख्यात की सहनानी चार का भाग देनेपर अनुकृष्टि का गच्छ चार जानना ॥९०५॥

अणुकट्टिपदेण हदे पचये पचयो दु होइ तेरिच्छे ।
पचयधणूणं दव्वं सगपदभजिदं हवे आदी ॥९०६॥

अनुकृष्टिपदेन हते प्रचये प्रचयस्तु भवति तिरश्चि ।
प्रचयधनोनं द्रव्यं स्वकपदभाजितं भवेदादि ॥९०६॥

टीका – अनुकृष्टि के गच्छ का भाग ऊर्ध्वचय को देनेपर जो प्रमाण होता है, वही अनुकृष्टि के चय का प्रमाण जानना । अनुकृष्टि का गच्छ चार, उसका

ऊर्ध्वचय चार को भाग देनेपर एक आया, वही अनुकृष्टि का चय जानना । पुनश्च 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्र से एक कम गच्छ तीन, उसका आधा डेढ़ उसको चय एक से गुणा करके भी डेढ़ आया, उसको गच्छ से गुणा करनेपर छह हुये, वह अनुकृष्टि में प्रचयधन जानना । प्रथम समय संबंधी परिणाम एक सौ बासठ — वही प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि का सर्वधन है, उसमें से प्रचयधन छह घटानेपर एक सौ छप्पन रहे, उसको अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर उनतालीस आये, वही प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड का प्रमाण जानना ॥९०६॥

आदिम्मि कमे वड्ढदि अणुकट्टिस्स य चयं तु तेरिच्छे ।
इदि उड्ढतिरियरयणा अधापवत्तम्मि करणम्मि ॥९०७॥

आदौ क्रमेण वर्धते अनुकृष्टेश्च चयस्तु तिरश्चि ।
इति ऊर्ध्वतिर्यग्रचना अध:प्रवृत्ते करणे ॥९०७॥

अंकसंदृष्टि की अपेक्षा अध:करण रचना

सोलह समयों की ऊर्ध्वरचना	अनुकृष्टिरूप एक-एक समयसंबंधी चार खण्डों की तिर्यक्रचना			
	प्रथमखण्ड	द्वितीयखण्ड	तृतीयखण्ड	चतुर्थखण्ड
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

टीका – उस आदि खण्ड से द्वितीयादि खण्डों में क्रम से तिर्यक्रूप एक-एक अनुकृष्टि चय मिलानेपर द्वितीयादि खण्डों का प्रमाण आता है । यहां आदि खण्ड उनतालिस में एक-एक चय बढ़नेपर प्रथम समय के खण्डों में उनतालीस, चालीस, इकतालीस, बयालीस प्रमाण होता है । इसी प्रकार दूसरे समय संबंधी अनुकृष्टि के खण्डों में चालीस, इकतालीस, बयालीस, तैंतालीस प्रमाण होता है । इसतरह दूसरे समय संबंधी और पहले समय संबंधी चालीस, इकतालीस, बयालीस के प्रमाण की समानता हुयी । इसीतरह तृतीयादि समयों में अनुकृष्टि रचना द्वारा खण्डों में परिणामों का प्रमाण और नीचे के समय संबंधी परिणामों की समानता जानना । इसतरह ऊर्ध्वरूप और तिर्यक्रूप दोनों रचना अध:प्रवृत्तकरण में हैं, सो जानना ।

जैसे अंकों की सहनानी द्वारा दृष्टांतरूप कथन दिखाया, वैसे ही अर्थसंदृष्टि द्वारा कथन जानना । वहां अर्थसंदृष्टि तो आगे संदृष्टि अधिकार में लिखेंगे – वहां जानना । तथा अर्थ यहां लिखते हैं –

अध:करण के सर्व परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण, वह सर्वधन जानना । अध:प्रवृत्तकरण के काल के समयों का प्रमाण गच्छ जानना । गच्छ के वर्ग को संख्यातगुणा करके उसका भाग सर्वधन को देनेपर जो प्रमाण हो, वह ऊर्ध्वचय जानना । एक कम गच्छ के आधे को चय से तथा गच्छ से गुणा करनेपर प्रचयधन होता है । इसको सर्वधन में से घटानेपर जो रहे *(आदिधन रहता है)* उसको गच्छ का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है वह प्रथम समय संबंधी परिणामों का प्रमाण है । इसमें एक चय मिलानेपर दूसरे समय संबंधी *(परिणामों का प्रमाण)* होता है – ऐसे एक-एक चय मिलाते हुये दो कम गच्छप्रमाण चय मिलानेपर द्विचरम संबंधी होता है, इसमें एक चय मिलानेपर अंत समय संबंधी होता है । अब अनुकृष्टि रचना कहते हैं –

जिस समय संबंधी अनुकृष्टि हो, उस समय के परिणामों का समूह वह उस अनुकृष्टि का सर्वधन है । अध:प्रवृत्तकरण के काल के जितने समय हैं, उसको संख्यात का भाग देनेपर जो प्रमाण हो, वह अनुकृष्टि का गच्छ जानना । अनुकृष्टि गच्छ का ऊर्ध्वचय को भाग देनेपर अनुकृष्टि में चय का प्रमाण आता है । एक कम अनुकृष्टि गच्छ के अर्धप्रमाण को अनुकृष्टि के चय से गुणा करनेपर अनुकृष्टि के प्रचयधन का प्रमाण होता

करके अनुकृष्टि गच्छ से गुणा

है । उसको प्रथम समय संबंधी परिणामों में से घटाकर अवशेष रहे, उनको अनुकृष्टि के गच्छ का भाग देनेपर जो प्रमाण हो वही प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड में प्रमाण होता है । इसमें एक चय मिलानेपर दूसरे खण्ड में प्रमाण होता है। ऐसे एक-एक चय मिलाते हुये एक कम अनुकृष्टि-गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि के अंत खण्ड में प्रमाण होता है ।

उस प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड के प्रमाण में एक अनुकृष्टि का चय मिलानेपर दूसरे समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड में प्रमाण होता है । द्वितीयादि खण्डों में एक-एक चय मिलाकर एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर दूसरे समय संबंधी अनुकृष्टि के अंत के खण्ड में प्रमाण होता है । प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड के प्रमाण में दो कम ऊर्ध्वगच्छ प्रमाण अनुकृष्टि के चय मिलानेपर द्विचरम समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड में प्रमाण होता है ।

द्वितीयादि खण्डों में एक-एक चय मिलाते हुये एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर उसी के अंतिम खण्ड में प्रमाण होता है । द्विचरम समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड के प्रमाण में एक अनुकृष्टिचय मिलानेपर अंत समय संबंधी अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड में प्रमाण होता है । द्वितीयादि खण्डों में एक-एक चय मिलाते हुये एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर अधःप्रवृत्तकरण के अंत समय संबंधी अनुकृष्टि के अंत खण्ड में प्रमाण होता है । यहां ऐसा अर्थ जानना ।

अप्रमत्तसंयमी उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी चढ़ने के लिये अधःप्रवृत्तकरण करता है, उसका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है तथापि अनिवृत्तिकरण के काल से संख्यातगुणा ऐसे अपूर्वकरण के काल से भी संख्यातगुणा है । वहां संज्वलन कषाय के देशघाति स्पर्धकों के उदयरूप विशुद्धपरिणामों के स्थान हैं वे अन्य प्रत्याख्यानादि कषायों के साथ उदय में आनेवाले संज्वलन कषाय के सर्वघाति स्पर्धकों के उदयरूप संक्लेशस्थानों के असंख्यातवें भाग हैं, तथापि वे असंख्यातलोकप्रमाण हैं । वहां भी अनुकृष्टि के जघन्य-पहले खण्ड का जघन्य विशुद्ध परिणामरूप स्थान सर्वज्ञ के द्वारा देखा हुआ ऐसा अष्टांक अर्थात् अनंतगुणवृद्धिवाला है । पूर्व परिणाम के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण से अनंतगुणे अविभागप्रतिच्छेदों के समूहरूप वह स्थान है । कषायों के उदयरूप स्थान असंख्यातलोक हैं । वहां अविभागप्रतिच्छेदों की

अपेक्षा परिणामों का प्रमाण अनंत है और जैसे-जैसे निर्मलता होती है, वैसे-वैसे विशुद्धता के अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते हैं, इसलिए यहां अनंतगुणपना पाया जाता है । उस पहले खण्ड के जघन्य से उसीका उत्कृष्ट अनंतगुणा है ।

किस कारण ? उस जघन्य के ऊपर सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण अंनतभागवृद्धिरूप स्थान होनेपर एक बार असंख्यातभागवृद्धि स्थान होता है ।

इसीप्रकार उतने ही *(अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग बार)* वैसे असंख्यातभागवृद्धिरूप स्थान होनेपर पुनः एक बार पूर्ववत् होनेपर अंत में असंख्यातभागवृद्धि की जगह संख्यातभागवृद्धि होती है । इसीप्रकार उतने ही वैसे संख्यातभागवृद्धिरूप स्थान होकर पुनः एकबार पूर्ववत् होनेपर अंत में संख्यातभागवृद्धि की जगह संख्यातगुणवृद्धि होती है ।

इसीप्रकार उतने ही वैसे संख्यातगुणवृद्धि के स्थान होनेपर पुनः एकबार पूर्ववत् होनेपर अंत में संख्यातगुणवृद्धि की जगह असंख्यातगुणवृद्धि होती है । इसीप्रकार उतने ही वैसे असंख्यातगुणवृद्धिरूप स्थान होनेपर पुनः एकबार पूर्ववत् होनेपर अंत में असंख्यातगुणवृद्धि की जगह अनंतगुणवृद्धि होती है ।

इसतरह एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के घन से उसीके वर्ग को गुणा करके जो प्रमाण होता है, उसप्रमाण *(उतनी बार)* वृद्धियों के पलटनेपर एक षट्स्थानपतित वृद्धिरूप स्थान होता है । जीवकाण्ड के ज्ञानमार्गणा अधिकार में पर्याससमास श्रुतज्ञान के वर्णन में षट्स्थानपतित वृद्धि का जैसा विस्तार से वर्णन किया है वैसा यहां भी जानना ।

ये षट्स्थानवृद्धिरूप स्थान उन कषायस्थानों में असंख्यातलोकप्रमाण पाये जाते हैं, इसलिये जघन्य से उत्कृष्ट को अनंतगुणा कहा ।

पुनश्च प्रथम खण्ड के उत्कृष्ट से दूसरे खण्ड का जघन्य अनंतगुणा है, क्योंकि षट्स्थानवृद्धिरूप स्थानों में आठ के अंक की सहनानीरूप *(अष्टांकरूप)* अनंतगुणवृद्धि पीछे ही पीछे होकर वहां दूसरे खण्ड का जघन्यपना होता है । इससे उसका उत्कृष्ट अनंतगुणा है । इसीतरह सर्व खण्डों में अपने-अपने जघन्य से अपना-अपना उत्कृष्ट अनंतगुणा तथा उस उत्कृष्ट से अनंतर स्थान का जघन्य अनंतगुणा जानना ।

प्रथम समय का प्रथम खण्ड और अंत समय का अंत खण्ड बिना अन्य सब ऊपर के खण्ड संबंधी परिणामों की नीचे के खण्ड संबंधी परिणामों से यथासंभव समानता है । इसतरह इस करण का नाम अध:प्रवृत्त है ॥९०७॥

अंतोमुहुत्तकालं गमिऊण अधापवत्तकरणं तु ।
पढिसमयं सुज्झंता अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥९०८॥

अंतर्मुहूर्तकालं गमयित्वा अध:प्रवृत्तकरणं तु ।
प्रतिसमयं शुद्धयन्नपूर्वकरणं समाश्रयति ॥९०८॥

टीका – अंतर्मुहूर्त काल तक प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता से बढ़ता हुआ सातिशय अप्रमत्तसंयमी अध:प्रवृत्तकरण को समाप्त करके अपूर्वकरण को प्राप्त होता है ॥९०८॥

छण्णउदिचउसहस्सा अट्ठ य सोलस धणं तदद्धाणं ।
परिणामविसेसोवि य चउ संखापुव्वकरणसंदिट्ठि ॥९०९॥

षण्णवतिचतु:सहस्री अष्टौ च षोडश धनं तदध्वान: ।
परिणामविशेषोपि च चत्वारि संख्यातान्यपूर्वकरणसंदृष्टि: ॥९०९॥

टीका – उस अपूर्वकरण में अंकसंदृष्टि इसप्रकार है – सर्वधन चार हजार छानबे, अध्वान अर्थात् गच्छ आठ, परिणामविशेष *(चय)* सोलह और संख्यात का प्रमाण चार जानना । यहां अपूर्वकरण के सर्व स्थानों का प्रमाण सर्वधन है । अपूर्वकरण के काल के समयों का प्रमाण गच्छ है । प्रतिसमय जितने-जितने बढ़ते हो वे परिणामविशेष जानना, इसी का नाम चय है । चय के साधने के लिये संख्यात का प्रमाण जानना ॥९०९॥

अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
कमउड्ढापुव्वगुणे अणुकट्टी णत्थि णियमेण ॥९१०॥

अंतर्मुहूर्तमात्रे प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामा: ।
क्रमवृद्धा: अपूर्वगुणे अनुकृष्टिर्नास्ति नियमेन ॥९१०॥

टीका – उस अपूर्वकरण का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है । उसमें प्रतिसमय असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम पाये जाते हैं, वे प्रथम समय से लेकर अंत समय तक समान चय से बढ़ते-बढ़ते *(अधिक-अधिक)* हैं । उनमें अनुकृष्टि रचना नहीं है, क्योंकि ऊपर के समय संबंधी परिणामों की नीचे के समय संबंधी परिणामों से समानता नहीं पायी जाती । किसी जीव का प्रथम समय में उत्कृष्ट परिणाम हो और किसी जीव के दूसरे समय में जघन्य परिणाम हो, तो भी उससे उसके पहले समय के उत्कृष्ट परिणाम से दूसरे समय के जघन्य परिणाम की अधिकता ही पायी जाती है । इसलिए यहां जिनको अपूर्वकरण शुरु करके पहला समय है, उन अनेक जीवों के परिणामों की समानता भी हो सकती है, असमानता भी हो सकती है; परंतु जिनके अपूर्वकरण प्रारंभ करके द्वितीयादि समय हुये हैं, उनके परिणामों से कभी भी समानता नहीं होगी ।

इसीतरह जिनके अपूर्वकरण शुरु करके द्वितीयादि समय हुये हैं उनके परिणामों की परस्पर में समानता या असमानता जानना तथा ऊपर और नीचे के समयवालों से असमानता जानना । इसीकारण इसका अपूर्वकरण नाम है ।

अंकसंदृष्टि अपेक्षा अपूर्वकरण का यंत्र

परिणामों की संख्या	समय	क्रमानुसार परिणाम
५६८	८ वां	३५२९ से ४०९६
५५२	७ वां	२९७७ से ३५२८
५३६	६ वां	२४४१ से २९७६
५२०	५ वां	१९२१ से २४४०
५०४	४ था	१४१७ से १९२०
४८८	३ रा	९२९ से १४१६
४७२	२ रा	४५७ से ९२८
४५६	१ ला	१ से ४५६
जोड ४०९६	**८ समय**	**१ से ४०९६**

वहां सर्वधन चार हजार छानबे है । 'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं' इस सूत्र के अनुसार गच्छ आठ का वर्ग चौंसठ तथा संख्यात की सहनानी चार का अंक इनका भाग सर्वधन को देनेपर चय का प्रमाण सोलह आता है । 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्र से एक कम गच्छ का आधा साढ़े तीन को चय सोलह से गुणा करके तथा गच्छ आठ से गुणा करके चार सौ अड़तालीस होते हैं, वही प्रचयधन जानना ।

'चयधणहीनं दव्वं पदभजिदे होदि आदिधनं' इस सूत्र से चयधन चार सौ अड़तालीस को सर्वधन चार हजार छानबे में से घटानेपर छत्तीस सौ अड़तालीस रहे, उसको गच्छ आठ का भाग देनेपर चार सौ छप्पन हुये, वही प्रथम समय संबंधी भावों का प्रमाण जानना ।

पुनश्च 'आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं' इस सूत्र से आदि के प्रमाण में एक-एक चय का प्रमाण सोलह सोलह क्रम से मिलानेपर समय-समय संबंधी भावों का प्रमाण होता है । प्रथम समय के चार सौ छप्पन में एक चय मिलानेपर दूसरे समय के चार सौ बहत्तर, उसमें एक चय मिलानेपर तीसरे समय के चार सौ अट्ठासी – ऐसे ही अंत समय तक जानना ।

इस दृष्टांत से ऐसा अर्थ जानना कि अधःप्रवृत्तकरण के परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण उनको असंख्यातलोकगुणा करनेपर अपूर्वकरण का सर्वधन होता है । अपूर्वकरण के काल का प्रमाण गच्छ है ।

गच्छ के वर्ग को संख्यातगुणा करके उसका भाग सर्वधन को देनेपर चय का प्रमाण होता है । एक कम गच्छ के आधे को चय से गुणा करके गच्छ से गुणा करनेपर प्रचयधन का प्रमाण होता है । प्रचयधन को सर्वधन में से घटाकर अवशेष को गच्छ का भाग देनेपर प्रथम समय के भावों का प्रमाण होता है ।

द्वितीयादि समयों में प्रमाण लाने के लिये एक-एक चय मिलाते हुये, एक कम गच्छप्रमाण चय मिलानेपर अंत समय में प्रमाण होता है । इनकी संदृष्टि आगे संदृष्टि अधिकार में लिखेंगे वहां जानना ।

यहां ऐसा अर्थ है कि –

अपूर्वकरण का सर्वधन अधःप्रवृत्तकरण के सर्वधन से असंख्यातलोकगुणा है । वहां प्रथम समय संबंधी परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं । द्वितीयादि समयों में भी असंख्यातलोकप्रमाण ही हैं परंतु *(पूर्व समय संबंधी परिणामों से)* चयप्रमाण से अधिक-अधिक हैं ।

वहां प्रथम समय संबंधी जघन्य परिणाम अधःप्रवृत्तकरण के अंत समय के अंत अनुकृष्टि खण्ड के *(उत्कृष्ट)* विशुद्धपरिणाम से अनंतगुणा है । उससे प्रथम समय संबंधी उत्कृष्ट अनंतगुणा है, क्योंकि यहां भी असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थान पाये जाते हैं । उससे द्वितीय समय संबंधी जघन्य परिणाम अनंतगुणा *(विशुद्ध)* है ।

इसीतरह अंत समय तक जानना । यहां ऊपर के समय संबंधी परिणाम नीचे के समय संबंधी परिणामों के समान कभी भी नहीं होते; इसलिए इसको अपूर्वकरण कहते हैं ॥९१०॥

आगे अनिवृत्तिकरण का स्वरूप कहते हैं –

एकम्हि कालसमये संठाणादीहिं जहा णिवट्टंति ।
ण णिवट्टंति तहावि य परिणामेहिं मिहो जे हु ॥९११॥

एकस्मिन् कालसमये संस्थानादिभिर्यथा निवर्तंते ।
न निवर्तंते तथापि च परिणामैर्मिथो ये हि ॥९११॥

टीका – जो जीव अनिवृत्तिकरणकाल के विवक्षित एक समय में शरीर का संस्थान, वर्ण, वय *(उमर)* आदि की अपेक्षा जैसे निवर्तते हैं अर्थात् भेदरूप हैं अर्थात् किसी जीव के कैसे ही संस्थान, वर्णादिक पाये जाते हैं, किसी जीव के अन्य कैसे ही पाये जाते हैं, वैसे परिणामों की अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरणवत् भेदरूप नहीं होते ।

जिनको अनिवृत्तिकरण मांड़कर पहला समय होता है, ऐसे त्रिकाल संबंधी अनंत जीवों के समान परिणाम ही होते हैं, अन्य-अन्यरूप सर्वथा नहीं होते । इसीतरह द्वितीयादि समयवर्ती जीवों के परस्पर में समानता जानना ॥९११॥

इसीतरह अर्थ को प्रकट करते हैं –

होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जस्सिमेक्कपरिणामो ।
विमलयरझाणहुदवह सिहाहि णिद्दड्ढकम्मवणा ॥९१२॥

भवंति अनिवर्तिनस्ते प्रतिसमयं येषामेकपरिणामः ।
विमलतरध्यानहुतवह शिखाभिर्निर्दग्धकर्मवनाः ॥९१२॥

टीका – जिस करण में अनेक जीवों के प्रतिसमय के परिणाम एकरूप-एकरूप ही हैं वे परिणाम, अतिशय निर्मल ध्यानरूपी अग्निशिखा से जिन्होंने कर्मरूपी वन दग्ध किये हैं, ऐसे अनिवृत्तिरूप कहलाते हैं । उसके कालप्रमाणरूप गच्छ अंकसंदृष्टि की अपेक्षा चार है, यथार्थ में अंतर्मुहूर्तप्रमाण है ॥९१२॥

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका में कर्मकाण्ड में त्रिकरणचूलिका नामक आठवां अधिकार समाप्त हुआ ॥८॥

कर्मस्थितिरचनाधिकार ॥९॥

॥ मंगलाचरण ॥

करि विनष्ट सब कर्मकी थिति रचना सद्भाव ।
परमेष्ठी परमात्मा भए भजौं शिवराव ॥९॥

सिद्धे विसुद्धणिलये पणट्ठकम्मे विणट्ठसंसारे ।
पणमिय सिरसा वोच्छं कम्मट्ठिदिरयणसब्भावं ॥९१३॥

सिद्धान् विशुद्धनिलयान् प्रणष्टकर्मण: विनष्टसंसारान् ।
प्रणम्य शिरसा वक्ष्यामि कर्मस्थितिरचना सद्भावं ॥९१३॥

टीका – प्रकर्षपने नष्ट हुये हैं घाति-अघाति कर्म जिनके, विशेषपने नष्ट किया है संसार जिन्होंने तथा शुद्ध आत्मप्रदेशों में है निलय-स्थान जिनका—ऐसे जो सिद्धपरमेष्ठी उनको मस्तक झुकाकर प्रकर्षपने नमस्कार करके कर्मस्थितिरचना के सद्भाव को कहता हूँ । कर्मों की स्थिति में प्रति समय के निषेकों में कितना-कितना कार्माणद्रव्य पाया जाता है ऐसी रचना के अस्तित्व अर्थात् सत्ता का कथन करता हूँ । यह कथन पूर्व में भी प्रसंग पाकर जीवकाण्ड के योगमार्गणाधिकार में और कर्मकाण्ड के बंध, उदय, सत्त्व अधिकार में कहा है ॥९१३॥

यहां गाथाओं द्वारा आचार्य कहते हैं --

कम्मसरूवेणागय दव्वं ण य एदि उदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स य आबाहा जाव ताव हवे ॥९१४॥

कर्मरूपेणागत द्रव्यं न चैति उदयरूपेण ।
रूपेणोदीरणाया वा आबाधा यावत्तावद्भवेत् ॥९१४॥

टीका – कर्मस्वरूप परिणमित कार्माणद्रव्य जितने काल तक उदयरूप अथवा उदीरणारूप होकर नहीं परिणमता, उतने काल को आबाधाकाल कहते हैं ।

भावार्थ – कर्म बंधने के पश्चात् जितने काल तक उदयरूप या उदीरणारूप न हो सके, उस काल का नाम आबाधाकाल है ।

उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडिकोडि उवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥९१५॥

उदयं प्रति सप्तानामाबाधा कोटीकोटिरुदधीनां ।
वर्षशतं तत्प्रतिभागेन च शेषस्थितीनां च ॥९१५॥

टीका – आयु का जुदा कथन करेंगे, इसलिए सात मूलप्रकृतियों की आबाधा उदय की अपेक्षा एक कोडाकोडीसागर स्थिति की सौ वर्ष है । शेष स्थितियों की आबाधा भी इसी प्रतिभाग से जानना । वही कहते हैं –

एक कोडाकोडीसागर स्थिति की आबाधा सौ वर्ष है, तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय के तीस कोडाकोडीसागर स्थिति की आबाधा कितनी होगी ? ऐसे प्रमाणराशि एक कोडाकोडीसागर, फलराशि सौ वर्ष, इच्छाराशि तीस कोडाकोडीसागर; फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर तीन हजार वर्ष की आबाधा होती है । इसीतरह मोहनीय के सत्तर कोडाकोडीसागर स्थिति की सात हजार वर्ष आबाधा होती है । नाम, गोत्र की बीस कोडाकोडीसागर स्थिति की दो हजार वर्ष आबाधा होती है ॥९१५॥

पुनः विशेष कहते हैं –

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥९१६॥

अंतः कोटीकोटि स्थितेरंतर्मुहूर्त आबाधा ।
संख्यातगुणविहीनः सर्वजघन्यस्थितेर्भवेत् ॥९१६॥

टीका – कोडि *(करोड-कोटी)* के ऊपर और कोडाकोडी से नीचे हो उसे अंतःकोडाकोडी कहते हैं – इतने सागर की स्थिति की आबाधा अंतर्मुहूर्तमात्र है । एक कांडक का प्रमाण चौहत्तर लाख सात हजार चार सौ सात और ग्यारह का सत्ताइसवां भाग *(सागर)*, उसको दस कोडीसागर में से घटानेपर नौ कोडी पच्चीस लाख बानबे हजार पांच सौ बानबे और सोलह का सत्ताइसवां भाग *(सागर)* रहता

है — इतनी स्थिति की आबाधा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तप्रमाण है । उससे संख्यातगुणा हीन ऐसे जघन्य स्थिति की आबाधा उससे संख्यातगुणा हीन है — उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त के संख्यातवें भाग है ॥९१६॥

आयु की आबाधा कहते हैं —

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेपअद्ध वोत्ति हवे ।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥९१७॥

पूर्वाणां कोटित्रिभागादासंक्षेपाद्धा वा इति भवेत् ।
आयुषश्चाबाधा न स्थितिप्रतिभाग आयुषः ॥९१७॥

टीका – आयुकर्म की आबाधा कोडीपूर्व वर्ष के तीसरे भागप्रमाण से लेकर असंक्षेपाद्धा *(आयुसंबंधी जघन्य आबाधाकाल)* तक एक-एक समय कम ऐसे सर्वभेद युक्त है । कोडीपूर्व वर्ष की आबाधा उसका त्रिभाग है, तो तीन पल्य की स्थिति की आबाधा कितनी होती है ? इसप्रकार स्थिति के प्रतिभाग से आयु की आबाधा का प्रमाण सिद्ध नहीं होता; क्योंकि जितनी भुज्यमान आयु शेष रहनेपर परभव की आयु बंधती है, उतना ही वहां बध्यमान आयु की आबाधा का प्रमाण है । कर्मभूमि में आयु का त्रिभाग अवशेष रहनेपर तथा भोगभूमिया वा देव, नारकी के नौ मास वा छह मास अवशेष रहनेपर आयुबंध की योग्यता होती है, इसलिए उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोडि वर्ष का त्रिभाग है — ऐसा जानना ।

पुनश्च आयु की आबाधा जिससे कम नहीं पायी जाती, जिससे और संक्षेप नहीं हो सकता ऐसा जो काल अर्थात् अद्धा उसे असंक्षेपाद्धा कहते हैं । जघन्य आबाधा असंक्षेपाद्धाप्रमाण जानना । यह उदय अपेक्षा आबाधा कही । बंध के पश्चात् उदय हो तो इतने काल पश्चात् होता है ॥९१७॥

आगे उदीरणा की अपेक्षा कहते हैं —

आवलियं आबाहा उदीरणमासिज्ज सत्तकम्माणं ।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ॥९१८॥

आवलिकमाबाधा उदीरणामाश्रित्य सप्तकर्मणां ।
परभवीयायुष्कस्य च उदीरणा नास्ति नियमेन ॥९१८॥

टीका – उदीरणा का आश्रय करके आयु बिना सात कर्मों की आबाधा आवलीमात्र है । बंधने के पश्चात् उदीरणा हो तो आवलीकाल के पश्चात् ही होती है । परभव की बध्यमान आयु की नियम से उदीरणा नहीं होती, क्योंकि उदयरूप भुज्यमान आयु की ही उदीरणा देव, नारकी, उत्कृष्ट चरमशरीरी तथा असंख्यात वर्ष आयु के धारक मनुष्य और तिर्यंच इनके बिना अन्य जीवों के हो सकती है *(इन अन्य में कदलीघात हो सकता है)* ॥९१८॥

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं ।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥९१९॥

आबाधोनितकर्मस्थितिर्निषेकस्तु सप्तकर्मणां ।
आयुषो निषेकः पुनः स्वकस्थितिर्भवति नियमेन ॥९१९॥

टीका – आयु बिना सात कर्मों की जितनी उत्कृष्ट स्थिति है उसमें से आबाधाकाल घटानेपर जो शेष रहे उस काल के समयों का जो प्रमाण – वही निषेकों का प्रमाण जानना । तथा आयुकर्म की जितनी स्थिति हो उसके समयों का जो प्रमाण वही निषेकों का प्रमाण जानना; क्योंकि आयु की आबाधा पूर्वभव की आयु में व्यतीत हो जाती है ॥९१९॥

आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु ।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥९२०॥

आबाधां वा अपलाप्य प्रथमनिषेके देयं बहुकं तु ।
ततो विशेषहीनं द्वितीयस्यादिमनिषेक इति ॥९२०॥

टीका – ज्ञानावरणादि कर्मों की स्थिति में आबाधाकाल के ऊपर पहले समय में प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक है । उसमें बहुत द्रव्य दिया जाता है । उसके ऊपर द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक तक एक-एक चय से हीन-हीन द्रव्य दिया जाता है ॥९२०॥

बिदिये बिदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु ।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि ॥९२१॥

द्वितीये द्वितीयनिषेके हानिः पूर्वहान्यर्धं तु ।
एवं गुणहानिं प्रति हानिरर्धार्धं भवति ॥९२१॥

टीका – दूसरी गुणहानि के दूसरे निषेक में उसीके पहले निषेक से एक चय से हीन द्रव्य जानना । पहली गुणहानि में निषेक-निषेक प्रति जो हानिरूप चय का प्रमाण था उससे दूसरी गुणहानि में हानिरूप चय का प्रमाण आधा जानना । इसीतरह ऊपर-ऊपर की गुणहानि-गुणहानि प्रति हानिरूप चय का प्रमाण आधा-आधा जानना ॥९२१॥

दव्वं ठिदिगुणहाणीणद्धाणं दलसला णिसेयछिदी ।
अण्णोण्णगुणसलावि य जाणेज्जो सव्वठिदिरयणे ॥९२२॥

द्रव्यं स्थितिः गुणहानीनामध्वानं दलशला निषेकच्छितिः ।
अन्योन्यगुणशला अपि च ज्ञातव्यं सर्वस्थितिरचनायां ॥९२२॥

टीका – सर्व कर्मों की स्थितिरचना में – द्रव्य, स्थितिआयाम, गुणहानिआयाम, दलशलाका अर्थात् नानागुणहानि, निषेकच्छेद अर्थात् दोगुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि – ये छह राशियां जानना । वहां कर्मरूप परिणमित पुद्गल परमाणुओं के प्रमाण को द्रव्यराशि जानना । पूर्वोक्त प्रकार से कर्मों की स्थिति के समयों का प्रमाण *(निषेकों की संख्या)* वह स्थितिराशि जानना । जहां दोगुणहीन-दोगुणहीन द्रव्य दिया जाता है ऐसी गुणहानि में समयों का प्रमाण वह गुणहानिआयामराशि जानना । सर्व स्थिति में जितनी गुणहानियां पायी जाती हैं उनका प्रमाण नानागुणहानिराशि जानना । गुणहानि के आयाम के प्रमाण को दोगुणा करनेपर जो प्रमाण हो, वह दोगुणहानिराशि जानना । नानागुणहानि का जितना प्रमाण हो उतनी बार दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, वह अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना ॥९२२॥

तेवट्ठिं च सयाइं अडदाला अट्ठ छक्क सोलसयं ।
चउसट्ठिं च विजाणे दव्वादीणं च संदिट्ठी ॥९२३॥

त्रिषष्टिश्च शतानि अष्टचत्वारिंशदष्ट षट्कं षोडशकं ।
चतु:षष्टिं च विजानीहि द्रव्यादीनां च संदृष्टि: ॥९२३॥

टीका – वहां दृष्टांतरूप अंकसंदृष्टि में द्रव्य तिरसठ सौ, स्थिति अड़तालीस, गुणहानिआयाम आठ, नानागुणहानि छह, दोगुणहानि सोलह, अन्योन्याभ्यस्तराशि चौंसठ जानना ॥९२३॥

	द्रव्य	स्थिति	गुणहानि	नानागुणहानि	दोगुणहानि	अन्योन्याभ्यस्त
अंकसंदृष्टि	६३००	४८	८	६	१६	६४
अर्थसंदृष्टि	स	प१	प१ छे वेछे	छे वेछे	प१ २ छे वेछे	प व

दव्वं समयपबद्धं उत्तपमाणं तु होदि तस्सेव ।
जीवसहत्थणकालो ठिदिअद्धा संखपल्लमिदा ॥९२४॥

द्रव्यं समयप्रबद्धं उक्तप्रमाणं तु भवति तस्यैव ।
जीवेन सह स्थानकाल: स्थित्यद्धा संख्यपल्यमिता ॥९२४॥

टीका – यथार्थ कथनरूप अर्थसंदृष्टि में द्रव्य तो पूर्वोक्त प्रमाण समयप्रबद्ध जानना । एक समय में जितने परमाणु बंधते हैं, उनका कथन पूर्व में प्रदेशबंधाधिकार में कर आये हैं । उनके प्रमाणरूप तो द्रव्यराशि है । बंधा हुआ समयप्रबद्ध जितने काल तक जीव के साथ अवस्थानरूप रहता है, वह स्थिति का अद्धा अर्थात् आयाम है । स्थिति संख्यात पल्यप्रमाण है, उसके समयों का प्रमाण वही स्थितिराशि है ॥९२४॥

मिच्छे वग्गसलायप्पहुदिं पल्लस्स पढममूलोत्ति ।
वग्गहदी चरिमो तच्छिदिसंकलिदं चउत्थो य ॥९२५॥

मिथ्ये वर्गशलाक प्रभृति पल्यस्य प्रथममूलमिति ।
वर्गहतिश्चरम तच्छित्ति संकलितं चतुर्थश्च ॥९२५॥

टीका – द्रव्य, स्थिति, गुणहानिआयाम, दोगुणहानि — इनकी संदृष्टि तो सातों

कर्मों की समान है । यहां द्रव्य और स्थिति यद्यपि हीनाधिक हैं तथापि सामान्यपने से द्रव्य समयप्रबद्धप्रमाण और स्थिति संख्यातपल्य प्रमाण कहने से *(कथन में)* समानता जानना । नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि समान नहीं हैं, इसलिए इनका विशेष कहना चाहते हैं । वहां जिसकी स्थिति सत्तर कोडाकोडीसागर है ऐसे मिथ्यात्व नामक कर्म में पहले कहते हैं ।

वहां पल्य की वर्गशलाका से लेकर पल्य के प्रथम वर्गमूल तक के जो द्विरूपवर्गधारा के स्थान उनको, उन्हीं के अर्धच्छेदों को और उन्हीं की वर्गशलाकाओं को स्थापित करके तीन पंक्तियां करना ।

प्रथम पंक्ति में पल्य की वर्गशलाका का प्रमाण नीचे लिखना, उसका वर्ग उसके ऊपर लिखना । इस क्रम से पल्य के प्रथम वर्गमूल तक वर्गस्थान लिखना । दूसरी पंक्ति में पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से लेकर दोगुणे-दोगुणे पल्य के प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेद तक लिखना । तीसरी पंक्ति में पल्य की वर्गशलाका की वर्गशलाका से लेकर एक-एक अधिक प्रमाण सहित पल्य के प्रथम वर्गमूल की वर्गशलाका तक लिखना ।

वहां प्रथम पंक्ति की राशियों को परस्पर में गुणा करनेपर पल्य की वर्गशलाका का भाग पल्य को देनेपर जो प्रमाण आये, उतना हुआ; वही चरम अर्थात् अंतिम छठवीं राशि-अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना । दूसरी पंक्ति की राशियों का जोड़ देनेपर पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों के प्रमाण को पल्य के अर्धच्छेदों के प्रमाण में से घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतना हुआ । कैसे ? वह कहते हैं –

द्विरूपवर्गधारा में अर्धच्छेद स्थान-स्थान प्रति दोगुणे कहे थे । इसलिए 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर पदभजियं' इस करणसूत्र से इनका जोड़ देना । गुणकार करते हुये अंत में जो प्रमाण हो उसको गुणकार के प्रमाण से गुणा करना । उसमें से शुरु में जितना प्रमाण हो उसे घटाना । जो प्रमाण आयेगा उसको एक कम गुणकार का भाग देना । ऐसा करनेपर जो प्रमाण आयेगा वही गुणकाररूप सर्व स्थानों का जोड़ जानना ।

यहां अंत में पल्य के अर्धच्छेदों से आधे पल्य के प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेद

हैं । उनको यहां का गुणकार दो से गुणा करनेपर पल्य के अर्धच्छेद *(छे)* प्रमाण आया । उसमें से पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद *(वछे)* घटाना तब पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदराशि से हीन पल्य की अर्धच्छेदराशि का जो प्रमाण है, उतना हुआ *(छे – वछे)* । गुणकार दो में से एक घटानेपर एक रहा, उसका भाग देनेपर उतने ही रहे । वही यहां चौथी राशि अर्थात् नानागुणहानि का प्रमाण जानना । इस कथन को अंकसंदृष्टि द्वारा दिखाते हैं –

पल्य का प्रमाण पण्णट्ठी *(६५५३६)*, उसकी वर्गशलाका चार, उसका वर्ग सोलह और उसका वर्ग दो सौ छप्पन जो पण्णट्ठी का प्रथम वर्गमूल है – ये तीनों प्रथम पंक्ति में लिखना । इन तीनों के अर्धच्छेद – चार के दो, सोलह के चार और दो सौ छप्पन के आठ ये तीनों दूसरी पंक्ति में लिखना । उन्हीं तीनों की वर्गशलाका – चार की तो एक, सोलह की दो; दो सौ छप्पन की तीन – ये तीनों तीसरी पंक्ति में लिखना ।

वहां प्रथम पंक्ति में चार, सोलह, दो सौ छप्पन को परस्पर में गुणा करनेपर सोलह हजार तीन सौ चौरासी होते हैं । पण्णट्ठी को अपनी वर्गशलाका चार का भाग देनेपर भी इतने ही होते हैं । दूसरी पंक्ति में दो, चार, आठ हैं, वहां 'अंतधणं गुणगुणियं' आदि सूत्र द्वारा जोड़नेपर अंतधन आठ को गुणकार दो से गुणा करनेपर सोलह हुये । उसमें से आदि अर्थात् दो को घटानेपर चौदह हुये । एक कम गुणकार एक है, उसका भाग देनेपर भी चौदह हुये जो इन तीनों का जोड़ है । वही पण्णट्ठी के अर्धच्छेद सोलह में से पण्णट्ठी की वर्गशलाका चार के अर्धच्छेद दो घटानेपर भी चौदह ही होते हैं । तीसरी पंक्ति का यहां प्रयोजन नहीं है । इस दृष्टांत से पूर्वोक्त कथन ठीक तरह से समझना । इसतरह सत्तर कोडाकोडीसागर स्थिति के धारक मिथ्यात्व नामक कर्म की अन्योन्याभ्यस्तराशि और नानागुणहानिराशि कही । अन्य कर्मों की आगे कहेंगे ॥९२५॥

वग्गसलायेणवहिद पल्लं अण्णोण्णगुणिदरासी हु ।
णाणागुणहाणिसला वग्गसलच्छेदणूणपल्लछिदी ॥९२६॥

वर्गशलाकयावहित पल्यमन्योन्यगुणितराशिर्हि ।
नानागुणहानिशला वर्गशलच्छेदन्यूनपल्यच्छित्तिः ॥९२६॥

टीका – इसतरह पल्य की वर्गशलाका का भाग पल्य को देनेपर जो प्रमाण होता है, उतनी तो अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना ।

पुनश्च पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों को पल्य के अर्धच्छेदों में से घटानेपर जो प्रमाण हो, उतनी नानागुणहानिराशि जानना ॥९२६॥

आगे गुणहानिआयाम का प्रमाण कहते हैं –

सव्वसलायाणं जदि पयदणिसेये लहेज्ज एक्कस्स ।
किं होदित्ति णिसेये सलाहिदे होदि गुणहाणी ॥९२७॥

सर्वशलाकानां यदि प्रकृतनिषेके लभ्यते एकस्य ।
किं भवतीति निषेके शलाहिते भवति गुणहानिः ॥९२७॥

टीका – सर्व नानागुणहानिशलाका के यदि स्थिति के सर्व निषेक होते हैं, तो एक गुणहानिशलाका के कितने निषेक होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करना । वहां प्रमाणराशि नानागुणहानि का प्रमाण जो यहां पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से हीन पल्य के अर्धच्छेदप्रमाण है *(छे – वग्गे)*; फलराशि सर्व स्थिति के निषेक जो यहां संख्यात पल्य प्रमाण हैं और इच्छाराशि एकशलाका । वहां फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर जो प्रमाण हो वही गुणहानिआयाम का प्रमाण जानना । [(प॒ ÷ (छे – वग्गे)] । जैसे अंकसंदृष्टि से प्रमाणराशि नानागुणहानि छह, फलराशि स्थिति अड़तालीस, इच्छाराशि एक गुणहानि । फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर गुणहानिआयाम का प्रमाण आठ होता है । एक गुणहानि में इतने निषेक पाये जाते हैं ॥९२७॥

आगे दोगुणहानि का प्रमाण और उसका प्रयोजन कहते हैं –

दोगुणहाणिपमाणं णिसेयहारो दु होइ तेण हिदे ।
इट्ठे पढमणिसेये विसेसमागच्छदे तत्थ ॥९२८॥

द्विगुणहानिप्रमाणं निषेकहारस्तु भवति तेन हिते ।
इष्टे प्रथमनिषेके विशेष आगच्छति तत्र ॥९२८॥

टीका – गुणहानिआयाम के प्रमाण को दोगुणा करनेपर दोगुणहानि होती है । इसी का निषेकहार *(या निषेकभागहार)* नाम है । इस दोगुणहानि प्रमाण भागहार का भाग विवक्षित गुणहानि के पहले निषेक को देनेपर जो प्रमाण आता है, वही उस गुणहानि में विशेष *(चय)* जानना । निषेक-निषेक प्रति आदि निषेक से अंत निषेक तक जितना-जितना घटता जाता है अथवा अंत निषेक से आदि निषेक तक जितना-जितना बढ़ता है, उतने प्रमाण का नाम विशेष है वा इसीका नाम चय है ॥९२८॥

इसतरह द्रव्यादि के प्रमाण का ज्ञान कराके अन्य कार्य कहते हैं –

रूऊणण्णोण्णब्भत्थ वहिददव्वं च चरिमगुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुणकमो आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ॥९२९॥

रूपोनान्योन्याभ्यस्तावहितद्रव्यं च चरमगुणद्रव्यं ।
भवति ततो द्विगुणक्रममादिमगुणहानिद्रव्यमिति ॥९२९॥

टीका – एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग सर्वद्रव्य को देनेपर जो प्रमाण आता है, वही अंत गुणहानि का द्रव्य जानना । इससे दोगुणा-दोगुणा द्रव्य आदि गुणहानि तक जानना । अंकसंदृष्टि से मिथ्यात्व का सर्वद्रव्य तिरसठ सौ, इसको एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि तिरसठ का भाग देनेपर सौ आये, इसलिए अंत की छठवीं गुणहानि का द्रव्य सौ जानना । इससे पांचवीं आदि गुणहानि में दोगुणा-दोगुणा द्रव्य पहली गुणहानि तक जानना ॥९२९॥

१००
२००
४००
८००
१६००
३२००

ऐसे नानागुणहानि में द्रव्य जानकर क्या करना ? वह कहते हैं –

रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयभागहारेण ।
हदगुणहाणिविभजिदे सगसगदव्वे विसेसा हु ॥९३०॥

रूपोनाध्वानार्धेनोनेन निषेकभागहारेण ।
हतगुणहानिविभाजिते स्वकस्वकद्रव्ये विशेषा हि ॥९३०॥

टीका – विवक्षित गुणहानि के द्रव्य को, एक कम गुणहानिआयाम प्रमाण गच्छ

के आधे प्रमाण को निषेकभागहार अर्थात् दोगुणहानि में से घटाकर जो प्रमाण रहे उससे गुणहानिआयाम को गुना करके जो प्रमाण हो, उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वही उस गुणहानि में विशेष *(चय)* जानना । अंकसंदृष्टि से गुणहानिआयाम आठ, एक घटानेपर सात, उसका आधा साढ़े तीन *(सात बटे दो)*, इसको निषेकभागहार सोलह में से घटानेपर साढ़े बारह, उससे गुणहानिआयाम आठ को गुणा करके सौ होता है । उसका भाग प्रथम गुणहानि का द्रव्य बत्तीस सौ को देनेपर बत्तीस आया, वही प्रथम गुणहानि में चय का प्रमाण होता है । दूसरी गुणहानि का द्रव्य सोलह सौ को उसका भाग देनेपर सोलह आया, वही द्वितीय गुणहानि में चय है । ऐसे ही तृतीयादि गुणहानियों का द्रव्य *(क्रम से)* आठ सौ, चार सौ, दो सौ, सौ को उसका भाग देनेपर आठ, चार, दो, एक आये वे ही उन गुणहानियों में चय जानना । चय को जानने के लिये पूर्व में विधान कहा था, परंतु पहले ही आदि निषेक का ज्ञान कैसे हो सकता है ? इसकारण यहां अन्य विधान कहा है ॥९३०॥

पचयस्स य संकलणं सगसगगुणहाणिदव्वमज्झम्हि ।
अवणिय गुणहाणिहिदे आदिपमाणं तु सव्वत्थ ॥९३१॥

प्रचयस्य च संकलनं स्वकस्वकगुणहानिद्रव्यमध्ये ।
अपनीय गुणहानिहिते आदिप्रमाणं तु सर्वत्र ॥९३१॥

टीका – विवक्षित गुणहानि के सर्व चयधन का प्रमाण अपने गुणहानि के सर्वद्रव्य में से घटानेपर जो प्रमाण रहता है, उसको गुणहानिआयाम का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वही आदि अर्थात् चय रहित अंत निषेक का प्रमाण जानना । इसमें क्रम से एक-एक चय मिलाते हुये, एक कम गुणहानिप्रमाण चय मिलानेपर प्रथम निषेक में प्रमाण होता है । अंकसंदृष्टि से प्रथम गुणहानि में 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस करणसूत्र से एक कम गच्छ सात, उसका आधा साढ़े तीन, उसको चय बत्तीस से गुणा करनेपर एक सौ बारह, उसको गच्छ आठ से गुणा करनेपर आठ सौ छानबे होते हैं, वही प्रचयधन जानना । इसको सर्वद्रव्य बत्तीस सौ में से घटानेपर तेइस सौ चार रहे । उसको गुणहानि आठ का भाग देनेपर दो सौ अट्ठासी हुये, वही अंत निषेक का प्रमाण है । उसमें एक-एक चय बत्तीस-बत्तीस बढ़ानेपर द्वितीयादि निषेकों में प्रमाण

होता है । इसीप्रकार द्वितीयादि गुणहानि में चय का प्रमाण आधा-आधा है, इसलिए प्रचयधन *(चयधन)* भी आधा-आधा है । उसको सर्वद्रव्य भी आधा-आधा है उसमें से घटानेपर जो-जो प्रमाण रहे उसको गुणहानिआयाम का भाग देनेपर अंत निषेक होता है, इसमें अपना-अपना चय मिलानेपर अन्य निषेक होता है ।

अंकसंदृष्टि द्वारा निषेकों का यंत्र

प्रथमगुणहानि	द्वितीयगुणहानि	तृतीयगुणहानि	चतुर्थगुणहानि	पंचमगुणहानि	षष्ठमगुणहानि
२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड़ ३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

इसप्रकार जैसा अंकसंदृष्टि द्वारा कथन किया वैसा ही यथार्थ कथन जानना । विशेष इतना है कि यहाँ जैसा प्रमाण कहा है वैसा जानना ।

अर्थरूप में कहते हैं –

कोई जीव विवक्षित एक समय में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग द्वारा आयु बिना सात कर्मों के उत्कृष्ट समयप्रबद्ध को आत्मा के सर्व प्रदेशों द्वारा ग्रहण करता है । वह उत्कृष्ट समयप्रबद्ध जघन्य समयप्रबद्ध से पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग गुणा है । अपवर्तन करनेपर जघन्य समयप्रबद्ध से असंख्यातगुणा है । इस उत्कृष्ट समयप्रबद्ध के परमाणुओं के प्रमाणरूप द्रव्य को सात का भाग देनेपर मोहनीय का द्रव्य होता है । इसको अनंत का भाग देनेपर मोहनीय का सर्वघाति द्रव्य होता है । इसको एक मिथ्यात्व और सोलह कषाय – इन सत्रह

का भाग देनेपर मिथ्यात्व का द्रव्य होता है । यह तो सर्वद्रव्य का प्रमाण जानना। ✓ इस मिथ्यात्व की सत्तर कोडाकोडीसागर के जितने समय होते हैं, उसप्रमाण स्थिति जानना । पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से हीन पल्य के अर्धच्छेदों का जितना प्रमाण है, उतनी नानागुणहानि है । नानागुणहानिप्रमाण दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर पल्य की वर्गशलाका से भाजित पल्यप्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। ✓ इस अन्योन्याभ्यस्तराशि में से एक घटाकर इसका भाग सर्वद्रव्य को देनेपर जो प्रमाण होता है, वह अंत गुणहानि का द्रव्य जानना । उसके नीचे-नीचे प्रथम गुणहानि तक दोगुणा-दोगुणा द्रव्य जानना ।

पुनश्च 'रूऊणद्धाणद्धेणूणेण .....' *(गाथा ९३०)* इस सूत्र के अनुसार एक कम गुणहानिआयाम प्रमाण गच्छ के आधे प्रमाण को दोगुणहानि में से घटानेपर जो प्रमाण अर्ध अधिक डेढ़गुणहानि प्रमाण हुआ, उसको गुणहानिआयाम से गुणा करना । जो प्रमाण आये उसका भाग विवक्षित गुणहानि के द्रव्य को देनेपर जो प्रमाण आता है, उतना-उतना अपनी-अपनी गुणहानि में विशेष *(चय)* जानना ।

पुनश्च 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्र से एक कम गुणहानिआयाम प्रमाण गच्छ के आधे को अपने-अपने चय से गुणा करके, उस गच्छ से गुणा करने पर जो-जो प्रमाण होता है, उतना-उतना अपनी-अपनी गुणहानि में प्रचयधन जानना ।

प्रचयधन को अपनी-अपनी गुणहानि के द्रव्य में से घटाकर अवशेष रहे उसको गुणहानिआयाम का भाग देनेपर जो-जो प्रमाण हो, वह-वह अपनी-अपनी गुणहानि के अंत निषेक में द्रव्य होता है । इसमें एक-एक अपना-अपना चय प्रथम निषेक तक मिलानेपर अन्य निषेकों में प्रमाण होता है । अंत निषेक में एक कम गुणहानिप्रमाण चय मिलानेपर प्रथम निषेक के द्रव्य का प्रमाण आता है, उतना ही प्रमाण चय को दोगुणहानि से गुणा करनेपर आता है । इसतरह अंत निषेक को प्रथम स्थापित करके क्रम से चय बढ़ते-बढ़ते अनुक्रम से कथन किया । तथा प्रथम निषेक से अंत निषेक तक घटते-घटते अनुक्रम से त्रिकोणरचनावत् जानना । वह कहते हैं –

प्रथम गुणहानि के द्रव्य को गुणहानिआयाम का भाग देनेपर बीच में *(मध्य में)* प्रमाणरूप मध्यमधन होता है । जैसे प्रथम गुणहानि का द्रव्य बत्तीस सौ को गुणहानि आठ का भाग

देनेपर मध्यमधन चार सौ होता है । यहां चौथे और पांचवें निषेक का प्रमाण मिलाकर आधा करना, वही मध्यमधन जानना । इसको, एक कम गुणहानि का आधा निषेकभागहार में से कम करके, शेष का भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है । जैसे, एक कम गुणहानि सात, उसका आधा साढ़े तीन, उसको निषेकभागहार सोलह में से घटानेपर साढ़े बारह रहे, उसका भाग मध्यमधन चार सौ को देनेपर चय का प्रमाण बत्तीस होता है । इस चय को दोगुणहानि से गुणा करनेपर पर प्रथम निषेक होता है । जैसे चय प्रमाण बत्तीस को दोगुणहानि सोलह से गुणा करके पांच सौ बारह प्रमाणरूप प्रथम निषेक होता है । इसमें से एक-एक चय घटानेपर अंत निषेक-एक अधिक गुणहानिप्रमाण चयरूप होता है । जैसे गुणहानि आठ, एक अधिक करनेपर नौ, चय का प्रमाण बत्तीस । नौ गुणा बत्तीस दो सौ अट्ठासी हुये, वही अंत निषेक में प्रमाण जानना ।

इसीतरह अन्य गुणहानि में भी जानना । संदृष्टि –

इस रचना में प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक में पांच सौ बारह, मध्य निषेक के ग्रहण निमित्त बीच में बिंदी लिखी, अंत निषेक में दो सौ अट्ठासी । मध्य गुणहानि के निषेक के ग्रहण निमित्त बीच में बिंदी लिखी । अंत गुणहानि में प्रथम निषेक सोलह, बीच के ग्रहणनिमित्त बिंदी, अंत निषेक में नौ – ऐसी अंकसंदृष्टि है । अर्थसंदृष्टि सर्व ही आगे संदृष्टि अधिकार में लिखेंगे, वहां जानना ।

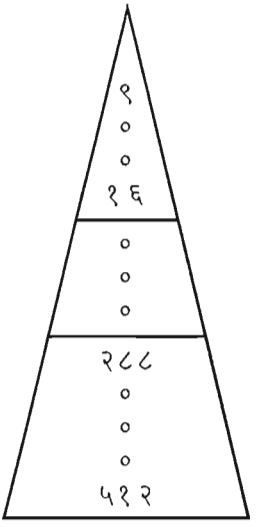

जैसे यह मिथ्यात्व का कथन उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट समयप्रबद्ध की अपेक्षा कहा है, वैसे इसी के मध्यम और जघन्य स्थिति तथा समयप्रबद्ध की अपेक्षा और अन्य प्रकृतियों के यथासंभव विवक्षित स्थिति और समयप्रबद्ध की अपेक्षा कथन जानना । जैसी जहां स्थिति होगी, वैसा वहां स्थिति का प्रमाण जानना । जैसा जहां समयप्रबद्ध होगा, वैसा वहां द्रव्य का प्रमाण जानना । दोगुणहानि और गुणहानिआयाम का प्रमाण सर्व में समान जानना । नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि स्थिति के अनुसार जानना । इसतरह आयु बिना सात कर्मों की स्थिति में निषेकरचना प्रतिसमय होती है ॥९३१॥

सव्वासिं पयडीणं णिसेयहारो य एयगुणहाणी ।
सरिसा हवंति णाणागुणहाणिसलाउ वोच्छामि ॥९३२॥

सर्वासां प्रकृतीनां निषेकहारश्च एकगुणहानिः ।
सदृशे भवन्ति नानागुणहानिशला वक्ष्यामि ॥९३२॥

टीका – सर्व मूल और उत्तरप्रकृतियों के निषेकहार अर्थात् दोगुणहानि और एक गुणहानिआयाम दोनों तो *(सभी प्रकृतियों में)* समान हैं । नानागुणहानिशलाका स्थिति के अनुसार हैं, इसलिए समान नहीं है । उन नानागुणहानिशलाकाओं को कहते हैं ॥९३२॥

मिच्छत्तस्स य उत्ता उवरीदो तिण्णि तिण्णि संमिलिदा ।
अट्ठगुणेणूणकमा सत्तसु रइदा तिरिच्छेण ॥९३३॥

मिथ्यात्वस्य च उक्ता उपरितः त्रयस्त्रयः संमिलिताः ।
अष्टगुणेनोनक्रमाः सप्तसु रचिता तिरश्चा ॥९३३॥

टीका – मिथ्यात्व प्रकृति के जो पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से लेकर पल्य के प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेदों तक दोगुणे-दोगुणे अर्धच्छेद एक-एक वर्गस्थान में कहे, उनको स्थापन करना । ऊपर से पल्य के प्रथम वर्गमूल से लेकर तीन-तीन वर्गस्थानों की अर्धच्छेद राशियां मिलानेपर, वे आठ-आठ गुणा हीन अनुक्रम से होती हैं । वही कहते हैं –

पल्य के प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेद पल्य के अर्धच्छेदों से आधे, इनसे आधे पल्य के द्वितीय वर्गमूल के अर्धच्छेद, इनसे आधे पल्य के तृतीय वर्गमूल के अर्धच्छेद हैं । इन तीनों का जोड़ दीजिये । 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं' इस सूत्र के अनुसार अंत में पल्य के प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेद पल्य के अर्धच्छेदों से आधे हैं, इनको गुणकार दो से गुणा करनेपर पल्य के अर्धच्छेदप्रमाण होते हैं । इनमें से आदिस्थान पर पल्य के तृतीयवर्गमूल के अर्धच्छेद जो पल्य के अर्धच्छेदों के आठवें भागप्रमाण हैं, वे घटानेपर सात गुणा पल्य के अर्धच्छेदों का आठवां भाग *(सात अष्टमांश)* आया । एक कम गुणकार एक उसका भाग देनेपर भी उतने ही रहे, वही उन तीनों राशियों का जोड़ जानना ।

[***विशेषार्थ*** : *पल्य का अर्धच्छेद =* छे, *पल्य के प्रथम वर्गमूल का* छे/२, *द्वितीय वर्गमूल का* छे/४, *तृतीय वर्गमूल का* छे/८ ।

इन तीनों का जोड़ छे/८ + छे/४ + छे/२ ।

सूत्र के अनुसार (छे/२ × २) − छे/८ । छे − छे/८ = ७ छे/८ *आये* ।]

इसीतरह पल्य के चौथे, पांचवें, छठवें वर्गमूल के अर्धच्छेद पल्य के अर्धच्छेदों के सोलहवें, बत्तीसवें, चौंसठवें भाग हैं । इन तीनों राशियों का जोड़ पूर्ववत् देनेपर सातगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का चौंसठवां भाग हुआ, वह पहलेवाले जोड़ से आठगुणा हीन *(आठवें भागप्रमाण)* हुआ ।

[***विशेषार्थ*** : *पल्य के चौथे, पांचवें, छठवें वर्गमूल के अर्धच्छेद* छे/१६ छे/३२ छे/६४ *इनका जोड़* (छे/१६ × २) − छे/६४ = छे/८ − छे/६४ = ७ छे/६४ *पहलेवाला जोड़* ७ छे/८ *था, उससे यह आठगुणा हीन है* ।]

इसीतरह पूर्व-पूर्व से आधे-आधे पल्य के सातवें, आठवें, नौवें वर्गमूल के अर्धच्छेदों को जोड़नेपर सातगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का पांच सौ बारहवां भाग हुआ, जो पूर्व जोड़ से आठगुणा हीन हुआ । [७ छे/५१२]

इसीतरह उतरते-उतरते तीन-तीन वर्गस्थानों के अर्धच्छेद जोड़नेपर आठ-आठगुणा हीन होते जाते हैं । उतरते-उतरते पल्य की वर्गशलाका के आठवें, सातवें, छठवें वर्ग के अर्धच्छेद पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से दो सौ छप्पन गुणे, एक सौ अट्ठाइस गुणे और चौंसठगुणे हैं ।

उन तीन राशियों का जोड़ पल्यवर्गशलाका के अर्धच्छेदों से चार सौ अड़तालीस गुणा हुआ ।

[***विशेषार्थ*** : *पल्य की वर्गशलाका* ***व*** *उसके अर्धच्छेद* ***वछे****, उसके वर्ग के अर्धच्छेद* ***वछे*** *२, द्वितीय वर्ग के* ***वछे*** *४, तृतीय वर्ग के* ***वछे*** *८, चतुर्थ वर्ग के* ***वछे*** *१६, पंचम वर्ग के* ***वछे*** *३२, छठवें वर्ग के* ***वछे*** *६४, सातवें वर्ग के* ***वछे*** *१२८, आठवें वर्ग के* ***वछे*** *२५६ ।*

वछे *६४ +* ***वछे*** *१२८ +* ***वछे*** *२५६ = (****वछे*** *२५६ × २) –* ***वछे*** *६४ =* ***वछे*** *४४८।*]

पुनश्च पल्य की वर्गशलाका के पांचवें, चौथे, तीसरे वर्ग के अर्धच्छेद पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से बत्तीस, सोलह, आठ गुणे होते हैं । उन तीन राशियों को जोड़नेपर पल्यवर्गशलाका के अर्धच्छेदों से छप्पनगुणा होते हैं, वे पूर्वराशि से आठगुणा हीन हैं ।

[***विशेषार्थ*** *:* ***वछे*** *८ +* ***वछे*** *१६ +* ***वछे*** *३२ = (****वछे*** *३२ × २) –* ***वछे*** *८ =* ***वछे*** *५६ जो* ***वछे*** *४४८ का आठवां भाग है — आठगुणा हीन है ।*]

पुनश्च पल्य की वर्गशलाका का दूसरा वर्ग, पहला वर्ग और वर्गशलाका इन तीनों के अर्धच्छेद पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से चौगुणे, दोगुणे और एकगुणे हैं । इन तीनों को जोड़नेपर पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से सातगुणे होते हैं । यह पूर्वराशि से आठगुणा हीन है ।

[***विशेषार्थ*** *:* ***वछे*** *४ +* ***वछे*** *२ +* ***वछे*** *= (****वछे*** *४ × २) –* ***वछे*** *= ****वछे*** *७ ।*

यह ***वछे*** *५६ से आठगुणा हीन अर्थात् उसका आठवां भाग है ।*]

इसतरह आठ-आठगुणा हीन जानना । यहां पल्य का वर्गमूल, वह प्रथममूल जानना । प्रथममूल का वर्गमूल, वह द्वितीयमूल जानना । द्वितीयमूल का वर्गमूल तृतीयमूल जानना । ऐसे ही चतुर्थादिमूल जानना ।

पुनश्च पल्य की वर्गशलाका का वर्ग, वह प्रथमवर्ग जानना । प्रथमवर्ग का वर्ग वह द्वितीयवर्ग जानना । उसका वर्ग वह तृतीयवर्ग जानना । ऐसे ही चतुर्थादि वर्ग जानना । पल्य के प्रथम, द्वितीय, तृतीय मूल के अर्धच्छेद जोड़नेपर जो राशि हुयी, उससे लेकर तीन-तीन स्थानों के अर्धच्छेद जोड़ते-जोड़ते पल्य की वर्गशलाका

का दूसरा, पहला वर्ग और पल्य की वर्गशलाका इन तीनों के अर्धच्छेद जोड़नेपर जो राशि हो वहां तक सर्व जोड़ी हुयी असंख्यातराशि जुदे-जुदे सात स्थानों में आगे आगे रचनारूप करना ॥९३३॥

तत्थंतिमच्छिदिस्स य अट्ठमभागो सलायछेदा हु ।
आदिमरासिपमाणं दसकोडाकोडिपडिबद्धे ॥९३४॥

तत्रांतिमच्छित्तेश्चाष्टमभाग: शलाकच्छेदा हि ।
आदिमराशिप्रमाणं दशकोटीकोटिप्रतिबद्धे ॥९३४॥

छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८
छे ७ ८।८	छे ७ ८।८	छे ७ ८।८	छे ७ ८।८	छे ७ ८।८	छे ७ ८।८	छे ७ ८।८
छे ७ ८।८।८	छे ७ ८।८।८	छे ७ ८।८।८	छे ७ ८।८।८	छे ७ ८।८।८	छे ७ ८।८।८	छे ७ ८।८।८
० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०
व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८
व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८
व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७

टीका – उन पूर्वोक्त सात पंक्तियों में से पहली पंक्ति में जो तीन-तीन का जोड़ देनेपर राशियां हुयी, उन सबको जुदी-जुदी फलराशि करना और सबमें दस कोडाकोडीसागर प्रमाण इच्छाराशि करना और सत्तर कोडाकोडीसागर प्रमाणराशि करना । ऐसे त्रैराशिक करके फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर जो-जो प्रमाण होगा वह-वह लिखकर उन सबका जोड़ देनेपर जो प्रमाण होगा, उतनी दस कोडाकोडीसागर प्रमाण स्थिति संबंधी नानागुणहानिशलाका जाननी । उनका जोड़ देने का विधान कहते हैं –

'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं' इस सूत्र से पल्य के पहले, दूसरे, तीसरे वर्गमूल के अर्धच्छेद मिलानेपर सात गुणा पल्य के अर्धच्छेदों का आठवां भाग हुआ *(७ छे)*, उनको दस कोडाकोडीसागर से गुणा करके सत्तर

कोडाकोडीसागर का भाग देनेपर पल्य के अर्धच्छेदों का आठवां भाग हुआ ।

$$\left[\frac{\text{७ छे}}{८} \times \frac{\text{१० को}^{२}\text{सा}}{\text{७० को}^{२}\text{सा}} = \frac{\cancel{७}\ \text{छे}}{८} \times \frac{१}{\cancel{७}} = \frac{\text{छे}}{८} \right]$$

वह यहां अंतधन जानना । यहां जोड़-जोड़ प्रति गुणकार आठ, इसलिए आठ से गुणा करनेपर पल्य के अर्धच्छेद प्रमाण हुआ $\left[\frac{\text{छे}}{८} \times ८ = \text{छे} \right]$ इसमें से आदि घटाना । आदिस्थान इसप्रकार है – पल्य की वर्गशलाका का दूसरा, पहला वर्ग और पल्य की वर्गशलाका इन तीनों के अर्धच्छेद मिलानेपर सातगुणे पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद हुये *(**वछे** ७)* उनको दस कोडाकोडीसागर से गुणा करके सत्तर कोडाकोडीसागर का भाग देनेपर पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद प्रमाण हुआ वही आदि जानना । $\left[\text{वछे ७} \times \frac{\text{१० को}^{२}\text{सा}}{\text{७० को}^{२}\text{सा}} = \text{वछे ७} \times \frac{१}{७} = \text{वछे} \right]$ इतने घटानेपर जो अवशेष रहे *(**छे – वछे**)* उनको गुणकार आठ में से एक घटाकर हुये सात, उसका भाग देनेपर पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद से हीन पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भाग प्रमाण हुआ $\left[\frac{\text{छे – वछे}}{७} \right]$ – यह दस कोडाकोडीसागर स्थिति संबंधी नानागुणहानिशलाका का प्रमाण जानना ।

इतनी बार दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है । उसका प्रमाण लाने के लिये उस नानागुणहानि में ऋणरूप पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों का सातवां भाग कहा उसको तो जुदा रखना और अवशेष पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भाग रहा ।

[***विशेषार्थ*** : $\frac{\text{छे – वछे}}{७} = \frac{\text{छे}}{७} - \frac{\text{वछे}}{७}$ । **वछे** को जुदा रखनेपर $\frac{\text{छे}}{७}$ *रहा ।*] उसकी सहनानी के लिये आठ ही का गुणकार और आठ ही का भागहार करना $\left[\frac{\text{छे} \times ८}{७ \times ८} \right]$ वहां गुणकार में से एक घटाकर जुदा रखना अवशेष सात का गुणकार रहा और पहले सात का भागहार था दोनों को समान जानकर अपवर्तन

करना — दोनों को दूर करना । $\left[\frac{\text{छे}}{\text{७} \times ८} \text{ और } \frac{\text{छे}}{७ \times ८}\right]$

ऐसे करनेपर पल्य के अर्धच्छेद का आठवां भाग हुआ, इतने दो के अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर पल्य का तीसरा वर्गमूल हुआ क्योंकि भागहार के जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतने वर्गस्थान भाज्यराशि के नीचे जानेपर उत्पन्नराशि का प्रमाण आता है । यहां भागहार आठ है, उसके अर्धच्छेद तीन; इसलिए पल्य के नीचे तीसरा वर्गस्थान पल्य का तृतीयमूल है । जो गुणकार में से जुदा रखा था वह पल्य के अर्धच्छेद का छप्पनवां भाग $\left[\frac{\text{छे}}{७ \times ८}\right]$ था । इसकारण इसमें से ऋणरूप पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों का सातवां भाग $\left[\frac{\text{व छे}}{७}\right]$ घटानेपर जो अवशेष रहे उतने दो के अंक मांडकर परस्पर में गुणा करनेपर असंख्यातगुणा पल्य का पांचवां वर्गमूलमात्र असंख्यातप्रमाण हुआ ।

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी गुणगारो लद्धरासिस्स ॥ त्रि. सार-११०॥

इस सूत्र के अनुसार अधिक राशि को परस्पर में गुणा करने से जो राशि होती है वह गुणकाररूप होती है । इसलिए उस असंख्यात से पल्य के तीसरे वर्गमूल को गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतनी दस कोडाकोडीसागर संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना ॥९३४॥

आगे बीस कोडाकोडीसागर आदि स्थिति संबंधी नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि कहते हैं —

इगिपंतिगदं पुध पुध अप्पिट्ठेण य हदे हवे णियमा ।
अप्पिट्ठस्स य पंती णाणागुणहाणिपडिबद्धा ॥९३५॥

एकपंक्तिगतं पृथक् पृथगात्मेष्टेन च हते भवेन्नियमात् ।
आत्मेष्टस्य च पंक्तयो नानागुणहानिप्रतिबद्धाः ॥९३५॥

टीका – अवशेष छह पंक्तियों में से एक-एक पंक्ति में जैसे दस कोडाकोडीसागर

संबंधी प्रथम पंक्ति में सर्व तीन-तीन स्थानों के जोड़रूप राशियों को जुदी-जुदी फलराशि की थी, वैसे ही सब छह पंक्तियों में फलराशि करना । प्रथम पंक्ति में इच्छाराशि दस कोडाकोडीसागर कही, उस इच्छाराशि से फलराशि को गुणा किया, वैसे यहां *(शेष)* छह पंक्तियों में से अपने-अपने इष्टरूप प्रथम पंक्ति में बीस कोडाकोडीसागर, दूसरी पंक्ति में तीस कोडाकोडीसागर, तीसरी पंक्ति में चालीस कोडाकोडीसागर, चौथी पंक्ति में पचास कोडाकोडीसागर, पांचवीं पंक्ति में साठ कोडाकोडीसागर और छठवीं पंक्ति में सत्तर कोडाकोडीसागर प्रमाण इच्छाराशि करके गुणा करना । पुनश्च जैसे प्रथम पंक्ति में प्रमाणराशि सत्तर कोडाकोडीसागर का भाग दिया था, वैसे यहां भी सर्वत्र प्रमाणराशि सत्तर कोडाकोडीसागर का भाग देना । ऐसा करनेपर जो-जो प्रमाण आयेगा, वह-वह अपने-अपने इष्टरूप बीस कोडाकोडीसागर आदि स्थिति संबंधी नानागुणहानिशलाका की पंक्ति होती है ॥९३५॥

अप्पिट्ठपंतिचरिमो जेत्तियमेत्ताण वग्गमूलाणं ।
छिदिणिवहोत्ति णिहाणिय सेसं य य मेलिदे इट्ठा ॥९३६॥

आत्मेष्टपंक्तिचरमः यावन्मात्राणां वर्गमूलानां ।
छित्तिनिवह इति निर्धार्य शेषं च च मेलिते इष्टा ॥९३६॥

टीका – अपनी-अपनी इष्ट पंक्ति में जहां तक अंत स्थान हो, वहां तक उतने वर्गमूलों के अर्धच्छेदों का समूह ऐसा निर्धारण करके सबको मिलानेपर अपने-अपने इष्ट अर्थात् विवक्षित की नानागुणहानि होती है । वहां मिलाने का विधान जैसा दस कोडाकोडीसागर संबंधी पंक्ति में कहा वैसा ही 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरणभजियं' इस सूत्र से जानना । विशेष इतना है कि अंतधन आदि का प्रमाण दस कोडाकोडीसागर पंक्ति में जो कहा, उससे इन छह पंक्तियों में क्रम से दोगुणा, तीनगुणा, चारगुणा, पांचगुणा, छहगुणा और सातगुणा जानना । क्योंकि इच्छाराशि के दोगुणा, तीनगुणा आदि होनेपर पंक्ति में सर्व ही दोगुणा, तीनगुणा आदि हो गये ।

वहां बीस कोडाकोडीसागर संबंधी पंक्ति में अंतधन पल्य के अर्धच्छेदों का चौथा भाग, उसको गुणकार आठ से गुणा करनेपर पल्य के अर्धच्छेदों से दोगुणा

प्रमाण हुआ, उसमें से आदि का प्रमाण पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से चौदहगुणा (वछे × २ = वछे २), उसको घटाना ।

इस प्रमाण को अल्प जानकर किंचित् कम करना । उसको एक कम गुणकार सात का भाग देना — ऐसे करनेपर किंचित् कम दोगुणे पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भाग प्रमाण जोड़ हुआ । इतनी नानागुणहानिराशि जानना ।

इस प्रमाण को पूर्वोक्त प्रकार से सहनानी के लिये आठ से गुणा करके आठ ही का भाग देना । वहां गुणकार में से एक जुदा रखकर अवशेष सात का गुणकार रहा, पहले सात का भागहार था, उनको समान जानकर अपवर्तन किया । अवशेष किंचित् कम पल्य के अर्धच्छेदों को दो का गुणकार आठ का भागहार रहा । उनका अपवर्तन करनेपर किंचित् कम पल्य के अर्धच्छेदों का चौथा भाग रहा । इतने दो अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेपर किंचित् कम पल्य का द्वितीयमूल हुआ । पुनश्च एक गुणकार जो जुदा रखा था, वह किंचित् कम दोगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का छप्पनवां भागप्रमाण था । इसलिए उतने दो अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेपर यथायोग्य असंख्यात हुआ; उससे गुणा करनेपर असंख्यातगुणा किंचित् कम पल्य के द्वितीय वर्गमूल प्रमाण उसकी अन्योन्याभ्यस्तराशि हुयी ।

पुनश्च तीस कोडाकोडीसागर संबंधी पंक्ति में पूर्वोक्त प्रकार से जोड़ देनेपर किंचित् कम तीनगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भाग प्रमाण हुआ, इतनी नानागुणहानिराशि है । इसको सहनानी के लिये आठ से गुणा करना और आठ का भाग देना । गुणकार में से एक जुदा रखना, अवशेष सात का गुणकार और पहला सात का भागहार इन दोनों का अपवर्तन करना । ऐसा करनेपर किंचित् कम तीनगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का आठवां भाग हुआ । उसमें से एकगुणा प्रमाण दो अंक लिखकर परस्पर गुणा करने से पल्य का तृतीयमूल हुआ और अवशेष दोगुणा प्रमाण दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करने से पल्य का द्वितीयमूल हुआ । इनको परस्पर गुणा करनेपर पल्य के तृतीय वर्गमूल से गुणित पल्य का द्वितीय वर्गमूल प्रमाण होगा, उसमें से किंचित् कम करना ।

पुनश्च एक गुणकार जुदा रखा था, वह किंचित् कम तीनगुणे पल्य के अर्धच्छेदों के छप्पनवें भागप्रमाण था, इसलिए उतने दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर

यथायोग्य असंख्यात हुआ । उससे गुणा करनेपर असंख्यातगुणा किंचित् कम पल्य के तृतीय वर्गमूल से गुणित पल्य के द्वितीय वर्गमूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है ।

पुनश्च चालीस कोडाकोडीसागर संबंधी पंक्ति में पूर्वोक्त प्रकार से जोड़ देनेपर किंचित् कम चौगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भाग हुआ, इतनी नानागुणहानिराशि जानना । इसको सहनानी के लिये आठ से गुणा करना और आठ का भाग देना । वहां गुणकार में से एक जुदा रखकर अवशेष सात का गुणकार और पहले सात का भागहार था, इन दोनों का अपवर्तन करनेपर किंचित् कम पल्य के एक अर्धच्छेदों से आधे रहे, इतने दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर किंचित् कम पल्य का प्रथम वर्गमूल हुआ । एक गुणकार जुदा रखा था, वह किंचित् कम चारगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का छप्पनवां भाग था, उतने दो लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर यथायोग्य असंख्यात हुआ । उससे गुणा करनेपर असंख्यातगुणा किंचित् कम पल्य के प्रथम वर्गमूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है ।

पुनश्च पचास कोडाकोडीसागर संबंधी पंक्ति में पूर्वोक्त प्रकार से जोड़ देनेपर किंचित् कम पांचगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भागप्रमाण होता है, इतनी तो नानागुणहानिराशि जानना । इसको सहनानी के लिये आठ से गुणा करना और आठ का भाग देना । वहां गुणकार में से एक जुदा रखकर अवशेष सात का गुणकार और पहले सात का भागहार था, दोनों का अपवर्तन करनेपर किंचित् कम पांचगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का आठवां भागप्रमाण होता है । यह जो पांचगुणा कहा है उसमें से एकगुणा पल्य के अर्धच्छेदों के आठवां भागप्रमाण दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर पल्य का तृतीय वर्गमूल होता है । अवशेष चारगुणा *(चार अष्टमांश अर्थात् एक द्वितीयांश)* रहा, उस प्रमाण दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर पल्य का प्रथम वर्गमूल होता है । इनको परस्पर गुणा करके *(पल्य के तृतीय वर्गमूल को पल्य के प्रथम वर्गमूल से गुणित करके)* उसको, एक गुणकार जुदा रखा था, जो किंचित् कम पांचगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का छप्पनवां भाग था । उतने दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर असंख्यात होता है, उससे गुणा करनेपर, असंख्यात से गुणित किंचित् कम पल्य के तृतीय वर्गमूल से गुणित पल्य के प्रथम वर्गमूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है ।

पुनश्च साठ कोडाकोडीसागर प्रमाण स्थिति संबंधी पंक्ति में पूर्वोक्त जोड़ देनेपर किंचित् कम छहगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भाग होता है, इतनी तो नानागुणहानिराशि होती है । इसको सहनानी के लिये आठ से गुणा करके आठ का भाग देना । वहां गुणकार में से एक जुदा रखकर अवशेष सात का गुणकार और पहले सात का भागहार था, दोनों का अपवर्तन करनेपर किंचित् कम तीनगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का चौथा भाग हुआ *(छह अष्टमांश का तीन चतुर्थांश होता है)* । इतने दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर किंचित् कम पल्य के द्वितीय वर्गमूल से गुणित पल्य के प्रथम वर्गमूल प्रमाण होता है । एक गुणकार जुदा रखा था, जो किंचित् कम छहगुणा पल्य के अर्धच्छेदों का छप्पनवां भाग था । उतने दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर असंख्यात होता है, उससे गुणा करनेपर, असंख्यात से गुणित किंचित् कम पल्य के द्वितीय वर्गमूल से गुणित पल्य के प्रथम वर्गमूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है ।

पुनश्च सत्तर कोडाकोडीसागर संबंधी पंक्ति में पूर्वोक्त प्रकार से जोड़ देनेपर पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से हीन पल्य के अर्धच्छेद प्रमाण होता है । इतनी नानागुणहानिराशि होती है । पल्य के अर्धच्छेद प्रमाण दो अंक लिखकर परस्पर में गुणा करनेपर पल्य होता है । पुनश्च –

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।। त्रि. सार-१११।।

इस सूत्र के अनुसार जितने हीन रूप थे उस प्रमाण *(दो अंकों को)* परस्पर गुणा करके जो राशि होती है, वह उत्पन्न राशि का भागहार होता है । इसलिए पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद प्रमाण दो अंक लिखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्य की वर्गशलाका होती है वह तो भागहार हुआ; इसका भाग पल्य को देना – इसतरह पल्य की वर्गशलाका से भाजित पल्यप्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है । ऐसे स्थिति अपेक्षा नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि का कथन किया, जिस कर्म की जितनी स्थिति हो, उसकी उस स्थिति संबंधी यथायोग्य *(नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि)* जानना ॥९३६॥

पूर्वोक्त अन्योन्याभ्यस्तराशियों को गाथाओं द्वारा कहते हैं –

इट्ठसलायपमाणे दुगसंवग्गे कदे दु इट्ठस्स ।
पयडिस्स य अण्णोण्णाभत्थपमाणं हवे णियमा ॥९३७॥

इष्टशलाकाप्रमाणे द्विकसंवर्गे कृते तु इष्टस्य ।
प्रकृतेश्चान्योन्याभ्यस्तप्रमाणं भवेन्नियमात् ॥९३७॥

टीका – अपनी-अपनी इष्टशलाका जो नानागुणहानिशलाका, उसप्रमाण दो के अंक लिखकर संवर्ग अर्थात् परस्पर में गुणा करनेपर अपनी इष्ट प्रकृति की अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण नियम से होता है ॥९३७॥

किस कर्म की कितनी होती है ? ऐसा प्रश्न करनेपर कहते हैं –

आवरणवेदणीये विग्घे पल्लस्स बिदियतदियपदं ।
णामागोदे बिदियं संखातीदं हवंतित्ति ॥९३८॥

आवरणवेदनीये विघ्ने पल्यस्य द्वितीयतृतीयपदं ।
नामगोत्रे द्वितीयं संख्यातीतं भवंतीति ॥९३८॥

टीका – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अंतराय में उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडीसागर है । इसलिए इनकी अन्योन्याभ्यस्तराशि, पल्य के द्वितीय वर्गमूल को असंख्यात तृतीय वर्गमूल से गुणित करनेपर जो प्रमाण हो, उतनी है । नाम और गोत्र में उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडीसागर है, इसलिए इनकी अन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यातगुणा पल्य के द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है ॥९३८॥

आउस्स य संखेज्जा तप्पडिभागा हवंति णियमेण ।
इदि अत्थपदं जाणिय इट्ठठिदिस्साणए मदिमं ॥९३९॥

आयुषश्च संख्येयास्तत्प्रतिभागा भवंति नियमेन ।
इति अर्थपदं ज्ञात्वा इष्टस्थितेरानयेत् मतिमान् ॥९३९॥

टीका – आयुकर्म का जुदा ही स्थितिभेद है, उसकी नानागुणहानिशलाका नियम

से स्थिति के बटवारे के अनुसार है । यदि सत्तर कोडाकोडीसागर प्रमाण स्थिति की नानागुणहानिशलाका पल्य के अर्धच्छेदों से हीन पल्य के अर्धच्छेद प्रमाण है, तो तैंतीस सागर स्थिति की नानागुणहानिशलाका कितनी होगी – ऐसे त्रैराशिक करके जो लब्धराशि आयेगी, उतनी नानागुणहानि जानना । ऐसे ही विवक्षित स्थान जानकर बुद्धिमान जीव विवक्षित स्थिति की नानागुणहानिशलाका का प्रमाण बनावें ॥९३९॥

इसतरह एक गुणहानिआयाम, नानागुणहानिशलाका, निषेकभागहार और अन्योन्याभ्यस्तराशि जाननेपर क्या होता है, वह कहते हैं –

उक्कस्सट्ठिदिबंधे सयलाबाहा हु सव्वठिदिरयणा ।
तक्काले दीसदि तो धोधो बंधट्ठिदीणं च ॥९४०॥

उत्कृष्टस्थितिबंधे सकलाबाधा हि सर्वस्थितिरचना ।
तत्काले दृश्यते अतोऽधोधो बंधस्थितीनां च ॥९४०॥

टीका – विवक्षित प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबंध होनेपर उसके बंध के समय में ही उत्कृष्ट आबाधा और सर्वस्थिति की रचना देखी जाती है । उस स्थिति के अंत निषेक से नीचे-नीचे प्रथम निषेक तक स्थितिबंधरूप स्थिति की एक-एक समय हीनता पायी जाती है । अंतिम निषेक की स्थिति तो विवक्षित समयप्रबद्ध के स्थितिप्रमाण होती है; उसके नीचे द्विचरम निषेक की स्थिति उससे एक समय कम है । इसीतरह आदि निषेक तक जान लेना ॥९४०॥

इस स्थिति की अधिकता कैसे देखना, वह कहते हैं –

आबाधाणं बिदियो तदियो कमसो हि चरमसमयो दु ।
पढमो बिदियो तदियो कमसो चरिमो णिसेओ दु ॥९४१॥

आबाधानां द्वितीयः तृतीयः क्रमशो हि चरमसमयस्तु ।
प्रथमो द्वितीयः तृतीयः क्रमशश्चरमो निषेकस्तु ॥९४१॥

टीका – सब प्रकृतियों के बंधसमय में सर्व आबाधा और सर्वनिषेकरूप स्थिति की रचना होती है । बंध के अनंतर समय में आबाधाकाल का दूसरा समय, तीसरा

समय इस प्रकार एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते आबाधाकाल के अंत में अंतिम समय होता है । उसके पश्चात् पहले समय में पहला निषेक, दूसरे समय में दूसरा निषेक, तीसरे समय में तीसरा निषेक इस क्रम से स्थिति के अंत समय में अंतिम निषेक होता है । जिस-जिस समय में जितने-जितने परमाणुओं का समूहरूप निषेक है, उस-उस समय उतने-उतने परमाणु उदयरूप होते हैं । उस उदयरूप समय के अनंतर वे परमाणु कर्मस्वभाव को छोड़ देते हैं – ऐसा अर्थ जानना । इसप्रकार प्रथम निषेक से दूसरे निषेक की और दूसरे निषेक से तीसरे निषेक की स्थिति एक समय अधिक होती है । इसप्रकार एक-एक समय अधिक स्थिति देखी जाती है ॥९४१॥

आगे कहते हैं कि समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य वर्तमान एक समय में बंधता है और उदयरूप होता है –

समयपबद्धपमाणं होदि तिरिच्छेण वट्टमाणम्मि ।
पडिसमयं बंधुदओ एक्को समयपबद्धो दु ॥९४२॥

समयप्रबद्धप्रमाणं भवति तिरश्चा वर्तमाने ।
प्रतिसमयं बंधोदय एकः समयप्रबद्धस्तु ॥९४२॥

टीका – त्रिकोणरचना में विवक्षित किसी एक वर्तमान समय में विवक्षित मोहनीयकर्म की आबाधा रहित उत्कृष्ट स्थितिमात्र काल का जो प्रमाण, उसमें समय-समय में बंधे हुये समयप्रबद्धों में से जिन निषेकों की निर्जरा हुयी वह तो हो गयी, अवशेष रहे निषेकों में से प्रथम समयप्रबद्ध के अंतिम निषेक से लेकर अंतिम समयप्रबद्ध के आदि निषेक तक तिर्यक् अर्थात् बराबर रचनारूप एक-एक निषेक मिलकर संपूर्ण एक समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य होता है । उसका वर्तमान समय में उदय होता है, इसलिए प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्ध उदयरूप होता है तथा प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्ध का ही बंध होता है ॥९४२॥

प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्ध का बंध और उदय होता है, इसलिए बंध और उदय के समुदायरूप सत्त्व भी उतना ही होगा ऐसा संदेह दूर करने के लिये आगे कहते हैं –

सत्तं समयपबद्धं दिवड्ढगुणहाणिताडियं ऊणं ।
तियकोणसरूवट्ठिद दव्वे मिलिदे हवे णियमा ॥९४३॥

सत्त्वं समयप्रबद्धं द्व्यर्धगुणहानिताडितमूनं ।
त्रिककोणस्वरूपस्थितद्रव्यं मिलिते भवेन्नियमात् ॥९४३॥

टीका – सत्तारूप परमाणुओं के समूहरूप सत्त्वद्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण होता है । त्रिकोणरचना के सर्वद्रव्य का जोड़ देनेपर नियम से इतना ही होता है ।

पहले जीवकाण्ड के योगाधिकार में और कर्मकाण्ड के बंधोदयसत्त्वाधिकार में प्रसंग पाकर त्रिकोणयंत्र लिखा है और वहीं पर कैसे प्रतिसमय एक समयप्रबद्धप्रमाण का उदय होता है, कैसे किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्त्व है – यह कहा है । प्रदेशबंधाधिकार में प्रतिसमय समयप्रबद्धप्रमाण बंध होता है इसका कथन है । इसलिए सर्व कथन वहां से जान लेना । बारंबार न लिखने के कारण यहां नहीं लिखा है । यहां संदृष्टिमात्र अंकसंदृष्टिरूप त्रिकोणयंत्र लिखते हैं –

अंकसंदृष्टि से इसका अर्थ इसतरह जानना – जिस समयप्रबद्ध के सर्व निषेक सत्तारूप पाये जाते हैं, उसके सभी अड़तालीस निषेक सबसे नीचे लिखे । उसके ऊपर जिस समयप्रबद्ध का प्रथम निषेक गल गया, उसके सैंतालीस निषेक लिखे । उसके ऊपर जिसका पहला और दूसरा निषेक गल गया, उसके छियालीस निषेक लिखे । इसप्रकार एक-एक निषेक कम लिखते-लिखते अंत में जिस समयप्रबद्ध के सैंतालीस निषेक गल गये, उसका अंतिम एक निषेक लिखा । सत्ता अपेक्षा यह रचना जानना । पुनश्च वर्तमान विवक्षित समय से आगे जैसे एक समयप्रबद्ध का बंध होता है, वैसे ही एक समयप्रबद्ध की निर्जरा होती है; इसलिए सत्ता की रचना जैसे कही है वैसे ही रहती है । यहां दो यंत्र लिखे हैं, उनमें से सत्ता में पहले यंत्र की रचना का ही ग्रहण करना । इस सर्व त्रिकोणयंत्र का जोड़ किंचित् कम डेढ़ गुणहानिआयाम से गुणित समयप्रबद्ध होता है । वही सत्त्वद्रव्य का प्रमाण जानना ।

विवक्षित वर्तमान समय में जिस समयप्रबद्ध के सैंतालीस निषेक पहले गल गये उसका एक अंतिम निषेक उदयरूप है । जिसके छियालीस निषेक गल गये उसका द्विचरम

निषेक उदयरूप है और अंतिम निषेक आगामी समय में उदय में आयेगा । इसी क्रम से जिसका एक भी निषेक पहले गला नहीं उसका प्रथम निषेक उदयरूप है, अन्य निषेक आगामी समयों में *(क्रम से)* उदय में आयेंगे । इसतरह अंतिम निषेक से लेकर प्रथम निषेक तक सर्व निषेकों का जोड़ देनेपर एक समयप्रबद्ध का उदय होता है । उसके ऊपर उस विवक्षित समय के अनंतर जो समय वर्तमान होगा, वहां जिस समयप्रबद्ध का पूर्व समय में अंतिम निषेक का उदय हुआ था उसके तो सर्व निषेक गल गये और जिसका द्विचरम निषेक उदयरूप था उसका वहां अंतिम निषेक उदयरूप होता है ।

पूर्वोक्त प्रकार से एक-एक निषेक का उदय होते-होते जिसके प्रथम निषेक का उदय हुआ था उसका यहां दूसरे निषेक का उदय होता है और उस समयप्रबद्ध के पश्चात् बंधे हुये समयप्रबद्ध का प्रथम निषेक यहां उदयरूप होता है । ऐसे इस समय भी एक समयप्रबद्ध का ही उदय हुआ । इसीतरह प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्ध का उदय जानना । उस अपेक्षा त्रिकोणरचना में जो दो रचना की हैं उनको मिलानेपर अर्थात् बराबर एक पंक्ति का जोड़ देनेपर प्रतिसमय समयप्रबद्धप्रमाण का जोड़ आता है । इस संदृष्टिरूप त्रिकोणयंत्र में तिर्यक्रचना और ऊर्ध्वरचना में कुछ आदि निषेक और कुछ अंत निषेक लिखे हैं, उनके बीच में बिंदी लिखी है उसका अर्थ है कि मध्य के जितने निषेक रहे वे सर्व जान लेना । यह संपूर्ण त्रिकोणयंत्र पहले लिखा है वह जानना ॥९४३॥

आगे इस सत्तारूप त्रिकोणयंत्र का जोड़ देने का विधान कहते हैं –

उवरिमगुणहाणीणं धणमंतिमहीणपढमदलमेत्तं ।
पढमे समयपबद्धं ऊणकमेणट्ठिया तिरिया ॥९४४॥

उपरितनगुणहानीनां धनमंतिमहीनप्रथमदलमात्रं ।
प्रथमे समयप्रबद्धमूनक्रमेण स्थितं तिरश्चा ॥९४४॥

टीका – त्रिकोणरचना में विवक्षित वर्तमान समय में प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक में तो तिर्यक्रूप बराबर लिखे हुये निषेकों के समुदायरूप संपूर्ण समयप्रबद्ध प्रमाण होता है । उसके ऊपर द्वितीय निषेक से लेकर अंतिम गुणहानि के अंतिम निषेक

तक अनुक्रम से चय हीन के क्रम से तिर्यक् बराबर रचनारूप स्थित द्वितीयादि गुणहानि का जोड़ *(धन)* अंतिम गुणहानि के जोड़ को अपनी-अपनी पहली गुणहानि के जोड़ में से घटानेपर जो-जो प्रमाण हो उसका आधा होता है । परंतु प्रथम गुणहानि का जोड़ *(धन)* गुणहानि के प्रमाण से समयप्रबद्ध को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है ।

भावार्थ – यहां त्रिकोणरचना में सबसे नीचे प्रथम पंक्ति में तिर्यक्रूप से बराबर लिखे, उसको प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक कहते हैं । उसके ऊपर की पंक्तियों में जो लिखे उनको प्रथम गुणहानि के द्वितीयादि निषेक कहते हैं । गुणहानिआयामप्रमाण पंक्तियां पूर्ण होने के पश्चात् उसके ऊपर जो पंक्ति है, उसको द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक कहते हैं । उसके ऊपर की पंक्ति को द्वितीय निषेक कहते हैं । इसप्रकार गुणहानिप्रमाण पंक्तियां पूर्ण होनेपर उसके ऊपर की पंक्ति को तृतीय गुणहानि का प्रथम निषेक कहते हैं । ऐसे ही अंतिम गुणहानि तक जानना । इसका अर्थ अंकसंदृष्टिरूप त्रिकोणयंत्र में दिखाते हैं –

सबसे नीचे की पंक्ति में बराबर *(तिर्यक्रूप से)* नौ के निषेक से लेकर पांच सौ बारह के निषेक तक सर्व निषेक लिखे, उसको प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक कहते हैं । इस पंक्ति का जोड़ देनेपर संपूर्ण समयप्रबद्धप्रमाण तिरसठ सौ होता है । उसके ऊपर दूसरी पंक्ति में नौ के निषेक से लेकर चार सौ अस्सी के निषेक तक निषेक लिखे, उसको प्रथम गुणहानि का द्वितीय निषेक कहते हैं । यहां निषेक की चय संज्ञा है इसलिए इस पंक्ति का जोड़ पांच सौ बारह के चय से हीन समयप्रबद्धप्रमाण होता है । उसके ऊपर तीसरी पंक्ति में नौ के निषेक से लेकर चार सौ अड़तालीस के निषेक तक लिखे, उसको प्रथम गुणहानि का तृतीय निषेक कहते हैं । चार सौ अस्सी का एक चय पूर्व पंक्ति के जोड़ में से घटानेपर उसप्रमाण इस पंक्ति का जोड़ होता है ।

इसप्रकार अनुक्रम से एक-एक निषेकरूप चय अंतिम गुणहानि के अंतिम निषेक तक हीन हीन जानना । इसतरह ऊपर-ऊपर अड़तालीस पंक्तियां हुयी । उसमें नीचे से लेकर आठ पंक्तियों तक प्रथम गुणहानि के प्रथमादि निषेक हैं, उसके ऊपर नौवीं पंक्ति से लेकर सोलहवीं पंक्ति तक द्वितीय गुणहानि के प्रथमादि निषेक हैं – ऐसे आठ-आठ पंक्तियों की एक-एक गुणहानि जानना । वहां जो चय घटाये

थे उनको मिलानेपर प्रथम गुणहानि का जोड़ समयप्रबद्ध तिरसठ सौ को गुणहानि आठ से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना होता है ।

इनमें से अंतिम गुणहानि का जोड़ आठगुणा सौ घटानेपर आठगुणा बासठ सौ होते हैं । उसका आधा आठगुणा इकतीस सौ होता है, वह दूसरी गुणहानि का जोड़ जानना । इसमें से अंतिम गुणहानि का जोड़ आठगुणा सौ घटानेपर आठगुणा तीस सौ होते, उसका आधा आठगुणा पंद्रह सौ होता है, वह तीसरी गुणहानि का जोड़ जानना – ऐसे अंतिम गुणहानि तक जानना । इन सबका जोड़ देना ।

पुनश्च प्रथम गुणहानि में जो चय घटे थे उनका जोड़ देनेपर प्रथम गुणहानि में ऋण होता है, उसका आधा द्वितीय गुणहानि में होता हैं । ऐसे आधा-आधा अंतिम गुणहानि तक जानना । उन सबका जोड़ देकर पूर्व प्रमाण में से घटानेपर जो अवशेष रहे वही सर्व त्रिकोणयंत्र का जोड़ जानना । वही दिखाते हैं –

१ ० ०	×	८
३ ० ०	×	८
७ ० ०	×	८
१ ५ ० ०	×	८
३ १ ० ०	×	८
६ ३ ० ०	×	८

त्रिकोणरचना में अनादिबंधन से बंधे हुये तथा उनमें से निर्जरारूप गल जाने के पश्चात् अवशेष रहे ऐसे विवक्षित मोहनीय मूलप्रकृति के समयप्रबद्ध आबाधा रहित उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण हैं । वहां प्रथम समयप्रबद्ध के अंतिम निषेक से लेकर अंतिम समयप्रबद्ध के प्रथम निषेक तक बराबर की (तिर्यक्) रचनारूप चय के आधिक्य युक्त क्रम से स्थित एक-एक निषेक हैं, वे सब मिलकर विवक्षित वर्तमान समय में एक समयप्रबद्ध उदयरूप होता है । उसी समय एक समयप्रबद्ध बंधता है तथा किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्तारूप द्रव्य रहता है ।

वहां सत्ता अपेक्षा त्रिकोणरचना में प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक में अनेक समयप्रबद्ध संबंधी एक-एक निषेक मिलकर संपूर्ण समयप्रबद्धप्रमाण होता है । पुनश्च द्वितीयादि निषेकों में प्रथमादि निषेकों से एक-एक घटता हुआ है । इस कम प्रमाण को ज्यों का त्यों मिलानेपर गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण होता है ।

यहां अंकसंदृष्टि द्वारा कथन दिखाया जा रहा है, इसलिए आठगुणा तिरसठ सौ हुआ ।

इसमें से जितना घटाना है उस ऋण का प्रमाण कहते हैं ।

एक कम गुणहानि के प्रमाणरूप गच्छ में क्रम से एक से लेकर एक-एक से अधिक गुणित प्रथम निषेक का जोड़ देना । सो पांच सौ बारह को क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात से गुणा करके जोड़ देना । तब पांच सौ बारह को एक कम आठ और आठ से गुणा करना और दो को एक से गुणा करके उसका भाग देना — इतने हुये ५१२ | ८ (१ऊ) | ८ । यहां प्रथम निषेक को दोगुणहानि से भेदन करनेपर पांच सौ बारह की जगह बत्तीसगुणा आठगुणा दो हुये — ३२ | ८ | २ | ८ (१ऊ) | ८ यहां गुणकार और भागहार में तीन से गुणा करनेपर गुणकार और भागहार में दो के स्थानपर छह हुये । ३२ | ८ | ६ | ८ (१ऊ) | ८ । गुणकार के छह में से एक जुदा रखनेपर इसका प्रमाण ३२ | ८ | १ | ८ (१ऊ) | ८ अर्थात् तेइस सौ नवासी और दो का छठवां भाग हुआ । ($१४३३६ \div ६ = २३८९\frac{२}{६}$)

पुनश्च तीसरे आदि निषेकों में पूर्वोक्त संकलन विधान से दो बार संकलन के क्रम से प्रथम गुणहानि के चय का जोड़ देना । इसतरह दो कम गच्छ का दो बार संकलन मात्र प्रथम गुणहानि के चय को जोड़ देना । तब *(चय)* बत्तीस को एक, ~~दो~~, तीन, छह, दस, पंद्रह, इक्कीस से क्रम से गुणा करके जोड़ देनेपर बत्तीस को दो कम आठ से, एक कम आठ से और आठ से गुणा करके छह का भाग दीजिये इतना हुआ अर्थात् सत्रह सौ बानबे हुये —

[३२ | ८ (२ऊ) | ८ (१ऊ) | ८ $= ३२ \times \frac{६}{६} \times ७ \times ८ = १७९२$]

इसको जुदा रखे हुये एक गुणकार के प्रमाण में से घटानेपर पांच सौ सत्तानबे और दो का छठवां भाग रहा [$२३८९\frac{२}{६} - १७९२ = ५९७\frac{२}{६}$] । यहां अवशेष पांच गुणकार रहे थे उनका प्रमाण ग्यारह हजार नौ सौ छियालीस और चार का छठवां भाग हुआ । $३२ | ८ | ५ | \frac{१८}{८} | ८ = ११९४६\frac{४}{६}$ । दोनों मिलानेपर बारह हजार पांच सौ चौवालीस हुये वही प्रथम गुणहानि में ऋण जानना ।

[***विशेषार्थ*** : *अभी तक ऋणराशि निकालने के लिये ५१२ गुणा ७ का एक बार संकलनधन — ३२ गुणा ६ का दो बार संकलनधन*

$$\left[\frac{५१२ \times ७ \times ८}{२ \times १}\right] - \left[\frac{३२ \times ६ \times ७ \times ८}{३ \times २ \times १}\right]$$

$$= \frac{३२ \times ८ \times २ \times ७ \times ८ \times ३}{२ \times ३} - \frac{३२ \times ६ \times ७ \times ८}{३ \times २}$$

$$= \frac{३२ \times \textcircled{८} \times ६ \times ७ \times ८}{६} - \frac{३२ \times ६ \times ७ \times ८}{६}$$

$$= \frac{३२ \times ७ \times \cancel{६} \times ७ \times ८}{\cancel{६}} = १२५४४ \ ]$$

घटानेयोग्य राशि को ऋण कहते हैं । जो विवक्षित का प्रमाण हो उसको धन कहते हैं । प्रथम गुणहानि के ऋण सहित धन में से अंतिम गुणहानि के ऋण सहित धन को घटाकर उसका आधा द्वितीय गुणहानि का धन होता है । ऐसे ही ऊपर भी सभी गुणहानियों का धन जानना । वहां प्रथम आदि गुणहानियों का धन आठ-आठ से गुणित तिरसठ सौ, इकतीस सौ, पंद्रह सौ, सात सौ, तीन सौ, और एक सौ ——————→हुआ । *(६३०० × ८, ३१०० × ८, १५०० × ८, ७०० × ८, ३०० × ८, १०० × ८)*

इन सभी में अंतिम गुणहानि का प्रमाण मिलाकर दो से भेदनेपर प्रथमादि गुणहानियों में क्रमसे आठ-आठ और दो-दो से गुणित बत्तीस सौ, सोलह सौ, आठ सौ, चार सौ,

दो सौ, और सौ इतना प्रमाण हुआ । *(६३०० × ८ थे १०० × ८ मिलाकर ६४०० × ८ हुये वही ३२०० × ८ × २ है, ऐसे ही सर्वत्र समझना ।)*

इन सबका जोड़ 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं' इस सूत्र से अंतधन प्रथम गुणहानि का प्रमाण है उसको दो से गुणा करके उसमें से आदि अर्थात् अंतिम गुणहानि के धन को घटानेपर तिरसठ सौ को आठगुणा करके दोगुणा करें, इतने हुये । *(प्रथम गुणहानि का प्रमाण ३२०० × ८ × २ को दोगुणा करके ६४०० × ८ × २ उसमें से अंतिम गुणहानि का प्रमाण १०० × ८ × २ घटानेपर ६३०० × ८ × २ आते हैं ।)*

यहां तिरसठ सौ तो समयप्रबद्ध का प्रमाण है और आठ गुणहानि का प्रमाण है उसे दोगुणा करनेपर दोगुणहानि का प्रमाण हुआ । इसतरह सर्व का जोड़ दोगुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण हुआ ।

अब इनमें से ऋण कितना घटाना, वह कहते हैं –

प्रथम गुणहानि में ऋण बत्तीस को आठ, पांच, एक कम आठ और आठ से गुणा करना उनमें, एक गुणकार जुदा रखा था और उसमें से छह का दो बार संकलनमात्र चय घटानेपर जो प्रमाण शेष रहा था उसको मिलाकर छह का भाग देनेपर बारह हजार पांच सौ चौवालीस हुये । क्योंकि पांच सौ बारह का निषेक सात पंक्तियों में घटा, चार सौ अस्सी का छह में, चार सौ अड़तालीस का पांच में, चार सौ सोलह का चार में, तीन सौ चौरासी का तीन में, तीन सौ बावन का दो में और तीन सौ बीस का एक में घटता है और दो सौ अट्ठासी का आठों ही पंक्तियों में पाया जाता है इसलिए घटा नहीं । इसतरह ३५८४, २८८०, २२४०, १६६४, ११५२, ७०४, ३२० इन सबका जोड़ देनेपर बारह हजार पांच सौ चौवालीस होते हैं ।

पुनश्च प्रथम गुणहानि के ऋण से द्वितीयादि गुणहानियों में ऋण आधा-आधा जानना । सब गुणहानि के ऋण का जोड़ 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं' इस सूत्र से अंतधन जो प्रथम गुणहानि का ऋण उसको गुणकार दो से गुणा करके उसमें से आदि जो अंतिम गुणहानि का ऋण घटाना । यहां अंतधन बारह हजार पांच सौ चौवालीस को दो से गुना करनेपर पच्चीस हजार अट्ठासी हुये, उसमें से आदि तीन सौ बानबे घटानेपर चौबीस हजार छह सौ छानबे सर्व गुणहानियों का ऋण हुआ ।

पुनश्च अंतिम गुणहानि के धनप्रमाण सर्व गुणहानियों में ऋण मिलाया था, उसका जोड़ देनेपर नानागुणहानि से गुणित अंतिम गुणहानि के धनप्रमाण दूसरा ऋण हुआ । अंत का *(अंतिम गुणहानि का)* धन आठगुणा सौ, इसको नानागुणहानि छह से गुणा करके अड़तालीस सौ हुये । ऐसे दोनों ऋण का जोड़ देनेपर कुछ अधिक आधे गुणहानि के प्रमाण से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण हुआ । यहां उनतीस हजार चार सौ छानबे हुआ । वहां गुणहानि आठ का आधा चार से समयप्रबद्ध को गुणा करनेपर पच्चीस हजार दो सौ होते हैं । अवशेष चार हजार दो सौ छानबे रहे वह अधिक का प्रमाण जानना । इसतरह इन दोनों ऋण का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हुआ उसको पूर्वोक्त दोगुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध में से घटानेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण हुआ । यहां दोगुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध का प्रमाण एक लाख आठ सौ है, उसमें से दोनों ऋण के उनतीस हजार चार सौ बानबे घटानेपर इकहत्तर हजार तीन सौ चार रहे । वही सर्व त्रिकोणरचना का जोड़ जानना ।

यथार्थ से दोगुणहानि में से आधी गुणहानि और एक गुणहानि का अठारहवां भाग और संख्यात वर्गशलाका घटानेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानिमात्र प्रमाण रहा ।

$$\left[\frac{२ \text{ गु} - \text{गु} - \text{गु} - \text{व}\sqrt{}}{२ \quad १८} \right]$$

उससे समयप्रबद्ध को गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतना सर्व त्रिकोणरचना का जोड़ होता है । वह किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्त्वद्रव्य जानना । यहां जोड़ में गुणकार दोगुणहानि में से आधा गुणहानि और एक गुणहानि का अठारहवां भाग तथा संख्यात वर्गशलाका कैसे घटे इसका विशेष वर्णन संस्कृत टीका से जानना । कठिन जानकर यहां नहीं लिखा है । प्रयोजनमात्र लिखा ही है ॥९४४॥

आगे स्थिति के भेद कहते हैं –

अंतोकोडाकोडिट्ठिदित्ति सव्वे णिरंतरट्ठाणा ।
उक्कस्सट्ठाणादो सण्णिस्स य होंति णियमेण ॥९४५॥

अंतः कोटाकोटिस्थितिरिति सर्वाणि निरंतरस्थानानि ।
उत्कृष्टस्थानात्संज्ञिनश्च भवंति नियमेन ॥९४५॥

टीका – आयु बिना सात कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति से लेकर अंत: कोडाकोडीसागर प्रमाण जघन्य स्थिति तक एक-एक समय हीन के अनुक्रम से जो निरंतर स्थितिभेद हैं, वे संख्यात पल्यप्रमाण हैं । जो नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के होते हैं । यहां बीस कोडाकोडीसागर की उत्कृष्ट स्थिति धारक कर्मों की जघन्य स्थिति अंत:कोडाकोडीसागर होती है, तो तीस कोडाकोडीसागरवालों की कितनी होगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर डेढ़गुणा अंत:कोडाकोडीसागर होगी — इसतरह ज्ञानावरणादि कर्मों की अंत:कोडाकोडीसागर का प्रमाण साधना ॥९४५॥

आगे सांतर स्थिति के भेद कहते हैं —

संखेज्जसहस्साणिवि सेढीरूढम्मि सांतरा होंति ।
सगसगअवरोत्ति हवे उक्कस्सादो दु सेसाणं ॥९४६॥

संख्येयसहस्राण्यपि श्रेणीरूढे सांतरा भवंति ।
स्वकस्वकावर इति भवेदुत्कृष्टात्तु शेषाणां ॥९४६॥

टीका – सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम, उपशमक-क्षपकश्रेणी के सन्मुख हुये ऐसे क्रम से मिथ्यादृष्टि, असंयत, देशसंयत, अप्रमत्त; अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती जीव तथा उपशमक-क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुये जीव — इनमें सांतर अर्थात् एक-एक समय हीन के नियम से रहित ऐसे स्थिति के भेद संख्यात हजार हैं । वही कहते हैं —

अध:प्रवृत्तकरण में पहले समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक ज्ञानावरणादि प्रकृतियों की अपने योग्य अंत:कोडाकोडीसागर प्रमाण स्थिति बांधते हैं । उसके पश्चात् अंतर्मुहूर्त तक पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हीन बांधते हैं । उसके पश्चात् अंतर्मुहूर्त तक उससे भी उतनी ही हीन स्थिति बांधते हैं ।

ऐसे संख्यात हजार बार करके उस करण को पूर्णकर अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय में भी अपने-अपने स्थिति बंध को आलाप से उतनी-उतनी ही बार घटाकर *(कथन से संख्यात हजार बार घटाकर)* वेदनीय की बारह मुहूर्त तक, नाम और गोत्र की आठ मुहूर्त तक अवशेष कर्मों की एक मुहूर्त तक *(उतने प्रमाण)* स्थिति को बांधते हैं ।

ऐसे सांतर स्थिति के भेद संख्यात हजार जानना । पुनश्च संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त को छोड़कर शेष बारह जीवसमास के 'एयं पण कदि पण्णं' इत्यादि सूत्र से 'बासूप' इत्यादि पहले स्थितिबंध के कथन में जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कही है, सो उत्कृष्ट स्थिति से जघन्य स्थिति तक एक-एक समय हीन क्रम युक्त निरंतर स्थिति के भेद जानना ॥९४६॥

आगे मूलप्रकृतियों के स्थिति के भेदों को कारणभूत ऐसे कषायाध्यवसाय अर्थात् स्थितिबंधाध्यवसायस्थान कितने हैं, वह कहते हैं –

आउट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा ।
णामागोदे सरिसं आवरणदु तदियविग्घे य ॥९४७॥

आयु:स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यलोकमितानि ।
नामगोत्रे सदृशमावरणद्विके तृतीयविघ्ने च ॥९४७॥

टीका – आयु के स्थितिबंधाध्यवसायस्थान सबसे थोड़े हैं, तथापि वे भी यथायोग्य असंख्यात लोकप्रमाण हैं । उनसे पल्य के असंख्यातवें भागगुणा नाम और गोत्र दोनों के स्थितिबंधाध्यवसायस्थान परस्पर समान जानना । पुनश्च उनसे पल्य के असंख्यातवें भागगुणा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय इन चार के स्थितिबंधाध्यवसायस्थान परस्पर समान जानना ॥९४७॥

सव्वुवरि मोहणीये असंखगुणिदक्कमा हु गुणगारो ।
पल्लासंखेज्जदिमो पयडिसमाहारमासेज्ज ॥९४८॥

सर्वोपरि मोहनीये असंख्यगुणितक्रमाणि हि गुणकार: ।
पल्यासंख्येयिम: प्रकृतिसमाहारमासाद्य ॥९४८॥

टीका – सर्व के ऊपर मोहनीय के स्थितिबंधाध्यवसायस्थान उनसे पल्य के असंख्यातवें भागगुणा जानना – इसतरह प्रकृतियों के स्थितिभेदों की अपेक्षा कषायाध्यवसायस्थान तीनों जगह क्रम से असंख्यातगुणा जानना । यहां गुणकार का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग जानना । यहां प्रासंगिक सिद्धांत के वचन कहते हैं –

ण य सव्वमूलपयडीणं समाणाणं कसायोदयट्ठाणाणमेत्त गहणं, कसायोदयट्ठाणेण विणा मूलपयडिबंधाभावेण सव्वपयडीट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं समाणप्पसंगादो तम्हा सव्वमूलपयडीणं सगसगउदयादो समुप्पण्णपरिणामाणं सगसगट्ठिदिबंधकारणंत्तेण ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणसण्णिदाणमुत्तरपच्चयाणमेत्त गहणं । पयडिसमाहारमासज्ज णाणावरणादीणं पयडीणं सगसगट्ठिदिबंधकारण-ज्झवसाणट्ठाणाणि सव्वाणि एगत्त काऊण पमाणं परूविदं । ण ट्ठिदि पडि एसा परूवणा होदि उवरिमसुत्तेहि ट्ठिदिं पडि अज्झवसाणपमाणस्स परूविज्जमाणत्तादो हेट्ठिमेहिंतो उपरिमाणि किमट्ठमसंखेज्जगुणाणि साहावियादो मिच्छत्तासंजमकसाय-पच्चयेहिं सव्वाणि कम्माणि सरसाणि तेण एदेसिं कम्माणमज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणहाणित्ति ण घडदे हेट्ठिमाणं ठिदिबंधट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं ठिदिबंधट्ठाणाणि अहियाणित्ति असंखेज्जगुणत्तं ण जुज्जदे हेट्ठिमहेट्ठिमकम्माणं ठिदिबंधट्ठाणपाओग्ग कसायेहिंतो उवरिमउवरिमाणं कम्माणमहियट्ठिदिबंधट्ठाण-पाउग्गकसाय उदयट्ठाणाणं असमाणाणमणुवलंभेण असंखेज्जगुणत्ताणुववत्तीदो । ण एस दोसो हेट्ठिमाणं उदयट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं उदयट्ठाणबहुत्तेण असंखेज्जगुणत्ताधिरोहादो ।

इसका अर्थ –

यहां सर्व मूलप्रकृतियों के समान नहीं पाये जाते ऐसे जो कषायों के उदयस्थान, उनका यहां ग्रहण है । चूंकि कषायों के उदयस्थान बिना मूलप्रकृतियों के बंध का अभाव है, इसकारण सर्व प्रकृतियों के स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों की समानता का प्रसंग आ जाता, वह तो है नहीं, इसलिए सर्व मूलप्रकृतियों के अपने-अपने उदय से उत्पन्न ऐसे जो आत्मा के परिणाम जो अपने-अपने स्थितिबंध के कारण हैं और जिनका नाम स्थितिबंधाध्यवसाय है ऐसे जो उत्तरप्रत्यय अर्थात् आस्रवभेद, उनका यहां ग्रहण है । प्रकृतियों के स्थितिभेदरूप समाहार अर्थात् समुदाय, उसका आश्रय करके ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के अपने-अपने स्थितिबंध के कारणभूत ऐसे जो अध्यवसाय उन सबको इकट्ठा करके प्रमाण कहा है, स्थिति की अपेक्षा यह प्ररूपणा नहीं है । इसलिए आगे के सूत्रों द्वारा स्थिति की अपेक्षा अध्यवसाय के प्रमाण का प्ररूपण किया है ।

यहां तर्क – अधस्तनेभ्य – अर्थात् पहले कहे हुये आयु आदि कर्मों के स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों से **उपरिमाण** अर्थात् पश्चात् कहे हुये कर्मों के स्थितिबंधाध्यवसायस्थान असंख्यातगुणा कैसे हैं ? क्योंकि स्वभावपने ही से मिथ्यात्व, असंयम, कषायरूप प्रत्ययों के द्वारा सब कर्म समान हैं । इसलिए हीन कर्मों के अध्यवसायस्थान असंख्यातगुणे नहीं शोभते । अधस्तन अर्थात् पहले कहे हुये आयु आदि कर्मों के स्थितिबंध के स्थानों से उपरितन अर्थात् पश्चात् कहे हुये कर्मों के स्थितिबंध के स्थान अधिक हैं । इसतरह भी असंख्यातगुणा नहीं बन सकता ?

भावार्थ *(तर्क का)* – नीचे के कर्मों से ऊपर के कर्मों के स्थितिस्थान अपेक्षा भी अधिकपना हो सकता है, असंख्यातगुणा नहीं हो सकता ?

वहां उत्तर कहते हैं – नहीं, यह दोष है । क्योंकि अधस्तन अर्थात् पहले कहे हुये आयु आदि कर्मों के उदयस्थानों से उपरिम अर्थात् पश्चात् कहे हुये कर्मों के उदयस्थान बहुत हैं । इसकारण असंख्यातगुणा होने में विरोध नहीं है ।

अपने-अपने उदय से उत्पन्न आत्मा के परिणामों का स्थितिबंधाध्यवसायस्थान नाम है । आयु आदि कर्मों के उदयस्थानों से नाम आदि कर्मों के उदयस्थान बहुत हैं । इसलिए असंख्यातगुणा कहे ॥९४८॥

आगे जघन्यादि स्थिति की अपेक्षा स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का प्रमाण कहते हैं –

अवरट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा ।
अहियकमा उक्कस्स ट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥९४९॥

अवरस्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यलोकमितानि ।
अधिकक्रमाणि उत्कृष्ट स्थितिपरिणाम इति नियमेन ॥९४९॥

टीका – विवक्षित मोहनीयकर्म की स्थिति जघन्य तो अंत:कोडाकोडीसागर प्रमाण है, वह संख्यात पल्य प्रमाण है, तथा उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडीसागर प्रमाण है वह जघन्य स्थिति से संख्यातगुणा है । वहां जघन्य स्थिति को उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर उसमें एक और मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने स्थिति के भेद हैं । इन भेदों में से सर्वजघन्य स्थितिबंध के कारणभूत अध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं । उसके ऊपर उत्कृष्ट स्थिति तक नियम से चय से अधिक-अधिक हैं ।

जघन्य स्थिति के कारणभूत अध्यवसायस्थानों का जो प्रमाण है, उसमें एक चय का प्रमाण मिलानेपर जघन्य स्थिति से एक समय अधिक स्थिति के कारणभूत अध्यवसायस्थानों का प्रमाण होता है । ऐसे ही उत्कृष्ट स्थिति तक जानना ।

अहियागमणणिमित्तं गुणहाणी होदि भागहारो दु ।
दुगुणं दुगुणं वड्ढी गुणहाणिं पडि कमेण हवे ॥९५०॥

अधिकागमननिमित्तं गुणहानिर्भवति भागहारस्तु ।
द्विगुणा द्विगुणा वृद्धिः गुणहानिं प्रति क्रमेण भवेत् ॥९५०॥

टीका – अधिकरूप जो चय, उसका प्रमाण लाने के लिये विवक्षित गुणहानि में अंत निषेक को दोगुणहानि का भाग दीजिये और 'तु' शब्द से अथवा प्रथम निषेक को एक अधिक गुणहानि का भाग दीजिये तब चय का प्रमाण आता है ।

जैसे, अंकसंदृष्टि से अंत गुणहानि में अंत के निषेक का प्रमाण सोलह, उसको दोगुणा गुणहानि का प्रमाण सोलह से भाग देनेपर एक आया; अथवा प्रथम निषेक का प्रमाण नौ को एक अधिक गुणहानि प्रमाण नौ का भाग देनेपर भी एक आया, वही उस गुणहानि में चय का प्रमाण जानना । उससे गुणहानि-गुणहानि प्रति चय का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा जानना । क्योंकि गुणहानि-गुणहानि में प्रथम निषेक और अंत निषेक का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा पाया जाता है ॥९५०॥

ठिदिगुणहाणिपमाणं अज्झवसाणम्मि होदि गुणहाणी ।
णाणागुणहाणिसला असंखभागो ठिदिस्स हवे ॥९५१॥

स्थितिगुणहानिप्रमाणमध्यवसाने भवति गुणहानिः ।
नानागुणहानिशला असंख्यभागः स्थितेर्भवेत् ॥९५१॥

टीका – पहले बंध के कथन में कर्मस्थिति की रचना में जैसे गुणहानि का प्रमाण कहा है, वैसे यहां कषायाध्यवसायस्थानों के कथन में भी गुणहानि का प्रमाण जानना ।

भावार्थ – जैसे पहले कहा था कि स्थिति के प्रमाण को नानागुणहानिशलाका के प्रमाण का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वह गुणहानि का प्रमाण है, वैसे ही

यहां जानना । यहां जघन्य स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति के जितने भेद हैं, उनका प्रमाण वही स्थिति का प्रमाण जानना । उसको नानागुणहानिशलाका का जो प्रमाण कहा है उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वही एक गुणहानिआयाम का प्रमाण जानना। इसको दोगुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही दोगुणहानि का प्रमाण जानना । यहां नानागुणहानि का प्रमाण स्थितिरचना में जो नानागुणहानि का प्रमाण कहा था उसके असंख्यातवें भाग जानना । विवक्षित मोहनीयकर्म की स्थितिरचना में नानागुणहानिशलाका का प्रमाण पल्य के अर्धच्छेदों में से पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद घटानेपर जो प्रमाण हो उतना कहा था, उसको असंख्यात का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, वह यहां कषायाध्यवसायरचना में नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

जैसे स्थितिरचना में अंकसंदृष्टि आदि द्वारा कथन किया था, वैसे यहां भी जानना । यहां स्थिति के भेदों का जो प्रमाण है, वह तो स्थिति का प्रमाण जानना । *(यहां स्थिति, निषेक आदि शब्दों से कर्म की स्थिति आदि नहीं समझना । ये तो गणित के पारिभाषिक शब्द हैं ।)* वहां जितना गुणहानिआयाम का प्रमाण है उतने जघन्य से लेकर स्थिति के जो भेद हैं, उन्हें प्रथम गुणहानि कहते हैं । वहां जघन्य स्थिति को कारणभूत अध्यवसायों का जो प्रमाण है, वह प्रथम निषेक का प्रमाण जानना । इसमें एक चय मिलानेपर एक समय अधिक जघन्य स्थिति के कारणभूत अध्यवसायों के प्रमाणरूप दूसरा निषेक होता है । प्रथम निषेक को एक अधिक गुणहानिआयाम का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, वही चय का प्रमाण है । इसतरह एक-एक चय अधिक प्रथम गुणहानि के अंत निषेक तक जानना ।

उसके ऊपर स्थिति के उतने ही भेदों में द्वितीय गुणहानि कहते हैं । वहां निषेक, चय आदि का प्रमाण प्रथम गुणहानि से दोगुणा जानना । इसीतरह अंतिम गुणहानि तक कथन जानना ॥९५१॥

वहां जघन्य चय के महत्वपने को दिखाते हैं –

लोगाणमसंखपमा जहण्णउड्ढिम्मि तम्हि छट्ठाणा ।
ठिदिबंधज्झवसाण ट्ठाणाणं होंति सत्तण्हं ॥९५२॥

लोकानामसंख्यप्रमाण जघन्यवृद्धौ तस्मिन् षट्स्थानानि ।
स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानां भवंति सप्तानां ॥९५२॥

टीका – आयु बिना सात मूलप्रकृतियों के स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के सर्व गुणहानियों संबंधी जो चय हैं, उनमें से प्रथम जघन्य वृद्धि अर्थात् प्रथम गुणहानि संबंधी जो चय का प्रमाण है, उसमें परिणामों के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण बार अनंतभागवृद्धि आदिरूप षट्स्थानपतित वृद्धि पायी जाती हैं ॥९५२॥

आगे आयुकर्म के स्थितिबंधाध्यवसायों में विशेष है, वह कहते हैं –

आउस्स जहण्णाट्ठिदि बंधणजोग्गा असंखलोगमिदा ।
आवलिअसंखभागेणुवरुवरिं होंति गुणिदकमा ॥९५३॥

आयुषः जघन्यस्थिति बंधनयोग्यानि असंख्यलोकमितानि ।
आवल्यसंख्यभागेनोपर्युपरि भवंति गुणितक्रमाणि ॥९५३॥

टीका – आयुकर्म के सर्वजघन्य स्थितिबंध को योग्य ऐसे अध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं । इसको आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर जघन्य से एक समय अधिक दूसरी स्थिति के योग्य अध्यवसायस्थान हैं । ऐसे ही उत्कृष्ट स्थिति तक क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित अध्यवसायस्थान जानना । वहां अंकसंदृष्टि द्वारा कथन दिखाते हैं –

आयुकर्म की स्थिति के भेद संख्यात पल्य प्रमाण हैं, उसकी सहनानी *(संदृष्टि)* सोलह १६ । जघन्य स्थिति के योग्य अध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण उसकी संदृष्टि बाइस । द्वितीयादि स्थिति में गुणकार आवली का असंख्यातवां भाग – उसकी संदृष्टि चार ।

पुनश्च नाना जीवों की अपेक्षा नीचे की स्थिति के बंध के कारणभूत अध्यवसायस्थान और ऊपर की स्थिति के बंध के कारणभूत अध्यवसायस्थान इनमें समानता भी पायी जाती है *(समानता हो सकती है)*; इसलिए यहां अनुकृष्टि का विधान पाया जाता है । क्योंकि ऊपर और नीचे में समानता का नाम ही अनुकृष्टि है । यहां अनुकृष्टि के गच्छ का प्रमाण अंकसंदृष्टि से चार जानना । स्थिति की रचना तो ऊपर-ऊपर जानना और एक-एक स्थितिरचना के बराबर अनुकृष्टिरचना जानना ।

वहां जघन्य स्थिति की अनुकृष्टि में चय का प्रमाण एक, सर्व चयों के जोड़रूप चयधन छह । वह प्रथम स्थिति में द्रव्य बाइस में से चयधन छह घटानेपर सोलह रहे, उसको अनुकृष्टि गच्छ चार का भाग देनेपर चार आये, वह जघन्यस्थिति में जघन्य अनुकृष्टि का खण्ड जानना । उससे उत्कृष्ट खण्ड तक एक-एक चय अधिक जानना । यहां दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड का प्रमाण पांच, छह, सात जानना — इन चारों खण्डों का जोड़ बाइस होता है ।

पुनश्च दूसरे स्थितिभेद में द्रव्य बाइस से चारगुणा अध्यवसाय है, वह अट्ठासी हुआ । उनमें से एक भाग एकगुणा बाइस का ग्रहण कर प्रथमादि अनुकृष्टि खण्डों में क्रम से पांच, छह, सात देना; अवशेष चार रहे तथा बहुभाग का तीनगुणा बाइस *(६६)* रहे, वह अंत के चौथे उत्कृष्ट खण्ड में देने से अंत के खण्ड में सत्तर हुये तथा सर्व मिलकर अट्ठासी हुये।

पुनश्च तीसरे स्थितिभेद में बाइस का दो बार चौगुणा *(२२ × ४ × ४)* अध्यवसाय है, वह तीन सौ बावन हुये । वहां एकभाग का चौगुणा बाइस *(२२ × ४)* जुदा रख कर अवशेष चौगुणा बाइस से तीनगुणा अर्थात् दो सौ चौंसठ *(२२ × ४ × ३)* अंत के चौथे खण्ड में देना । पुनश्च चौगुणा बाइस में से एकभाग का एकगुणा बाइस जुदा करके तीनगुना बाइस *(२२ × ३)* अर्थात् छासठ रहे, उसे उपांत जो तीसरा खण्ड उसमें देना । एकगुणा बाइस शेष रहा उसमें से पहले और दूसरे खण्ड में तो छह और सात देना तथा तीसरे और चौथे खण्ड में पूर्व में कहा था उसमें चार और पांच मिलाना ।

इसप्रकार करने से प्रथम खण्ड में छह, दूसरे खण्ड में सात, तीसरे खण्ड में सत्तर और चौथे खण्ड में दो सौ उनहत्तर (६ | ७ | ७० | २६९) हुये । सबका जोड़ देनेपर तीन सौ बावन हुये ।

पुनश्च चौथे स्थितिभेद में बाइस को तीन बार चौगुणा करे इतने *(२२ × ४ × ४ × ४)* अध्यवसाय हैं, जो चौदह सौ आठ हुये । वहां एकभाग का दो बार चौगुणा बाइस *(२२ × ४ × ४)* जुदा कर अवशेष दो बार चौगुणा बाइस को तीनगुणा करे *(२२ × ४ × ४ × ३)* उसके एक हजार छप्पन हुये उसे अंत के चौथे खण्ड

में देना । दो बार चौगुणा बाइस को जुदा रखा था, उनमें से एकभाग चौगुणा बाइस *(२२ × ४)* जुदा रखकर अवशेष चौगुणा बाइस का तीनगुणा *(२२ × ४ × ३)* उसके दो सौ चौंसठ हुये, उसे उपांत तीसरे खण्ड में देना । पुनश्च जुदे रखे हुये चौगुणा बाइस में से एकभाग का एकगुणा बाइस जुदा रखकर अवशेष तीनगुणा बाइस के छासठ हुये, उसे दूसरे खण्ड में देना । पुनश्च एकगुणा बाइस जुदा रखा था, उसमें से सात तो प्रथम खण्ड में देना और चार, पांच, छह दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड के प्रमाण में मिलाना, ऐसा करने से प्रथम खण्ड में सात, दूसरे में सत्तर, तीसरे में दो सौ उनहत्तर और चौथे में एक हजार बासठ हुये (७ | ७० | २६९ | १०६२) सबका जोड़ देनेपर चौदह सौ आठ हुये ।

इसी क्रम से पांचवें, छठवें, सातवें, आठवें इत्यादि उपांत और अंत के स्थितिभेद में अनुकृष्टिरचना जानना ।

सर्वत्र जो नीचे के स्थितिभेद के दूसरे, तीसरे, चौथे अनुकृष्टि खण्ड में हो, उसे ऊपर के स्थितिभेद के पहले, दूसरे, तीसरे अनुकृष्टि खण्ड में लिखना । उस ऊपर के स्थितिभेद के सर्वद्रव्य में से तीनों खण्डों का प्रमाण जोड़कर घटानेपर अवशेष रहे वह चौथे खण्ड में प्रमाण लिखना । इसतरह नीचे की स्थिति के और ऊपर की स्थिति के अध्यवसायों की समानता पायी जाती है । किसी जीव के जितने अध्यवसायों से नीचे की स्थिति बंधती है, उतने ही परिणामों से किसी जीव के ऊपर की भी स्थिति बंधती है । ऐसी समानता जानकर अनुकृष्टिरचना कही ।

नीचे की स्थिति का जघन्य खण्ड ऊपर की स्थिति के खण्डों के समान नहीं है । ऊपर की स्थिति का उत्कृष्ट खण्ड नीचे की स्थिति के खण्डों के समान नहीं है ऐसे जानना। इसतरह आयु के स्थितिबंधाध्यवसाय कहे । अवशेष कर्मों के कहते हैं –

वहां मोहनीय की जघन्य स्थिति संख्यात पल्य प्रमाण उससे लेकर एक-एक समय से बढ़ते हुये जघन्य स्थिति से संख्यातगुणा उत्कृष्ट स्थिति तक जो स्थिति के भेद हैं, वहां स्थितिरचना में ऐसा △ आकार जानना ।

नीचे जो ऊभी *(सीधी, खड़ी)* रेषा है, वे तो आबाधाकाल के समय जानना । उसके ऊपर प्रथम समय से लेकर अंत तक घटते-घटते निषेक हैं । इसलिए नीचे

चौड़ा और ऊपर संकोचरूप *(क्रम से हीनरूप)* आकार जानना । वे स्थिति के भेद प्रमाण होते हैं । वही यहां मोहनीय के स्थितिबंधाध्यवसायरचना में स्थिति का प्रमाण जानना । इसको पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद से हीन पल्य के अर्धच्छेद प्रमाण का असंख्यातवां भाग (**छे $\overset{\frown}{\underset{१}{}}$ वछे**) प्रमाण जो नानागुणहानिशलाका उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आये, वह गुणहानिआयाम जानना । इसको दोगुणा करनेपर दोगुणहानि का प्रमाण आता है ।

पुनश्च नानागुणहानिशलाका प्रमाण दो का अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, वह अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना । वह पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । स्थितिबंधाध्यवसायस्थान असंख्यातलोक को तीन बार पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करके जो प्रमाण हो उतने हैं । वह यहां द्रव्य का प्रमाण जानना । इस द्रव्य को एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वह प्रथम गुणहानि का प्रमाण है ।

पहले स्थितिरचना में निषेक अनुक्रम से घटते प्रमाण युक्त थे, इसलिए अंत की गुणहानि का द्रव्य सबसे थोड़ा कहा था । यहां अनुक्रम से अधिक है, इसलिए प्रथम गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण थोड़ा कहा । इस प्रथम गुणहानि से द्वितीयादि गुणहानि में द्रव्य दोगुणा-दोगुणा अंत की गुणहानि तक जानना ।

वहां प्रथम गुणहानि के द्रव्य का जो प्रमाण, उसको **अद्धाणेण खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि , अद्धाण** अर्थात् गुणहानिआयाम के प्रमाणरूप गच्छ का भाग देनेपर मध्यमधन का प्रमाण आता है । गच्छ के बीच *(मध्य)* के निषेक का जो प्रमाण उसको मध्यमधन कहते हैं । यदि गच्छ का प्रमाण समसंख्यारूप हो, तो वहां बीच के दो निषेकों का आधा प्रमाण, वह मध्यमधन जानना ।

पुनश्च **तं रूऊणद्धाण अद्धेण ऊणेण णिसेयभागहारेण अवहरिदे पचओ** उस मध्यमधन को, निषेकभागहार अथात् दोगुणहानि में से एक कम गुणहानिआयाम का आधा घटानेपर जो प्रमाण रहे उसका भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है ।

(मध्यमधन ÷ (दोगुणहानि − $\frac{\text{गुणहानिआयाम} - १}{२}$) = चय)

पुनश्च यहां निषेक का प्रमाण अधिक-अधिक हैं; इसलिए उस चयप्रमाण को एक अधिक गुणहानिआयाम के प्रमाण से गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, वही प्रथम निषेक जानना । इसमें एक-एक चय क्रम से मिलानेपर द्वितीयादि निषेकों का प्रमाण होते हुये एक कम गुणहानिप्रमाण चय मिलनेपर अंत का निषेक होता है ।

पुनश्च प्रथम गुणहानि से गुणहानि-गुणहानि प्रति द्रव्य, चय, निषेकों का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा जानना । इसतरह रचना करके अंत की गुणहानि में, प्रथम गुणहानि के द्रव्य को अन्योन्याभ्यस्तराशि के आधे प्रमाण से गुणा करके, द्रव्य का प्रमाण होता है । इसको गुणहानिआयामरूप गच्छ का भाग देनेपर मध्यमधन होता है । उस मध्यमधन को एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है । इसको एक अधिक गुणहानिआयाम से गुणा करनेपर प्रथम निषेक होता है । द्वितीयादि निषेकों में इसी क्रम से एक-एक चय अधिक होकर अंत का निषेक एक कम गुणहानिप्रमाण चय मिलाने से होता है ।

इसतरह स्थिति के भेदों में स्थितिबंधाध्यवसायस्थान का बटवारा कहा । अब इसी कथन को अंकसंदृष्टि द्वारा दिखाते हैं –

सर्व स्थितिबंधाध्यवसायस्थान तिरसठ सौ, इसको **रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं** एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि तिरसठ का भाग देनेपर सौ आये, वह प्रथम गुणहानि का द्रव्य जानना । इसको गच्छ का भाग देनेपर चौथे और पांचवें मिले हुये निषेकों का आधा प्रमाण साढ़े बारह मध्यमधन जानना । इसको एक कम गच्छ सात, उसका आधा साढ़ेतीन, इसको दोगुणहानि सोलह में से घटानेपर रहे साढ़े बारह, उसका भाग देनेपर एक आया, वह चय का प्रमाण जानना । इसको एक अधिक गुणहानि का प्रमाण नौ से गुणा करनेपर नौ आये, वह प्रथम निषेक जानना । द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय अधिक होता है । एक कम गुणहानि का प्रमाण सात, इतने चय मिलनेपर सोलह हुये वह अंत निषेक जानना ।

इसतरह द्वितीयादि गुणहानि में द्रव्य, चय, निषेक दोगुणा-दोगुणा होता है । अंत गुणहानि में प्रथम गुणहानि का द्रव्य सौ को अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा बत्तीस से गुणा करनेपर बत्तीस सौ तो द्रव्य जानना । इसको गच्छ आठ का भाग देनेपर मध्यमधन

चार सौ, इसको एक कम गुणहानि के आधे से हीन दोगुणहानि का प्रमाण साढ़े बारह का भाग देनेपर बत्तीस आये, वह चय जानना । इसको एक अधिक गुणहानि का प्रमाण नौ से गुणा करनेपर दो सौ अट्ठासी हुये, वह प्रथम निषेक जानना ।

द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय मिलकर, एक कम गुणहानिप्रमाण सात चय मिलनेपर पांच सौ बारह हुये, वह अंत का निषेक जानना ।

इसतरह अंकसंदृष्टि से कथन दिखाया । यहां भी प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक प्रमाण अध्यवसायस्थान जघन्य स्थिति के कारण जानना । द्वितीय निषेक प्रमाण एक समय अधिक स्थिति के कारण जानना । ऐसे ही अंत गुणहानि के अंत निषेक प्रमाण स्थितिबंधाध्यवसायस्थान उत्कृष्ट स्थिति के कारण जानना ॥९५३॥

पुनश्च यहां एक-एक स्थितिभेद संबंधी अध्यवसायों में नाना जीवों की अपेक्षा खण्ड पाये जाते हैं अथवा किसी जीव के जितने अध्यवसायों से नीचे की स्थिति बंधती है, उतने ही से किसी जीव के ऊपर की अधिक स्थिति बंधती है । ऐसी ऊपर-नीचे समानता जानकर अनुकृष्टिविधान कहते हैं –

पल्लासंखेज्जदिमा अणुकट्टी तत्तियाणि खंडाणि ।
अहियकमाणि तिरिच्छे चरिमं खंडं य अहियं तु ॥९५४॥

पल्यासंख्येयिमा अनुकृष्टिः तावंति खंडानि ।
अधिकक्रमाणि तिरश्चि चरमं खंडं च अधिकं तु ॥९५४॥

टीका – स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों में जो गुणहानिआयाम का प्रमाण कहा उसको संख्यात का भाग देनेपर सिद्ध हुआ जो पल्य का असंख्यातवां भाग, उसप्रमाण अनुकृष्टिरचना में गच्छ का प्रमाण जानना । उतने ही अनुकृष्टि के खण्ड हैं । उन खण्डों की विवक्षित स्थितिभेदरचना के आगे तिर्यक् बराबर रचना करना, वे प्रथम खण्ड से लेकर क्रम से एक-एक अनुकृष्टि चय से अधिक जानना । तथापि जघन्य प्रथम खण्ड से उत्कृष्ट अंत का खण्ड अधिक प्रमाण युक्त ही होता है, दोगुणा, तीनगुणा इत्यादि नहीं होता ॥९५४॥

उस विशेष प्रमाण को कहते हैं –

लोगाणमसंखमिदा अहियपमाणा हवंति पत्तेयं ।
समुदायेणवि तच्चिय ण हि अणुकिट्ठिम्मि गुणहाणी ॥९५५॥

लोकानामसंख्यमितानि अधिकप्रमाणानि भवंति प्रत्येकं ।
समुदायेनापि तावन्नहि अनुकृष्टौ गुणहानिः ॥९५५॥

टीका – अनुकृष्टि का चय गुणहानि प्रति दोगुणा-दोगुणा है, तथापि सामान्यपने असंख्यातलोकमात्र ही कहते हैं, क्योंकि विवक्षित गुणहानि की ऊर्ध्वरचना में जो चय का प्रमाण है उसको अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर अनुकृष्टि के चय का प्रमाण आता है, वह स्थूलता से असंख्यातलोक प्रमाण ही है । वहां प्रथम खण्ड से एक-एक चय से अधिक द्वितीयादि खण्ड हैं तथापि उन सबका प्रमाण असंख्यातलोक ही कहते हैं, क्योंकि असंख्यातलोक के असंख्यातलोकप्रमाण भेद पाये जाते हैं । अनुकृष्टि के गच्छ में गुणहानि की रचना नहीं है; क्योंकि सर्व उत्कृष्ट खण्डों के जघन्य खण्ड से एक कम गुणहानि के गच्छप्रमाण चयों की अधिकता पायी जाती है । इसतरह अनुकृष्टि के गच्छ और चय का प्रमाण बताकर अब अनुकृष्टि के खण्डों में स्थितिबंधाध्यवसायों का प्रमाण कहते हैं –

जघन्य स्थितिबंध के योग्य कषाय परिणामों को द्रव्य जानना । प्रथम गुणहानि में जो चय का प्रमाण, उसको अनुकृष्टि गच्छ पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण, उसका भाग देनेपर अनुकृष्टि चय का प्रमाण आता है । पुनश्च **व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं** एक कम अनुकृष्टि गच्छ के आधे को अनुकृष्टि चय से गुणा करके अनुकृष्टि गच्छ से गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, वह यहां प्रचयधन *(चयधन)* जानना ।

पुनश्च प्रथम गुणहानि में जघन्य स्थिति संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायों का जो प्रमाण है, उसमें से प्रचयधन का प्रमाण घटाकर अवशेष रहे उसको अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वह प्रथम गुणहानि में जघन्य स्थिति संबंधी अनुकृष्टि का प्रथम खण्ड जानना । द्वितीयादि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि के चय से अधिक होकर एक कम अनुकृष्टि के गच्छप्रमाण चय जघन्य खण्ड में अधिक होनेपर उत्कृष्ट अर्थात् अंत खण्ड होता है । वहां **पदहतमुखमादिधनं** पद अर्थात् अनुकृष्टि गच्छ से मुख अर्थात् प्रथम खण्ड को गुणा करनेपर आदिधन होता है । पुनश्च **व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं** एक कम गच्छ

के आधे से चय को तथा गच्छ को गुणा करनेपर चयधन होता है, आदिधन और चयधन मिलानेपर जघन्य स्थिति संबंधी अध्वयवसायों के प्रमाणरूप सर्वधन होता है ।

इसीतरह द्वितीयादि निषेकों में अनुक्रम से अनुकृष्टिरचना करके प्रथम गुणहानि के अंत निषेक के द्रव्य में से पूर्वोक्त चयधन घटाकर अवशेष को अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर प्रथम खण्ड होता है । द्वितीयादि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय से अधिक होकर अंत का खण्ड एक कम अनुकृष्टि गच्छप्रमाण चय से अधिक होता है । गच्छ से प्रथम खण्ड को गुणा करनेपर आदिधन होता है । चयधन के प्रमाण के लिये **मुहभूमि जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि**, मुख तो एक चय और भूमि एक कम अनुकृष्टि के गच्छप्रमाण चय इनको जोड़ कर आधा करके पश्चात् एक कम अनुकृष्टि के गच्छप्रमाण गच्छ से गुणा करते हैं, तब चयधन का प्रमाण होता है । यह आदिधन और चयधन मिलानेपर प्रथम गुणहानि के अंत के निषेक में प्रमाण होता है । इसतरह प्रथम गुणहानि में अनुकृष्टि रचना कही । अब इस अनुकृष्टि के कथन को अंकसंदृष्टि द्वारा दिखाते हैं –

प्रथम गुणहानि में प्रथम निषेक नौ वह द्रव्य उसमें अनुकृष्टि गच्छ चार का भाग ऊर्ध्वचय एक को देनेपर अनुकृष्टि चय एक चतुर्थांश आता है । वहां **व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं** इस सूत्र से चयधन डेढ़, उसको सर्वधन नौ में से घटानेपर हुये साढ़े सात । उसको अनुकृष्टि गच्छ चार का भाग देनेपर प्रथम खण्ड एक अष्टमांश कम दो प्रमाण हुआ । उसमें एक चतुर्थांश प्रमाण अनुकृष्टि का एक-एक चय मिलानेपर द्वितीयादि खण्ड होते हैं, चारों खण्डों का जोड़ देनेपर नौ होते हैं । इसीतरह अंत निषेक में द्रव्य सोलह, उसमें से चयधन डेढ़ घटानेपर हुये साढ़े चौदह । उसको अनुकृष्टि गच्छ चार का भाग देनेपर एक अष्टमांश अधिक साढ़े तीन आये । प्रथम खण्ड और इसमें एक चतुर्थांश मात्र एक-एक चय अधिक होनेपर द्वितीयादि खण्ड तथा चारों खण्ड जोड़नेपर सोलह हुये । यहां आधा, चौथा भाग कहा वह अंकसंदृष्टि से समझ में आने के लिये कहा है ।

[***विशेषार्थ*** : प्रथम निषेक का द्रव्य ९, अनुकृष्टि गच्छ ४, ऊर्ध्वचय – १, अनुकृष्टि चय १ ÷ ४ = $\frac{१}{४}$ ।

चयधन $= \frac{\text{अनुकृष्टि गच्छ} - १}{२} \times \text{चय} \times \text{गच्छ} = \frac{४ - १}{२} \times \frac{१}{\cancel{४}} \times \frac{\cancel{४}}{} = \frac{३}{२}$

प्रथमखण्ड $= \frac{\text{सर्वधन} - \text{चयधन}}{\text{अनकृष्टि गच्छ}} = \frac{९ - \frac{३}{२}}{४} = \frac{१५}{२} \times \frac{१}{४} = \frac{१५}{८}$

$\frac{१५}{८}$ को एक अष्टमांश कम दो कहा है ।

द्वितीय खण्ड = प्रथम खण्ड + चय $= \frac{१५}{८} + \frac{१}{४} = \frac{१७}{८}$

तृतीय खण्ड = द्वितीय खण्ड + चय $= \frac{१७}{८} + \frac{१}{४} = \frac{१९}{८}$

चतुर्थ खण्ड = तृतीय खण्ड + चय $= \frac{१९}{८} + \frac{१}{४} = \frac{२१}{८}$

चारों खण्डों का जोड़ $= \frac{१५}{८} + \frac{१७}{८} + \frac{१९}{८} + \frac{२१}{८} = \frac{७२}{८} = ९$

इसीतरह अंत निषेक १६ में प्रमाण लाना चाहिये ।]

पुनश्च महत्प्रमाणरूप अर्थसंदृष्टि में अध्यवसायों में आधा या चतुर्थांश है नहीं । अथवा स्वेच्छा अंकसंदृष्टि करे तो त्रिकरणचूलिका अधिकार में अधःप्रवृत्तकरण की रचना में जैसी अंकसंदृष्टि की है वैसी करना । वहां प्रथम गुणहानि में सर्व अध्यवसाय तीन हजार बहत्तर, गुणहानिआयाम सोलह, वहां जघन्य स्थिति संबंधी प्रथम निषेक एक सौ बासठ, निषेक-निषेक प्रति चय का प्रमाण चार; वहां प्रथम निषेक में द्रव्य एक सौ बासठ, उसमें से चयधन छह घटानेपर एक सौ छप्पन हुये, इसको अनुकृष्टि गच्छ चार का भाग देनेपर उनतालीस होते हैं, वह प्रथम खण्ड जानना ।

पुनश्च द्वितीयादि खण्डों में अनुकृष्टि चय का प्रमाण एक, इसलिए *(वहां द्रव्य)* एक अधिक चय जानना । चारों खण्डों का जोड़ देनेपर एक सौ बासठ होते हैं । इसीतरह द्वितीयादि निषेकों की रचना करके अंत निषेक में द्रव्य दो सौ बाइस, उसमें से चयधन छह घटानेपर दो सौ सोलह, इसको अनुकृष्टि गच्छ चार का भाग देनेपर चौवन हुये वह प्रथम खण्ड है । द्वितीयादि खण्डों में एक-एक चय अधिक जानना । चारों खण्डों का जोड़ देनेपर

दो सौ बाइस होते हैं । इसी तरह अंकसंदृष्टि द्वारा पूर्वोक्त अर्थ जानना । अत्यंत परोक्ष अर्थ जानने के लिये यह भी उपाय है । इसीप्रकार द्वितीयादि गुणहानियों में भी अनुकृष्टि का विधान करना । प्रथम गुणहानि के अनुकृष्टि चय, द्रव्य और खण्डों से द्वितीयादि गुणहानियों में अनुकृष्टि चयादि का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा जानना ।

अंकसंदृष्टि अपेक्षा स्थितिबंधाध्यवसायरचना

जघन्यादि स्थितिबंध की ऊर्ध्वरचना	अनुकृष्टिरूप एक-एक समय संबंधी खण्डों में तिर्यक्रचना			
द्रव्य	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	तृतीय खण्ड	चतुर्थ खण्ड
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

पढमं पढमं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५६॥

प्रथमं प्रथमं खंडमन्योन्यमपेक्ष्य विसदृशं ।
अधस्तनोत्कृष्टादनंतगुणादुपरिमजघन्यं ॥९५६॥

टीका – इसप्रकार अनुकृष्टिरचनारूप किये प्रथमादि गुणहानियों में अनुकृष्टि के पहले-पहले खण्ड परस्पर की अपेक्षा विसदृश हैं, संख्या से समान नहीं हैं क्योंकि तिर्यक्रूप रचना में ऊपर-ऊपर की रचनारूप जो पहले-पहले खण्ड हैं, वे अंत निषेक के पहले खण्ड तक एक-एक चय से अधिक हैं, वैसे ही शक्ति से भी अपने नीचे के प्रथम खण्ड के उत्कृष्ट स्थान से भी ऊपर के प्रथम खण्ड का जघन्य स्थान भी अनंतगुणा है, इसलिए पहला-पहला खण्ड परस्पर समान नहीं है ॥९५६॥

बिदियं बिदियं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५७॥

द्वितीयं द्वितीयं खंडमन्येऽन्यमपेक्ष्य विसदृशं ।
अधस्थनोत्कृष्टादनंतगुणादुपरिमजघन्यं ॥९५७॥

टीका – गुणहानियों में प्रथमादि निषेकों के दूसरे-दूसरे खण्ड गुणहानि के अंत निषेक के दूसरे खण्ड तक निरंतर एक-एक चय से अधिक हैं, इसलिए समान नहीं हैं । नीचे के दूसरे खण्ड के उत्कृष्ट से ऊपर के दूसरे खण्ड का जघन्य भी अनंतगुणा है । इसीतरह तीसरे-तीसरे आदि खण्डों की असमानता जानना ॥९५७॥

इसतरह एक कम अनुकृष्टि प्रमाण खण्डों की असमानता होने से क्या होता है ? वह कहते हैं –

चरिमं चरिमं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५८॥

चरमं चरमं खंडमन्योन्यमपेक्ष्य विसदृशं ।
अधस्तनोत्कृष्टादनंतगुणादुपरिमजघन्यं ॥९५८॥

टीका – गुणहानि के प्रथमादि निषेकों के अंत के खण्ड अंत निषेक के अंत खण्ड तक निरंतर एक-एक चय से अधिक हैं, इसलिए संख्या से समान नहीं हैं । पुनश्च शक्ति से भी नीचे के अंत खण्ड के उत्कृष्ट स्थान से भी ऊपर के अंत खण्ड का जघन्य स्थान भी अनंतगुणा है ॥९५८॥

वहां कारण क्या है ? वह कहते हैं –

हेट्ठिमखंडुक्कस्सं उव्वंकं होदि उवरिमजहण्णं ।
अट्ठंकं होदि तदोणंतगुणं उवरिमजहण्णं ॥९५९॥

अधस्तनखंडोत्कृष्टमुर्वंको भवति उपरिमजघन्यं ।
अष्टांको भवति ततोऽनंतगुणमुपरिमजघन्यम् ॥९५९॥

टीका – चूंकि तिर्यक्रूप रचना में ऊपर-ऊपर लिखे हुये खण्डों के अपने अपने नीचे लिखे हुये खण्डों का उत्कृष्ट अध्यवसायस्थान **उर्वंक** अर्थात् पूर्वस्थान से अनंतभागवृद्धियुक्त है । तथा ऊपर-ऊपर के खण्ड के जघन्य अध्यवसायस्थान **अष्टांक** अर्थात् अनंतगुणवृद्धियुक्त हैं । इसकारण नीचे के खण्ड के उत्कृष्ट से ऊपर के खण्ड का जघन्य अनंतगुणा कहा ॥९५९॥

अवरुक्कस्सठिदीणं जहण्णमुक्कस्सयं च णिव्वग्गं ।
सेसा सव्वे खंडा सरिसा खलु होंति उड्ढेण ॥९६०॥

अवरोत्कृष्टस्थितीनां जघन्यमुत्कृष्टकं च निर्वर्गं ।
शेषाः सर्वे खंडाः सदृशाः खलु भवंति ऊर्ध्वेन ॥९६०॥

टीका – जघन्य स्थिति को कारणभूत प्रथम निषेक का जघन्य अर्थात् पहला खण्ड और उत्कृष्ट स्थिति को कारणभूत अंत निषेक का उत्कृष्ट अर्थात् अंतखण्ड – ये दोनों तो निर्वर्ग हैं, अर्थात् किसी भी खण्डों से सर्वथा समान नहीं हैं । अवशेष सर्व खण्ड ऊर्ध्वरचना से अन्य खण्डों के समान हैं ॥९६०॥

अट्ठण्हंपि य एवं आउजहण्णट्ठिदिस्स वरखंडं ।
जावय तावय खंडा अणुकट्टिपदे विसेसहिया ॥९६१॥

तत्तो उवरिमखंडा सगसगउक्कस्सगोत्ति सेसाणं ।
सव्वे ठिदियणखंडाऽसंखेज्जगुणक्कमा तिरिये ॥९६२॥ जुग्मं

अष्टानामपि च एवमायुर्जघन्यस्थितेः वरखंडं ।
यावत् तावत्खंडा अनुकृष्टिपदे विशेषाधिकाः ॥९६१॥

तत उपरिमखंडाः स्वकस्वकोत्कृष्टक इति शेषाणां ।
सर्वे स्थितितनखंडा असंख्येयगुणक्रमास्तिरश्चि ॥९६२॥ युग्मं

टीका – आठों ही कर्मों की रचना विशेष जैसे कही है वैसे ही समान है । जैसे मोहनीय की रचना कही वैसे ही ज्ञानावरणादि की भी जानना । स्थिति आदि का प्रमाण यथासंभव जान लेना । विशेष इतना है कि आयुकर्म के अनुकृष्टि गच्छ में खण्ड हैं, वे जघन्य स्थिति के अंत खण्ड तक ही तो चय से अधिक हैं । उसके उत्कृष्ट खण्ड से ऊपर की स्थिति के खण्ड अपने-अपने उत्कृष्ट खण्ड तक तथा अवशेष स्थितियों के अपने-अपने जघन्य खण्ड से अपने-अपने उत्कृष्ट खण्ड तक सर्व बराबर रचनारूप असंख्यातगुणा हैं, उसका वर्णन कर आये हैं, उससे इस कथन का अर्थ जान लेना ॥९६१, ९६२॥

आगे अनुभागबंधाध्यवसायस्थानों का कथन करते हैं, वहां जघन्य स्थिति संबंधी अध्यवसायों में जघन्य संबंधी अनुभागाध्यवसायस्थानों को कहते हैं –

रसबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखलोगमेत्ताणि ।
अवरट्ठिदिस्स अवरट्ठिदिपरिणामम्हि थोवाणि ॥९६३॥

रसबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यलोकमात्राणि ।
अवरस्थितेरवरस्थिति परिणामे स्तोकानि ॥९६३॥

टीका – अनुभागबंधाध्यवसायस्थान असंख्यातलोक को असंख्यातलोक से गुणा करे ऐसे असंख्यातलोक प्रमाण हैं । वहां जघन्य स्थिति संबंधी स्थितिबंधावसायस्थानों में जघन्य स्थितिबंधयोग्य अध्यवसायों के प्रमाण से असंख्यातलोकगुणे अनुभाग-बंधाध्यवसायस्थान हैं तथापि वे अन्य स्थितिबंधाध्यवसाय संबंधी अनुभागबंधाध्यवसायों से थोड़े हैं । वही कहते हैं –

जघन्य स्थिति संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों में अनुभागबंधाध्यवसायस्थानों की रचना दिखाते हैं – वहां जघन्य स्थिति संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के प्रमाण से असंख्यातलोकगुणा अनुभागबंधाध्यवसायों का प्रमाण है, वह तो यहां द्रव्य का प्रमाण जानना । तथा जघन्य स्थिति संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का जो प्रमाण, वह यहां स्थिति का प्रमाण जानना । आवली को दो बार असंख्यात का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है वह नानागुणहानिशलाका का प्रमाण जानना । स्थिति के प्रमाण को नानागुणहानि का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वह गुणहानिआयाम का प्रमाण जानना । इसको दोगुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, वह दोगुणहानि का प्रमाण जानना । आवली का असंख्यातवां भाग अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना । वहां द्रव्य को एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वह प्रथम गुणहानि में द्रव्य का प्रमाण है । इससे दोगुणा-दोगुणा द्वितीयादि गुणहानियों में द्रव्य जानना । वहां प्रथम गुणहानि के द्रव्य को गुणहानिआयाम का भाग देनेपर मध्यमधन का प्रमाण होता है । इनको एक कम गुणहानिआयाम के आधे से हीन दोगुणहानि के प्रमाण का भाग देनेपर चय होता है । इस चय को एक अधिक गुणहानिआयाम से गुणा करनेपर प्रथम निषेक होता है ॥९६३॥

तत्तो कमेण वड्ढदि पडिभागेण य असंखलोगेण ।
अवरट्ठिदिस्स जेट्ठट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥९६४॥

ततः क्रमेण वर्धते प्रतिभागेन च असंख्यलोकेन ।
अवरस्थितेः जेष्ठस्थितिपरिणाम इति नियमेन ॥९६४॥

टीका – उसके पश्चात् जघन्य स्थिति के जघन्य परिणाम संबंधी प्रथम निषेक रूप अनुभागाध्यवसायस्थानों से उसी जघन्य स्थिति के द्वितीयादि परिणाम संबंधी द्वितीयादि निषेकरूप अनुभागबंधाध्यवसायस्थान प्रथम गुणहानि के अंत निषेकरूप अंत के परिणाम तक एक-एक चय के प्रमाण से निरंतर बढ़ते हुये जानना, चय का प्रमाण असंख्यातलोकमात्र प्रमाण प्रतिभाग सर्वद्रव्य को देनेपर आता है । वहां आगे गुणहानि-गुणहानि प्रति प्रथम निषेक से प्रथम निषेक तथा चय के प्रमाण से चय का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा जानना । इसतरह स्थितिबंधाध्यवसायस्थान रचना के जघन्य

स्थिति योग्य प्रथम निषेक में अनुभागध्यवसायस्थानों की रचना कही । इसी प्रकार द्वितीयादि स्थितियोग्य द्वितीयादि निषेकों में भी उत्कृष्ट स्थितिरूप अंत निषेक तक रचना जानना । स्थिति आदि का प्रमाण यथासंभव जानना । यहां जघन्य स्थिति संबंधी जघन्य स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों में प्रथम निषेक प्रमाण अनुभागबंधाध्यवसायस्थान जानना । पुनश्च उसी के दूसरे स्थान में द्वितीय निषेक प्रमाण जानना – ऐसे अनुक्रम हैं । पुनश्च अनुभागबंधाध्यवसायस्थान की नानागुणहानिशलाका है अथवा नहीं है इसतरह आचार्यों के मत से दोनों उपदेश हैं ॥९६४॥

आगे मूलग्रंथकर्ता नेमिचन्द्र आचार्य अपनी ग्रंथ करने की प्रतिज्ञा पूर्ण करके समाचार कहते हैं ।

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं ।
कम्माण णिज्जरट्ठं तच्चट्ठवधारणट्ठं च ॥९६५॥

गोम्मटसंग्रहसूत्रं गोम्मटदेवेन गोम्मटं रचितं ।
कर्मणां निर्जरार्थं तत्त्वावधारणार्थं च ॥९६५॥

टीका – ये गोम्मटसार ग्रंथ के संग्रहरूप सूत्र गोम्मटदेव अर्थात् श्री वीरवर्धमान नामक तीर्थंकर देव द्वारा गोम्मट अर्थात् नय-प्रमाण के गोचर, ज्ञानावरणादि कर्मों की निर्जरा और तत्त्वार्थ का निश्चय होने के लिये रचे हैं ।

भावार्थ – यह ग्रंथ वर्धमान स्वामी की वाणी के अनुसार बना है, मेरा कर्तव्य नहीं है ॥९६५॥

जम्हि गुणा विस्संता गणहरदेवादिइड्ढिपत्ताणं ।
सो अजियसेणणाहो जस्स गुरू जयउ सो राओ ॥९६६॥

यस्मिन् गुण विश्रांता गणधरदेवादिऋद्धिप्राप्तानां ।
सोऽजितसेननाथो यस्य गुरुर्जयतु स रायः ॥९६६॥

टीका – गणधर देवादि मुनि जो बुद्धि आदि ऋद्धि को प्राप्त हुये हैं, उनके गुण जिनमें विश्राम करके स्थित हैं, गणधरादि के से गुण जिनमें पाये जाते

हैं – ऐसे 'अजितसेन' नामक मुनिनाथ जिस राजा के व्रत देनेवाले गुरु है, वह राजा सर्वोत्कृष्टपना से वर्तो ॥९६६॥

सिद्धंतुदयतडुग्गय णिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया ।
गुणरयणभूसणंबुहिमइवेला भरउ भुवणयलं ॥९६७॥

सिद्धांतोदयतटोद्गत निर्मलवरनेमिचंद्रवरकलिता ।
गुणरत्नभूषणांबुधिमतिवेला भरतु भुवनतलं ॥९६७॥

टीका – सिद्धांतरूपी उदयाचलपर्वत में ज्ञानादि से उदयमान हुआ ऐसा निर्मल और उत्कृष्ट नेमिनाथरूपी चन्द्रमा अथवा नेमिचन्द्र आचार्यरूपी चन्द्रमा, उनके वचनरूप किरणों से बढ़ा हुआ गुणरत्नभूषणांबुधि अर्थात् गुणरूपी रत्नों से शोभित ऐसा चामुंडराय नामक राजा, वही हुआ समुद्र, उसकी मतिवेला अर्थात् बुद्धिरूपी बेला, वह भुवनतलं भरतु, अर्थात् जगत में फैलकर भुवनतल को पूरे अथवा समस्त जगत में अतिशय करके फैले – ऐसा आशीर्वाद है ॥९६७॥

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिंहरूवरि गोम्मटजिणो य ।
गोम्मटरायविणिम्मिय दक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥९६८॥

गोम्मटसंग्रहसूत्रं गोम्मटशिखरोपरि गोम्मटजिनश्च ।
गोम्मटराजविनिर्मित दक्षिणकुक्कुटजिनो जयतु ॥९६८॥

टीका – गोम्मटसार संग्रहरूप सूत्र जयवंत वर्तो । गोम्मट शिखर के ऊपर गोम्मट जिन अर्थात् चामुंडराय राजा द्वारा निर्मापित जिनमंदिर में विराजमान एक हाथ प्रमाण इन्द्रनील मणिमय नेमिनाथ नामक तीर्थंकरदेव का प्रतिबिम्ब, वह जयवंत प्रवर्तो । पुनश्च चामुंडराय नामक राजा के ही द्वारा निर्मापित जगत में रूढ़ी से दक्षिण कुक्कुट जिन है नाम जिसका ऐसा जिनप्रतिबिम्ब जयवंत प्रवर्तो ॥९६८॥

जेण विणिम्मियपडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं ।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ ॥९६९॥

येन विनिर्मितप्रतिमा वदनं सर्वार्थसिद्धिदेवैः ।
सर्वपरमावधियोगिभिः दृष्टं स गोम्मटो जयतु ॥९६९॥

टीका – जिसके द्वारा निर्मापित जिनप्रतिमा का मुख सर्वार्थसिद्धि के वासी देवों ने अवधिज्ञान से देखा और सर्वावधि, परमावधि के धारक योगीश्वरों ने देखा, वह चामुंडराय राजा सर्वोत्कृष्टपने से वर्तो ॥९६९॥

वज्जयलं जिणभवणं ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु ।
तिहुवणपडिमाणिक्कं जेण कयं जयउ सो राओ ॥९७०॥

वज्रतलं जिनभवनमीषत्प्रभारं सुवर्णकलशं तु ।
त्रिभुवनप्रतिमानमेकं येन कृतं जयतु स रायः ॥९७०॥

टीका – वज्र समान है जिसका अवनितल अर्थात् पीठबंध, ईषत है प्राग्भार जिसका, सुवर्णमयी हैं कलश जिसके, तीनभुवन में प्रतिमा अर्थात् उपमा देनेयोग्य ऐसा एक अर्थात् दूसरा नहीं है – ऐसा जिनभवन जिसने निर्मापण किया, वह राजा विराजमान रहो ॥९७०॥

जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया ।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयउ ॥९७१॥

येनोद्धितस्तंभोपरिमयक्षतिरीटाग्रकिरणजलधौतौ ।
सिद्धानां शुद्धपादौ स रायो गोम्मटो जयतु ॥९७१॥

टीका – जिनके द्वारा चैत्यालय में स्तंभ स्थापित किया, उसके ऊपर स्थित यक्ष का आकार उसके मुकुट के अग्रभाग की किरणरूपी जल द्वारा सिद्धपरमेष्ठी के आत्मप्रदेशों के आकाररूप शुद्ध दो चरण धोये गये, वह चामुंडराय राजा जीतिवंत हो । यद्यपि सिद्धिस्थान तक यक्ष के मुकुटकिरण कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? परंतु उपमा अलंकार से कहने में दोष नहीं है । यहां इतना अर्थ जानना कि चैत्यालय में स्तंभ बहुत ऊंचा बना है, उसके ऊपर यक्ष का आकार है, उसके मुकुट में ज्योतिवंत पदार्थ लगे हैं ॥९७१॥

गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी ।
सो राओ चिरं कालं णामेण य वीरमत्तंडी ॥९७२॥

गोम्मटसूत्रलेखने गोम्मटरायेन या कृता देशी ।
स रायश्चिरं कालं नाम्नां च वीरमार्तंडी ॥९७२॥

टीका – गोम्मटसार ग्रंथ के सूत्र लिखने में गोम्मटराजा द्वारा जो देशीभाषा की, वह राजा नाम से वीरमार्तंड चिरकाल तक जीतिवंत प्रवर्तो । इसतरह मूलग्रंथकर्ता श्री नेमिचन्द्र नामक आचार्य ने इस ग्रंथ के होने में अपने समाचार कहे ।

अब इस गोम्मटसार ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृतटीका के कर्ता 'केशव' नामक ब्रम्हचारीने टीका होने में अपने समाचार श्लोकों द्वारा कहे वे कहते हैं –

कवित्त

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म प्रभु देव जिनेश,
श्री सुपार्श्व चंद्रप्रभ सुविधि जु, शीतल श्रेय वासु पूज्येश ।
विमल अनंत धर्म सुरपरिनुत शांति कुंथु अर मल्लि महेश
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व पति, वर्धमान वंदौ परमेश ॥१॥

दोहा

तीन काल संबंधि सब, तीर्थंकर अरहंत ।
सिद्ध साधु शिव करहु मम, करत भक्ति भगवंत ॥२॥

अडिल्ल

यावत् तारे चंद्र दिपें परकाशतें, नंदो तावत् मूल संघ इह जासतें ।
रत्नत्रय करि पद अरहंत सु पाइकैं, सुरनर सेवित सिद्ध होंइ शिव जाइकैं ॥३॥

दोहा

तहां शारदा गच्छवर, बलात्कार-गण भाय ।
कुंद-कुंद अन्वय सदा, नंदौं नंद्याम्नाय ॥४॥

सवैया

जाकौं गण समुदाय मानैं गण भरता, जाकौं ज्ञानभूषण सो नाम गुणवान है ।
ताहि भट्टारक शिरोमणी कौं मैं नमौं, सदा बारंबार भक्तिभाव लीएं एक ध्यान है ।
कर्णाटक देशस्वामी मल्लि महीपाल ताकौं, भक्ति तैं दयो है जिहि श्रुत-ज्ञान दान है ।
अैसे मुनि चंद्र मुनि फुनि नमौं बारबार, जाकी वानी मुनिनि के अमृत समान है ॥

सोरठा

प्रभा चंद्र गुणसेत, नमिए भट्टारक रतन । धर्म वृद्धि के हेत, मोहि सूरिपद जिहि दयो ॥६॥

सवैया ३१

जो त्रैविद्य विद्या तैं प्रगट अैसा सूरि जाको, नाम है विशालकीर्ति कीर्ति जाकी घनी है ।
इस टीका करने में कीनों है सहाय तिहि, सोइ फुनि प्रथम हीऽधीता बुद्धि घनी है ॥
धर्मचंद्र अभयेंदु गणी वर्णी लालादिक, भव्यनि के हेत अैसें जिनवानी भनी है ।
कर्णाटक टीका तैं बनाई चित्र कूट नाम, पार्श्वनाथ-आलय में टीका यह बनी है ॥७॥

दोहा

साधू संगा सहस्स करी, करी प्रार्थना एह ।
रची मुमुक्षु तबै भली, टीका अर्थ अछेह ॥८॥

चौपाई

यहु गोम्मटसार चौपाई की टीक । भव्यनिकरि विस्तारित ठीक ॥
नंदो, जो कुछ होई विरुद्ध । श्रुत तैं श्रुतधर करियो शुद्ध ॥

सोरठा

मुनि निग्रंथ महंत, वर त्रैविद्य सुचक्रधर ।
अभय-चंद्र मुनि संत, सोधि लिख्यो पुस्तक प्रथम ॥१०॥

दोहा

जीवतत्त्व प्रदीपिका, टीका संस्कृतसार ।
ताके कर्तानि कहे, अैसैं स्व समाचार ॥११॥

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका में कर्मकाण्ड में कर्मस्थितिरचनाधिकार नामक नौवां अधिकार समाप्त हुआ ॥९॥

इसके होनेपर गोम्मटसार ग्रंथ पूर्ण हुआ । यह सर्व जीवों को ज्ञानानंद का कर्ता हो ।

अब यहां भाषाटीकाकार द्वारा कहते हैं –

दोहा

कर्मकांड कौं जानिकैं, ज्ञानकांडमय होय ।
परस्वरूप कौं परिहरैं, शिवपद पावैं सोय ॥१॥

सोरठा

मंगल श्री अरहंत, सिद्ध साधु जिन-धर्म फुनि ।
मंगल चारि महंत, एई हैं उत्तम सरण ॥२॥

सवैया-इकतीस

अर्थ के लोभी ह्वै कैं करि कै सहास अति, अगम अपार ग्रंथ पारावारमें परे ।
थाह तौ न आयो तहां फेर कौन पायो पार, तातैं सूधे मारग ह्वै सारे पार उतरे ॥
इस आधे माहि कर्मकांड की है मरजाद, याके अर्थ जानें निज काज सब सुधरे ।
निज मति अनुसारि अर्थ गहि **टोडर हू** भाषा बनवाई यानें अर्थ गहौ सगरे ॥३॥

कवित्त

गोम्मट सार शास्त्र यहु ताके, कहे दोय अधिकार महान ।
जीव कांड अर कर्म कांड, अब ते तो पूरण भए प्रमाण ।
इहां अर्थ संदृष्टि आदि किछु, जाने चाहिए ते अमलान ।
कहिए है जानहु सुज्ञानी, जानि साधिए पद निर्वान ॥४॥

कर्मकाण्ड समाप्त

अर्थसंदृष्टि संबंधी प्रकरण

वहां (जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार में) जो संदृष्टि है उनका अर्थ तथा कहे हुये अर्थों की संदृष्टि जानने के लिये इस भाषाटीका में अलग ही संदृष्टि अधिकार में वर्णन होगा ।

यहां कोई कहेगा – अर्थ का स्वरूप जानना चाहिये, संदृष्टि को जानने से क्या सिद्धि होगी ?

उसका समाधान – संदृष्टि को जाननेपर पूर्वाचार्यों की परम्परा से चला आया जो संकेतरूप अभिप्राय उसको जानते हैं । तथा थोड़े में बहुत अर्थ को अच्छी तरह से पहचानते हैं । तथा मूलशास्त्र और संस्कृत टीका में और अन्य ग्रंथों में जहां संदृष्टिरूप व्याख्यान है, वहां प्रवेश पा सकते हैं । तथा अलौकिक गणित आदि लिखने का विधान आदि चमत्कार लगता है । तथा संदृष्टि को देखते ही ग्रंथ की गंभीरता प्रकट होती है – इत्यादि प्रयोजन जानकर संदृष्टि अधिकार करने का विचार किया है ।

वहां कितनी ही संदृष्टि आकाररूप हैं, कितनी ही अंकरूप है, कितनी ही अक्षररूप हैं, कितनी ही लिखने के ही विशेषरूप हैं; इसलिये संदृष्टि अधिकार में पहले तो सामान्यपने संदृष्टियों का वर्णन है । वहां पदार्थों के नाम से, संख्या से, अक्षरों से अंकों की और प्रभृति आदि की संदृष्टियों का वर्णन है ।

पुनश्च सामान्य संख्यात, असंख्यात, अनंत की और इनके इक्कीस भेदों की और पल्य आदि आठ उपमाप्रमाण की तथा इनके अर्धच्छेद और वर्गशलाकाओं की संदृष्टियों का वर्णन है । पुनश्च परिकर्माष्टक में संकलनादि होनेपर जैसी सहनानी होती है और बहुत प्रकार सहनानी होनेपर और संकलनादि आठ में एकत्र दो, तीन आदि होनेपर जो सहनानी होती है और संकलनादि में अनेक सहनानी का एक अर्थ होता है इत्यादि का वर्णन है । तथा स्थिति-अनुभागादिक में आकाररूप सहनानी है और कितनी ही इच्छित सहनानी है इत्यादि का वर्णन है ।

इसप्रकार सामान्य वर्णन करके पश्चात् श्रीमद् गोम्मटसार नामक मूलशास्त्र और उसकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक टीका में जिस जिस अधिकार में कथन के अनुक्रम सहित संख्यादिक अर्थ की जैसी जैसी संदृष्टि है, उनका अनुक्रम से वर्णन है । वहां कितने ही करण और

त्रिकोण यंत्र का जोड़ इत्यादि का संस्कृत टीका में वर्णन था जिसका भाषाटीका करते समय अर्थ नहीं लिखा था, उनका इस संदृष्टि अधिकार में अर्थ लिखेंगे । तथा मूलशास्त्र के यंत्ररचना में और संस्कृत टीका में कितनी ही संदृष्टिरूप रचना ही लिखी थी उनको अर्थपूर्वक इस संदृष्टि अधिकार में लिखेंगे । यहां उनकी सूचनिका लिखने से विस्तार होगा इसलिए वहां ही वर्णन होगा, वह जानना ।

यहां कोई कहेगा – मूलशास्त्र में और टीका में जहां संदृष्टि और अर्थ लिखा था, वहां तुमने भी उनके अर्थों का निरूपण करके क्यों नहीं लिखान किया ? वहां छोड़कर उनको एकत्रित करके संदृष्टि अधिकार में वर्णन किया उसका क्या कारण है ?

वहां समाधान – यह टीका मंदबुद्धियों को ज्ञान होने के हेतु से कर रहे हैं, इसलिए इसमें बीच बीच में संदृष्टि लिखने से उनको कठिनता भासित होगी तो अभ्यास से विमुख होंगे । इसलिए जिनका अर्थमात्र ही प्रयोजन हो वे अर्थ ही का अभ्यास करें तथा जिनको संदृष्टि भी जाननी हो वे संदृष्टि अधिकार में से उनका अभ्यास भी करें ।

पुनश्च वहां कोई कहे – तुमने ऐसा विचार किया परंतु कोई इस टीका के अवलंबन से संस्कृत टीका का अभ्यास करना चाहे, तो कैसे अभ्यास करें ?

उसको कहते हैं – अर्थ का तो अनुक्रम जैसे संस्कृत टीका में है, वैसे इसमें भी है ही । तथा जहां जो संदृष्टि आदि का कथन बीच में आयेगा उसको संदृष्टि अधिकार में उसी स्थान में बाकी कथन है उसको जानकर वहां अभ्यास करें ।

इस प्रकार विचार करके संदृष्टि अधिकार करने का विचार किया है ।

– पं. टोडरमलजी

—o—

ॐ

अर्थसंदृष्टि अधिकार

सामान्य संदृष्टि स्वरूप

शुध्दात्मानमनेकांतं साधुमुत्तममंगलं ।
वंदे संदृष्टिसिध्यर्थं संदृष्ट्यर्थप्रकाशकं ।।१।।
पंचसंग्रहसद्वृत्तं त्रिलोकीसारदीपकं ।
माधवादि स्तुतं स्तौमि नेमिचंद्र गुणोज्ज्वलं ।।२।।

इसतरह मंगल द्वारा अर्थसंदृष्टि का स्वरूप कहते हैं - वहां विवक्षित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इनका प्रमाणादिक, वह अर्थ है। अर्थ की जो संदृष्टि अर्थात् सहनानी (चिन्ह), वह अर्थसंदृष्टि जाननी । क्योंकि गोम्मटसारादि ग्रंथों में संदृष्टियों द्वारा जो अर्थ प्रकट किया है, वह संदृष्टियों का स्वरूप जाने बिना जानने में नहीं आता, इसलिये मेरी बुध्दि के अनुसार किंचित् मात्र अर्थसंदृष्टि का स्वरूप कहता हूँ । वहां जो कुछ भूल होगी, वह मेरी मंद बुध्दि की भूल जानकर बुध्दिमान उसे कृपा करके शुध्द करें । क्योंकि जैसे प्रकटरूप अनुक्रम सहित संदृष्टि का स्वरूप मंदबुध्दियों के भी जानने में आये वैसे गोम्मटसारादि प्रवर्तमान ग्रंथों में लिखा नहीं है तथा उनको बतानेवाले का निमित्त हुआ नहीं, उन ग्रंथों से विधि मिलाकर जहां वहां से जैसी मेरी बुध्दि में यथासंभव स्वरूप जाना वैसे ठीक करके यहां वर्णन किया है। और मेरी मति हीन है, इसलिये भूल होगी, उसको शुध्द करने के लिये विशेष बिनती कर रहा हूँ ।

वहां कहीं पदार्थों के नाम से संख्या की सहनानी होती है । जहां जिस पदार्थ का नाम लिखा हो वहां उस पदार्थ की जितनी संख्या हो, उतनी संख्या जाननी । जैसे विधु शब्द से एक जानना, क्योंकि दृश्यमान चन्द्रमा एक है । निधि शब्द से नौ जानना, क्योंकि निधि का प्रमाण नौ है । ऐसे ही अन्य जानने । पुनश्च कहीं अक्षरों को अंकों की सहनानी करके संख्या कहते हैं । उसका सूत्र –

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।
स्वरञनशून्यं संख्यामात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं ।।

अर्थ - ककारादि नौ, टकारादि नौ, पकारादि पांच, यकारादि आठ इन अक्षरों के क्रम से एक आदि अंकों की सहनानी है । जैसे ककार से एक का अंक, खकार से दो का अंक इत्यादि अक्षरों द्वारा अंक जानने ।

क ख ग घ ङ च छ ज झ ट ठ ड ढ ण त थ द ध प फ ब भ म य र ल व श ष स ह
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १ २ ३ ४ ५ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

अकारादि स्वर तथा ञकार और नकार द्वारा शून्य जानना। अक्षर की मात्रा और कोई ऊपर अक्षर हो तो उसका प्रयोजन कुछ ग्रहण नहीं करना। [जैसे च की सहनानी ६ है, तो चा हो या चो हो या ची हो उसकी सहनानी ६ ही जाननी।] सो व्यवहार पल्य की, पर्याप्त मनुष्यों की और श्रुतज्ञान में पदों की संख्या इस सूत्र के अनुसार टीका में कही है, वहां जानना ।

प्रभृति की सहनानी ऐसी = है, सो आदि के अंक या अक्षर लिखकर उन प्रभृति अर्थात् आदि देकर (उनसे लेकर) अन्य अंक या अक्षरों के ग्रहण के निमित्त उनके आगे ऐसी = सहनानी होती है । जैसे पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस को पणट्ठी कहते हैं । वहां आदि के अंक ६, ५ लिखकर आगे = ऐसी सहनानी करनेपर पणट्ठी की सहनानी ६५= ऐसी होती है । उसी तरह बादाल की सहनानी ४२= ऐसी होती है । यहां चार और दो आदि अंक जान लेने । इकट्ठी की सहनानी १८= ऐसी है, यहां एक, आठ आदि अंक जानने । अक्षरों द्वारा जैसे जघन्य की सहनानी ऐसी ज= । यहां जकार आदि अक्षर जानना । ऐसे ही अन्य जानना ।

पुनश्च जहां आदि और अंत के भेद तो लिखते हैं और मध्य के भेद बहुत जानकर नहीं लिखते, वहां आदि और अंत के भेदों के बीच में कितनी ही बिंदी (शून्य) लिखते हैं, उन बिंदियों द्वारा मध्य के भेद ग्रहण करना । जैसे अंकसंदृष्टि द्वारा कर्मस्थिति रचना में आदि का निषेक पांच सौ बारह का, अंत का निषेक नौ का लिखकर बीच में बिंदी

९
०
०　लिखी हो, वहां बिंदियों द्वारा मध्य के सर्व निषेक जान लेना।
०
५१२

पुनश्च कहीं नाम का आदि अक्षर है उसे सम्पूर्ण नाम की सहनानी जानना। जैसे लक्ष की **ल**, कोटि की **को**, जघन्य की **ज**, ऐसी इत्यादि । जहां दो आदि नाम ग्रहण करने हो वहां दो आदि नामों के आदि अक्षर जानने । जैसे लक्ष कोटि की सहनानी **लको**, जघन्य ज्ञान की **जज्ञा** । कहीं एक ही नाम दो बार आदि कहना हो वहां नाम के आदि अक्षर के आगे दो आदि अंक लिखने । जैसे कोडाकोडि की सहनानी **को२** है । कहीं दो विशेषण ग्रहण करने हो वहां दो सहनानी होती हैं। जैसे द्वितीय मूल की सहनानी **मू२** है । जहां तीन विशेषण ग्रहण करने हो वहां तीन सहनानी होती हैं। जैसे अंत:कोडाकोडि की सहनानी **अंको२** इत्यादि यथासंभव जानना।

कहीं बिंदी की सहनानी ऊपर बिंदी देना जानना । जैसे पैंसठ हजार की सहनानी **६५।३̇**। यहां तीन के अंक के ऊपर बिंदी देने से पैंसठ के आगे तीन बिंदी जाननी। ऐसे अन्य भी अनेक प्रकार यथासंभव सहनानी जाननी ।

अलौकिक गणित में कहे हुये जो संख्यामान और उपमामान, उनकी संदृष्टि कहते हैं - वहां सामान्यपने संख्यात की सहनानी ऐसी **ग्रं**, असंख्यात की ऐसी **ॐ**, अनंत की ऐसी **ख** है । तथा विशेषपने जघन्य संख्यात की सहनानी अपने प्रमाणरूप दो का अंक **२** है । पुनश्च मध्य संख्यात की सहनानी अनेक प्रकार है, क्योंकि मध्य के भेद बहुत हैं । उत्कृष्ट संख्यात की सहनानी पंद्रह का अंक **१५** है, क्योंकि जघन्य परीतासंख्यात से एक कम इसका प्रमाण है । जघन्य परीतासंख्यात की सहनानी सोलह का अंक **१६** है । मध्य परीतासंख्यात की सहनानी बहुत प्रकार है । उत्कृष्ट परीतासंख्यात की सहनानी $\frac{१८}{२}$ ऐसी है। क्योंकि जघन्य युक्तासंख्यात से इसका प्रमाण एक कम है । सो एक कम की ऊपर की सहनानी **१८** ऐसी जाननी । जघन्य युक्तासंख्यात की सहनानी दो का अंक **२** है । वही आवली की सहनानी दो का अंक **२** है, क्योंकि आवली के समय जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण हैं । पुनश्च मध्यम युक्तासंख्यात की सहनानी अनेक प्रकार है । उत्कृष्ट युक्तासंख्यात की सहनानी $\frac{१८}{४}$ ऐसी है, क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य असंख्यातासंख्यात से एक कम है ।

जघन्य असंख्यातासंख्यात की सहनानी चार का अंक **४** है, वही प्रतरावली की सहनानी चार का अंक **४** है, क्योंकि जघन्य युक्तासंख्यात का वर्गमात्र दोनों का प्रमाण है। पुनश्च मध्य असंख्यातासंख्यात के भेदों में से घनावली की सहनानी आठ का अंक **८** है, क्योंकि आवली के घनप्रमाण घनावली है। अन्य भेदों के अनेक प्रकार हैं। उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात की सहनानी $\frac{१}{२५६}$ है अथवा **२५५** है, क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य परीतानंत से एक कम है। जघन्य परीतानंत की सहनानी दो सौ छप्पन का अंक **२५६** है । मध्य परीतानंत की सहनानी बहुत प्रकार है। उत्कृष्ट परीतानंत की ऐसी $\frac{१}{\text{जजुअ}}$ है । क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य युक्तानंत से एक कम है । जघन्य युक्तानंत की सहनानी **जजुअ** ऐसी है । यहां जघन्य और प्राकृत में जुत और अनंत इन तीनों विशेषणों के आदि अक्षरों द्वारा सहनानी जाननी । मध्य युक्तानंत की सहनानी बहुत प्रकार है । उत्कृष्ट युक्तानंत की सहनानी $\frac{१}{\text{जजुअव}}$ ऐसी है । क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य अनंतानंत से एक कम है । जघन्य अनंतानंत की सहनानी **जजुअव** ऐसी है। क्योंकि जघन्य युक्तानंत का वर्गमात्र इसका प्रमाण है। सो यहां वर्ग की सहनानी आगे वकार जानना ।

पुनश्च मध्य अनंतानंत के भेदों में जीवराशिप्रमाण की सहनानी सोलह का अंक **१६** है । वहां भी संसारी जीवराशिप्रमाण की तेरह का अंक **१३** है । सिध्दराशिप्रमाण की तीन का अंक **३** है । जीवराशि से अनंतगुणा पुद्गलराशि की संदृष्टि **१६ख** ऐसी है । इससे अनंतगुणा कालसमयराशि की **१६खख** ऐसी है । इससे अनंतगुणा आकाशप्रदेशराशि की **१६खखख** ऐसी है । इनमें अनंत के गुणकार की सहनानी आगे **ख** ऐसी क्रम से जाननी ।

केवलज्ञान के प्रथम मूल (प्रथम वर्गमूल) की संदृष्टि **केमू१** ऐसी है। उसी के द्वितीय मूल की **केमू२** ऐसी इत्यादि है । मध्य अनंतानंत की संदृष्टि बहुत प्रकार है। उत्कृष्ट अनंतानंत की संदृष्टि **के** ऐसी है, क्योंकि केवलज्ञान मात्र इसका प्रमाण है सो उसके आदि अक्षर की सहनानी जाननी। इसतरह संख्यामान की संदृष्टि कही।

अब उपमामान की संदृष्टि कहते हैं । वहां पल्य की संदृष्टि आदि अक्षररूप **प** है । सागर की आदि अक्षररूप **सा** ऐसी है । सूच्यंगुल की दो का अंक **२** है। प्रतरांगुल की चार का अंक **४** है । घनांगुल की छह का अंक **६** है । जगत्श्रेणी की — ऐसी है । जगत्प्रतर की = ऐसी है। घनलोक की ≡ ऐसी है । जगत्श्रेणी का सातवां भाग राजू उसकी संदृष्टि $\frac{}{७}$ ऐसी है । भागहार की सहनानी सर्वत्र नीचे जाननी । पुनश्च राजूप्रमाण प्रतरक्षेत्र की $\frac{=}{४९}$ ऐसी है । यहां जगत्प्रतर को **४९** का भाग जानना । राजू प्रमाण घनक्षेत्र की $\frac{\equiv}{३४३}$ ऐसी है । यहां घनलोक को तीन सौ तैंतालीस का भाग जानना । पल्य के अर्धच्छेदराशि की **छे** ऐसी संदृष्टि है । पल्य की वर्गशलाकाराशि की **व** ऐसी है । सागर के अर्धच्छेदराशि की $\overset{ृ}{\text{छे}}$ ऐसी है, क्योंकि पल्य के अर्धच्छेदों से इसके अर्धच्छेद संख्यात से अधिक हैं, सो संख्यात अधिक की संदृष्टि ऊपर **ृ** ऐसी जाननी । सागर की वर्गशलाका है नहीं । सूच्यंगुल के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि **छेछे** ऐसी है । यहां पल्य के अर्धच्छेदों को पल्य के अर्धच्छेदों के गुणकार की सहनानी जाननी । सूच्यंगुल की वर्गशलाकाराशि की संदृष्टि **व२** ऐसी है । क्योंकि इसका प्रमाण पल्य की वर्गशलाका से दो गुणा है । इसलिये आगे दो के गुणकार की सहनानी जानना । प्रतरांगुल के अर्धच्छेदराशि की **छेछे२** ऐसी है । क्योंकि सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों से दोगुणा इसका प्रमाण है । इसलिये आगे दो का गुणकार जानना। प्रतरांगुल के वर्गशलाकाराशि की संदृष्टि $\frac{१}{\text{व}\,२}$ ऐसी है । क्योंकि सूच्यंगुल की वर्गशलाका से एक अधिक है, सो ऊपर एक अधिक की सहनानी जाननी। घनांगुल के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि **छेछे३** ऐसी है । क्योंकि सूच्यंगुल के अर्धच्छेदराशि से तीनगुणा है । सो आगे तीन के गुणकार की सहनानी जाननी । घनांगुल की वर्गशलाकाराशि सूच्यंगुल की वर्गशलाका के समान है । इसलिये उसकी वही संदृष्टि है **व२**। क्योंकि द्विरूपवर्गधारा में जितने स्थान होनेपर सूच्यंगुल होता है, उतने ही स्थान होनेपर द्विरूपघनधारा में घनांगुल होता है । जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि $\overset{छेछे}{\text{छेछे}}$**छे३** ऐसी है अथवा **विछे३** ऐसी है । यहां पल्य के अर्धच्छेदराशि के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि $\overset{छे}{\text{छे}}$ ऐसी अथवा उसप्रमाण जो विरलनराशि उसकी संदृष्टि **वि** ऐसी, उसके आगे घनागुंल के अर्धच्छेदराशि

का गुणकार जानना । पुनश्च जगत्श्रेणी के वर्गशलाका की संदृष्टि $\frac{व}{१६।२ \atop व\ २}$ ऐसी है । यहां पल्य की वर्गशलाका ऐसी **व** उसको दोगुणा जघन्य परीतासंख्यात की ऐसी **१६।२**, उसका भाग देनेपर जो प्रमाण होता है उससे अधिक जो घनांगुल की वर्गशलाका **व२** ऐसी, उसमात्र प्रमाण जानना ।

पुनश्च जगत्प्रतर के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि $\underset{व}{छेछेछे६}$ ऐसी अथवा **विछेछे६** ऐसी, क्योंकि जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदराशि से यह दोगुणा है, इसलिये तीन के गुणकार की जगह छह का गुणकार जानना । पुनश्च जगत्प्रतर के वर्गशलाकाराशि की संदृष्टि $\frac{१}{व \atop १६।२ \atop व\ २}$ ऐसी, क्योंकि जगत्श्रेणी की वर्गशलाका से एक अधिक है । सो यहां एक अधिक की ऊपर सहनानी जाननी । पुनश्च घनलोक के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि $\underset{व}{छेछेछे९}$ ऐसी अथवा **विछेछे९** ऐसी, क्योंकि जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदराशि से यह तीनगुणा है, इसलिये तीन की जगह नौ का गुणकार जानना । पुनश्च घनलोक की वर्गशलाकाराशि जगत्श्रेणी की वर्गशलाकाराशि के समान ही है । उसकी संदृष्टि $\frac{व}{१६।२ \atop व\ २}$ ऐसी है। क्योंकि द्विरूपघनधारा में जितने स्थान होनेपर जगत्श्रेणी होती है उतने ही स्थान द्विरूपघनाघनधारा में होनेपर घनलोक होता है । इसप्रकार उपमाप्रमाण की संदृष्टि कही ।

यहां प्रश्न – आवली आदि की और सूच्यंगुल आदि की संदृष्टि परस्पर समान है, उनका जुदा-जुदा ज्ञान कैसे होगा ?

उसका समाधान – जैसे सारंगादि एक शब्द के अनेक अनेक अर्थ होते हैं, परंतु जैसा जैसा जहां संबंध हो, वैसा वैसा वहां ग्रहण करना । उसीप्रकार एक संदृष्टि अनेक अर्थों की होती हो परंतु जैसा जहां संबंध हो वैसा वहां ग्रहण करना । कहीं विवक्षित संदृष्टि जाननी । जैसे कहीं संख्यात की सहनानी चार का अंक **४** है, कहीं

पांच का अंक ५ है । कहीं असंख्यात की सहनानी नौ का अंक ९ है, कहीं आवली के असंख्यातवें भाग की सहनानी नौ का अंक ९ है । इत्यादि यथासंभव संदृष्टि जाननी। इसप्रकार मान की संदृष्टि का स्वरूप किंचित् मात्र जानना ।

अब संकलनादि की संदृष्टि कहते हैं – वहां किसी राशि में अन्य राशि का जोड़ना संकलन है । वहां राशि में जितनी राशि को जोड़ना है उतनी राशि को ऊपर लिखना अथवा मूलराशि के ऊपर मिलावने योग्य धनराशि को लिखकर वहां पूछडि जैसा आकार करे ऐसी संदृष्टि होती है । जैसे एक अधिक लक्ष की सहनानी $\overset{१}{\text{ल}}$ ऐसी अथवा $\frac{१}{\text{ल}}$ ऐसी । दो अधिक लोक की $\overset{२}{\equiv}$ ऐसी । घनलोक से अधिक अनंत की $\overset{\equiv}{\text{ख}}$ ऐसी इत्यादि यथासंभव जाननी। जहां दो राशि आदि मिलाना हो वहां दो राशि आदि ऊपर लिखते हैं । जैसे लोकप्रमाण कालद्रव्य और धर्मादि तीन द्रव्य ऐसी दो राशि पुद्गलराशि में मिलानेपर अजीव द्रव्य के प्रमाण की संदृष्टि $\underset{१६।\text{ख}}{\overset{३}{\equiv}}$ ऐसी होती है । इत्यादि यथासंभव जानना । पुनश्च किंचित् अधिक की सहनानी ऊपर ' । ' ऐसी जाननी । जैसे किंचित् अधिक अनंत की संदृष्टि $\overset{।}{\text{ख}}$ ऐसी है । पुनश्च कहीं सामान्यपने एक दो आदि राशि मिलाना हो वहां एक दो आदि खड़ी रेषा की ऊपर संदृष्टि होती है । जैसे संख्यात के ऊपर कोई दो राशि मिलाना हो वहां $\overset{॥}{\text{सं}}$ ऐसी संदृष्टि होती है, इत्यादि जानना ।

पुनश्च व्यवकलन अर्थात् राशि में से घटाना उसकी संदृष्टि कहते हैं – जितना घटाना हो उतना मूल राशि के ऊपर लिखकर अथवा उससे लगाकर पूछडी जैसा आकार करके ऊपर बिंदी देना । जैसे एक कम कोटि की संदृष्टि $\overset{०}{\underset{\text{को}}{१}}$ ऐसी अथवा $\frac{१०}{\text{को}}$ ऐसी है । एक कम अनंत की $\frac{१०}{\text{ख}}$ ऐसी, दो कम घनलोक की $\underset{\equiv}{\overset{०}{२}}$ ऐसी । तथा कहीं राशि के नीचे बिंदी देकर उसके नीचे जितना घटाना हो उतना लिखते हैं । ऐसी भी संदृष्टि होती है । जैसे एक कम लक्ष की $\underset{१}{\overset{०}{\text{ल}}}$ ऐसी इत्यादि । तथा कहीं

राशि के आगे – ऐसा लिखकर उसके आगे जितना घटाना हो उतना लिखनेपर भी संदृष्टि होती है । जैसे दो कम लक्ष की ल–२ ऐसी इत्यादि । पुनश्च कहीं राशि के आगे ~ ऐसे लिखकर उसके आगे जितना घटाना हो उतना लिखने से भी संदृष्टि होती है । जैसे दो कम कोटि की को ~ २ ऐसी इत्यादि । तथा कहीं प्रमाण लिखकर उसके ऊपर बिंदी देने से ऋणराशि की संदृष्टि होती है, जैसे कोटि में दो ऋण की संदृष्टि को॰२ ऐसी है । तथा जहां सामान्यपने किंचित् घटाना हो वहां राशि के आगे – ऐसी संदृष्टि जाननी। जैसे किंचित् कम अनंत की संदृष्टि ख– ऐसी है इत्यादि । तथा जहां राशि में से सामान्यपने दो आदि राशि घटाना हो वहां दो आदि बार वैसी संदृष्टि राशि के आगे जाननी । जैसे विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय इन दो राशि रहित संसारी जीव प्रमाण एकेन्द्रिय जीवराशि की संदृष्टि १३= ऐसी है इत्यादि । तथा कहीं राशि के आगे या नीचे जितना घटाना हो उतना लिखकर उस घटाने योग्य राशि से लेकर धनराशि तक ⌣ ऐसे लिखने से भी संदृष्टि होती है । जैसे पांच कम लक्ष की ल⌣५ ऐसी अथवा $\overset{\text{ल}}{\underset{५}{)}}$ ऐसी। पुनश्च पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद से हीन पल्य के अर्धच्छेदराशि की छे⌣वछे ऐसी है, इत्यादि ।

पुनश्च गुणकार की संदृष्टि आगे लिखना है । जिसको गुणा करना है उस गुण्य के आगे जिससे गुणा करना हो उस गुणकार को लिखते हैं । जैसे पांच गुणा लाख की संदृष्टि ल५ ऐसी है । संख्यात गुणा पल्य की प॰ ऐसी । असंख्यात गुणा पल्य की प॰ ऐसी, इसको भी असंख्यात गुणा करनेपर प॰॰ ऐसी । संख्यात गुणा आवली की २॰ ऐसी, सो ऐसी ही अंतर्मुहूर्त की संदृष्टि है। क्योंकि अंतर्मुहूर्त का प्रमाण संख्यात आवली मात्र है, इसको संख्यात गुणा करनेपर २॰॰ ऐसी । संख्यात गुणा घनांगुल की ६॰ ऐसी । असंख्यात गुणा लोक की ≡॰ ऐसी, इसको असंख्यात लोक से गुणा करनेपर ≡॰ ≡॰ ऐसी । अनंतगुणी जीवराशि की १६ख ऐसी इत्यादि यथासंभव जाननी ।

भागहार की संदृष्टि नीचे लिखना है । जिसको भाग देना है ऐसी भाज्यराशि को ऊपर लिखकर जिसका भाग देना हो उस भागहार को उसके नीचे लिखते हैं।

जैसे कोटि के पांचवें भाग की संदृष्टि $\frac{\text{को}}{५}$ ऐसी । पल्य के संख्यातवें भाग की $\frac{\text{प}}{\text{सं}}$ ऐसी, पल्य के असंख्यातवें भाग की $\frac{\text{प}}{\text{अ}}$ ऐसी, सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग की $\frac{२}{\text{अ}}$ ऐसी, आवली के असंख्यातवें भाग की $\frac{२}{\text{अ}}$ ऐसी, सो यथास्थान जाननी । घनांगुल के असंख्यातवें भाग की $\frac{६}{\text{अ}}$ ऐसी, घनलोक के असंख्यातवें भाग की $\frac{\equiv}{\text{अ}}$ ऐसी, जगत्श्रेणी के संख्यातवें भाग की $\frac{}{\text{सं}}$ ऐसी, जीवराशि के अनंतवें भाग की $\frac{१६}{\text{ख}}$ ऐसी, केवलज्ञान के अनंतवें भाग की $\frac{\text{के}}{\text{ख}}$ ऐसी इत्यादि जाननी । जहां अंशों का ग्रहण करना हो वहां भी ऐसी ही संदृष्टि जाननी । अंशों के नीचे हारों को लिखते हैं । जैसे एक के तीसरे भाग की $\frac{१}{३}$ ऐसी, आधे की $\frac{१}{२}$ ऐसी, पौण की $\frac{३}{४}$ ऐसी, यहां तीन चौथा भाग जानना, इत्यादि । पुनश्च जहां रूप (एक का अंक) भी हो और अंश भी हो वहां इन दोनों को जुदा जुदा लिखते हैं अथवा समच्छेद विधान द्वारा मिलाकर लिखते हैं। जैसे डेढ़ की संदृष्टि $१।\frac{१}{२}$ ऐसी, वहां एक जुदा लिखा, आधा जुदा लिखा अथवा मिलानेपर $\frac{३}{२}$ ऐसी, यहां तीन को दो का भाग जानना इत्यादि । वर्ग की संदृष्टि दो बार लिखनी है । जिसका वर्ग करना हो उसको बराबर (एकसाथ - एक के आगे एक) दो बार लिखते हैं । जैसे पांच के वर्ग की संदृष्टि ५।५ ऐसी, बादाल के वर्ग की ४२=।४२= ऐसी, अनंत के वर्ग की ख।ख ऐसी, सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्ग की $\frac{२}{\text{अ}}।\frac{२}{\text{अ}}$ ऐसी इत्यादि।

पुनश्च घन की संदृष्टि तीन बार लिखना है । जिसका घन करना हो उसको तीन बार बराबर (एक साथ) लिखते हैं । जैसे आठ के घन की संदृष्टि ८।८।८ ऐसी, पणट्ठी के घन की ६५=।६५=।६५= ऐसी, असंख्यात के घन की अ।अ।अ ऐसी, घनांगुल के संख्यातवें भाग के घन की $\frac{६}{\text{घ}}।\frac{६}{\text{घ}}।\frac{६}{\text{घ}}$ ऐसी इत्यादि ।

पुनश्च वर्गमूल की संदृष्टि मू ऐसी है । वहां प्रथम वर्गमूल की मू१ ऐसी, द्वितीय वर्गमूल की मू२ ऐसी, इत्यादि जितनेवां वर्गमूल हो उतने का अंक आगे लिखनेपर

संदृष्टि होती है । कहीं एक, दो आदि का अंक ही प्रथम, द्वितीय आदि मूलों की संदृष्टि होती है जैसे चतुर्थ मूल की संदृष्टि ४ है । पुनश्च घनमूल की संदृष्टि घमू ऐसी है । इसप्रकार परिकर्माष्टक की संदृष्टि जाननी । अब संदृष्टि में विशेष कहते हैं–

जहां भाज्यराशि और भागहारराशि की किसी प्रमाण द्वारा शुद्धता होती हो, अर्थात् भाज्य और भागहार को किसी समान प्रमाण का भाग देनेपर यथायोग्य लब्धराशि पाकर निरवशेषता होती हो, वहां उस प्रमाण द्वारा अपवर्तन करना । जैसे, जहां अट्ठाइस के भाज्य को आठ का भागहार हो २८/८, वहां चार से अपवर्तन करनेपर अट्ठाइस को चार का भाग देनेपर सात आये उसे अट्ठाइस के जगह लिखते हैं और आठ को चार का भाग देनेपर दो आये, उसे आठ की जगह ७/२ लिखते हैं । यहां अट्ठाइस को आठ का भाग देनेपर भी तथा सात को दो का भाग देनेपर भी लब्धराशि साढ़े तीन होती है । इसीप्रकार अन्यत्र भी अपवर्तन जानना ।

तथा जहां भाज्य और भागहार में समानता हो, वहां दोनों का अभाव करके अपवर्तन करना । जैसे चौगुणा अस्सी को चौगुणा पांच का जहां भाग हो ८० X ४ / ५ X ४, वहां चौगुणापने को भाज्य भागहार में समान जानकर अपवर्तन करनेपर अस्सी को पांच का भागहार होता है ८०/५ ।

पुनश्च कहीं महत्प्रमाण में एक आदि हीन अधिक होते हुये भी संदृष्टि में अपवर्तन करते हैं । जैसे जीवराशि को एक अधिक अनंत का गुणकार और अनंत का भागहार हो वहां अपवर्तन करके जीवराशि मात्र १६ प्रमाण लिखते हैं ।

पुनश्च जहां घटाने योग्य ऋणराशि हो और उस ऋणराशि का भी ऋण हो, वहां ऋणराशि में से अपना ऋण घटाकर अवशेष मूलराशि में से घटाते हैं अथवा 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं' इस वचन से उस ऋण को मूलराशि में जोड़कर उसमें से ऋण घटाते हैं । जैसे दस कम सौ (९०) हजार में से घटाना हो तो हजार में से नब्बे घटाते हैं अथवा दस अधिक हजार में से सौ घटाते हैं, दोनों का एक ही अर्थ है । इसीप्रकार अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां संदृष्टि के लिये किसी प्रमाण द्वारा राशि का भेदन करते हैं, वहां उस प्रमाण का राशि को भाग देनेपर जो आता है, उसे तो राशि की जगह लिखकर उसके आगे उस प्रमाणमात्र गुणकार को लिखते हैं। जैसे पांच सौ बारह को सोलह से भेदना हो वहां पांच सौ बारह की जगह बत्तीस लिखकर उसके आगे सोलह का गुणकार लिखते हैं । इसीप्रकार अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां भागहार के गुणकार हो, वहां उन गुणकारों को भागहार के आगे लिखते हैं। तथा उस भागहार को उन गुणकारों से गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है उतने का वहां भागहार जानना । जैसे लक्ष को नौ और तीन गुणा नौ का भाग हो, वहां ऐसे $\frac{\text{ल}}{९।९।३}$ लिखते हैं । यहां नौ नौ तीन को परस्पर गुणा करनेपर दो सौ तैंतालीस हुआ उसका भागहार जानना । ऐसे ही पांच बार संख्यात से गुणा हुआ पणट्ठीप्रमाण प्रतरांगुल का भाग जहां जगत्प्रतर को हो, वहां इसतरह लिखते हैं $\overline{\overline{४।६५}} = \text{ग}।\text{ग}।\text{ग}।\text{ग}।\text{ग}$ अर्थ वैसे ही जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां भाज्य के गुणकार हो, वहां उन गुणकारों को भाज्य के आगे लिखते हैं । भाज्य को उन गुणकारों से गुणित करनेपर जो प्रमाण हो उतना वहां भाज्य जानना । जैसे चार, पांच से गुणित कोटि को लक्ष का भाग हो, वहां ऐसा $\frac{\text{को}}{\text{ल}}$ ४।५ लिखते हैं । यहां कोटि को चार और पांच गुणा करनेपर बीस कोटि हुये, उनको लक्ष का भाग जानना । ऐसे ही पल्य से गुणित संख्यात घनांगुल को सूच्यंगुल का भाग हो, वहां $\frac{६}{२}$।ग।प ऐसे लिखना, अर्थ वैसे ही जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च किसी राशि के गुणकार का भागहार हो, वहां उस भागहार को उस गुणकार के नीचे लिखते हैं । उस भागहार का उस गुणकार को भाग देनेपर जो प्रमाण आये उसका वहां गुणकार जानना । जैसे सौ के चौथे भाग से लक्ष को गुणा करना हो, वहां $\frac{\text{ल}}{४}$१०० ऐसे लिखते हैं । यहां सौ को चार का भाग देनेपर पच्चीस आये, उसका गुणकार जानना । इसीप्रकार पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित लोक $\overline{\overline{\text{प}}}$

ऐसा उसका अर्थ जानना ।

पुनश्च जहां भाज्य वा भागहार का गुणकार भागहार सहित हो, वहां भी अपने भागहार का भाग गुणकार को देनेपर जो आये, उतने का भाज्य वा भागहार का गुणकार जानना । जैसे सौ के चौथे भाग से गुणित लक्ष को पचास का भाग देना हो, तब ऐसा $\frac{\text{ल}\ १००}{५०\ |\ ४}$ है । कोटि को सौ के चौथे भाग से गुणित लक्ष का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{को}}{\text{ल}}\ \frac{१००}{४}$ । पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित लोक को घनांगुल का भाग देनेपर ऐसा $\equiv\ |\ \frac{\text{प}}{\text{अ}}$ । घनांगुल के संख्यातवें भाग से गुणित जगत्श्रेणी का भाग जगत्प्रतर को देनेपर ऐसा $\frac{\equiv}{\equiv}$, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च गुण्य में या गुणकार में या भाज्य में या भागहार में कुछ मिलाना हो तो उसके ऊपर संकलन की संदृष्टि करनी और घटाना हो तो ऋण की संदृष्टि करनी। जैसे असंख्यात गुणा एक अधिक लोक की ऐसी $\overset{१}{\equiv}\ \text{अ}$ संदृष्टि है। एक अधिक संख्यातगुणा सूच्यंगुल की ऐसी $\frac{१}{२\text{ज}}$, पल्य से भाजित एक अधिक लोक की ऐसी $\frac{१}{\frac{\equiv}{\text{प}}}$ । एक अधिक प्रतरांगुल से भाजित लोक की ऐसी $\frac{\equiv}{\frac{१}{४}}$ इत्यादि । तथा अनंत से गुणित एक कम जीवराशि की ऐसी $\frac{१}{१६}\ \overset{\frown}{\text{ख}}$ । एक कम अनंत से गुणित जीवराशि की ऐसी $१६\ \frac{१}{\overset{\frown}{\text{ख}}}$, अनंत से भाजित दो कम पुद्गलराशि की ऐसी $\frac{२}{१६\ \frac{\overset{\frown}{\text{ख}}}{\text{ख}}}$ । दो कम अनंत से भाजित पुद्गलराशि की ऐसी $\frac{१६\ \text{ख}}{२\ \frac{\overset{\frown}{\text{ख}}}{\text{ख}}}$ इत्यादि जाननी ।

पुनश्च जहां भाज्यराशि के गुणकार हो अथवा भागहारराशि के गुणकार हो और उन गुणकारों में कोई गुणकार भागहार संयुक्त हो या कुछ अधिक या कुछ हीन हो तो वहां उन भाज्य भागहारों के आगे उन गुणकारों को लिखकर जिस गुणकार

का भागहार हो उसके नीचे लिखना । अधिक या हीन हो उसे ऊपर संदृष्टिरूप लिखना। भागहार का भाग देकर अधिक को मिलाने या हीन को घटानेपर जो प्रमाण हो, उसे वहां गुणकार का प्रमाण जानना । जैसे लाख को तीन से, लाख के चौथे भाग से तथा एक अधिक हजार से गुणा करते हैं, इतना तो भाज्य और दस को लाख के पांचवें भाग से और एक कम सौ से गुणा करके उसका भाग देना हो, वहां ऐसे लिखते हैं - $\text{ल}\,३\,\underset{४}{\text{ल}}\,\frac{१}{१०००}$ । यहां यथोक्त करनेपर सात लाख पचास हजार सात सौ पचास कोडि तो भाज्य और एक कोडि अठ्याणबे लाख भागहार जानना । इसीप्रकार जहां घनांगुल को घनावली के असंख्यातवें भाग से और एक अधिक संख्यात से गुणा करके इतना तो भाज्य और पल्य के असंख्यातवें भाग को एक कम घनावली के असंख्यातवें भाग से गुणा करके इतना तो भागहार हो, वहां ऐसे लिखते हैं $६।\underset{ज}{८}।\underset{}{\text{घ}^{१-}}\;\underset{ज}{\overset{प}{\overset{१}{८}}}$ (भाज्य $६।\underset{ज}{८}।\underset{}{\text{घ}^{१-}}$) (भागहार $\underset{ज}{\overset{प}{\overset{१}{८}}}$)

पुनश्च कहीं राशि के गुणकारों के जो भागहार हैं उनको राशि के भागहारों को लिखकर उनसे गुणित करते हैं। जैसे लक्ष के पचासवें भाग को सौ के चौथे भाग से गुणित करना हो, वहां ऐसे लिखते हैं $\underset{५०।४}{\text{ल}\;१००}$ । यहां सौ गुणा लक्ष को चार गुणा पचास का भाग जानना । क्योंकि दोनों प्रकार से प्रमाण समान होता है। इसीप्रकार अन्यत्र जानना ।

जहां भागहार या गुणकार दो, तीन आदि बार हो वहां उस गुणकार के आगे दो, तीन आदि का अंक लिखने की भी सहनानी जाननी । जैसे लक्ष को तीन बार चार का भाग देना हो वहां ऐसा लिखते हैं $\underset{४।३}{\text{ल}}$ । यहां तीन बार चार को परस्पर गुणा करनेपर चौंसठ आये इसलिये चौंसठ का भागहार जानना । इसीप्रकार घनांगुल को उन्नीस बार पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देना हो वहां ऐसे लिखते हैं $\underset{ज}{\overset{प}{६}}$ ।

तथा चार बार दो से गुणित कोटि को ऐसे लिखते हैं **को२।४** । यहां चार बार दो को परस्पर गुणा करनेपर सोलह आये, सो सोलह का गुणकार जानना । इसीप्रकार जहां घनांगुल को बाइस बार घनावली के असंख्यातवें भाग से गुणित करना हो वहां ऐसे लिखते हैं **६।८।२२** । इसीप्रकार अन्यत्र संदृष्टि जाननी ।
ग

जहां भागहार का भागहार या प्रतिभागहार हो वहां उनको नीचे नीचे लिखते हैं । नीचे से लेकर क्रम से ऊपर ऊपर भाग देनेपर जो आये, सो वहां प्रमाण जानना। जैसे जहां हजार को सौ का भाग, उसको बीस का भाग, उसको पांच का भाग देना हो वहां ऐसे लिखते हैं १०००। यहां यथोक्त करनेपर चालीस प्रमाण आता है।
१००
२०
५

ऐसे ही जगत्प्रतर को प्रतरांगुल का भाग और उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देना है वहां ऐसा लिखते हैं ॥ । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।
ग २८

पुनश्च 'हारस्य हारो गुणकोऽत्रराशेः' इस वचन से कहीं भागहार के भागहार को भाज्यराशि का गुणकार करना । जैसे हजार को बीस के पांचवें भाग का भाग जहां हो, वहां हजार को पांच गुणा करके बीस का भाग देते हैं १०००।५
१०००
२०
५
२०

क्योंकि बीस को पांच का भाग देनेपर चार आते हैं, उसका भाग हजार को देनेपर भी दो सौ पचास आते हैं और पांच गुणा हजार को बीस का भाग देनेपर भी उतने ही आते हैं, दोनों का अर्थ एक ही है, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां धनराशि या ऋणराशि के दोनों के गुणकार भागहारादि हो, वहां अलग अलग गुणनादि करके जो धनराशि हो उसमें से ऋणराशि घटानेपर जो प्रमाण हो, उसे वहां ग्रहण करना। जैसे धनराशि दो बार सोलह से गुणित चार प्रमाण **४।१६।१६** और ऋणराशि दो बार चार से गुणित दो प्रमाण **२।४।४** जहां हो, वहां चार, सोलह, सोलह को परस्पर गुणा करनेपर एक हजार चौबीस हुये। उनमें से दो, चार, चार को परस्पर गुणा करनेपर बत्तीस हुये उन्हें घटाते हैं, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां विवक्षित भागहार का भाग देकर वहां एक भाग छोड़कर बहुभाग ग्रहण करना हो वहां एक कम भागहार के प्रमाण से भाज्य को गुणा करना और सम्पूर्ण भागहार का भाग देना । क्योंकि समच्छेद द्वारा वहां मूलराशि ऋणराशि के गुण्य को समान देखकर मूलराशि के गुणकार में से एक कम करते हैं । जैसे जहां लक्ष को दस का भाग देकर वहां एक भाग छोड़कर नौ भागों का ग्रहण करना हो वहां लक्ष को नौ गुणा करके दस का भाग देना $\frac{\text{ल } ९}{१०}$ ऐसे नौ भागों का नब्बे हजार प्रमाण आया । ऐसे ही पुद्गल राशि को अनंत का भाग देकर जहां बहुभाग ग्रहण करना हो, वहां भी ऐसा ही जानना । उसकी संदृष्टि ऐसी $१६_{ख}^{१\hat{ख}}$ है । ऐसे ही अन्यत्र जानना।

पुनश्च जहां राशि को विवक्षित भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करके पुनश्च एक भाग रहा, उसको उसी भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करना हो तथा पुनश्च इसीप्रकार एक भाग रहता जाय उसको उसी भागहार का भाग दे देकर बहुभाग ग्रहण करने हो वहां राशि को एक बार एक कम भागहार से गुणा करना और जितनी बार बहुभाग का ग्रहण करना हो, उतनी बार सम्पूर्ण भागहार का भाग देना। अंत में जहां अवशेष रहे एक भाग ही का ग्रहण हो, वहां उस राशि को एक से गुणा करना और जितनी बार बहुभाग ग्रहण किये थे उतनी बार सम्पूर्ण भागहार का भाग देना । जैसे दस से भाजित लक्ष को दस का भाग देनेपर बहुभाग ऐसा $\frac{\text{ल } ९}{१०|१०}$ । यहां एक भाग के दस हजार थे उसको दस का भाग देकर नौ भागों को ग्रहण करनेपर नौ हजार आये, वही लाख को नौ गुणा करके दो बार दस का भाग देनेपर भी नौ हजार आये । पुनश्च अवशेष एक भाग को दस का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करनेपर ऐसा $\frac{\text{ल } ९}{१०|१०|१०}$ । यहां अवशेष एक भाग के हजार थे उनमें से बहुभाग के नौ सौ जानने । पुनश्च अवशेष एक भाग ऐसा $\frac{\text{ल } १}{१०|१०|१०}$ । यहां लक्ष को एक गुणा करनेपर लक्ष ही हुआ उसको तीन बार दस का भाग देनेपर सौ आये, वही अवशेष एक भाग का प्रमाण जानना । तथा ऐसे ही घनलोक को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एक भाग को छोड़कर बहुभाग ग्रहण

करना हो वहां ऐसा $\overset{\text{१}}{\underset{\text{प}}{\underset{\text{ə}}{\equiv}}}\overset{\frown}{\underset{\text{ə}}{\text{प}}}$ । पुनश्च अवशेष एक भाग को उसी भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करनेपर ऐसा $\overset{\text{१}}{\underset{\text{प}}{\underset{\text{ə}}{\underset{\text{ə}}{\equiv}}}}\overset{\frown}{\underset{\text{ə}}{\text{प}}}$ । पुनश्च अवशेष एक भाग को उसी भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करनेपर ऐसा $\overset{\text{१}}{\underset{\text{प}}{\underset{\text{ə}}{\underset{\text{ə}}{\underset{\text{ə}}{\equiv}}}}}\overset{\frown}{\underset{\text{ə}}{\text{प}}}$ । अवशेष एक भाग ऐसा $\overset{\text{१}}{\underset{\text{प}}{\underset{\text{ə}}{\underset{\text{ə}}{\underset{\text{ə}}{\equiv}}}}}$ जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना।

पुनश्च जहां विवक्षित राशि को विवक्षित भागहार का भाग देकर एक भाग को उस विवक्षित राशि में मिलाना हो, वहां उस राशि को एक अधिक भागहार के प्रमाण से गुणित करना और सम्पूर्ण भागहार का भाग देना । क्योंकि समच्छेद करके पश्चात् दोनों राशि के गुण्य को समान देखकर गुणकार में एक अधिक करते हैं । जैसे कोटि में कोटि ही का दसवां भाग जहां मिलाना हो, वहां कोटि को ग्यारह से गुणा करके दस का भाग देना $\underset{\text{१०}}{\text{को}}\text{११}$ । ऐसा करनेपर लब्धराशि एक कोटि दस लाख आते हैं । ऐसे ही पुद्गलराशि में पुद्गलराशि का अनंतवां भाग मिलाना हो, वहां पुद्गलराशि को एक अधिक अनंत से गुणा करना और अनंत का भाग देना, उसकी संदृष्टि ऐसी $\text{१६}\,\underset{\text{ख}}{\text{ख}}\overset{\text{१}-}{\text{ख}}$ । तथा अंतर्मुहूर्त में अंतर्मुहूर्त का संख्यातवां भाग मिलाना हो, वहां अंतर्मुहूर्त को एक अधिक संख्यात से गुणा करना और संख्यात का भाग देना । उसकी संदृष्टि ऐसी $\underset{\text{४}}{\text{२}\text{ृ}}\text{५}$ । यहां संख्यात की संदृष्टि चार का अंक जानना । ऐसे ही अन्य जानने। पुनश्च इसका संख्यातवां भाग इसमें मिलाना हो, वहां ऐसी $\underset{\text{४}}{\text{२}\text{ृ}}\text{।५।}\underset{\text{४}}{\text{५}}$ संदृष्टि जाननी। ऐसे ही अन्य जानने।

पुनश्च जहां कोई राशि गुणकार संयुक्त हो उसमें उस राशि के समान प्रमाण

जोड़ना हो, वहां गुणकार में एक अधिक कर देना और उससे दो गुणा, तीनगुणा आदि प्रमाण मिलाना हो तो दो, तीन आदि अधिक करना। जैसे पांच गुणा लक्ष में लक्ष मिलाना हो वहां एक अधिक पांच का गुणकार करना **ल** $\overset{१-}{५}$ । अंतर्मुहूर्त से गुणित लोक में लोक से दोगुणा प्रमाण मिलाना हो वहां दो अधिक अंतर्मुहूर्त का गुणकार करना, उसकी संदृष्टि ऐसी $\equiv \overset{२-}{२}\overline{मु}$ ।

पुनश्च कोई राशि गुणकार से संयुक्त हो, उसमें उस राशि मात्र या उससे दोगुणा आदि प्रमाण घटाना हो, वहां उस गुणकार में से एक, दो आदि कम कर देना । जैसे पांच गुणा कोटि में कोटि घटाना हो वहां एक कम पांच का गुणकार करना **को** $\overset{१}{\underset{\frown}{५}}$ । ऐसे ही असंख्यात गुणा पल्य में से पल्य से तीनगुणा प्रमाण घटाना हो, वहां पल्य को तीन कम असंख्यात से गुणा करना । उसकी संदृष्टि ऐसी **प** $\overset{३}{\underset{\frown}{अ}}$ । ऐसे ही अन्य जानने ।

पुनश्च जहां राशि दो, तीन आदि गुणकारों से संयुक्त हो और वहां पूर्व गुण्य या गुणकार से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना घटाना या बढ़ाना हो तो वहां उसके आगे गुणकारों में से एक घटाना या बढ़ाना । जैसे लाख पांच, चार, तीन से गुणित हो **ल५।४।३**, उसका प्रमाण साठ लाख उसमें से लाख घटाना हो तो पांच के ऊपर से लेकर सर्व गुणकारों के ऊपर एक कम की संदृष्टि करनी **ल** $\overset{१}{\underset{\frown}{५।४।३}}$ और पांच लाख घटाना हो तो चार के ऊपर से लेकर **ल५।** $\overset{१}{\underset{\frown}{४।३}}$ और बीस लाख घटाना हो तो तीन के ऊपर एक कम की संदृष्टि करनी **ल५।४।** $\overset{१}{\underset{\frown}{३}}$ । ऐसे ही संख्यात गुणित असंख्यात लोक में से लोकमात्र घटाना हो तो असंख्यात के ऊपर से लेकर एक कम की संदृष्टि $\equiv \overset{१}{\underset{\frown}{अ}}\overline{मु}$ करनी और असंख्यात लोकमात्र घटाना हो तो संख्यात के ऊपर एक कम की संदृष्टि ऐसी करना $\equiv \overset{१}{\underset{\frown}{अ}}\overline{मु}$ इत्यादि । तथा इसीप्रकार मिलाने

में अधिक की संदृष्टि जाननी और उससे दुगुणा आदि प्रमाण घटाना बढ़ाना हो तो वहां दो, तीन आदि घटाने बढ़ाने की संदृष्टि करनी। जैसे उस राशि में से तीन लाख घटाना हो तो पांच के ऊपर से लेकर तीन कम की संदृष्टि करनी **ल$\overset{३}{\overset{\frown}{५}}$।४।३** । ऐसे ही सर्वत्र जानना ।

पुनश्च यदि राशि के बीच के किसी गुणकार के आगे या पीछे के गुण्य या गुणकार से गुणित करनेपर जो प्रमाण हो उतना घटाना या बढ़ाना हो तो वहां उस बीच के गुणकार में से एक घटाना या बढ़ाना । पुनश्च उससे दोगुणा, तीनगुणा आदि प्रमाण घटाना या बढ़ाना हो तो दो, तीन आदि घटाना या बढ़ाना । जैसे उसी पांच, चार, तीन गुणित लाख में से बारह लाख घटाना हो तो पांच में से एक कम करना **ल$\overset{१}{\overset{\frown}{५}}$।४।३**, पंद्रह लाख घटाना हो तो चार के ऊपर एक कम करना **ल५।$\overset{१}{\overset{\frown}{४}}$।३**, तीस लाख घटाना हो तो चार के ऊपर दो कम करना **ल५।$\overset{२}{\overset{\frown}{४}}$।३** । इसीप्रकार बढ़ाने में अधिक की संदृष्टि जाननी । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जो राशि गुणकार संयुक्त हो और उसमें से गुणकार मात्र घटाना या बढ़ाना हो या उससे दोगुणा आदि प्रमाण घटाना या बढ़ाना हो तो वहां गुण्य के ऊपर एक, दो आदि हीन या अधिक की संदृष्टि करनी । जैसे चार और तीन गुणा लाख में से बारह घटाना हो तो लाख में एक कम करना $\overset{१}{\overset{\frown}{\text{ल}}}$ **४।३** । ऐसे ही असंख्यात गुणा लोक में से असंख्यात घटाना हो तो लोक के ऊपर एक कम की संदृष्टि करनी $\overset{१}{\overset{\frown}{\equiv}}$**ə** इत्यादि । तथा इसीप्रकार उसमें मिलाना हो तो अधिक की संदृष्टि जाननी।

पुनश्च जहां राशि के गुण्य और गुणकार में से एक, दो आदि घटाये या बढ़ाये हो उसके प्रमाण को अलग स्थापना हो, वहां उस एक, दो आदि को उस गुण्य या गुणकार से आगे या पीछे के गुण्य या गुणकार द्वारा गुणित करनेपर जितना हो उतना अलग स्थापित करना । जैसे दो अधिक पांच और चार और तीन द्वारा गुणित लाख प्रमाण राशि में से दो अधिक पांच में से दो घटाकर अलग स्थापित करनेपर उसका प्रमाण लाख चार तीन द्वारा गुणित दो जानना । **२ल४।३** ऐसे ही घटाने में ऋण का

प्रमाण अलग स्थापित करना । ऐसे ही अन्यत्र जानना । उसको अलग स्थापित करके अवशेष गुण्य और गुणकार का प्रमाण रहे, सो उस राशि में लिखना।

पुनश्च जहां समच्छेद विधान में अंशों को और हारों को परस्पर हारों द्वारा गुणित करना हो, वहां कहीं परस्पर दोनों राशियों के जो समान हार हो, उनको छोड़कर अधिक हारों द्वारा ही समच्छेद करना जैसे पांच, चार द्वारा भाजित लाख में पांच, चार, तीन द्वारा भाजित लाख जोड़ना हो $\left[\frac{\text{ल}}{५।४}+\frac{\text{ल}}{५।४।३}\right]$ वहां दोनों राशियों में पांच, चार के हार समान देखकर तीन द्वारा ही समच्छेद करते हैं तब मूलराशि ऐसी $\frac{\text{ल।३}}{५।४।३}$ और धनराशि ऐसी $\frac{\text{ल}}{५।४।३}$ होती है । यहां लाख गुण्य को समान देखकर तीन के गुणकार में एक अधिक करनेपर $\left[\frac{\text{ल३}}{५।४।३}+\frac{\text{ल}}{५।४।३}\right]$ दोनों राशियों का जोड़ $\frac{\overset{१}{\text{ल३}}}{५।४।३}$ होता है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

जहां राशि का आधा करना हो वहां दो का भाग देना । जैसे एक कम अंतर्मुहूर्त के आधे की संदृष्टि ऐसी $\frac{\overset{१}{२}}{२}\overset{\text{मु}}{\text{मु}}$ है । इसीप्रकार राशि के तीसरे, चौथे आदि भाग के ग्रहण में तीन, चार आदि का भाग जानना।

जहां भागहार संयुक्त भाज्यराशि को अंश या हार से गुणित करना हो, वहां अंश को भाज्य के आगे और हार को भागहार के आगे लिखना। जैसे जहां घनरज्जू को डेढ़ गुणा करना हो, वहां संदृष्टि ऐसी होती हैं $\frac{\text{३}}{\text{३४३।२}}$ । ऐसे ही अन्यत्र जाननी। इत्यादि संदृष्टि के विशेष यथासंभव अनेक प्रकार जानने । यहां उदाहरण मात्र कितने ही कहे हैं । पुनश्च अन्य कई संदृष्टि विशेष कहते हैं –

कहीं षट्स्थानपतित वृध्दि या हानि में अनंतभाग की संदृष्टि ऊर्वक उ, असंख्यातभाग की चार का अंक ४, संख्यातभाग की पांच का अंक ५, संख्यातगुण की छह का अंक ६, असंख्यातगुण की सात का अंक ७, अनंतगुण की आठ का अंक ८, संदृष्टि जाननी।

पुद्गलपरिवर्तन में गृहीत की एक का अंक १, अगृहीत की बिंदी ०, मिश्र की हंसपद x संदृष्टि जाननी ।

कहीं दो बार लिखने से बहुत बार जानना । जैसे दो बार ऊर्वक लिखने से सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार अनंतभागवृध्दि जाननी ।

कहीं आलाप समान पाये जाते हैं तथापि अन्य की अपेक्षा अल्पबहुत्व जनावने के लिये संदृष्टि करते हैं । जैसे तीनों करणों का काल आलाप द्वारा [कथन में] अंतर्मुहूर्तमात्र है, तथापि उनमें अनिवृत्तिकरण का काल सबसे अल्प संख्यात आवली प्रमाण है । उसकी संदृष्टि ऐसी **२ृ** । इससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के काल की संदृष्टि ऐसी **२ृृ**, इससे संख्यातगुणा अधःकरण के काल की संदृष्टि ऐसी **२ृृृ** है।

पुनश्च जैसे कर्मस्थिति रचना में समयप्रबध्द की संदृष्टि ऐसी **सə**, यहां जघन्य समयप्रबध्द से उत्कृष्ट समयप्रबध्द असंख्यातगुणा है इसलिये जघन्य समयप्रबध्द की संदृष्टि आदि अक्षररूप ऐसी **स**, उसके आगे असंख्यात का गुणकार करनेपर उत्कृष्ट समयप्रबध्द की संदृष्टि **सə** ऐसी होती है ।

कहीं अंकसंदृष्टि ही को अर्थसंदृष्टि में भी लिखते हैं । जैसे उत्कृष्ट समयप्रबध्द की संदृष्टि ऐसी **स३२** है । यहां जघन्य समयप्रबध्द को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा बत्तीस का गुणकार जानना ।

किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबध्द की संदृष्टि ऐसी **सə१२–** है । यहां उत्कृष्ट समयप्रबध्द ऐसा **सə**, उसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा डेढ़ गुणहानि का प्रमाण बारह उसके आगे किंचित् कम करने के लिये संदृष्टि ऐसी –, उसका गुणकार जानना । ऐसे ही अन्य भी यथायोग्य संदृष्टि जाननी ।

कहीं आकाररूप संदृष्टि होती है । जैसे कर्मस्थिति के कथन में संदृष्टि ऐसी ⏃ । यहां नीचे ऊभी लकीर, वह तो आबाधाकाल की संदृष्टि जाननी। और उसके ऊपर ऐसी △ संदृष्टि वह निषेकों की जाननी । क्योंकि निषेकों का प्रमाण क्रम से घटता घटता है, इसलिये क्रम से हीनरूप संदृष्टि करते हैं । तथा जहां निषेकों का ही ग्रहण हो, वहां संदृष्टि ऐसी ही जाननी △। जहां स्थिति में अचलावली, उदयावली,

उपरितनस्थिति, उच्छिष्टावली की रचना हो वहां संदृष्टि ऐसी । यहां नीचे की ऊभी लकीर अचलावली की संदृष्टि है । उसके ऊपर ऐसी △ उदयावली की संदृष्टि है । उसके ऊपर ऐसी ⏢ संदृष्टि उपरितन स्थिति की है । उसके ऊपर ऐसी △ संदृष्टि उच्छिष्टावली की है । यहां उदयावली, उपरितनस्थिति, उच्छिष्टावली के निषेक क्रम से हीनरूप हैं इसलिये क्रम से हीन आकाररूप संदृष्टि जाननी ।

इनमें प्रकृतिबंध होने के पश्चात् आवली कालमात्र उदय, उदीरणादिरूप होनेयोग्य नहीं है सो अचलावली है । आवली काल में उदय आने योग्य निषेकसमूह वह उदयावली है । उसके ऊपर के जो निषेक, उनका समूह वह उपरितन स्थिति है। अंतिम आवलीमात्र निषेक अवशेष रहे, वह उच्छिष्टावली है ऐसे जानना ।

पुनश्च कर्म के अनुभाग के कथन में संदृष्टि ऐसी । यहां अनुभाग में अविभाग प्रतिच्छेदों की समानतावाले वर्ग एक एक वर्गणामें पाये जाते हैं, उनकी संदृष्टि ऐसी । और वर्गों का प्रमाण वर्गणा में क्रम से हीनरूप है इसलिये आगे ऐसी संदृष्टि जाननी, इत्यादि ।

पुनश्च अधःकरण के कथन में अंकुशरचना, लांगलरचना होती है, वह टीका में लिखी ही है ।

जहां क्षेत्रफल करना हो वहां ऐसा आकार लिखते हैं – □ । वहां ऊंचाई का प्रमाण बीच में लिखते हैं । लम्बाई और चौड़ाई का प्रमाण नीचे और पार्श्वभाग में लिखते हैं । वहां करणसूत्र द्वारा यथासंभव क्षेत्रफल हो, वह जानना । ऐसे अन्य भी अनेक प्रकार की संदृष्टि जाननी । इसप्रकार सामान्य संदृष्टि स्वरूप वर्णन समाप्त होता है ।

संस्कृत टीका में, सूत्रों के यंत्ररचना में तथा कहीं इस संदृष्टिअधिकार में भी जो संदृष्टिरचना जिस अर्थ की हो, उस रचना की और उस अर्थ की जैसी तैसी उस आकाररूप सहनानी समान होती है अथवा अर्थ से लेकर रचना तक रेषा खींच देते हैं वहां ऐसा जानते हैं कि इस अर्थ की यह रचना है । इत्यादि बुध्दि के बल से यथासंभव शास्त्रों में से अभिप्राय जानकर यथार्थज्ञानी होकर परमज्ञानी होना ।

अब श्रीमद् गोम्मटसार शास्त्र के यंत्रों में और संस्कृत टीका में जो अर्थ संदृष्टि द्वारा कहे हैं, उनके प्रकट करने के लिये तथा कहे हुये अर्थ की संदृष्टि रचना जानने के लिये कुछ वर्णन करते हैं –

यहां कितनी ही अर्थसंदृष्टि कहते हैं । उनको जानकर अन्य भी अर्थसंदृष्टि अपनी बुध्दि से यथासंभव जान लेनी या अन्य ग्रंथों से जान लेना । यहां जिन अर्थों की संदृष्टि कहते हैं उनमें से जिन अर्थों का स्वरूप यहां सामान्य वर्णन द्वारा स्पष्ट जानने में न आये तो उनका स्वरूप विशेषपने से टीका में अपने अपने अधिकार में वर्णन किया है वहां से उन अर्थों का स्वरूप जानकर उसके अनुसार यहां संदृष्टियों का स्वरूप जानना । यहां जिस अर्थ के वर्णन के आगे जो संदृष्टि लिखतें हैं, वह संदृष्टि उस अर्थ की जाननी। कहीं लिखने में आगे पीछे भी संदृष्टि लिखी जाय, तो वहां अर्थ संबंध से संदृष्टि जान लेनी ।

अथ कर्मकाण्डीयसंदृष्ट्यधिकारः ।

अब कर्मकाण्ड-महाधिकार में अर्थसंदृष्टि स्वरूप निरूपण करते हैं । वहां प्रथम कर्मप्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकार में संदृष्टि कहते हैं - उसमें एक समय संबंधी बंधद्रव्य और उदयद्रव्य समयप्रबद्धमात्र है **स१** । किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध **स११२–** को अनंतगुणा जीवराशि **१६ख** से गुणा करनेपर विस्रसोपचय द्रव्य होता है । गुणकार के ऊपर एक अधिक करनेपर विस्रसोपचय सहित कार्माण द्रव्य होता है **स११२–$\frac{१}{१६ख}$** । इसको अपकर्षण भागहार **ओ** का और पल्य के असंख्यातवें भाग **$\frac{प}{१}$** का और असंख्यातलोक **≡१** का भाग देकर, एक कम असंख्यातलोक **$\frac{१८}{≡१}$** से गुणा करनेपर गुणश्रेणी में दिया हुआ द्रव्य होता है । इसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग देकर चौंसठ से गुणा करनेपर एक समय में उत्कृष्ट निर्जरायोग्य द्रव्य होता है । तथा सत्त्वद्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र है । इनकी संदृष्टि निम्नप्रकार जानना –

नाम	बंधयोग्य	उदययोग्य	उत्कृष्ट निर्जरायोग्य	सत्त्वद्रव्य
प्रमाण	स१	स१	स११२–$\frac{१}{१६ख}$ $\frac{१८}{≡१}$ ६४ ओ $\frac{प}{१}$ ≡१ ८५	स११२–

नाम और निषेक संदृष्टि		मिथ्यात्व	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्वप्रकृति
द्रव्यप्रमाण	२गु	स११२–$\frac{१८}{गु}$ $\frac{१}{१}$ ७ख१७गु $\frac{१}{१}$	स११२–१ ७ख१७गु $\frac{१}{१}$	स११२–१ ७ख१७गु $\frac{१}{१}$
शक्तिप्रमाण	२गु	३ व९ना	३ व९ना ख	३ व९ना ख ख

यहां ऊपर क्रम से हीनरूप रचना ऐसी △ जाननी । वहां मिथ्यात्व के निषेक में से अतिस्थापनावली प्रमाण निषेक घटाने के लिये आवली की संदृष्टि ४ लिखि है, उसके नीचे अवशेष निषेकों की जुदी संदृष्टि जानना । पुनश्च परमाणुरूप द्रव्य के प्रमाण में आयु बिना सात कर्मों का द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र ऐसा **स३१२–** उसको सात का भाग देनेपर मोहनीय का द्रव्य ऐसा – $\frac{\text{स३१२–}}{\text{७}}$; उसको अनंत भाग देनेपर सर्वघाति द्रव्य ऐसा – $\frac{\text{स३१२–}}{\text{७ ख}}$ । इसको सत्रह का भाग देनेपर मिथ्यात्व का द्रव्य ऐसा – $\frac{\text{स३१२–}}{\text{७ ख १७}}$ । पुनश्च इसको गुणसंक्रमण भागहार **गु**, उसका भाग देकर बहुभाग का ग्रहण करने के लिये एक कम उसीसे गुणा करना और अगले की (सम्यग्मिथ्यात्व की) अपेक्षा भागहार को एक अधिक असंख्यात से गुणा करना और उसीका भाग देना [$\frac{१}{३}$ *से भागहार में गुणा करना और उसीसे भागहार में भाग देना, सो भागहार का भागहार, संख्या का गुणकार होगा ।*] ऐसा करनेपर तीन पुंजो में से मिथ्यात्व के द्रव्य की संदृष्टि होती है । इस पूर्वोक्त मिथ्यात्व के द्रव्य को एक अधिक असंख्यात $\frac{१}{३}$ का भाग देकर, असंख्यात से गुणा करनेपर सम्यग्मिथ्यात्व का और एक से गुणा करनेपर सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य होता है ऐसा जानना । यहां समय-समय प्रति अंतर्मुहूर्त तक मिथ्यात्वद्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर अपकर्षण करके तीन पुंजरूप करते हैं, इसलिए बिंदियों की और अंतर्मुहूर्त की संदृष्टि जानना ।

पुनश्च अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदरूप शक्ति, उसकी अपेक्षा वर्गणा **व** को स्पर्धकशलाका की संदृष्टि नौ का अंक **९** से और नानागुणहानिशलाका **ना** से गुणा करनेपर मिथ्यात्व की शक्ति का प्रमाण होता है । इसको अनंत **ख** से भाग देनेपर सम्यग्मिथ्यात्व की शक्ति का प्रमाण होता है । इसको अनंत का भाग देनेपर सम्यक्त्वप्रकृति की शक्ति का प्रमाण होता है । पुनश्च शक्तिप्रमाण ऊपर तीन के अंक की संदृष्टि यथासंभव जानना । पुनश्च प्रकृति आदि के नामों के आदि अक्षररूप और प्रकृतियों के प्रमाण के अंकरूप द्वारा प्रकृतियों की रचना होती है, वह सुगम है, अपनी

बुद्धि से जान लेना ।

अथ **बंध, उदय, सत्त्वाधिकार** में संदृष्टि कहते हैं —

वहां उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्यरूप स्थिति, अनुभाग, प्रदेश-बंधों की रचना निम्नप्रकार है —

स्थिति	अनुभाग	प्रदेश
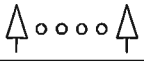	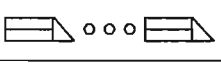	स ३२००० स १

यहां उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति, अनुभाग, समयप्रबद्ध लिखकर बीच में मध्य भेदों के ग्रहण निमित्त *(मध्य भेद बताने के लिये)* बिंदियों की संदृष्टि जानना । गुणस्थानों में प्रकृतिबंध की ऐसी रचना होती है —

गुणस्थान	व्युच्छित्ति	बंध	अबंध
अ	०	०	१२०
स	१	१	११९
क्षी	०	१	११९
उ	०	१	११९
सू	१६	१७	१०३
अ	५	२२	९८
अ	३६	५८	६२
अ	१	५९	६१
प्र	६	६३	५७
दे	४	६७	५३
अ	१०	७७	४३
मि	०	७४	४६
सा	२५	१०१	१९
मि	१६	११७	३

प्रकृतिबंध में बराबर *(एक पंक्ति में)* चार कोठे करके पहले कोठे में गुणस्थान का आदि अक्षर, दूसरे आदि कोठों में क्रम से वहां पायी जानेवाली व्युच्छित्ति, बंध, अबंध प्रकृतियों के प्रमाणरूप अंक लिखना । इसतरह जितने गुणस्थानों की रचना पायी जाये उनके ऊपर दो-दो पंक्तियां करने से रचना होती है, वह कथन अनुसार जान लेना ।

इसतरह विवक्षित मार्गणाभेद का नाम ऊपर लिखकर और वहां ही बंधयोग्य प्रकृतियों का प्रमाण लिखकर नीचे वहां पाये जानेवाले गुणस्थानों की रचना करना । पुनश्च स्थितिबंध के कथन में भी नाम के आदि अक्षररूप और प्रकृति आदि के प्रमाण के अंकरूप सुगम रचना तो अपनी बुद्धि से जानना ।

ज्ञानावरणादि मूलप्रकृतियों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति ऐसी –

नाम	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
ज्ञानावरण	सा३०को२	२मु
दर्शनावरण	सा३०को२	२मु
वेदनीय	सा३०को२	मु१२
मोहनीय	सा७०को२	२मु
आयु	सा३३	मु१
नाम	सा२०को२	मु८
गोत्र	सा२०को२	मु८
अंतराय	सा३०को२	२मु

यहां सागर की संदृष्टि **सा**, कोडाकोडी की **को२**, अंतर्मुहूर्त की **२मु**, मुहूर्त की **मु** जानना । इसीतरह उत्तरप्रकृतियों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कथन के अनुसार जान कर रचना जानना । पुनश्च उत्कृष्ट, ईषत्, मध्यम संक्लेश परिणामों के स्वरूप में उत्कृष्ट कर्मस्थिति सत्तर कोडाकोडी सागर अर्थात् दो बार संख्यात गुणित पल्यमात्र

ऐसी **पनृनृ**, जघन्यस्थिति अंत:कोडाकोडी सागर जो संख्यात पल्यमात्र **पनृ** है । उत्कृष्ट में से जघन्य घटाने के लिये दोनों में **पनृ** समान देखकर आगे के संख्यात के गुणकार में से एक घटानेपर ऐसा $\text{पनृ}^{\overline{१८}}$; इसमें एक जोड़नेपर समस्त स्थितिभेदों का प्रमाण ऐसा $\text{पनृ}^{\frac{१}{\overline{१८}}}$ होता है । पुनश्च एक-एक स्थितिसंबंधी असंख्यातलोकमात्र परिणाम ऐसे ≡ə उनकी रचना ऐसी –

स्थिति के भेद $\text{पनृ}^{\frac{१}{\overline{१८}}}$

उत्कृष्ट स्थिति	मध्यम भेद	जघन्य स्थिति
पनृनृ	oooo	पनृ
≡ə	≡ə ≡ə ≡ə ≡ə	≡ə

यहां स्थिति की संदृष्टि ऐसी △ जानना । यहां जघन्य स्थिति से लेकर एक-एक समय अधिक मध्यम भेद होते हैं । ऊपर तीन, दो, एक कम उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति तक ऊर्ध्वगच्छ होता है । एक-एक स्थिति में असंख्यातलोकमात्र परिणाम और उन परिणामों में पल्य के असंख्यातवें भागमात्र अनुकृष्टिखण्डों की रचना जैसे अध:करण में अंकसंदृष्टिपूर्वक विधान कहा है, वैसे यहां भी जानना । वहां प्रथम-प्रथम खण्ड की ईषत् संज्ञा है, मध्य खण्डों की मध्य संज्ञा है, अंतिम खण्ड की उत्कृष्ट संज्ञा है । उनकी रचना अंकसंदृष्टि की तो अध:करणवत् टीका से जानना और अनुकृष्टिरूप तिर्यक्गच्छ की अपनी बुद्धि से यथासंभव जानना । तथा अर्थसंदृष्टिरूप ऊर्ध्वगच्छ की ऐसी जानना –

स्थितिभेद	परिणाम
उ $पत्यx$	$\equiv ə$
$\frac{१८}{पत्यx}$	$\equiv ə$
$\frac{२८}{पत्यx}$	$\equiv ə$
$\frac{३८}{पत्यx}$	$\equiv ə$
०००	०००
०००	०००
$\frac{३}{पत्य}$	$\equiv ə$
$\frac{२}{पत्य}$	$\equiv ə$
$\frac{१}{पत्य}$	$\equiv ə$
ज $पत्य$	$\equiv ə$

$\left[\frac{१}{पत्यx^{\frac{१}{८}}} \text{ कुलस्थितिभेद} \right]$

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, पच्चीस, पचास, सौ, हजार सागर प्रमाण है । इस उत्कृष्ट स्थिति में से एक-एक कम असंख्यात भाजित पल्य तथा चार, तीन, दो, एकबार संख्यात भाजित पल्य को घटानेपर क्रम से जघन्य स्थिति होती है । तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागर और जघन्य अंत:कोडाकोडी सागर स्थिति है । उनकी रचना ऐसी —

नाम	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय	संज्ञी पंचेन्द्रिय
उत्कृष्ट स्थिति	सा१	सा२५	सा५०	सा१००	सा१०००	सा७० को२
जघन्य स्थिति	सा१ $\frac{१८}{\frac{प}{७}}$)	सा२५ $\frac{१८}{प}$) नृनृनृ	सा५० $\frac{१८}{प}$) नृनृ	सा१०० $\frac{१८}{प}$) नृ	सा१००० $\frac{१८}{प}$) नृ	अं.को.२

यहां जघन्य स्थिति में ऊपर स्थिति का प्रमाण लिखकर नीचे घटाने योग्य राशि की ऐसी) संदृष्टि जानना । अन्य सुगम है ।

[*विशेषार्थ :*

उत्कृष्ट स्थिति – जघन्य स्थिति + १ = स्थिति के भेद ।

एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व के स्थिति के भेद $\text{सा} - \left(\text{सा} - \frac{१८}{\frac{प}{७}}\right) + १;$

$= \cancel{\text{सा}} - \cancel{\text{सा}} + \frac{१८}{\frac{प}{७}} + १$

$= \frac{प}{७} - \cancel{१} + \cancel{१}$

$= \frac{प}{७}$]

पुनश्च सत्तर कोडाकोडी सागर को प्रमाणराशि करके, अपनी-अपनी मिथ्यात्व की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति को फलराशि करके; चालीस, तीस, बीस कोडाकोडी सागर को इच्छाराशि करनेपर लब्धराशि उस मिथ्यात्व की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति को सात का भाग देकर क्रम से चार, तीन, दो से गुणा करनेपर जो हो, उतनी चालीस, तीस, बीस कोडाकोडी सागर मात्र उत्कृष्ट स्थितिधारक कर्मों की एकेन्द्रियादि की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति जानना । उसकी रचना ऐसी –

स्थिति	कर्म	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय
उत्कृष्ट	चालीसीय	सा ४ ७	सा२५ ४ ७	सा५० ४ ७	सा१०० ४ ७	सा१००० ४ ७
उत्कृष्ट	तिसीय	सा ३ ७	सा२५ ३ ७	सा५० ३ ७	सा१०० ३ ७	सा१००० ३ ७
उत्कृष्ट	बिसीय	सा २ ७	सा२५ २ ७	सा५० २ ७	सा१०० २ ७	सा१००० २ ७
जघन्य	चालीसीय	सा ४ $\frac{१ ∩}{प}$ ७) ७	सा२५ ४ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा५० ४ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा१०० ४ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा१००० ४ $\frac{१ ∩}{प}$) ७
जघन्य	तिसीय	सा ३ $\frac{१ ∩}{प}$ ७) ७	सा२५ ३ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा५० ३ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा१०० ३ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा१००० ३ $\frac{१ ∩}{प}$) ७
जघन्य	बिसीय	सा २ $\frac{१ ∩}{प}$ ७) ७	सा२५ २ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा५० २ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा१०० २ $\frac{१ ∩}{प}$) ७	सा१००० २ $\frac{१ ∩}{प}$) ७

ऐसे ही अन्य स्थितियुक्त कर्मप्रकृतियों की जानना ।

पुनश्च अंतर्मुहूर्त ऐसा **२ृ**, इसको एक, पच्चीस, पचास, सौ, हजार से गुणा करनेपर क्रम से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय की जघन्य आबाधा होती है । संज्ञी की दो बार संख्यात से गुणित आवली ऐसी **२ृृ** है । इस जघन्य आबाधा के ऊपर एकेन्द्रिय के आवली का असंख्यातवां भाग $\frac{२}{०}$ अधिक करनेपर उत्कृष्ट आबाधा होती है । द्वीन्द्रियादि के क्रम से चार, तीन, दो, एक बार संख्यात भाजित आवली अधिक करनेपर तथा संज्ञी के जघन्य को संख्यात की संदृष्टि चार से गुणा करनेपर उत्कृष्ट आबाधा होती है । उत्कृष्ट में से जघन्य घटाकर एक

जोड़ने से आबाधा के भेदों का प्रमाण आता है । सो एकेन्द्रियादि के अधिक की हुयी राशि से एक-एक अधिक मात्र आबाधा के भेद हैं तथा संज्ञी के एक कम संख्यात गुणित जघन्य स्थिति से एक अधिक मात्र सर्व आबाधा के भेदों का प्रमाण जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	उत्कृष्ट आबाधा	जघन्य आबाधा	आबाधा के भेद
संज्ञी पंचेन्द्रिय	२नृनृ४	२नृनृ	$\frac{१}{\frac{१८}{२नृनृ४}}$
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	२नृ१००० + २ नृ	२नृ१०००	$\frac{१}{२}$ नृ
चतुरिन्द्रिय	२नृ१०० + २ नृनृ	२नृ१००	$\frac{१}{२}$ नृनृ
त्रीन्द्रिय	२नृ५० + २ नृनृनृ	२नृ५०	$\frac{१}{२}$ नृनृनृ
द्वीन्द्रिय	२नृ२५ + २ नृनृनृ	२नृ२५	$\frac{१}{२}$ नृनृनृनृ
एकेन्द्रिय	२नृ + २ ə	२नृ१	$\frac{१}{२}$ ə

[*मूल में असंज्ञी की उत्कृष्ट आबाधा ऐसी* $२^{२}_{नृ}$ *१०००* *चतुरिन्द्रिय की* $२^{२}_{नृनृ}$ *१००,*

त्रीन्द्रिय की $२^{२}_{नृनृनृ}$ *५०, द्वीन्द्रिय की* $२^{२}_{नृनृनृनृ}$ *२५, एकेन्द्रिय की* $२^{२}_{ज}$ *१ लिखी है । संज्ञी*

के आबाधा के भेद $= २नृ४ - २नृ + १ = २नृ^{१०}_{४} + १ = २नृ^{१}_{१०}_{४}$ *जो ऊपर लिखा है ।*]

पुनश्च जघन्य स्थिति साधने के लिये *(प्रमाण लाने के लिये)* करणसूत्र द्वारा साधते हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: जघन्य स्थिति जानने के लिये निम्नप्रकार से साधना –*

(१) आबाधाकांडक = उत्कृष्ट स्थिति ÷ उत्कृष्ट आबाधा

(२) स्थिति के भेद = आबाधाकांडक × आबाधा के भेद

(३) जघन्य स्थिति = उत्कृष्ट स्थिति – (स्थितिभेद–१)]

एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा ऐसी $२^{२}_{ज}$ *नृ* यहां अधिक राशि में भाज्य और मूलराशि में गुणकार आवली को देखकर एक के असंख्यातवें भाग को मूलराशि के गुणकार के ऊपर किंचित् अधिक की संदृष्टि करनेपर ऐसा $२^{।}_{नृ}$ ।

[***विशेषार्थ*** *:* $२नृ + ^{२}_{ज}$ *यहां २ समान है ∴ गुणकार नृ के ऊपर* $^{१}_{ज}$ *अधिक*

करनेपर $२^{१}_{नृ}$ *होगा उसीको* $२^{।}_{नृ}$ *ऐसा लिखा है ।*]

एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर अर्थात् दो बार संख्यात से गुणित पल्यमात्र ऐसी **पसं**, उसको उत्कृष्ट आबाधा **२सं** का भाग देनेपर आबाधाकांडक का प्रमाण ऐसा $\frac{\text{पसं}}{\text{२सं}}$; इसको आबाधा के भेद ऐसे $\frac{१}{२^{\text{प}}_{\text{ज}}}$ उनसे गुणा करनेपर ऐसा – $\frac{\text{पसंसं}}{\text{२सं}}$ । $\frac{१}{२^{\text{प}}_{\text{ज}}}$ अपवर्तन करनेपर *(स्थिति के भेद)* पल्य के असंख्यातवें भाग ऐसे $\text{प}_{\text{ज}}$, इसमें से एक घटाकर $\frac{१^{\text{प}}_{\text{ज}}}{२}$, इसको उत्कृष्ट स्थिति **सा** में से घटानेपर एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति ऐसी $\text{सा} - \left(\frac{१^{\text{प}}_{\text{ज}}}{२}\right)$ । इसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर एक जोड़नेपर $\left[\text{सा} - \text{सा} - \frac{१^{\text{प}}_{\text{ज}}}{२} + १\right]$ सर्व स्थिति भेदों का प्रमाण $\text{प}_{\text{ज}}$ होता है ।

इसीतरह द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट आबाधा ऐसी $\frac{२}{\text{संसंसं}}$ अपवर्तन करनेपर ऐसी $\text{२सं}_{२५}$; इससे भाजित उत्कृष्ट स्थितिमात्र आबाधाकांडक ऐसा $\frac{\text{सा}_{२५}}{\text{२सं}_{२५}}$; अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{सा}}{\text{२सं}}$ । इसको आबाधा के भेद ऐसे $\frac{१}{२^{\text{संसंसं}}}$ उससे गुणा करनेपर

ऐसा $\underset{२नृ}{सा}\frac{१}{२}$ अपवर्तन करनेपर [**सा = संख्यातपल्य**] ऐसा $\underset{नृनृनृ}{प}$ इन *(स्थिति के भेदों)* में से एक घटाकर उसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटानेपर जघन्य स्थिति ऐसी $सा२५\left(\frac{१८}{प}\right)_{नृनृनृ}$ । इसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर, अवशेष में एक जोड़नेपर सर्व स्थितिभेदों का प्रमाण ऐसा $\underset{नृनृनृ}{प}$ होता है ।

पुनश्च त्रीन्द्रिय की उत्कृष्ट आबाधा ऐसी $\frac{२}{२नृ५०}$ अर्थात् $२\underset{।}{नृ}५०$ इससे भाजित उत्कृष्ट स्थितिमात्र आबाधाकांडक ऐसा $\underset{२नृ५०}{सा५०}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\underset{२नृ}{सा}$ होता है । इसको आबाधा के भेद ऐसे $\frac{१}{२}_{नृनृ}$, उससे गुणा करनेपर ऐसा $\underset{२नृ}{सा}\frac{१}{२}_{नृनृ}$ अपवर्तन करनेपर [**सा = संख्यातपल्य**] ऐसा $\underset{नृनृ}{प}$ । इसमें से एक घटाकर इसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटानेपर जघन्य स्थिति ऐसी है $सा५०\left(\frac{१८}{प}\right)_{नृनृ}$ । इसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर, अवशेष में एक जोड़नेपर सर्व स्थितिभेदों का प्रमाण ऐसा $\underset{नृनृ}{प}$ होता है ।

पुनश्च चतुरिन्द्रिय की उत्कृष्ट आबाधा ऐसी $\frac{२}{२नृ१००}$ अर्थात् $२\underset{।}{नृ}१००$ ।

इससे भाजित उत्कृष्ट स्थिति मात्र आबाधाकांडक ऐसा $\frac{\text{सा}\,१००}{२\text{नि}\,१००}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{सा}}{२\text{नि}}$ । इसको आबाधाभेदों से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{\text{सा}\,\frac{१}{२}}{२\text{नि}\;\text{नि}}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{प}}{\text{नि}\,\text{नि}}$ । इसमें से एक घटाकर इसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटानेपर जघन्य स्थिति ऐसी $\text{सा}\,१०० - \left(\frac{१ \cap}{\text{प}}\right)$ । इसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर एक जोड़नेपर सर्व स्थितिभेदों का प्रमाण ऐसा $\frac{\text{प}}{\text{नि}\,\text{नि}}$ होता है ।

पुनश्च असंज्ञी पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट आबाधा ऐसी $\frac{२}{२\text{नि}\,१०००}$ अर्थात् $२\text{नि}\,१०००$ इससे भाजित उत्कृष्ट स्थितिमात्र आबाधाकांडक ऐसा $\frac{\text{सा}\,१०००}{२\text{नि}\,१०००}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{सा}}{२\text{नि}}$ । इसको आबाधाभेदों से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{\text{सा}\,\frac{१}{२}}{२\text{नि}\;\text{नि}}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{प}}{\text{नि}}$ इसमें से एक घटाकर, अवशेष को उत्कृष्ट स्थिति में से घटानेपर जघन्य स्थिति ऐसी $\text{सा}\,१००० - \left(\frac{१ \cap}{\text{प}}\right)$ । इसको उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर एक जोड़नेपर सर्व स्थितिभेदों का प्रमाण ऐसा $\frac{\text{प}}{\text{नि}}$ होता है । ऐसा यह कथन किया उसको अंकसंदृष्टि द्वारा कहते हैं । उसका यंत्र –

स्थितिभेद	६४	६३	६२	६१	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५
उदयकाल	४८	४७	४६	४५	४५	४४	४३	४२	४२	४१	४०	३९	३९	३८	३७	३६	३६	३५	३४	३३
आबाधाकाल	१६	१६	१६	१६	१५	१५	१५	१५	१४	१४	१४	१४	१३	१३	१३	१३	१२	१२	१२	१२
आबाधाकांडक	४				४				४				४				४			

यहां ऊपर की पंक्ति में चौंसठ समय आदि एक-एक घटते हुये पैंतालीस समय तक बीस स्थितिभेद लिखे, वहां स्थिति *(निषेकों का प्रमाण = उदयकाल)* की संदृष्टि ऐसी की △ । वहां नीचे की सीधी *(ऊभी)* लकीर के पास सोलह समय आदि आबाधाकाल लिखा है । स्थिति में से आबाधाकाल घटानेपर अवशेष निषेकों का प्रमाण ऐसी △ संदृष्टि के बीच में लिखा है । चार-चार स्थितिभेदों में एकसी आबाधा पायी जाती है, इसलिए आबाधाकांडक नीचे चार-चार लिखा है ।

सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाणराशि करके, अपनी-अपनी मिथ्यात्व की उत्कृष्ट, जघन्य स्थिति फलराशि करके, चालीस, तीस, बीस कोडाकोडी सागर इच्छाराशि करनेपर लब्धराशिमात्र चालीसियादि की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति होती है । त्रैराशिक में प्रमाण, फल, इच्छा की संदृष्टि सुगम है और लब्धराशि मात्र स्थिति का कथन है । यहां भी त्रैराशिक दिखाने के लिए रचना कहते हैं –

[विशेषार्थ :

	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय
∵ सा७० को२	सा१ प १८ ९	सा२५ प १८ नृनृनृ	सा५० प १८ नृनृ	सा१०० प १८ नृ	सा१००० प १८ नृ
∴ सा३० को२	सा ३ प १८ ९ ७	सा२५ ३ प १८ नृनृनृ ७	सा५० ३ प १८ नृनृ ७	सा१०० ३ प १८ नृ ७	सा१००० ३ प १८ नृ ७

]

पुनश्च एकेन्द्रियों के स्थितिभेदों का प्रमाण पूर्वोक्त ऐसा –

नाम	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय	संज्ञी पंचेन्द्रिय
प्रमाण	$\frac{प}{७}$	$\frac{प}{नानानाना}$	$\frac{प}{नानाना}$	$\frac{प}{नाना}$	$\frac{प}{ना}$	$\frac{१}{\frac{१८}{पनाना}}$

इनमें से एकेन्द्रियों में बादर पर्याप्त का उत्कृष्ट, सूक्ष्म पर्याप्त का उत्कृष्ट, बादर अपर्याप्त का उत्कृष्ट, सूक्ष्म अपर्याप्त का उत्कृष्ट, सूक्ष्म अपर्याप्त का जघन्य, बादर अपर्याप्त का जघन्य, सूक्ष्म पर्याप्त का जघन्य, बादर पर्याप्त का जघन्य स्थितिबंधरूप आठ स्थान हैं । उनके बीच सात अंतरालों में संख्यात की संदृष्टि दो का अंक करनेपर क्रम से एक सौ छानबे, अट्ठाइस, चार, एक, दो, चौदह, अट्ठानबे शलाकाओं का प्रमाण होता है । सर्व शलाकाओं को जोड़नेपर तीन सौ तैंतालीस शलाकाओं का प्रमाण होता है । इसका भाग एकेन्द्रिय के स्थितिभेद ऐसे $\frac{प}{७}$ को देकर अपनी-अपनी शलाका के प्रमाण से गुणा करके अंतरालों में स्थितिभेदों का प्रमाण आता है ।

इसीतरह आबाधाकाल के भेदों का प्रमाण $\frac{१}{\frac{२}{७}}$ को तीन सौ तैंतालीस का भाग देकर अपनी अपनी शलाका से गुणा करनेपर अंतरालों में आबाधाभेदों का प्रमाण आता है । बीच अंतरालों में स्थिति और आबाधा के भेदों का प्रमाण जानना ।

इसतरह बादर पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागर और आगे आठ स्थानों में एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग $\frac{१८}{\frac{प}{७}}$ को तीन सौ तैंतालीस का भाग देकर क्रम से एक सौ छानबे, दौ सौ चौबीस, दो सौ अट्ठाइस, दो सौ उनतीस, दो सौ इकतीस, दो सौ पैंतालीस, तीन सौ तैंतालीस से गुणा करनेपर जो जो प्रमाण हो, उसको सागर में से घटानेपर अपना-अपना स्थितिबंध का प्रमाण होता है । यहां पहले एक सौ छानबे से गुणा किया पश्चात् उसमें अट्ठाइस मिलाकर दो सौ चौबीस से गुणा

किया, ऐसे ही पूर्व-पूर्व शलाकाओं का प्रमाण मिलाकर गुणकार का प्रमाण जानना ।

[*विशेषार्थ :*

बा प उ ——— सा

१९६ अंतराल प १९६ / ə ३४३

सू प उ ——— सा $\frac{१ \cap}{प\ १९६ \quad ə\ ३४३}$

२८ अंतराल

बा अ उ ——— सा $\frac{१ \cap}{प\ १९६ \quad ə\ ३४३}$ $\frac{१ \cap}{प\ २८ \quad ə\ ३४३}$ ⟶ सा $\frac{१ \cap}{प\ २२४ \quad ə\ ३४३}$

४ अंतराल

सू अ उ ——— सा $\frac{१ \cap}{प\ २२८ \quad ə\ ३४३}$

१ अंतराल

सू अ ज ——— सा $\frac{१ \cap}{प\ २२९ \quad ə\ ३४३}$

२ अंतराल

बा अ ज ——— सा $\frac{१ \cap}{प\ २३१ \quad ə\ ३४३}$

१४ अंतराल

सू प ज ——— सा $\frac{१ \cap}{प\ २४५ \quad ə\ ३४३}$

९८ अंतराल

बा प ज ——— सा $\frac{१ \cap}{प\ ३४३ \quad ə\ ३४३}$]

नाम	बा प उ	सू प उ	बा अ उ	सू अ उ	सू अ ज	बा अ ज	सू प ज	बा प ज	
स्थितिभेद प्रमाण	सा १	प १९६ / ७ ३४३	प २८ / ७ ३४३	प ४ / ७ ३४३	प १ / ७ ३४३	प २ / ७ ३४३	प १४ / ७ ३४३	प ९८ / ७ ३४३	सा १ / (१८ / प / ७)
आबाधाभेद प्रमाण	२ / ७ / २१	१ / २ १९६ / ७ ३४३	१ / २ २८ / ७ ३४३	१ / २ ४ / ७ ३४३	१ / २ १ / ७ ३४३	१ / २ २ / ७ ३४३	१ / २ १४ / ७ ३४३	१ / २ ९८ / ७ ३४३	२१
स्थितिबंध प्रमाण	सा १	सा १ / (१ / १८) / प १९६ / ७ ३४३	सा १ / (१ / १८) / प २२४ / ७ ३४३	सा १ / (१ / १८) / प २२८ / ७ ३४३	सा १ / (१ / १८) / प २२९ / ७ ३४३	सा १ / (१ / १८) / प २३१ / ७ ३४३	सा १ / (१ / १८) / प २४५ / ७ ३४३	सा १ / (१ / १८) / प ३४३ / ७ ३४३	

यहां ऊपर बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, उत्कृष्ट-जघन्य के आदि अक्षररूप संदृष्टि से नाम जानना । नीचे यहां स्थिति का कथन है इसलिए △ संदृष्टि जानना । वहां बीच-अंतराल में स्थितिभेदों का प्रमाण जानना तथा नीचे आबाधाभेदों का प्रमाण जानना । आदिअंत में उत्कृष्ट-जघन्य स्थिति का और आबाधा का प्रमाण जानना । नीचे आठों स्थानों में स्थितिबंध का प्रमाण जानना ।

इसीतरह द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के प्रत्येक के पर्याप्त के उत्कृष्ट, अपर्याप्त के उत्कृष्ट, अपर्याप्त के जघन्य, पर्याप्त के जघन्य स्थितिबंधरूप चार-चार स्थान हैं । उनके तीन अंतरालों की क्रम से चार, एक, दो शलाका हैं, मिलकर सात हुयी, उसका भाग अपने अपने स्थितिभेद प्रमाण, जो क्रम से चार, तीन, दो, एक बार संख्यात से भाजित पल्य है उसको, तथा आबाधाभेद प्रमाण एक-एक अधिक क्रम से चार, तीन, दो, एक बार संख्यात से भाजित आवलीमात्र है उसको, देकर अपनी अपनी शलाका के प्रमाण से गुणा करनेपर अंतराल में स्थितिभेदों का तथा आबाधाभेदों का प्रमाण आता है ।

पुनश्च संज्ञी पंचेन्द्रिय में पर्याप्त के उत्कृष्ट, अपर्याप्त के उत्कृष्ट, अपर्याप्त के जघन्य, पर्याप्त के जघन्य स्थितिरूप स्थान, उनके तीन अंतरालों में स्थितिभेद पूर्वोक्त

$\frac{१}{१८}$
ऐसे $पृ^{\frac{१}{१८}}$, इनको संख्यात की संदृष्टि पांच का अंक, उसका भाग देकर बहुभागमात्र प्रथम अंतराल में, अवशेष को उसीका भाग देकर बहुभागमात्र दूसरे अंतराल में और एकभाग तीसरे अंतराल में स्थितिभेदों का प्रमाण जानना ।

[***विशेषार्थ :***

पंचेन्द्रिय **प.उ. ७०** *कोडाकोडी सागर* $पृ^{\frac{१}{१८}}$

पंचेन्द्रिय **प.ज.** *अंत:कोडाकोडीसागर* **प**

सभी भेद $पृ^{\frac{१}{१८}} - प + १ = पृ^{\frac{१}{१८}}$ *बहुभाग* $पृ^{\frac{१}{१८}} \frac{४}{५}$

शेष एकभाग का बहुभाग $पृ^{\frac{१}{१८}} \frac{४}{५५}$]

इसीतरह आबाधाभेदों में उत्कृष्ट आबाधा तीन बार संख्यात गुणित आवलीमात्र, जघन्य आबाधा दो बार संख्यात गुणित आवलीमात्र, वहां उत्कृष्ट में से जघन्य घटाकर एक जोड़नेपर आबाधाभेद ऐसे $२पृ^{\frac{१}{१८}}$ । उनका विधान करनेपर आबाधाभेदों का प्रमाण जानना ।

पुनश्च चारों स्थानों में जघन्य स्थिति से लेकर संख्यातगुणा-संख्यातगुणा स्थितिबंध का प्रमाण होता है । उनकी रचना पूर्वोक्त प्रमाण ऐसी जानना –

संज्ञी पंचेन्द्रिय

नाम	प उ	अ उ	अ ज	प ज
स्थितिभेद प्रमाण	सा ७० को २	१ / १८ पपृपृ ४/५	१ / १८ पपृपृ ४/५|५	१ / १८ पपृपृ १/५|५	सा अं को २
आबाधाभेद प्रमाण	वर्ष ७००० अर्थात् २पृपृ	१ / १८ २पृपृपृ ४/५	१ / १८ २पृपृपृ ४/५|५	१ / १८ २पृपृपृ १/५|५	२पृपृ
स्थितिबंध प्रमाण	पपृपृ	पपृ ५|५	पपृ ५	पपृ

पुनश्च आबाधा के कथन में संज्ञी की एक कोडाकोडी सागर की सौ वर्ष आबाधा होती है, तो सत्तर कोडाकोडी सागर की कितनी होगी ? ऐसा त्रैराशिक करना । इसीतरह अन्य का साधन करना ।

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध ७० सा.को२ की
सा१को२	व१००	सा७०को२	वर्ष७०००आबाधा

द्वीन्द्रिय के प्रमाणराशि पच्चीस सागर, फलराशि उसकी उत्कृष्ट आबाधामात्र, इच्छाराशि पच्चीस सागर का चार बटे सात (*चार सप्तमांश*) भागमात्र करनेपर लब्धराशि द्वीन्द्रिय के चालीसिया की आबाधा का प्रमाण आता है । इसीतरह अन्य साधन करना ।

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
सा२५	२ गु गु गु / २ गु २५	सा२५ ४ ७	२ गु गु गु / २ गु २५ ४ ७

पुनश्च अंत:कोडाकोडी सागर की आबाधा अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसी **२गु**, उसके संख्यातवें भाग जघन्य स्थिति की ऐसी **२गु** । आयुकर्म की आबाधा जघन्य तो अंतर्मुहूर्त अथवा ४ आवली का असंख्यातवां भागमात्र ऐसा – जघन्य **२गु** अथवा २ । आयुकर्म की ७ उत्कृष्ट आबाधा पूर्व कोटी वर्ष के तीसरा भागमात्र जानना – उत्कृष्ट पू.को.व १ । ३

पुनश्च उदीरणा की अपेक्षा सात कर्मों की आबाधा आवलीमात्र **२** है । उदीरणा में रचना ऐसी होती है –

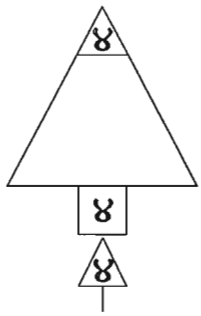

यहां नीचे तो उदीरणायोग्य नहीं है ऐसी आबाधारूप अचलावली की संदृष्टि ऐसी | है । उदीरणा में अपकर्षण किया हुआ द्रव्य उसमें आवली काल में उदय आनेयोग्यरूप उदयावली की ऐसी □, अपकर्षण किया हुआ द्रव्य उदयावली से ऊपर उपरितन स्थिति में दिया, उनके निषेकों की क्रमहीनरूप ऐसी △ । ऊपर अपकर्षण किया हुआ द्रव्य जहां नहीं दिया जाता ऐसी अतिस्थापनावली की ऐसी △ संदृष्टि जानना । आवली की संदृष्टि चार का अंक जानना ।

पुनश्च **अनुभागबंध** के कथन में घातिकर्मों के स्पर्धक लता, दारु, अस्थि, शैल चार प्रकार के अनुभागवाले हैं । वहां लताभाग से लेकर दारुभाग का अनंतवां भाग **दा** तक देशघाति हैं । दारु का अनंत बहुभाग ऐसा **दा** १८ वहां से लेकर शैल तक **ख** **ख**

सर्वघाति हैं । वहां मिथ्यात्व के बारे में विशेष ऐसा है कि लता से लेकर दारु के अनंतवें भाग तक के स्पर्धक तो सम्यक्त्वप्रकृतिरूप हैं । तथा दारु के अनंत बहुभाग के अनंतवें भागरूप स्पर्धक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिरूप हैं । दारु के अनंत बहुभाग का बहुभागरूप और अस्थि-शैलरूप स्पर्धक मिथ्यात्व प्रकृतिरूप हैं । पुनश्च शक्ति से एक गुणहानि में स्पर्धकशलाका की संदृष्टि नौ का अंक ऐसा **९**, उसको नानागुणहानि से गुणा करनेपर ऐसी **९ ना**, इसको अनंत का भाग देकर बहुभाग-बहुभाग मात्र शैल, अस्थि, दारुरूप हैं । एकभागमात्र लतारूप है । उनकी रचना ऐसी जानना –

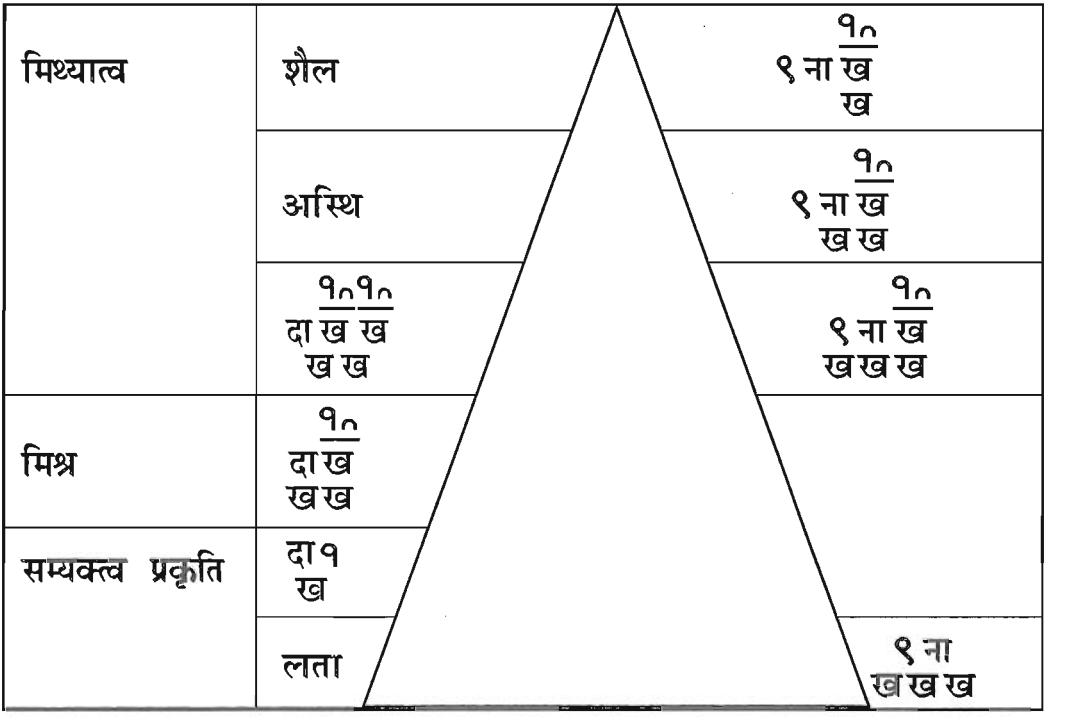

पुनश्च मति आदि चार ज्ञानावरण, चक्षु आदि तीन दर्शनावरण, पांच अंतराय, चार संज्वलन, पुरुषवेद ये सत्रह प्रकृतियां तो शैल आदि चाररूप वा शैल बिना तीन रूप वा दारु, लता दोरूप वा लतारूप इसतरह चार प्रकार से प्रवर्तती हैं । अवशेष प्रकृतियां तीनरूप प्रवर्तती हैं । मिथ्यात्व में विशेष है कि मिथ्यात्व प्रकृति तो शैल आदि तीनरूप वा शैल बिना दोरूप वा दारुरूप इन तीन प्रकार से प्रवर्तती है और सम्यक्त्वप्रकृति

दारुलतारूप वा लतारूप ही प्रवर्तती है तथा सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) प्रकृति केवल दारुरूप ही है ।

अन्य प्रकृतियों में केवलज्ञानावरण एक, दर्शनावरण छह (*केवलदर्शनावरण और पांच निद्रा*), कषाय बारह (*संज्वलन बिना*) — ये उन्नीस प्रकृतियां सर्वघाति ही हैं, इसलिए इनमें लताभाग का अभाव है; इसलिए शैलादि तीनरूप व शैलबिना दोरूप वा दारुरूप प्रवर्तती हैं । पुनश्च आठ नोकषाय केवल लतारूप नहीं प्रवर्तती हैं इसलिए शैलादि तीनरूप वा शैलबिना तीनरूप वा दारुलता दोरूप प्रवर्तती हैं ।

अघातिकर्मों में प्रशस्त प्रकृतियां बयालीस, उनका अनुभाग गुड, खांड, शर्करा, अमृत चार प्रकार का है । वह चारोंरूप वा अमृत बिना तीनरूप वा गुड, खांड दोरूप इसतरह तीन प्रकार से प्रवर्तती हैं । अप्रशस्त प्रकृतियां सैंतीस, उनका अनुभाग निंब (नीम), कांजीर, विष, हलाहल रूप चार प्रकार का है । वहां उन चारोंरूप वा हलाहल बिना तीनरूप वा निंब, कांजीर दोरूप प्रवर्तती हैं । इसतरह इन अनुभागों का प्रवर्तना यथासंभव गुणस्थानों में जानना ।

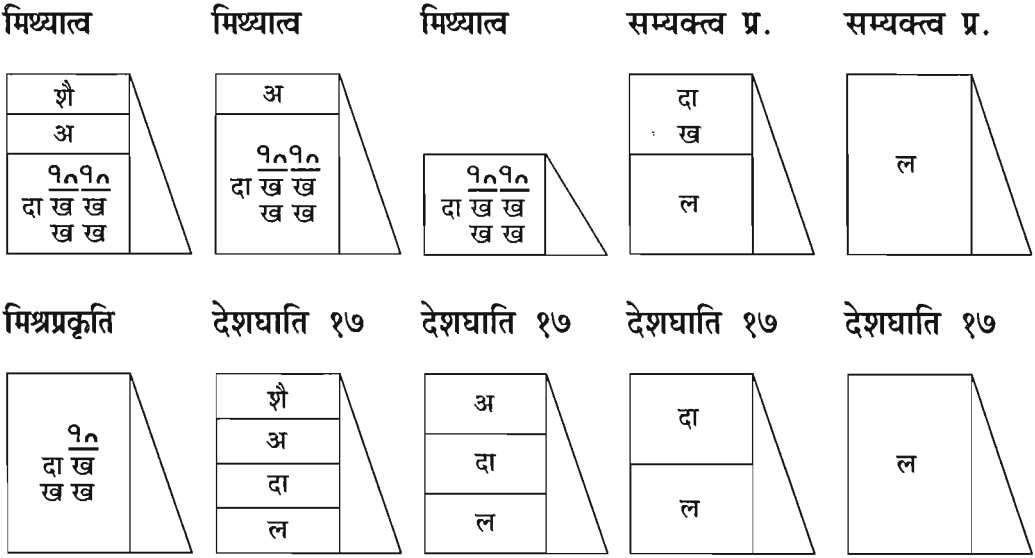

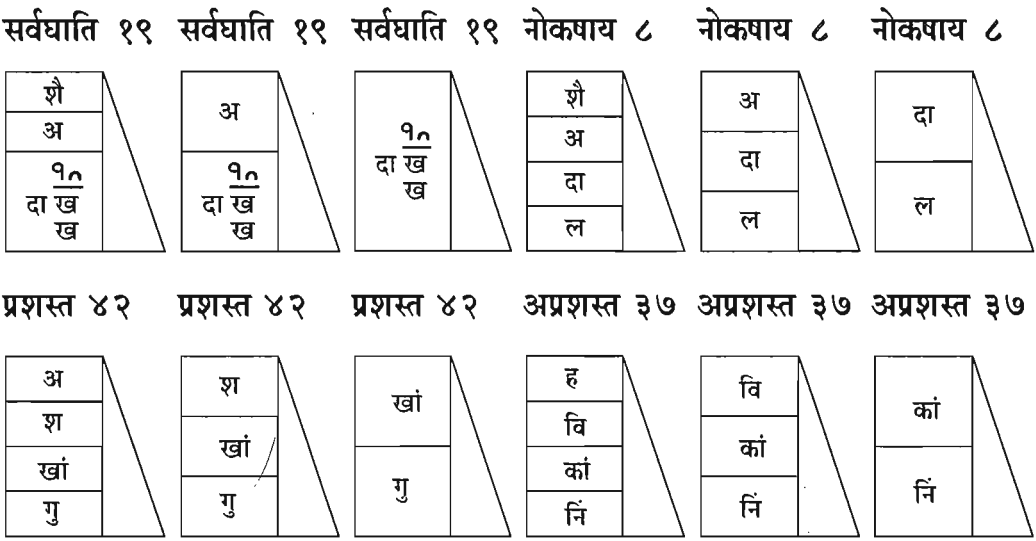

यहां नाम के आदि अक्षररूप संदृष्टि जानना । शैलादि से लेकर क्रम से गुणहानि और निषेकों में परमाणुरूप द्रव्य का प्रमाण अधिकरूप है, इसलिए शैलादि रचना के आगे ऐसी ◺ संदृष्टि क्रम अधिकरूप जानना ।

पुनश्च **प्रदेशबंध** के कथन में एक शरीर द्वारा रोका हुआ पल्य के असंख्यातवें भाग से भाजित घनांगुलमात्र एकक्षेत्र ऐसा $\frac{\text{ए}}{\text{प}}$; इसको लोक ≡ में से घटाकर एक

जोड़नेपर उसके भेद ऐसे $\equiv - \frac{\text{ए}}{\text{प}}$ । यहां लोक के आगे घटाने की ऐसी – संदृष्टि लिखी, उसके आगे ऋणराशि लिखी है । पुनश्च एकक्षेत्र को लोक में से घटानेपर अनेकक्षेत्र ऐसा $\equiv - \frac{\text{ए}}{\text{प}}$ । यहां भी वैसी ही संदृष्टि जानना ।

पुनश्च प्रमाणराशि लोक, फलराशि पुद्गलराशि, इच्छाराशि अपना-अपना क्षेत्र करनेपर लब्धमात्र अपने-अपने क्षेत्र संबंधी रूपी द्रव्य होता है -

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
≡	१६ख	६ एकक्षेत्र प ə	१६ख | ६ एकक्षेत्र का द्रव्य ≡ प ə
≡	१६ख	≡ − ६ अनेकक्षेत्र प ə	१६ख | ≡ − ६ अनेकक्षेत्र का द्रव्य ≡ प ə

पुनश्च अपने-अपने द्रव्य को अनंत ऐसा **ख**, उसका भाग देकर एक से गुणा करनेपर कर्मरूप होने योग्य योग्यद्रव्य होता है । एक कम अनंत ऐसा $\frac{१ə}{ख}$, उससे गुणा करनेपर कर्मरूप न होने योग्य अयोग्यद्रव्य होता है । उत्कृष्ट समयप्रबद्ध ऐसा **स३२** है । इसको अतीत काल से गुणा करनेपर एक जीव द्वारा ग्रहण किया हुआ द्रव्य ऐसा **स३२अ** । इसको सर्व जीवराशि से गुणा करनेपर सर्व जीवों द्वारा ग्रहण किया हुआ सादिद्रव्य ऐसा **स३२अ१६** होता है । पुनश्च प्रमाणराशि लोक, फलराशि सादिद्रव्य, इच्छाराशि एकक्षेत्र और अनेकक्षेत्र करनेपर लब्धमात्र एकक्षेत्र-अनेकक्षेत्र संबंधी सादिद्रव्य होता है —

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
≡	स३२अ१६	६ प ə	स३२अ१६ | ६ एकक्षेत्र सादिद्रव्य ≡ प ə
≡	स३२अ१६	≡ − ६ प ə	स३२अ१६ | ≡ − ६ अनेकक्षेत्र सादिद्रव्य ≡ प ə

अपने अपने सादिद्रव्य को अनंत का भाग देकर एक से गुणा करनेपर अपने-

अपने क्षेत्र संबंधी योग्य सादिद्रव्य होता है; एक कम अनंत से गुणा करनेपर अयोग्य सादिद्रव्य होता है ।

[***विशेषार्थ*** : *एकक्षेत्रसंबंधी योग्य सादिद्रव्य* $\begin{matrix} \text{स}३२\,\text{अ}१६ \mid ६ \\ \text{ख} \equiv \quad\; \text{प} \\ \quad\quad\; ə \end{matrix}$;

एकक्षेत्रसंबंधी अयोग्यसादिद्रव्य $\begin{matrix} \text{स}३२\,\text{अ}१६ \mid ६ \mid \frac{१०}{\text{ख}} \\ \text{ख} \equiv \quad\; \text{प} \\ \quad\quad\; ə \end{matrix}$;

अनेकक्षेत्रसंबंधी योग्यसादिद्रव्य $\begin{matrix} \text{स}३२\,\text{अ}१६ \mid \equiv - ६ \\ \text{ख} \equiv \quad\quad\; \text{प} \\ \quad\quad\quad\; ə \end{matrix}$;

अनेकक्षेत्रसंबंधी अयोग्यसादिद्रव्य $\begin{matrix} \text{स}३२\,\text{अ}१६ \mid \equiv - ६ \mid \frac{१०}{\text{ख}} \\ \text{ख} \equiv \quad\quad\; \text{प} \\ \quad\quad\quad\; ə \end{matrix}$]

पूर्वोक्त एक-अनेकक्षेत्र संबंधी योग्य-अयोग्य द्रव्य में से इस सादिद्रव्य को घटानेपर अवशेष अनादिद्रव्य होता है । सो ऊपर सामान्य द्रव्य लिखकर नीचे सादिद्रव्य लिखकर घटाने की ऐसी) संदृष्टि करनेपर उसकी संदृष्टि होती है । इन सबकी संदृष्टि ऐसी जानना —

नाम	समस्त सामान्य प्रमाण	एकक्षेत्र संबंधी प्रमाण	अनेकक्षेत्र संबंधी प्रमाण
क्षेत्र	$\equiv$	$\begin{matrix} ६ \\ \text{प} \\ ə \end{matrix}$	$\begin{matrix} \equiv - ६ \\ \quad\; \text{प} \\ \quad\; ə \end{matrix}$
द्रव्य	१६ख	$\begin{matrix} १६\text{ख} \mid ६ \\ \equiv \quad\; \text{प} \\ \quad\quad\; ə \end{matrix}$	$\begin{matrix} १६\text{ख} \mid \equiv - ६ \\ \equiv \quad\quad\; \text{प} \\ \quad\quad\quad\; ə \end{matrix}$

नाम	समस्त सामान्य प्रमाण	एकक्षेत्र संबंधी प्रमाण	अनेकक्षेत्र संबंधी प्रमाण
योग्यद्रव्य	१६ ख / ख	१६ ख | ६ / ≡ ख प / ə	१६ ख | ≡ − ६ / ≡ ख प / ə
अयोग्यद्रव्य	१६ ख | १∩/ख / ख	१६ ख | ६ | १∩/ख / ≡ ख प / ə	१६ ख | ≡ − ६ १∩/ख / ≡ ख प / ə
सादिद्रव्य	स ३२ अ १६	स ३२ अ १६ | ६ / ≡ प / ə	स ३२ अ १६ | ≡ − ६ / ≡ प / ə
योग्य सादिद्रव्य	स ३२ अ १६ / ख	स ३२ अ १६ | ६ / ≡ ख प / ə	स ३२ अ १६ | ≡ − ६ / ≡ ख प / ə
अयोग्य सादिद्रव्य	स ३२ अ १६ १∩/ख / ख	स ३२ अ १६ | ६ १∩/ख / ≡ ख प / ə	स ३२ अ १६ | ≡ − ६ १∩/ख / ≡ ख प / ə
अनादिद्रव्य द्रव्य) सादिद्रव्य	१६ ख) / स ३२ अ १६	१६ ख | ६ / ≡ प / ə) / स ३२ अ १६ | ६ / ≡ प / ə	१६ ख | ≡ − ६ / ≡ प / ə) / स ३२ अ १६ | ≡ − ६ / ≡ प / ə
योग्य अनादिद्रव्य	१६ ख / ख) / स ३२ अ १६ / ख	१६ ख | ६ / ≡ ख प / ə) / स ३२ अ १६ | ६ / ≡ ख प / ə	१६ ख | ≡ − ६ / ≡ ख प / ə) / स ३२ अ १६ | ≡ − ६ / ≡ ख प / ə

नाम	समस्त सामान्य प्रमाण	एकक्षेत्र संबंधी प्रमाण	अनेकक्षेत्र संबंधी प्रमाण
अयोग्य अनादिद्रव्य	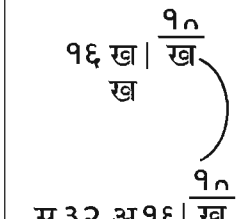	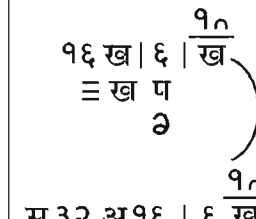	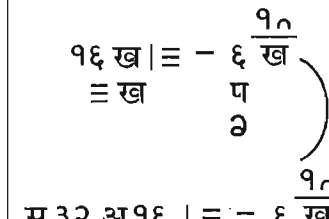

पुनश्च यहां सादि, अनादि और उभय योग्यद्रव्य में से समयप्रबद्धमात्र द्रव्य को प्रतिसमय ग्रहण करके प्रकृतियोंरूप परिणमाते हैं । उसका विभाग कहते हैं –

समयप्रबद्ध ऐसा **स३** । इसको आवली के असंख्यातवें भागमात्र प्रतिभाग की संदृष्टि नौ का अंक **९**, उसका भाग देनेपर बहुभाग ऐसा **स३**$\frac{८}{९}$ । इसको आठ का भाग देकर *(क्योंकि आठ कर्मों में विभाजन करना है)* एक-एक समान भाग ज्ञानावरणादि को देना । अवशेष एकभाग ऐसा **स३**$\frac{१}{९}$ । उसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग-बहुभाग वेदनीय, मोहनीय को देना । अवशेष एकभाग ऐसा **स३**$\frac{१}{९|९|९}$ उसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा **स३**$\frac{८}{९|९|९|९}$ । उसको तीन का भाग देकर एक-एक भाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय को देना । अवशेष एकभाग ऐसा **स३**$\frac{१}{९|९|९|९}$ । उसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा **स३**$\frac{८}{९|९|९|९|९}$ । इसको दो का भाग देकर एक-एक भाग नाम, गोत्र को देना । अवशेष एकभाग ऐसा **स३**$\frac{१}{९|९|९|९|९}$ आयु को देना । उसकी रचना ऐसी –

नाम	वेदनीय	मोहनीय	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	अंतराय	गोत्र	नाम	आयु
समभाग	स३८ ९।८	स३८ ९।८	स३८ ९।८	स३८ ९।८	स३८ ९।८	स३८ ९।८	स३८ ९।८	स३८ ९।८
देयभाग	स३८ ९९	स३८ ९९९	स३८ ९९९९३	स३८ ९९९९३	स३८ ९९९९३	स३८ ९९९९९२	स३८ ९९९९९२	स३१ ९९९९९

यहां और आगे उत्तरप्रकृतियों के कथन में जितनी बार बहुभाग का ग्रहण हो, उतनी बार संदृष्टिरूप प्रतिभाग नौ का भाग देकर बहुभाग में आठ का, अंत में एकभाग में एक का गुणकार जानना । तथा समभाग और देयभाग मिलानेपर जो जो प्रमाण हो, वह-वह अपना-अपना द्रव्य जानना ।

अब उत्तरप्रकृतियों का विभाग करते हैं –

वहां ज्ञानावरण का समभागरूप द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स३}}{९|८}$ इसमें देयभाग मिलानेपर ऊपर साधिक की ऐसी । संदृष्टि करनेपर ऐसा $\frac{\text{स}'\text{३}}{९|८}$ । यहां गुणकार भागहार से एक कम है उसको संदृष्टि में न गिनकर आवली के असंख्यातवें भाग का अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{स}'\text{३}}{८}$ । इसीतरह सर्व मूलप्रकृतियों के द्रव्य की संदृष्टि ऐसी $\frac{\text{स}'\text{३}}{८}$ जानना ।

[***विशेषार्थ*** : **स३** *का गुणकार ८ है, वह एक कम आवली का असंख्यातवां भाग है और उसका भागहार* **९** *है, वह आवली का असंख्यातवां भाग है । इन दोनों का अपवर्तन करनेपर भागहार में जो आठ है वह आठवां भाग है, क्योंकि आठ कर्मों में विभाजित हुआ है ।*]

वहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय के द्रव्य को प्रत्येक को अनंत का भाग देकर एक से गुणा करनेपर सर्वघाति द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}'\text{३}\ १}{८\ \text{ख}}$ होता है; तथा एक कम अनंत से गुणा करनेपर देशघाति द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}'\text{३}\ \frac{१\text{ऊ}}{\text{ख}}}{८\ \text{ख}}$ होता है । वहां सर्वघाति,

देशघाति द्रव्य जानने के लिये ज्ञानावरण का उदाहरण कहते हैं –

ज्ञानावरण के देशघाति द्रव्य में केवलज्ञानावरण का वक्ष्यमान द्रव्य ऐसा $\frac{स'ə}{८ख९।५}$ ८।१ उससे हीन सर्वघाति द्रव्य ऐसा $\frac{स'ə}{८ख९।५}$ $\frac{१८}{८}$ जोड़नेपर साधिक समयप्रबद्ध का आठवां भागमात्र मतिज्ञानावरणादि चार का द्रव्य ऐसा $\frac{स'ə}{८}$ वह तो द्रव्य जानना । स्थिति तीन बार अनंत का परस्पर गुणनमात्र जानना । गुणहानि आयाम दो बार अनंत का परस्पर गुणनमात्र जानना । इसको दो से गुणा करनेपर दोगुणहानि होती है । नानागुणहानि अनंत है । अन्योन्याभ्यस्तराशि दो बार अनंत का परस्पर गुणनमात्र जानना ।

इनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	द्रव्य	स्थिति	गुणहानि आयाम	दो गुणहानि	नाना गुणहानि	अन्योन्याभ्यस्त राशि
प्रमाण	$\frac{स'ə}{८}$	ख ख ख	ख ख	ख ख २	ख	ख ख

यहां द्रव्य को एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देनेपर शैलभाग की अंतिम गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\frac{स'ə}{८} \frac{१८}{ख ख}$ होता है । गुणहानि-गुणहानि प्रति दोगुणा-दोगुणा द्रव्य होता है । इसको यथायोग्य आधा-अनंत ऐसा $\frac{ख}{२}$, उससे गुणा करनेपर दारुभाग के बहुभाग की प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\frac{स'ə}{८} \frac{१८}{ख ख} \frac{ख}{२}$ । यहां तक तो सर्वघाति द्रव्य है । दारु बहुभाग के प्रथम गुणहानि के द्रव्य से दोगुणा दारु-एकभाग की अंतिम गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\frac{स'ə}{८} \frac{१८}{ख ख} \frac{ख}{२}$ २ । इसलिए गुणहानि-गुणहानि प्रति दोगुणा-दोगुणा होते हुये, शैलभाग की अंतिम गुणहानि के द्रव्य को आधी अन्योन्याभ्यस्तराशि

ऐसी $\frac{\text{ख ख}}{२}$, उससे गुणा करनेपर लताभाग की आदि गुणहानि का द्रव्य ऐसा होता है — $\frac{\text{स}^{1}\partial}{८} \frac{१८}{\text{ख ख}} \frac{\text{ख ख}}{२}$ । यह देशघाति द्रव्य जानना । यहां शैलभाग से लेकर निषेकादि क्रम से अधिकरूप हैं, इसलिए आगे ऐसी △ संदृष्टि क्रमरूप अधिक जानना । इसीतरह अन्य का जानना ।

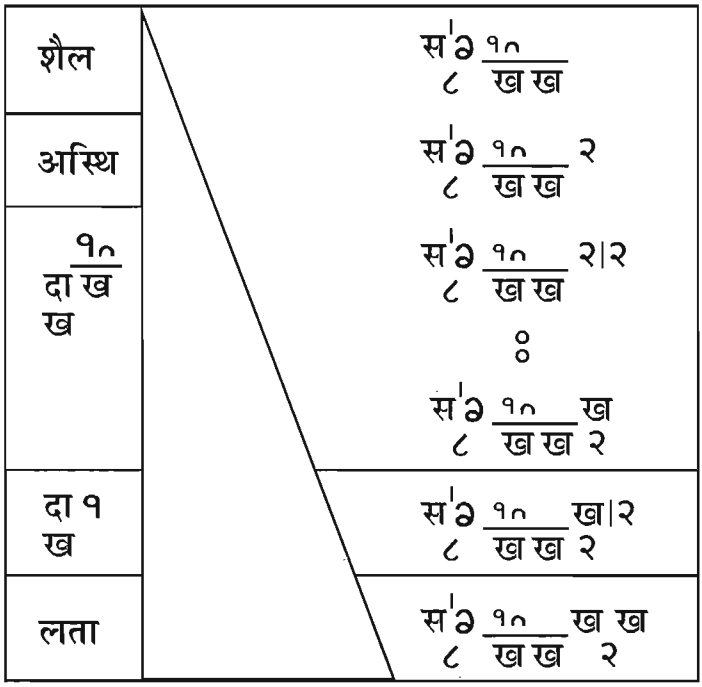

पुनश्च यहां ज्ञानावरण का सर्वघाति द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}^{1}\partial}{८ \text{ ख}}$ । इसको प्रतिभाग ऐसा ९, उसका भाग देकर, बहुभाग ऐसा $\frac{\text{स}^{1}\partial ८}{८ \text{ ख ९}}$ । इसको पांच का भाग देकर एक-एक समान भाग ऐसा $\frac{\text{स}^{1}\partial ८}{८ \text{ ख ९।५}}$ पांचों जगह देना *(इसको समभाग कहेंगे)* । अवशेष एकभाग ऐसा $\frac{\text{स}^{1}\partial}{८ \text{ ख ९}}$ । इसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग-बहुभाग मति, श्रुत,

अवधि, मन:पर्यय ज्ञानावरण को देना तथा एकभाग केवलज्ञानावरण को देना । यहां उस द्रव्य के बहुभाग में संदृष्टि की अपेक्षा आठ का गुणकार और क्रम से एक, दो, तीन, चार बार नौ का भागहार और एकभाग में एक का गुणकार और चार बार नौ का भागहार जानना । ऐसे ही अन्यत्र यथासंभव जानना ।

पुनश्च ज्ञानावरण का देशघाति द्रव्य ऐसा $\underset{८\ \ ख}{स'ə}\frac{१८}{ख}$ । इसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग के चार भागों में एक-एक समान भाग ऐसा $\underset{८\ \ ख}{स'ə}\frac{१८}{ख}\ \underset{९|४}{८}$ चार जगह देना, एकभाग मन:पर्ययज्ञानावरण को देना । केवलज्ञानावरण का देशघाति द्रव्य है नहीं । अवशेष एकभाग के प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग-बहुभाग मति, श्रुत, अवधिज्ञानावरण को देना तथा

[***विशेषार्थ*** : *कुलद्रव्य* $\underset{८}{स'ə}$, *सर्वघाति द्रव्य* $\underset{८\ \ ख}{स'ə}$, *देशघाति द्रव्य* $\underset{८\ \ ख}{स'ə}\frac{१८}{ख}$, *सर्वघाति द्रव्य को नौ का भाग देकर बहुभाग के पांच समान भाग करना* $\underset{८\ \ ख\ ९|५}{स'ə}\ \underset{}{८}$ *और शेष एकभाग का बहुभाग-बहुभाग करना, अंत में एकभाग रहेगा – इसे देयभाग कहेंगे । सर्वघाति द्रव्य तो पांचों ज्ञानावरणों में दिया जाता है, देशघाति द्रव्य मात्र चार ज्ञानावरणों में दिया जाता है ।*]

सर्वघाति द्रव्य का विभाजन निम्नप्रकार होता है – **सर्वघाति द्रव्य** $\underset{८\ \ ख}{स'ə}$

नाम	मति	श्रुत	अवधि	मन:पर्यय	केवल ज्ञानावरण
समभाग	$\underset{८\ \ ख\ ९|५}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|५}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|५}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|५}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|५}{स'ə}\ \underset{}{८}$
देयभाग	$\underset{८\ \ ख\ ९|९}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|९|९}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|९|९|९}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|९|९|९|९}{स'ə}\ \underset{}{८}$	$\underset{८\ \ ख\ ९|९|९|९|९}{स'ə}\ \underset{}{१}$

देशघाति द्रव्य $\underset{८}{स'}\underset{ख}{\overset{१८}{ə}}$, प्रतिभागहार ९

नाम	मति	श्रुत	अवधि	मन:पर्यय ज्ञानावरण
समभाग	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।४	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।४	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।४	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।४
देयभाग	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।९	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।९।९	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।९।९।९	$\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ १ ९।९।९।९

पुनश्च इसीतरह दर्शनावरण का सर्वघाति द्रव्य ऐसा $\underset{८\ ख}{स'ə}$ । इसको प्रतिभाग ९ *(आवली का असंख्यातवां भाग)* का भाग देकर बहुभाग को नौ का भाग देकर *(क्योंकि दर्शनावरण की नौ प्रकृतियां हैं)* एक-एक समान भाग ऐसा $\underset{८\ ख}{स'ə}$ ८ ९।९ नौ जगह देना । अवशेष एकभाग के बहुभाग-बहुभाग स्त्यानगृद्धि आदि को देकर अंतिम एकभाग केवलदर्शनावरण को देना । पुनश्च उसका देशघाति द्रव्य ऐसा $\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ उसको प्रतिभाग ९ का भाग देकर बहुभाग को तीन का भाग देकर एक-एक समान भाग ऐसा $\underset{८\ ख}{स'}\underset{}{\overset{१८}{ə}}$ ८ ९।३ तीन जगह देना *(चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शनावरण को देना)* । अवशेष का बहुभाग-बहुभाग चक्षु-अचक्षु दर्शनावरण को, एकभाग अवधिदर्शनावरण को देना । पांच निद्रा, केवलदर्शनावरण का देशघाति द्रव्य है नहीं ।

अंतराय का द्रव्य ऐसा $\underset{८}{स'ə}$ । उसको प्रतिभाग ९ का भाग देकर बहुभाग को पांच का भाग देकर एक-एक समान भाग पांच जगह देना । अवशेष का उलटे क्रम से बहुभाग-बहुभाग वीर्यांतराय आदि को और एकभाग दानांतराय को देना ।

मोहनीय का सर्वघाति द्रव्य ऐसा $\underset{८\ \text{ख}}{\text{स}^{1}\text{ə}}$ । उसको प्रतिभाग ९ का भाग देकर, बहुभाग को सत्रह का भाग देकर एक-एक समान भाग ऐसा – $\underset{८\ \text{ख}|९|१७}{\text{स}^{1}\text{ə}|८}$ सत्रह जगह देना । अवशेष एकभाग का बहुभाग-बहुभाग मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी लोभ, माया, क्रोध, मान आदि को, एकभाग अंत में अप्रत्याख्यान मान को देना । पुनश्च उसका देशघाति द्रव्य ऐसा $\underset{८\ \text{ख}}{\text{स}^{1}\text{ə}\overline{\text{१८ ख}}}$ यहां गुणकार में एक हीन है उसको न गिनकर अनंत का अपवर्तन करनेपर ऐसा $\underset{८}{\text{स}^{1}\text{ə}}$ । इसको प्रतिभाग आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग को दो का भाग देकर एक-एक भाग ऐसा $\underset{८\ |९|२}{\text{स}^{1}\text{ə}|८}$ कषाय और नोकषाय को देना । अवशेष एकभाग कषाय ही को देना । वहां कषाय द्रव्य में बहुभाग का आधा द्रव्य ऐसा $\underset{८\ |९|२}{\text{स}^{1}\text{ə}|८}$ एकभाग का द्रव्य ऐसा $\underset{८\ |९|१}{\text{स}^{1}\text{ə}|१}$ इसके अन्य भागहार समान देखकर दो से समच्छेद करनेपर ऐसा $\underset{८\ |९|२}{\text{स}^{1}\text{ə}|२}$ । यहां गुणकार दो में से एक का ग्रहणकर आठ में जोड़नेपर ऐसा $\underset{८\ |९|२}{\text{स}^{1}\text{ə}|९}$ यहां नौ के अंकरूप आवली के असंख्यातवें भाग का अपवर्तन करनेपर ऐसा $\underset{८\ |२}{\text{स}^{1}\text{ə}}$ अवशेष एक गुणकार ऐसा $\underset{८\ |९|२}{\text{स}^{1}\text{ə}|१}$ । उसको जोड़ने के लिये उस राशि के असंख्यातवें भाग इसको जानकर ऊपर अधिक की ऐसी । संदृष्टि करनेपर संज्वलन का देशघाति द्रव्य ऐसा $\underset{८\ |२}{\text{स}^{1}\text{ə}}$ । इसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग को चार का भाग देकर एक-एक समान

भाग ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}|८}{८|९|२|४}$ चार जगह देना । अवशेष का बहुभाग-बहुभाग संज्वलन लोभ, माया, क्रोध को, एकभाग मान को देना । पुनश्च नोकषायों का युगपत् पांच ही का बंध होता है इसलिए नोकषाय द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}|८}{८|९|२}$ । यहां गुणकार में एक हीन है । उसको न गिनकर अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}}{८|२}$ । इसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग को पांच का भाग देकर एक-एक समान भाग ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}|८}{८|९|२|५}$ पांच जगह देना । अवशेष का बहुभाग वेदादि (*वेद, रति / अरति, हास्य / शोक, भय*) को देना, एकभाग जुगुप्सा को देना । यहां मिथ्यात्व और बारह कषायों में देशघाति हैं नहीं तथा नोकषाय में सर्वघाति स्पर्धक हैं नहीं ।

पुनश्च नामकर्म में तेइस प्रकृति का आद्य बंधस्थान है, वहां तेइस के स्थान की विवक्षा से तीन भेदरूप शरीरप्रकृति को एक जानकर इक्कीस विभाग करने से वह नामकर्म का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}}{८}$ । इसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग को इक्कीस का भाग देकर एक-एक भाग ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}|८}{८|९|२१}$ इक्कीस जगह देना । अवशेष का बहुभाग-बहुभाग निर्माण आदि उलटे क्रमस्वरूप को और एकभाग गतिप्रकृति को देना । उनकी रचना —

ज्ञानावरणकर्म रचना

सर्वघाति द्रव्य $\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\ \text{ख}}$

नाम	मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञानावरण	मन:पर्ययज्ञानावरण	केवलज्ञानावरण
समभाग	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|५}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|५}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|५}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|५}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|५}$
देयभाग	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|९}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|९\|९}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|९\|९\|९}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ ८}{८\ \text{ख}\|९\|९\|९\|९\|९}$	$\frac{\text{स}'\text{ə}\ १}{८\ \text{ख}\|९\|९\|९\|९\|९}$

देशघाति द्रव्य $\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$

नाम	मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञानावरण	मन:पर्ययज्ञानावरण
समभाग	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ४	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ४	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ४	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ४
देयभाग	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ९	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ९ | ९	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ९ | ९ | ९	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | १ | ९ | ९ | ९ | ९

दर्शनावरणकर्म रचना

सर्वघाति द्रव्य $\frac{स}{८ ख}$

नाम	स्त्यानगृद्धि	निद्रानिद्रा	प्रचलाप्रचला	निद्रा	प्रचला
समभाग	स ८ ८ | ९ | ख | ९	स ८ ८ | ९ | ख | ९	स ८ ८ | ९ | ख | ९	स ८ ८ | ९ | ख | ९	स ८ ८ | ९ | ख | ९
देयभाग	स ८ ८ ख | ९ | ९	स ८ ८ ख | ९ | ९ | ९	स ८ ८ ख | ९ | ९ | ९ | ९	स ८ ८ ख | ९ | ९ | ९ | ९ | ९	स ८ ८ ख | ९ छ बार

नाम	चक्षुदर्शनावरण	अचक्षुदर्शनावरण	अवधिदर्शनावरण	केवलदर्शनावरण
समभाग	स ८ ८ | ९ | ख | ९	स ८ ८ | ९ | ख | ९	स ८ ८ | ९ | ख | ९	स ८ ८ | ९ | ख | ९
देयभाग	स ८ ८ ख | ९ सात बार	स ८ ८ ख | ९ आठ बार	स ८ ८ ख | ९ नौ बार	स १ ८ ख | ९ नौ बार

देशघाति द्रव्य $\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$

नाम	चक्षुदर्शनावरण	अचक्षुदर्शनावरण	अवधिदर्शनावरण
समभाग	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ३	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ३	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ३
देयभाग	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ९	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | ८ | ९ | ९ | ९	$\frac{स^{१८}_{८ ख}}{८ ख}$ | १ | ९ | ९ | ९

अंतरायकर्म रचना स'ə/८

नाम	वीर्यांतराय	उपभोगांतराय	भोगांतराय	लाभांतराय	दानांतराय
समभाग	स'ə।८ ८ ।९।५	स'ə।८ ८ ।९।५	स'ə।८ ८ ।९।५	स'ə।८ ८ ।९।५	स'ə।८ ८ ।९।५
देयभाग	स'ə।८ ८ ।९।९	स'ə।८ ८ ।९।९।९	स'ə।८ ८ ।९।९।९।९	स'ə।८ ८ ।९।९।९।९।९	स'ə।१ ८ ।९।९।९।९।९

नाम	वेदनीयकर्म रचना साता या असाता	आयुकर्म रचना चार आयु में बध्यमान एक आयु	गोत्रकर्म रचना नीचगोत्र या उच्चगोत्र
समभाग	स'ə।८ ९।८	स'ə।८ ९।८	स'ə।८ ९।८
देयभाग	स'ə।८ ९।९	स'ə।१ ९।९।९।९।९	स'ə।८ ९।९।९।९।९।२

[***विशेषार्थ*** : *वेदनीय का सर्व द्रव्य* स'ə/८ *साता या असाता को दिया जाता है ऐसे ही आयु और गोत्र में समझना ।*]

मोहनीयकर्म रचना

सर्वघाति द्रव्य स'ə/८ ख

नाम	मिथ्यात्व	अनंता. लोभ	अनंता. माया	अनंता. क्रोध	अनंता. मान
समभाग	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७
देयभाग	स'ə ८ ८ ख।९।९	स'ə ८ ८ ख।९।९।९	स'ə ८ ८ ख।९।९।९।९	स'ə ८ ८ ख।९।९।९।९।९	स'ə ८ ८ ख।९ छ बार

नाम	संज्वलन लोभ	संज्वलन माया	संज्वलन क्रोध	संज्वलन मान
समभाग	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७
देयभाग	स'ə ८ ८ ख।९ सात बार	स'ə ८ ८ ख।९ आठ बार	स'ə ८ ८ ख।९ नौ बार	स'ə ८ ८ ख।९ १० बार

नाम	प्रत्याख्यान लोभ	प्रत्याख्यान माया	प्रत्याख्यान क्रोध	प्रत्याख्यान मान
समभाग	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७
देयभाग	स'ə ८ ८ ख।९ ११ बार	स'ə ८ ८ ख।९ १२ बार	स'ə ८ ८ ख।९ १३ बार	स'ə ८ ८ ख।९ १४ बार

नाम	अप्रत्याख्यान लोभ	अप्रत्याख्यान माया	अप्रत्याख्यान क्रोध	अप्रत्याख्यान मान
समभाग	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७	स'ə ।८ ८ ख।९।१७
देयभाग	स'ə ८ ८ ख।९ १५ बार	स'ə ८ ८ ख।९ १६ बार	स'ə ८ ८ ख।९ १७ बार	स'ə १ ८ ख।९ १७ बार

देशघाति द्रव्य स'ə १८ ख / ८ ख

नाम	संज्वलन लोभ	संज्वलन माया	संज्वलन क्रोध	संज्वलन मान
समभाग	स'ə।८ ८ ।९।२।४	स'ə।८ ८ ।९।२।४	स'ə।८ ८ ।९।२।४	स'ə।८ ८ ।९।२।४
देयभाग	स'ə।८ ८ ।२।९।९	स'ə।८ ८ ।२।९।९।९	स'ə।८ ८ ।२।९।९।९।९	स'ə।१ ८ ।२।९।९।९।९

नाम	पुरुष, स्त्री नपुंसकवेद	रति वा अरति	हास्य वा शोक	भय	जुगुप्सा
समभाग	स'ə।८ ८ ।२।९।५	स'ə।८ ८ ।२।९।५	स'ə।८ ८ ।२।९।५	स'ə।८ ८ ।२।९।५	स'ə।८ ८ ।२।९।५
देयभाग	स'ə।८ ८ ।२।९।९	स'ə।८ ८ ।२।९।९।९	स'ə।८ ८ ।२।९।९।९।९	स'ə।८ ८ ।२।९।९।९।९।९	स'ə।१ ८ ।२।९।९।९।९।९

नामकर्म रचना स'ə / ८

नाम	तिर्यंचगति	एकेन्द्रिय	औदा. ते. का.शरीर	हुंडकसंस्थान
समभाग	स'ə।८ ८ ।९।२१	स'ə।८ ८ ।९।२१	स'ə।८ ८ ।९।२१	स'ə।८ ८ ।९।२१
देयभाग	स'ə।१ ८ ।९।९ २० बार	स'ə।८ ८ ।९।९ २० बार	स'ə।८ ८ ।९।९ १९ बार	स'ə।८ ८ ।९।९ १८ बार

नाम	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
समभाग	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१
देयभाग	स'ə।८ ८।९।९ १७ बार	स'ə।८ ८।९।९ १६ बार	स'ə।८ ८।९।९ १५ बार	स'ə।८ ८।९।९ १४ बार

नाम	तिर्यंचानुपूर्वी	अगुरुलघु	उपघात	स्थावर
समभाग	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१
देयभाग	स'ə।८ ८।९।९ १३ बार	स'ə।८ ८।९।९ १२ बार	स'ə।८ ८।९।९ ११ बार	स'ə।८ ८।९।९ १० बार

नाम	सूक्ष्म	अपर्याप्त	साधारण	अस्थिर
समभाग	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१
देयभाग	स'ə।८ ८।९।९ ९ बार	स'ə।८ ८।९।९ ८ बार	स'ə।८ ८।९।९ ७ बार	स'ə।८ ८।९।९ ६ बार

नाम	अशुभ	दुर्भग	अनादेय	अयश	निर्माण
समभाग	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१	स'ə।८ ८।९।२१
देयभाग	स'ə।८ ८।९।९ ५ बार	स'ə।८ ८।९।९ ४ बार	स'ə।८ ८।९।९ ३ बार	स'ə।८ ८।९।९ २ बार	स'ə।८ ८।९।९

वहां समान भाग तो जैसे लिखे हैं, वैसे जानना और देयभाग में जितनी बार बहुभाग ग्रहण किया हो, उतनी बार एक से लेकर एक-एक अधिक के क्रम से प्रतिभाग का भाग देकर संदृष्टि द्वारा बहुभाग में आठ का गुणकार तथा एकभाग में एक का गुणकार जानना । वहां प्रचलादि के देयभाग में नौ अंक के आगे छह, सात आदि नौ तक अंकों द्वारा और अनंतानुबंधी मान आदि के देयभाग में छह, सात आदि सत्रह तक अंकों द्वारा और नामकर्म में तिर्यंचगति आदि के देयभाग में बीस, बीस, उन्नीस आदि एक तक जो अंक हो, उतनी बार वहां प्रतिभाग का भाग जानना ।

पुनश्च वेदनीय, आयु, गोत्र का वर्तमान काल में एक-एक प्रकृति ही का बंध है, इसलिए इनके मूलप्रकृति का सर्वद्रव्य उत्तरप्रकृति में देना, इनमें विभाग है नहीं । इसतरह

बंध में समयप्रबद्ध का विभाग कहा । जितनी प्रकृतियों का जहां बंध हो, वहां उतनी प्रकृतियों का विभाग यथासंभव करना ।

पुनश्च युगपत् बंधरूप नोकषायों के निरंतर बंधकाल में पुरुषवेद का ऐसा **२१।२** इससे संख्यात की संदृष्टि दोगुणा स्त्रीवेद का ऐसा **२१।४** । इससे संख्यात की संदृष्टि चारगुणा हास्य वा रति का ऐसा **२१।१६** । इससे संख्यात की संदृष्टि दोगुणा अरति और शोक का ऐसा **२१।३२** । इससे विशेष अधिक नपुंसकवेद का ऐसा **२१।४२** । यहां तीनों वेदों का मिलाया हुआ काल ऐसा **२१।४८** । हास्य युग्म और अरति युग्म का मिलाया हुआ ऐसा **२१।४८** । यहां मिलाये हुये द्रव्य को प्रमाणराशि करके; पुनश्च नोकषाय का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\,|\,२}$ था, उसके पांचभाग करने के लिये भागहार दो को पांच से गुणा करनेपर द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\,|\,१०}$ इसको फलराशि करनेपर तथा अपने-अपने काल को इच्छाराशि करनेपर लब्धमात्र अपना-अपना संचित द्रव्य होता है ।

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
२१।४८	$\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\,|\,१०}$	२१।२	$\frac{\text{स}'\text{ə}\,|\,२}{८\,|\,१०\,|\,४८}$ पुरुषवेदद्रव्य
२१।४८	$\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\,|\,१०}$	२१।४	$\frac{\text{स}'\text{ə}\,|\,४}{८\,|\,१०\,|\,४८}$ स्त्रीवेदद्रव्य
२१।४८	$\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\,|\,१०}$	२१।४२	$\frac{\text{स}'\text{ə}\,|\,४२}{८\,|\,१०\,|\,४८}$ नपुंसकवेदद्रव्य
२१।४८	$\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\,|\,१०}$	२१।१६	$\frac{\text{स}'\text{ə}\,|\,१६}{८\,|\,१०\,|\,४८}$ रतिद्रव्य
२१।४८	$\frac{\text{स}'\text{ə}}{८\,|\,१०}$	२१।३२	$\frac{\text{स}'\text{ə}\,|\,३२}{८\,|\,१०\,|\,४८}$ अरतिद्रव्य

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
२१।४८	स'३ / ८।१०	२१।१६	स'३।१६ / ८।१०।४८ हास्यद्रव्य
२१।४८	स'३ / ८।१०	२१।३२	स'३।३२ / ८।१०।४८ शोकद्रव्य

पुनश्च **योगों की रचना** में एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त आदि चौदह जीवसमासों में नीचे पूर्वभव का शरीर लिखा, उसके ऊपर उपजने के पहले समय में एक समयमात्र उपपादयोग होता है । उसमें जघन्य तो विग्रहगतिवाले के होता है, उत्कृष्ट ऋजुगतिवाले के होता है । ऋजुगति में सीधा गमन होता है, इसकी संदृष्टि ऐसी $\begin{matrix}0\\|\\0\end{matrix}$ सो लिखित के ऊपर एकांतानुवृद्धि जघन्य - तो पहले समय में होता है, उत्कृष्ट - पर्याप्त के तो एक समय कम शरीरपर्याप्ति काल ऐसा $\frac{१०}{२१}$ होनेपर होता है । अपर्याप्त के अपनी स्थिति श्वास के अठारहवें भागमात्र ऐसी $\frac{१}{१८}$, उसका दो तृतीयांश भाग ऐसा $\frac{१}{१८}\frac{२}{३}$ होनेपर होता है । मध्य-मध्य में होता है । ऊपर परिणामयोगस्थान पर्याप्त के तो एकेन्द्रिय के शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, विकलचतुष्क के शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, भाषा और संज्ञी के शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, भाषा, मन पर्याप्तिकाल वहां शरीरपर्याप्तिकाल अंतर्मुहूर्तमात्र **२१** उसके ऊपर अन्य पर्याप्तिकाल अपनी स्थिति तक सर्वत्र उत्कृष्ट, मध्य, जघन्य होता है **उ ० ० ० ज** और अपर्याप्त अपनी स्थिति का एक तृतीयांश भाग ऐसा $\frac{१}{१८}\frac{१}{३}$ उसके प्रथम समय से लेकर उत्कृष्ट, मध्य, जघन्यरूप अपनी स्थिति पर्यंत होता है । इनकी रचना -- यहां नाम के आदि अक्षर की और मध्य में बिंदियों की संदृष्टि जानना ।

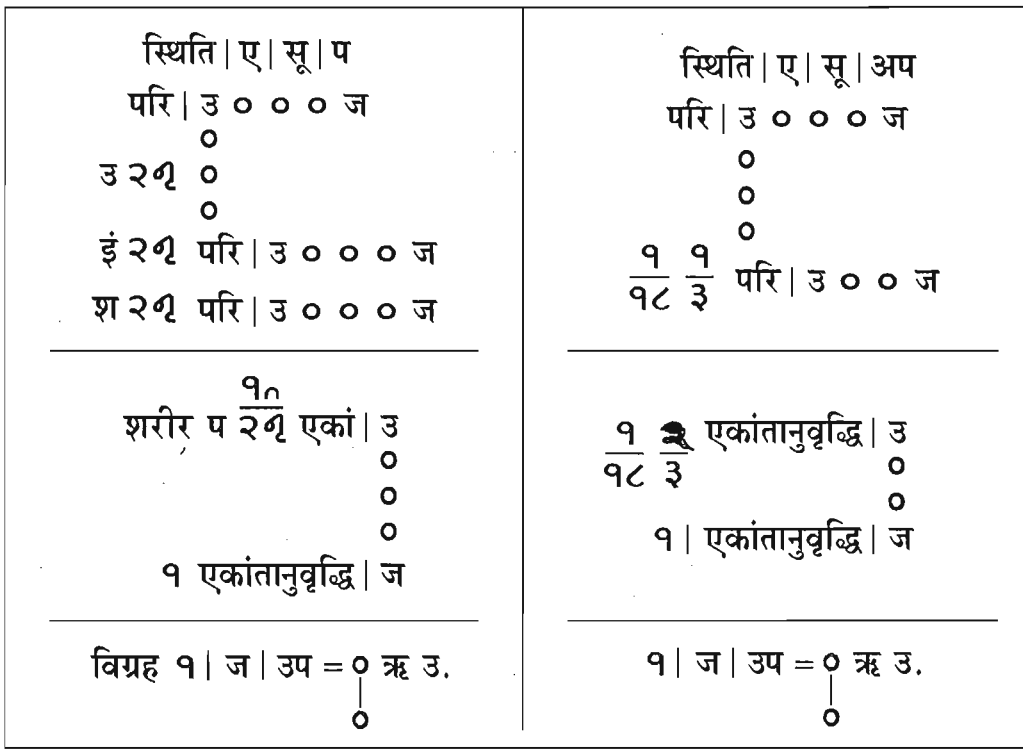

यहां नाम के आदि अक्षर की और मध्य में बिंदियों की संदृष्टि जानना ।

पुनश्च एक योगस्थान में नानागुणहानि दो बार असंख्यात से भाजित पल्यमात्र, एक गुणहानि में स्पर्धक दो बार असंख्यात से भाजित श्रेणीमात्र, एक स्पर्धक में वर्गणा असंख्यात से भाजित श्रेणीमात्र, एक वर्गणा में वर्ग असंख्यात जगत्प्रतरमात्र, एक वर्ग में अविभागप्रतिच्छेद असंख्यात लोकमात्र हैं । उनकी अर्थसंदृष्टि और अंकसंदृष्टि निम्नप्रकार है —

नाम	एक वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद	एक वर्गणा में वर्ग	एक स्पर्धक में वर्गणा	एक गुणहानि में स्पर्धक	एक स्थान में नानागुणहानि	स्थान
अर्थसंदृष्टि	≡ə	=ə	$\frac{-}{ə}$	$\frac{—}{əə}$	$\frac{प}{əə}$	१
अंकसंदृष्टि	८	२५६	४	९	५	१

एक स्थान में स्पर्धक और वर्गणाओं का प्रमाण लाने के लिये त्रैराशिक ऐसा –

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
गुणहानि	स्पर्धक	नानागुणहानि	एकस्थानस्पर्धक
१	$\frac{-}{\partial\partial}$	$\frac{प}{\partial\partial}$	$\frac{-\ प}{\partial\partial\ \partial\partial}$
स्पर्धक	वर्गणा	स्पर्धक	एकस्थानवर्गणा
१	$\frac{-}{\partial}$	$\frac{-\ प}{\partial\partial\ \partial\partial}$	$\frac{-\ प\ -}{\partial\partial \mid \partial\partial \mid \partial}$

पुनश्च एक स्थान में वर्ग जीवप्रदेशमात्र ऐसे ≡ हैं, और आलाप से अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात लोकमात्र ≡∂ जानना । यहां द्रव्यादि का प्रमाण ऐसा –

नाम	द्रव्य	स्थिति	गुणहानि-आयाम	नाना-गुणहानि	दो-गुणहानि	अन्योन्या-भ्यस्त
अंकसंदृष्टि	३१००	४०	८	५	१६	३२
अर्थसंदृष्टि	≡	$\frac{-}{\partial}$	$\frac{—}{\partial\partial}$	$\frac{प}{\partial\partial}$	$\frac{—२}{\partial\partial}$	$\frac{प}{\partial}$

यहां द्रव्य तो जीवप्रदेशप्रमाण - लोकमात्र; स्थिति - एक स्थान संबंधी वर्गणा का प्रमाण श्रेणी का असंख्यातवां भागमात्र; गुणहानि आयाम - एक गुणहानि में वर्गणाओं का प्रमाणमात्र; नानागुणहानि - एक स्थान में गुणहानियों का प्रमाणमात्र; दोगुणहानि - गुणहानि आयाम से दोगुणा और अन्योन्याभ्यस्तराशि - पल्य के असंख्यातवें भागमात्र जानना ।

पुनश्च जीव के सर्व प्रदेश लोकमात्र ऐसे ≡, इनको डेढ़ गुणहानि ऐसी $\frac{— ३}{\partial\partial\ २}$ उसका भाग देनेपर प्रथम वर्गणा ऐसी $\frac{≡}{— ३ \atop \partial\partial\ २}$ । यहां भागहार के भागहार को भाज्य का गुणकार

करनेपर ऐसा $\equiv \frac{\text{ə}\text{ə}}{-३}|२$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $= \text{ə}\text{ə}\ \frac{२}{३}$ हुआ । पुनश्च ऊपर एक-एक विशेष (चय) हीन क्रम से प्रथम गुणहानि होती है । पुनश्च गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा अनुक्रम जानना । उसका अंकसंदृष्टि द्वारा टीका में व्यक्त कथन किया है, वह जानना । पुनश्च इस जघन्य स्पर्धक की आदि (प्रथम) वर्गणा की संदृष्टि ऐसी **वि १६** । यहां वर्गणा-वर्गणा प्रति जितना-जितना हीन है उसका नाम विशेष है, उसकी संदृष्टि ऐसी **वि** । इसको दोगुणहानि की संदृष्टि **१६** से गुणा करनेपर प्रथम वर्गणा के प्रदेश होते हैं ऐसा जानना । पुनश्च इससे जघन्य वर्ग की संदृष्टि **व** को गुणा करनेपर जघन्य वर्गणा की ऐसी **व वि १६** । इसको एक स्पर्धक में जितनी वर्गणायें पायी जाती हैं उसकी संदृष्टि **४** से गुणा करनेपर स्थूलपने से जघन्य स्पर्धक ऐसा **व वि १६ | ४** हुआ । पुनश्च इसी को आदि उत्तर करके स्पर्धक शलाका को गच्छ करके संकलन करनेपर ऋणसहित प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा **व वि १६ | ४ | $\frac{१८}{२}$ | $\frac{९}{१}$** होता है । यहां संकलनसूत्र की अपेक्षा आगे एक से हीन गच्छ को दो का भाग और गच्छ को एक का भाग देकर उनका गुणकार किया है । यहां स्पर्धक-स्पर्धक प्रति ऋण कितना और गुणहानि-गुणहानि प्रति द्रव्य और ऋण कितना और सर्व जघन्य योगस्थान का द्रव्य कितना ? उसका संदृष्टिरूप विशेष कथन संस्कृत टीका से जानना ।

पुनश्च असंख्यात लोकमात्र $\equiv$ə अविभागप्रतिच्छेदों का समूह वर्ग - उसकी संदृष्टि **व**, ऐसे वर्ग असंख्यात जगत्प्रतरमात्र लिखने, क्योंकि प्रथम वर्गणा में वर्ग इतने $= \text{ə}\text{ə}|\frac{२}{३}$ हैं ।

इसके ऊपर *(की पंक्ति में)* एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक वर्ग लिखने, वे वर्ग *(अर्थात् उनकी संख्या)* प्रथम वर्गणा के वर्गों से एक विशेष *(चय)* से हीन लिखने । इस तरह अविभागप्रतिच्छेद एक-एक से बढ़ते हुये तथा *(वर्गों की संख्या)* एक-एक विशेष से घटते हुये क्रम से एक स्पर्धक में वर्गणाशलाका ४ उसप्रमाण लिखना । पुनश्च जघन्य

वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से दोगुणे द्वितीय स्पर्धक के प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग प्रतिच्छेद जानना । वे प्रथम स्पर्धक की अंतिम वर्गणा से एक विशेष से हीन है । यहां भी पूर्ववत् करना ।

उनकी रचना निम्नप्रकार है । यहां **व** अर्थात् अविभागप्रतिच्छेदयुक्त प्रदेश । $\frac{१}{व}$ अर्थात् एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक ऐसा द्वितीय वर्गणा का एक वर्ग ।

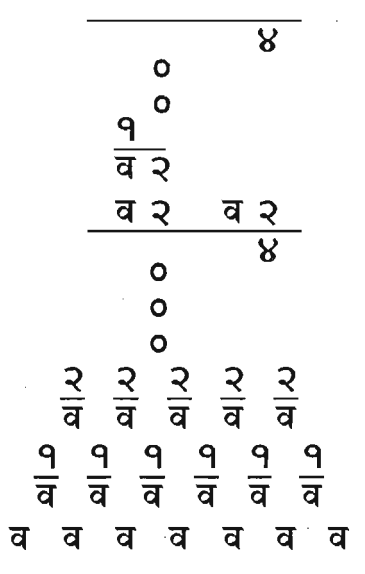

४ = एक स्पर्धक में वर्गणाओं की संख्या ।

इसतरह जितने क्रमांक का स्पर्धक हो उस प्रमाण से गुणित तो आदि में [*जैसे, पांचवां स्पर्धक हो तो प्रथम वर्गणा में वर्ग ऐसा* **व ५**] और ऊपर एक-एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद से संयुक्त वर्गों के समूहरूप [$\frac{१}{व ५}$, $\frac{२}{व ५}$, $\frac{३}{व ५}$] जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र **४** होनेपर एक-एक स्पर्धक होता है तथा जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र **९** स्पर्धक होनेपर प्रथम गुणहानि होती है । इसीतरह द्वितीयादि गुणहानि जानना । विशेष इतना है कि गुणहानि-गुणहानि प्रति प्रथम वर्गणा में वर्गों का प्रमाण आधा-आधा है, ऊपर विशेष हीन क्रम सहित है, वह विशेष (चय) भी आधा-आधा है । इसतरह पल्य के असंख्यातवें भागमात्र **(५)** गुणहानियां होनेपर जघन्य योगस्थान

$$\begin{matrix} \overset{३}{\overline{\text{व}|९|\text{ना}}} \\ \text{०} \\ \text{०} \end{matrix}$$

होता है । वहां वर्गों की संदृष्टि ऐसी **व व व व** यहां नीचे जघन्य वर्ग **व** लिखे और ऊपर जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से स्पर्धकशलाका **९** और नानागुणहानि **ना** से गुणित अविभागप्रतिच्छेद अंतिम गुणहानि के अंतिम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों में होते हैं । इसलिए वहां एक कम वर्गणाशलाका *(४ - १ = ३)* की संदृष्टि तीन का अंक उससे अधिक अंतिम स्पर्धक की अंतिम वर्गणा के वर्गों में अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनके समूहरूप उत्कृष्ट वर्ग लिखा है ।

[***विशेषार्थ*** *: एक स्पर्धक में चार वर्गणा होती हो तो प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेद* **व**, *द्वितीय वर्गणा के वर्गों के* **व + १**, *तृतीय के* **व + २** *और चतुर्थ के* **व + ३** *जो* $\overset{३}{\text{व}}$ *ऐसा लिखते हैं । यहां अंतिम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेद* **व|९|ना** *हैं और उसी अंतिम स्पर्धक की अंतिम वर्गणा के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेद* $\overset{३}{\overline{\text{व}|९|\text{ना}}}$ *हैं ।*]

मध्य में बिंदी द्वारा मध्य भेद जानना । इसतरह शक्तिप्रधानता से कथन किया । पुनश्च प्रदेशप्रधानता द्वारा प्रथम स्पर्धकवर्गणा ऐसी $= \text{ॐ}\text{ॐ}|\overset{३}{२}$ इसको दोगुणहानि ऐसी $\underset{\text{ॐ}\text{ॐ}}{-२}$ उसका भाग देनेपर विशेष अर्थात् चय का प्रमाण ऐसा $= \underset{-२}{\text{ॐ}\text{ॐ}}|\overset{३}{२}$ । यहां *(अंश और छेद में जगत्श्रेणी – और* **२** *समान देखकर)* जगत्श्रेणी और दो का अपवर्तन करनेपर तथा दो बार असंख्यात **ॐ** भागहार का भागहार था उसको भाज्य का गुणकार करनेपर विशेष ऐसा $\underset{३}{-\text{ॐ}\text{ॐ}\text{ॐ}\text{ॐ}}$ होता है । उसकी संदृष्टि ऐसी **वि** । प्रथम वर्गणा आदि पहले कहा है वह जानना । तथा प्रमाण लाने के लिये संस्कृत टीका में संदृष्टि सहित विशेष कथन किया है, वहां से जानना । पुनश्च शक्तिप्रधानता तथा

प्रदेशप्रधानता द्वारा प्रमाण लाने का कथन संस्कृत टीका में कहा है, वहां भी संदृष्टियों का स्वरूप यहां कहा है, वैसा ही यथासंभव जानना । यहां विस्तार के भय से तथा स्पष्ट समझने में नहीं आया इसलिए विशेष नहीं लिखा है ।

पुनश्च सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य स्पर्धक ऐसा $\underset{१}{\text{व वि १६}} \mid \underset{}{४} \mid \underset{२}{}$ प्रमाणराशि (जघन्यस्पर्धक × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$)। इतने अविभागप्रतिच्छेद बढ़नेपर एक स्थान होता है (*योगस्थान-योगस्थान प्रति इतने अविभागप्रतिच्छेद अधिक होते हैं*) फलराशि १ । तो इच्छाराशि $\underset{अ}{\text{व वि १६}} \mid \underset{}{४} \mid \underset{}{\frac{१}{\text{९ ना}}}$ इतने जघन्य स्थान के अविभागप्रतिच्छेद बढ़नेपर कितने स्थान होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशि ऐसी $\underset{अ}{\text{व}} \mid \underset{}{\text{वि}} \mid \underset{}{१६} \mid \underset{}{४} \mid \underset{}{\frac{१}{\text{९}}} \mid \underset{}{\text{ना}}$ यहां समान भाज्य भागहार का अपवर्तन करनेपर ऐसा $\underset{}{\text{अ}} \mid \underset{}{\text{व}} \mid \underset{}{\text{वि}} \mid \underset{}{१६} \mid \underset{}{४} \mid \underset{२}{}$

$\frac{१}{\text{९} \mid \text{ना}}$ । यह प्रमाण जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र $\frac{}{२}$ ऐसा जानना ।
अ

[***विशेषार्थ*** : जघन्यस्पर्धक × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ *इतने अविभागप्रतिच्छेद बढ़नेपर एक योगस्थान होता है* / त्रैराशिक : ∵ $\underset{२}{\text{व वि १६}} \mid \underset{}{४}$ १ स्थान

$\therefore \underset{अ}{\text{व वि १६}} \mid \underset{}{४} \mid \underset{}{\frac{१}{\text{९ ना}}}$ $\underset{अ}{\text{व}} \mid \underset{}{\text{वि}} \mid \underset{}{१६} \mid \underset{}{४} \mid \underset{}{\frac{१}{\text{९}}} \mid \underset{}{\text{ना}}$ $\underset{२}{}$ स्थान $\frac{१}{\text{९} \mid \text{ना}}$
$\underset{अ}{\text{व}} \mid \underset{}{\text{वि}} \mid \underset{}{१६} \mid \underset{}{४} \mid \underset{}{२} \mid \underset{}{\text{अ}}$ अ | २
२

नानागुणहानि $\text{ना} = \underset{\bar{\bar{\jmath}}\bar{\jmath}}{\text{प}} \mid \text{अ} = \underset{\bar{\jmath}}{\text{प}} \mid ९ = \underset{\bar{\bar{\jmath}}\bar{\jmath}}{-}$

$$\therefore \frac{\text{ना}\mid ९}{\text{अ}\mid २_{\bar{\jmath}}} = \frac{\cancel{\text{प}}}{\cancel{\bar{\bar{\jmath}}\bar{\jmath}}\ \cancel{\text{प}}\ \bar{\bar{\jmath}}\bar{\jmath}\ २_{\cancel{\bar{\jmath}}}} = \bar{\bar{\jmath}}\bar{\jmath}\ २ = \bar{\bar{\jmath}} \quad]$$

द्वितीय स्थान से लेकर इतने-इतने वृद्धिस्थान होनेपर एक-एक अपूर्व स्पर्धक होता है । इसतरह एक गुणहानि में जितने स्पर्धक पाये जाते हैं उतनीमात्र स्पर्धकशलाका ऐसी $\bar{\bar{\jmath}}$; इसलिए इतने अपूर्व स्पर्धक बढ़नेपर योगस्थान दोगुणा होता है । इसतरह दोगुणा-दोगुणा होते-होते उत्कृष्ट योगस्थान होता है, उसकी रचना —

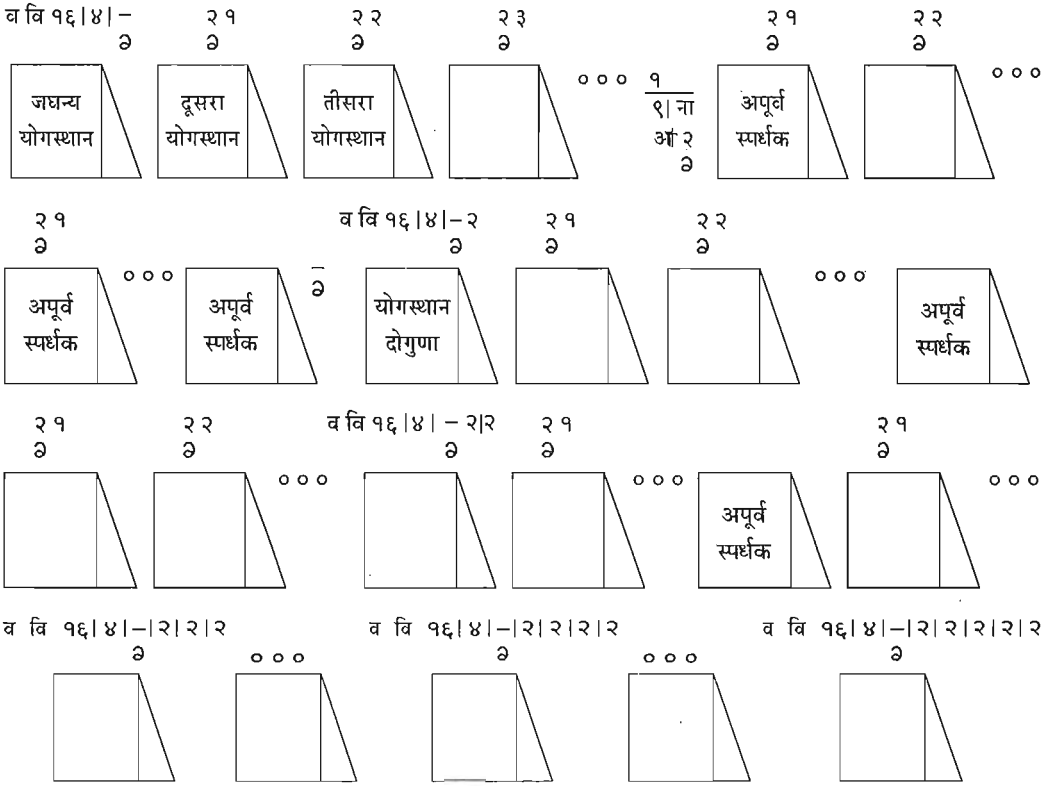

यहां योगस्थान की संदृष्टि ऐसी □\ क्योंकि योगस्थान के वर्गणाओं में समान अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्ग क्रम से हीन प्रमाणरूप पाये जाते हैं । सूच्यंगुल के असंख्यातवें

भाग की संदृष्टि ऐसी $\frac{२}{ə}$ इतने जघन्य स्पर्धक एक बार, दो बार, तीन आदि बार बढ़नेपर दूसरा, तीसरा, चौथा आदि स्थान होते हैं । पुनश्च इसीतरह $\frac{९|ना}{अ|२}$ स्थान होनेपर अपूर्व स्पर्धक होता है । आगे भी इसी तरह $\frac{-}{ə}$ स्थान होनेपर अपूर्व स्पर्धक होता है । इसीप्रकार $\frac{-}{ə}$ अपूर्व स्पर्धक होनेपर जघन्यस्थान जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग से गुणित जघन्य स्पर्धक मात्र ऐसा $\frac{व\ वि\ १६|४|-}{ə}$ वह दोगुणा होता है । इसी पूर्वोक्त प्रकार होनेपर उससे भी दोगुणा होता है । ऐसे ही दोगुणा-दोगुणा होता है उसकी संदृष्टि जानना ।

यहां त्रैराशिक – प्रमाणराशि सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्यस्पर्धक मात्र, फलराशि स्थान एक; इच्छाराशि जघन्य स्थान से लेकर दोगुणा-दोगुणा करनेपर लब्धराशि सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से भाजित जगत्श्रेणी का असंख्यातवां भाग से लेकर दोगुणा-दोगुणा होती है । जहां-जहां दोगुणा-दोगुणा होता है वहां-वहां स्थानों का प्रमाण ऐसा आता है –

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्धस्थान भेद
$\frac{व\ वि\ १६|४|२}{ə}$	१	$\frac{व\ वि\ १६|४|-}{ə}$	$\frac{-\ १}{ə\ २\ ə}$
$\frac{व\ वि\ १६|४|२}{ə}$	१	$\frac{व\ वि\ १६|४|-|२}{ə}$	$\frac{-\ २}{ə\ २\ ə}$
$\frac{व\ वि\ १६|४|२}{ə}$	१	$\frac{व\ वि\ १६|४|-|२|२}{ə}$	$\frac{-\ २|२}{ə\ २\ ə}$

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्धस्थान भेद
व वि १६ | ४ | २ ∂	१	व वि १६ | ४ | – | २ | २ ∂	– २ | २ | २ ∂ २ ∂
व वि १६ | ४ | २ ∂	१	व वि १६ | ४ | – | २ | २ | २ ≡∂ २ ∂	– २ | २ | २ | २ ∂ २ ∂

यहां अंकसंदृष्टि से अंतधन ऐसा – २ \| २ \| २ \| २ ∂ २ ∂ , इसको गुणकार दो से गुणा करनेपर ऐसा – २ \| २ \| २ \| २ \| २ ∂ २ ∂ इन दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर ऐसा – ३२ ∂ २ ∂ इसमें से आदि ऐसा – १ ∂ २ ∂ घटानेपर ऐसा – ३१ ∂ २ ∂ सर्व योगस्थान विकल्प होते हैं ।

[*विशेषार्थ :*

∵ व वि १६ \| ४ \| २ ∂ अवि. प्रति. बढ़नेपर १ स्थान

∴ व वि १६ \| ४ \| – ∂ अवि. प्रति. बढ़नेपर व वि १६ \| ४ \| – ∂ व वि १६ \| ४ \| २ ∂ = – ∂ २ ∂

∴ व वि १६ \| ४ \| – \| २ ∂ अवि. प्रति. बढ़नेपर – २ ∂ २ ∂

∴ व वि १६ \| ४ \| – \| २ \| २ ∂ अवि. प्रति. बढ़नेपर – २ \| २ ∂ २ ∂

∴ व वि १६।४।–।२।२ अवि. प्रति. बढ़नेपर – २।२।२
ə

∴ व वि १६।४।–।२।२।२ अवि. प्रति. बढ़नेपर – २।२।२ = – १६
ə ə

इन सबका जोड़ देनेपर कुल योगस्थानों की संख्या आयेगी ।

१ + २ + ४ + ८ + १६ = ३१

सूत्र [(अंतधन १६ × गुणकार २) – आदिधन १] ÷ (गुणकार २) – १

$$\frac{१६ \times २ - १}{१} = \frac{३२ - १}{१} = ३१$$

– १६ × २ – १ – ३१
ə २ – ə २ = ə २ *सर्व योगस्थान विकल्प होते हैं ।*]
ə ə ə

इसको एक कम गुणकार का भाग देनेपर – ३१ आते हैं, इसको आदि ऐसा
ə २
ə

– १ उसका भाग देनेपर ३१ हुये उसमें एक जोड़नेपर ३२ हुये, उसको जितनी
ə २
ə

बार गुणकार दो का भाग इच्छाराशि और दोगुणा-दोगुणा उसप्रमाण ३२
२।२।२।२।२

नानागुणहानि होती है । इसीतरह पूर्वोक्त प्रकार से प्रमाणराशि, फलराशि करके अंत में दो से भाजित होता है ।

पुनश्च पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग छे का आधा करके उससे जघन्य
ə

योगस्थान को गुणित करनेपर उत्कृष्ट योगस्थान ऐसा व वि १६।४।–। छे होता
ə ə।२

है । इसको इच्छाराशि करनेपर लब्धमात्र अंतधन ऐसा $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{छे}}}$ ।

[*जघन्य योगस्थान = आदिधन =* $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{व वि १६}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{४}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}$ *अवि. प्रति. बढ़नेपर* $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}$

उत्कृष्ट योगस्थान = अंतधन = $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{व वि १६}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{४}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{छे}}}$ *अवि. प्रति. बढ़नेपर* $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{छे}}}$

$$\textit{कुल योगस्थान} = \frac{\text{अंतधन} \times २ - \text{आदि}}{२ - १}$$]

अंतधन को गुणकार दो से गुणा करनेपर ऐसा $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{छे}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{२}}$ । यहां दो का अपवर्तन करनेपर ऐसा $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{छे}}}$ । इसमें से आदि $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{१}}$ को घटाने के लिये आगे

का गुणकार $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{छे}}}$ में से एक घटानेपर ऐसा $\overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\overline{\text{छे}-१}}}$ । इसको एक कम उत्तर एक

का भाग देनेपर भी उतना ही रहा, इसलिए इतने सर्व योगस्थानों के भेद जानना ।

$$\left[\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\text{छे}}} \frown \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{१}} = \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{-}}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{|}}\ \overset{\text{ए}}{\underset{\text{ए}}{\overline{\text{छे}-१}}}\ \right]$$

इस प्रमाण को एक कम गुणकार एक से गुणा करके उतने ही रहे, उसको प्रभव

अर्थात् आदि ऐसा $\frac{-}{\text{ə}\,\text{२}\,\text{ə}}$ १ उसका भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{१ə}}{\text{ə}\,\text{२}\,\text{ə}}$ | $\frac{\text{१ə}}{\text{छे}}$ यहां भाज्य और

भागहार में समानपना देखकर अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{१ə}}{\text{छे}}$ आया इसमें एक जोड़ने से

$\frac{\text{१ə}}{\text{ə}}$ छे आये । इसको जितनी बार दो का भाग दे सकते हैं उस प्रमाण नानागुणहानिशलाका असंख्यात से हीन पल्य की वर्गशलाकामात्र ऐसी व – ४ होती है । यहां असंख्यात की संदृष्टि चार का अंक जानना ।

[***विशेषार्थ*** *: जितनी बार दो का भाग दे सकते हैं का अर्थ है उस संख्या का अर्धच्छेद निकालना । हमें* $\frac{\text{१ə}}{\text{छे}}$ *का अर्धच्छेद निकालना है । छे के अर्धच्छेद में से* ə *के अर्धच्छेद घटाने से यह राशि मिलेगी । छे अर्थात् पल्य के अर्धच्छेद; अर्धच्छेद के अर्धच्छेद वर्गशलाका होती है । छे के अर्धच्छेद पल्य की वर्गशलाका है और* ə *के अर्धच्छेद असंख्यात अर्थात् ४ है । इसलिए* $\frac{\text{१ə}}{\text{छे}}$ *के अर्धच्छेद* व – ४ *आते हैं*]

उनमें ऊर्ध्वरूप चौरासी स्थानों के चौरासी कोठे करके उनके पार्श्व में रचना करना । वहां सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी की संदृष्टि क्रम से इसप्रकार है –

सू	बा	द्वी	त्री	च	अ	सं
०	^	० ०	० ० ०	० ० ० ०	० ० ० ० ०	० ० ० ० ० ०

पुनश्च जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट की ऐसी **ज|म|उ** जानना । पुनश्च रचना के दक्षिण भाग में लब्धिअपर्याप्त के, उत्तर भाग में निर्वृत्तिअपर्याप्त और पर्याप्त के उपपाद, एकांतानुवृद्धि और परिणाम योगस्थानों की रचना जानना । पुनश्च चौरासी स्थानों में से जो स्थान हो उतने की वहां अंकसंदृष्टि जानना । जैसे, ऐसी $\overset{\text{ज}}{\underset{१}{०}}$ संदृष्टि द्वारा सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य उपपादयोगरूप प्रथम स्थान जानना । ऐसी $\overset{\wedge}{\underset{४}{\text{ज}}}$ संदृष्टि द्वारा बादर एकेन्द्रिय का जघन्य उपपादरूप चौथा स्थान जानना । ऐसी $\overset{\text{उ}}{\underset{८४}{०\,०\,०\,०\,०\,०\,०}}$ संदृष्टि द्वारा संज्ञी पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणामयोगरूप चौरासीवां स्थान जानना । इसीप्रकार अन्य की संदृष्टि जानना । वहां प्रथम स्थान से लेकर क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग का गुणकार जानना ।

पुनश्च ऊर्ध्वरचना के बीच-बीच श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र स्थानों का कोई स्वामी नहीं है । ऐसे अंतरालरूप स्थानों की ऐसी $\underset{\text{अं}}{-}$ संदृष्टि जानना । पुनश्च उपपाद और एकांतानुवृद्धि योगों की स्थिति तो एक समयमात्र ही है और परिणामयोग की स्थिति दो समय से लेकर आठ समय तक है । इसलिए परिणामयोग के काल की कालयवमध्य रचना होती है, वहां पर्याप्त द्वीन्द्रिय का जघन्य स्थान ऐसा **व वि १६|४|**$\underset{\text{ञ}}{-}$, उससे पल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भागगुणा संज्ञी का उत्कृष्ट योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार

ऐसा व वि १६ | ४ | − | छे । इसमें से आदि घटानेपर ऐसा व वि १६ | ४ | − | छे
ə ə ə ə

तथा स्थान-स्थान प्रति वृद्धि का प्रमाण ऐसा व वि १६ | ४ | २ उसका भाग देनेपर
ə

ऐसा − | छे । इसमें एक जोड़नेपर सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा − | छे इसको
ə २ ə ə २ ə
ə ə

पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा − | छे प इतने
ə २ ə प ə
ə ə

दो समय निरंतर प्रवर्तनेवाले स्थान हैं । अवशेष एकभाग का बहुभाग ऐसा

− | छे प इतने तीन समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं । अवशेष के
ə २ ə प प ə
ə ə ə

बहुभाग के आधे ऐसे − | छे प नीचे के चार समय निरंतर प्रवर्तनेवाले
ə २ ə प प प ə २
ə ə ə ə

योगस्थान हैं और ऐसे ही आधे − | छे प ऊपर के चार समय
ə २ ə प प प ə २
ə ə ə ə

निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं । पुनश्च अवशेष के बहुभाग के आधे ऐसे

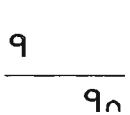

नीचे के पांच समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं

और आधे ऐसे

ऊपर के पांच समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं । पुनश्च अवशेष के बहुभाग के आधे ऐसे

नीचे के और ऐसे ही आधे ऊपर के छह समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं ।

पुनश्च अवशेष के बहुभाग के आधे ऐसे

नीचे के और ऐसे ही आधे ऊपर के सात समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं । अवशेष एकभाग ऐसा

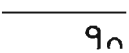

१ इतने निरंतर आठ समय प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं ।

[***विशेषार्थ*** : *ऊपर बताये हुए स्थानों को दुबारा देखते हैं —*

निरंतर दो समयवाले योगस्थान (ऊपर ही हैं, नीचे नहीं)

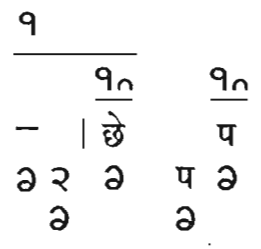

निरंतर तीन समयवाले योगस्थान (ऊपर ही हैं, नीचे नहीं)

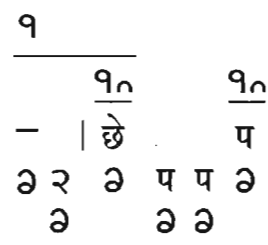

निरंतर चार समयवाले योगस्थान (नीचे आधे, ऊपर आधे)

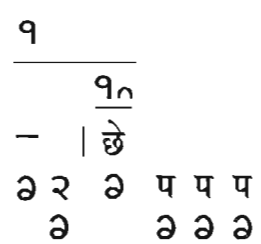

निरंतर पांच समयवाले योगस्थान (नीचे आधे, ऊपर आधे)

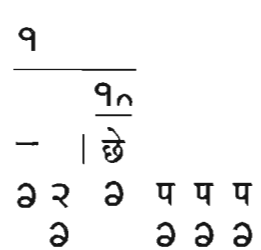

निरंतर छह समयवाले योगस्थान (नीचे आधे, ऊपर आधे)

$$\frac{१}{\frac{\frac{१०}{\text{छे}}}{\text{ə}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \frac{१०}{\text{प}}\ \text{ə}\ \text{२}}$$

निरंतर सात समयवाले योगस्थान (नीचे आधे, ऊपर आधे)

$$\frac{१}{\frac{\frac{१०}{\text{छे}}}{\text{ə}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \frac{१०}{\text{प}}\ \text{ə}\ \text{२}}$$

निरंतर आठ समयवाले योगस्थान (मध्य में हैं)

$$\frac{१}{\frac{\frac{१०}{\text{छे}}}{\text{ə}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ १\ \text{ə}\ \text{२}}$$

पुनश्च यहां पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि बत्तीस का अंक ($\frac{\frac{१०}{\text{छे}}}{\text{ə}} = ३१$) करनेपर पूर्वोक्त प्रकार से आदि में से अंत को घटाकर वृद्धि का भाग देकर एक जोड़नेपर योगस्थानों के भेद ऐसे $\frac{१}{\frac{-}{\text{ə}}\ \frac{३१}{\text{ə}\ \text{२}}}$ । इनकी पूर्वोक्त रचना करके बीच में आठ समयवालों के, ऊपर और नीचे सात समय आदि निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थानों का प्रमाण लिखनेपर यव नामक अन्न के आकार कालयवमध्य रचना ऐसी होती है –

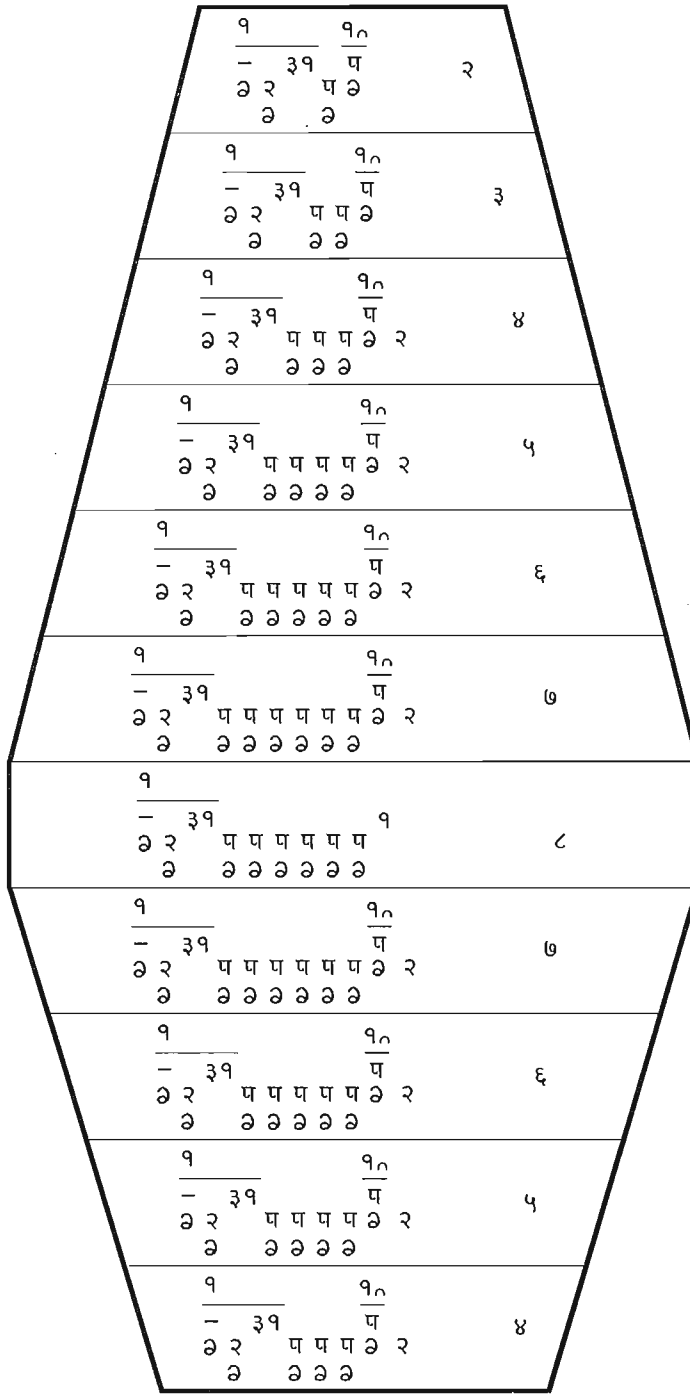
१ १८
३१ प २
ə २ प ə
ə ə
१ १८
३१ प ३
ə २ प प ə
ə ə ə
१ १८
३१ प ४
ə २ प प प ə २
ə ə ə ə
१ १८
३१ प ५
ə २ प प प प ə २
ə ə ə ə ə
१ १८
३१ प ६
ə २ प प प प प ə २
ə ə ə ə ə ə
१ १८
३१ प ७
ə २ प प प प प प ə २
ə ə ə ə ə ə ə
१
३१ १
ə २ प प प प प प
ə ə ə ə ə ə ə ८
१ १८
३१ प ७
ə २ प प प प प प ə २
ə ə ə ə ə ə ə
१ १८
३१ प ६
ə २ प प प प प ə २
ə ə ə ə ə ə
१ १८
३१ प ५
ə २ प प प प ə २
ə ə ə ə ə
१ १८
३१ प ४
ə २ प प प ə २
ə ə ə ə

यहां जितनी बार बहुभाग का ग्रहण हुआ उतनी बार पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग जानना । तथा बहुभाग में एक कम प्रतिभाग का गुणकार जानना और एक भाग में एक का गुणकार जानना । दो, तीन आदि समयों की संदृष्टि दो, तीन आदि अंक जानना ।

पुनश्च जीवयवमध्य रचना में अंकसंदृष्टि की अपेक्षा कथन तो टीका में किया है वह जानना । अर्थसंदृष्टि की अपेक्षा यहां करते हैं –

यहां संख्यात से भाजित प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर उसप्रमाण पर्याप्त त्रसराशि ऐसी $\frac{=}{४/५}$ वह तो द्रव्य जानना । पुनश्च जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र $\frac{-}{ज}$ जघन्य स्पर्धकरूप जघन्य उपपादस्थान से चौरासी स्थानों की अपेक्षा पचहत्तर बार पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर द्वीन्द्रिय का जघन्य परिणामयोगस्थान ऐसा $\frac{-}{ज\ ज}$ **प ७५** । इसका अपवर्तन करनेपर जगत्श्रेणी का असंख्यातवां भागमात्र ही रहा सो ऐसा $\frac{-}{ज}$ । इसमें सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र जोड़नेपर अनंतर स्थान ऐसा $\frac{\frac{२}{ज}}{\frac{-}{ज}}$ । इसीप्रकार बढ़नेपर पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग से जघन्य को गुणा करनेपर संज्ञी पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणामयोगस्थान ऐसा **व वि १६ | ४ | – | छे** । यहां पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि $\frac{-}{ज\ ज}$ बत्तीस का अंक तथा जघन्य स्पर्धक का सर्वत्र सद्भाव देखकर नहीं लिखा तब अंतस्थान ऐसा $\frac{-}{ज}$ **३२** इसमें से आदि ऐसा $\frac{-}{ज}$ **१** घटानेपर ऐसा $\frac{-}{ज}$ **३१** होता है । इसको वृद्धि का प्रमाण ऐसा $\frac{२}{ज}$ उसका भाग देनेपर ऐसा $\frac{-}{ज\ \frac{२}{ज}}$ **३१** होता है । इसमें एक मिलानेपर

त्रस जीवों के समस्त परिणामयोगस्थान ऐसे $\frac{१}{\frac{-}{अ}\ \frac{}{अ}}$ ३१ होते हैं । इसे यहां स्थिति जानना ।

[***विशेषार्थ*** : *पर्याप्त त्रसराशि को द्रव्य कहा, समस्त परिणामयोगस्थानों को स्थिति कहा ।*]

पुनश्च *(नानागुणहानि)* पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग ऐसी $\frac{छे}{अ}$ उसको असंख्यात का भाग देकर एकभाग ऐसा $\frac{छे}{अ\ अ}$ १ जुदा रखकर अवशेष बहुभाग ऐसा $\frac{१ऊ}{छे\ अ}$ होता है । उसको दो का भाग देकर नीचे की नानागुणहानिशलाका का प्रमाण ऐसा $\frac{१ऊ}{छे\ अ\ अ\ २}$ होता है । पुनश्च आधा ऐसा $\frac{१ऊ}{छे\ अ\ अ\ २}$ उसमें जुदा रखा हुआ एक भाग जोड़ना । इसके और उसके अन्य हार *(छेद)* समान देखकर दो से समच्छेद करनेपर ऐसा $\frac{छे\ २}{अ\ अ\ २}$ हुआ । सो इसके और मूलराशि के $\frac{छे}{}$ को समान देखकर आगे के गुणकार के ऊपर एक कम की संदृष्टि थी $\left(\frac{१ऊ}{अ}\right)$ वहां एक अधिक की $\left(\frac{१}{अ}\right)$ संदृष्टि करनेपर ऊपर के नानागुणहानिशलाका का प्रमाण ऐसा $\frac{छे\ \frac{१}{अ}}{अ\ अ\ २}$ होता है । इन दोनों को मिलानेपर नानागुणहानिशलाका $\frac{छे}{अ}$ होती है ।

[***विशेषार्थ*** : *नानागुणहानि* $\frac{छे}{अ}$ *इसको असंख्यात का भाग देकर एकभाग ऐसा* $\frac{छे}{अ\ अ}$

और बहुभाग ऐसा $\text{छे}\ \frac{१८}{\text{अ}}$
$\text{अ}\ \text{अ}$

नीचे की नानागुणहानि = बहुभाग का आधा $\text{छे}\ \frac{१८}{\text{अ}}$
$\text{अ}\ \text{अ}\ २$

ऊपर की नानागुणहानि = बहुभाग का आधा + एकभाग

$$\text{छे}\ \frac{१८}{\text{अ}}\ \text{अ}\ २ \quad + \quad \text{छे}\ \text{अ}\ \text{अ} \times २ \quad = \quad \text{छे}\ \frac{१}{\text{अ}}\ \text{अ}\ \text{अ}\ २$$

यहां दोनों में $\text{छे}\ \text{अ}$ *समान है*
$\text{अ}\ \text{अ}\ २$

$$\frac{१८}{\text{अ}} + २ = \text{अ} - १ + २ = \text{अ} + १ = \frac{१}{\text{अ}}$$

नीचे की गुणहानि + ऊपर की गुणहानि = नानागुणहानि = $\frac{\text{छे}}{\text{अ}}$]

इस नानागुणहानि $\frac{\text{छे}}{\text{अ}}$ को प्रमाणराशि करके, पूर्वोक्त स्थिति को फलराशि करके एक गुणहानि को इच्छाराशि करनेपर

प्र	फ	इ
छे	$\frac{१}{\text{अ}\ \text{अ}\ २}$	१
अ	$-\ ३१$	

लब्धराशि ऐसी $\frac{१}{-\ ३१}$
$\text{अ}\ \text{अ}\ २$
अ

छे यह गुणहानि आयाम है ।
अ

इसकी लघुसंदृष्टि ऐसी **गु** है । पुनश्च अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्य का असंख्यातवां भाग ऐसा प । वहां तीन बार और दो बार असंख्यात से भाजित पल्यमात्र नीचे की
अ

और ऊपर की अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी $\frac{प}{ə\ ə\ ə}$ नीचे की और $\frac{प}{ə\ ə}$ ऊपर की ।

[***विशेषार्थ*** : *स्थिति = योगस्थानों की संख्या ।*

स्थिति ÷ नानागुणहानि = गुणहानि आयाम लघुसंदृष्टि गु ।]

इनकी रचना —

द्रव्य	स्थिति	गुणहानिआयाम	नानागुणहानिशलाका		अन्योन्याभ्यस्तराशि	
$=\frac{४}{५}$	$\frac{१}{ə\ २}-३१$ $ə$	$\frac{१}{ə\ २}-३१$ $ə$ $छे$ $ə$	$\frac{छे}{ə}$		$\frac{प}{ə}$	
			ऊपर की	नीचे की	ऊपर की	नीचे की
			$छे\ \frac{१}{ə}$ $ə\ ə\ २$	$छे\ \frac{१०}{ə}$ $ə\ ə\ २$	$\frac{प}{ə\ ə}$	$\frac{प}{ə\ ə\ ə}$

यहां द्रव्य को किंचित् कम तीनगुणा गुणहानि ऐसा **गु ३ –** उसका भाग देनेपर यवाकार रचना का मध्य ऐसा $=\frac{४}{५}\ |\ गु\ ३ -$ इसको दोगुणहानि **गु २** का भाग देनेपर चय ऐसा $=\frac{४}{५}\ |\ गु\ ३ -\ |\ गु\ २$ आता है । इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर यवमध्य में निषेक ऐसा $=\frac{गु\ २}{४\ |\ गु\ ३ -\ |\ गु\ २}{५}$ इसमें से एक-एक चय घटाते हुये एक कम गुणहानिमात्र चय ऐसे $=\frac{१०}{गु}{४\ |\ गु\ ३ -\ |\ गु\ २}{५}$ घटाना । यहां अन्य सर्व समान

देखकर भाज्य का गुणकार दोगुणहानि में से एक कम गुणहानि घटानेपर [गु २ − (गु − १) = गु + १ = $\frac{१}{गु}$] एक अधिक गुणहानि अवशेष रहा उसको लिखनेपर अंत निषेक ऐसा = $\frac{१}{गु}$ इसमें से एक चय घटाने के लिये

$$४ \mid गु\ ३ - \mid गु\ २$$
$$५$$

गुणकार के ऊपर एक अधिक था उसे दूर करके द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक ऐसा = गु होता है ।

$$४ \mid गु\ ३ - \mid गु\ २$$
$$५$$

[***विशेषार्थ*** : *यवमध्यनिषेक* = गु २ / ४ | गु ३ − | गु २ / ५ *चय* = ४ | गु ३ − | गु २ / ५

१ ला निषेक − चय = दूसरा निषेक

$$= \text{गु}\ २ \quad ४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \quad ५ \frown = \quad ४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \quad ५ = = \frac{१८}{\text{गु}\ २} \quad ४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \quad ५$$

ऊपर की पहली गुणहानि का अंतनिषेक = पहला निषेक − (चय × १ कम गुणहानिआयाम)

$$= \text{गु}\ २ \quad ४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \quad ५ \frown = \frac{१८}{\text{गु}} \quad ४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \quad ५ = = \frac{१}{\text{गु}} \quad ४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \quad ५$$

द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक = १ ली गुणहानि का अंतनिषेक − चय

$$= \frac{१}{\text{गु}} \quad = \quad = \text{गु}$$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \overset{\frown}{} \text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} = \text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \quad]$$
$$\text{५} \qquad\qquad\qquad\qquad \text{५} \qquad\qquad\qquad\qquad \text{५}$$

यहां संदृष्टि के लिये भाज्य और भागहार को दोगुणा करनेपर प्रगट यवमध्य के आधा प्रमाण ऐसा $= \underset{\text{५}}{\overset{\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid २}{\text{गु २}}}$ होता है । ऊपर यहां पूर्वचय से आधा प्रमाण लेनेपर चय ऐसा $= \underset{\text{५}}{\overset{\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid २}{}}$ होता है । अब पूर्वोक्त प्रकार से एक-एक चय घटते हुये, एक कम गुणहानिमात्र चय घटनेपर द्वितीय गुणहानि का अंत निषेक ऐसा $= \underset{\text{५}}{\overset{\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid २}{\frac{१}{\text{गु}}}}$ इसमें से एक चय घटानेपर तीसरी गुणहानि का प्रथम निषेक ऐसा $= \underset{\text{५}}{\overset{\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid २}{\text{गु}}}$ होता है । यहां भी भाज्य भागहार को दो से गुणा करनेपर द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक से आधा प्रमाण ऐसा $= \underset{\text{५}}{\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid २ \mid २ \overset{\text{गु २}}{}}$ होता है । यहां पूर्व चय से आधा प्रमाणवाला चय ऐसा $= \underset{\text{५}}{\overset{\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid २ \mid २}{}}$ होता है । एक-एक चय घटते हुये एक कम गुणहानिमात्र चय घटनेपर तीसरी गुणहानि का अंत निषेक ऐसा

$= \frac{१}{\text{गु}}$ होता है । इसमें से एक चय घटनेपर चतुर्थ गुणहानि का
४ | गु ३ − | गु २ | २ | २
५

प्रथम निषेक ऐसा $= \frac{\text{गु}}{४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \mid २ \mid २}$ होता है । यहां भाज्य और भागहार
५

को दो से गुणा करनेपर तृतीय गुणहानि के प्रथम निषेक से आधा प्रमाण ऐसा
$= \frac{\text{गु}\ २}{४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \mid २ \mid २ \mid २}$ प्रगट होता है । यहां पूर्व चय से आधा प्रमाणवाला
५

चय ऐसा $= \frac{}{४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \mid २ \mid २ \mid २}$ होता है । ऐसा एक-एक चय घटते हुये
५

चौथी गुणहानि का अंत निषेक ऐसा $= \frac{१}{\text{गु}}$ होता है ।
$४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \mid २ \mid २ \mid २$
५

इसीतरह पंचमादि गुणहानियों में आधा-आधा होकर अंत गुणहानि में एक कम ऊपर की नानागुणहानि प्रमाण दो अंकों का भागहार होता है । उनको परस्पर गुणा करनेपर ऊपर की अन्योन्याभ्यस्तराशि से आधा ऐसा $\frac{प}{ə\ ə \mid २}$ भागहार होता है । और अंत निषेक में एक अधिक गुणहानि का गुणकार होता है । इसतरह अंत गुणहानि के अंत

निषेक की संदृष्टि ऐसी $= \frac{१}{\text{गु}}$ होती है । इसतरह ऊपर की
$४ \mid \text{गु}\ ३ - \mid \text{गु}\ २ \mid \frac{प}{ə\ ə \mid २}$
५

गुणहानियों में रचना जानना ।

[*विशेषार्थ :*

ऊपर की अंत गुणहानि का प्रथम निषेक = $\frac{\text{गु २}}{\text{४ | गु ३ − | गु २ | प}}$
५ ३ ३ | २

ऊपर की अंत गुणहानि का अंत निषेक = $\frac{\frac{१}{\text{गु}}}{\text{४ | गु ३ − | गु २ | प}}$]
५ ३ ३ | २

पुनश्च ऊपर की गुणहानियों के निषेकों से अपना-अपना एक-एक चय कम नीचे की गुणहानियों के निषेक हैं । ऐसी = संदृष्टि के आगे जो गुणकार है उसमें से एक घटाने से एक चय का घटना होता है । सो प्रथम निषेक में **गु २** ऐसी संदृष्टि के ऊपर एक घटानेपर तथा अंत निषेक में ऐसी $\frac{१}{\text{गु}}$ संदृष्टि ऊपर एक अधिक था उसको दूर करनेपर नीचे की गुणहानियों में संदृष्टि होती है । जैसी यवमध्य से लेकर ऊपर की गुणहानियों में रचना कही वैसी ही नीचे की गुणहानियों में रचना होती है । यहां भी सर्व कथन पूर्ववत् जानना । विशेष इतना है कि यहां नीचे की गुणहानिप्रमाण गुणहानियों की रचना होती है । इसलिए अंत में एक कम नीचे की नानागुणहानिप्रमाण दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर नीचे की अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा ऐसा **प** है, उसका भागहार होता है । इसलिए अंत निषेक की संदृष्टि ऐसी
३ ३ ३ | २
= गु है । यहां गुणकार इस = संदृष्टि के आगे और
४ | गु ३ − | गु २ | प
५ ३ ३ ३ | २
भागहार ऐसी **४** संदृष्टि के आगे लिखना । अब इनका जोड़ कहते हैं —

(ऋण को कम नहीं करते तो ऊपर की और नीचे की गुणहानि और निषेक समान होंगे । इसलिए ऋण का अलग से जोड़ देंगे और पश्चात् कम करेंगे ।)

इसतरह नीचे की प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेकरूप मुख ऐसा $= \begin{matrix} = & \text{गु २} \\ ४ & \text{गु ३ –} \\ ५ & \end{matrix} \Big| \text{गु २}$

है तथा अंत निषेकरूप भूमि ऐसी $= \dfrac{१}{\begin{matrix} ४ & \text{गु ३ –} \\ ५ & \end{matrix} \Big| \text{गु २}}$ है ।

इनको जोड़ने के लिये दोगुणहानि और एक अधिक गुणहानि मिलाकर एक अधिक तीन गुणहानि का गुणकार करनेपर जोड़ ऐसा $= \dfrac{१}{\begin{matrix} ४ & \text{गु ३ –} \\ ५ & \end{matrix} \Big| \text{गु ३ –} \Big| \text{गु २}}$ आधा करनेपर ऐसा $= \dfrac{१}{\begin{matrix} ४ & \text{गु ३ –} \\ ५ & \end{matrix} \Big| \text{गु ३ –} \Big| \text{गु २} \Big| २}$ होता है । इसको गच्छ अर्थात् गुणहानि से गुणा करनेपर नीचे की प्रथम गुणहानि का सर्वद्रव्य ऐसा $= \dfrac{१}{\begin{matrix} ४ & \text{गु ३ –} \\ ५ & \end{matrix} \Big| \text{गु ३ –} \Big| \text{गु २} \Big| २} \Big| \text{गु}$ होता है ।

[***विशेषार्थ*** : *ऋण को घटाये बिना नीचे की नानागुणहानि का द्रव्य निकालने के लिये सर्वप्रथम पहली गुणहानि का द्रव्य निकालते हैं ।*

प्रथम गुणहानि का द्रव्य $= \dfrac{\text{प्र. गु. का प्रथम निषेक} + \text{प्र. गु. का अंत निषेक}}{२} \times \text{गुणहानि आयाम}$

$$= \left[\begin{matrix} = & \text{गु २} \\ ४ & \text{गु ३ –} \\ ५ & \end{matrix} \Big| \text{गु २} + \dfrac{१}{\begin{matrix} ४ & \text{गु ३ –} \\ ५ & \end{matrix} \Big| \text{गु ३ –} \Big| \text{गु २}} \right] \times \frac{\text{गु}}{२}$$

$$= = \frac{१}{\text{गु ३}} \mid \text{गु}$$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid २$$
$$\text{५}$$

]

ऐसे ही नीचे की अंत गुणहानि में

मुख (प्रथम निषेक) ऐसा $= \text{गु २}$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid \text{प}$$
$$\text{५} \qquad\qquad \text{ə ə ə} \mid २$$

भूमि (अंत निषेक) ऐसा $= \frac{१}{\text{गु}}$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid \text{प}$$
$$\text{५} \qquad\qquad \text{ə ə ə} \mid २$$

इनका जोड़ देनेपर ऐसा $= \frac{१}{\text{गु ३}}$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid \text{प}$$
$$\text{५} \qquad\qquad \text{ə ə ə} \mid २$$

आधा करनेपर ऐसा $= \frac{१}{\text{गु ३}}$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु २} \mid \text{प } २$$
$$\text{५} \qquad\qquad \text{ə ə ə} \mid २$$

गच्छ से गुणा करनेपर ऐसा $= \frac{१}{\text{गु ३}} \mid \text{गु}$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid \text{गु } \cancel{२} \mid \text{प } २$$
$$\text{५} \qquad\qquad \text{ə ə ə} \mid \cancel{२}$$

अंत गुणहानि का द्रव्य होता है । *(दो का और गु का अपवर्तन करनेपर ऐसा होता है ।)*

$$= \frac{१}{\text{गु ३}}$$
$$\text{४} \mid \text{गु ३} - \mid २ \mid \text{प}$$
$$\text{५} \qquad\qquad \text{ə ə ə}$$

[***विशेषार्थ*** *: हमें नानागुणहानि का द्रव्य निकालना है । उसके लिये सभी गुणहानियों का जोड़ देते हैं । उसके लिये अंतधणं गुणगुणियं सूत्र के अनुसार [(प्रथम गुणहानि का द्रव्य × २) — अंतिम गुणहानि का द्रव्य] ÷ १ करते हैं ।*]

पुनश्च यहां अंतधणं गुणगुणियं आदि सूत्र द्वारा अंतधन अर्थात् प्रथम गुणहानि के द्रव्य को दो से गुणा करनेपर ऐसा $= \frac{१}{\text{गु ३}} \mid \cancel{\text{गु २}}$ यहां दोगुणहानि का

$४ \mid \text{गु ३} - \mid \cancel{\text{गु २}} \mid २$

५

अपवर्तन करनेपर ऐसा $= \frac{१}{\text{गु ३}}$ होता है । इसमें से आदिधन अर्थात्

$४ \mid \text{गु ३} - \mid २$

५

अंत गुणहानि का द्रव्य घटाना । सो अपवर्तन किया हुआ आदिधन ऐसा

$= \frac{१}{\text{गु ३}}$ होता है । इस आदिधन के और इस अंतधन के

$४ \mid \text{गु ३} - \mid २ \mid \text{प}$

५ ə ə ə

अन्य हार समान देखकर ऐसे $\frac{\text{प}}{\text{ə ə ə}}$ हार से समच्छेद करनेपर अंतधन ऐसा

$= \frac{१}{\text{गु ३}} \quad \frac{\text{प}}{\text{ə ə ə}}$ होता है । अब इसके और उस आदिधन

$४ \mid \text{गु ३} - \mid २ \mid \text{प}$

५ ə ə ə

के अन्य समान देखकर अंतधन में भाज्य का गुणकार ऐसा $\frac{\text{प}}{\text{ə ə ə}}$ उसके ऊपर

एक कम करनेपर आदिधन रहित उस गुणकार से गुणित अंतधन ऐसा

$= \frac{१}{\text{गु ३}} \quad \frac{१\text{ə}}{\text{प}}$ होता है । इसको एक कम गुणकार एक का

$४ \mid \text{गु ३} - \mid २ \mid \text{प} \mid \text{ə ə ə}$

५ ə ə ə

भाग देनेपर भी ऐसा ही रहता है, यह सर्व नीचे की गुणहानियों का धन जानना । पुनश्च मिलाया हुआ ऋण गुणहानि-गुणहानि गुणित अपना-अपना चय प्रमाण है, इसलिए प्रथम गुणहानि में ऋण ऐसा = गु / ४ | गु ३ – | गु २ / ५ और अंत गुणहानि में ऋण ऐसा

= गु / ४ | गु ३ – | गु २ | प / ५ ० ० ० वह आदिधन है । यहां अंतधन को गुणकार दो से

गुणा करनेपर ऐसा = गु २ / ४ | गु ३ – | गु २ / ५ होता है । इसमें से पूर्वोक्त प्रकार से समच्छेद

करके आदिधन घटानेपर ऐसा = १० प / ४ | गु ३ – | ० ० ० | प / ५ ० ० ० समस्त नीचे की गुणहानियों

संबंधी ऋण होता है ।

[***विशेषार्थ :***

नीचे की गुणहानि का ऋणद्रव्य = गुणहानि का चय × गुणहानि आयाम

प्रथम गुणहानि का ऋणद्रव्य = ग्रु / ४ | गु ३ – | ग्रु २ / ५

द्वितीय गुणहानि का ऋणद्रव्य = ग्रु / ४ | गु ३ – | ग्रु २ | २ / ५ *पहली से आधा ।*

अंतिम गुणहानि का ऋणद्रव्य = ग्रु / ४ | गु ३ – | ग्रु ४ | प / ५ ० ० ० | ४

अंतधनं गुणगुणियं = ४ | गु ३ – | ५ ⌒ = ४ | गु ३ – | प ५ ə ə ə

समच्छेद करनेपर = ४ | गु ३ – | प ५ ə ə ə ⌒ प ə ə ə = ४ | गु ३ – | प ५ ə ə ə

नीचे की गुणहानियों का ऋणद्रव्य = ४ | गु ३ – | प ५ ə ə ə $\frac{१०}{प}$ ə ə]

पुनश्च ऊपर की प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक का द्रव्य ऐसा = ४ | गु ३ – | गु २ ५ गु २

अंतनिषेक का द्रव्य ऐसा = ४ | गु ३ – | गु २ ५ $\frac{१}{गु}$ है । इनको जोड़कर आधा करके गुणहानिरूप गच्छ से गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का सर्वद्रव्य ऐसा = ४ | गु ३ – | गु २ | २ ५ $\frac{१}{गु ३}$ | गु होता है । पुनश्च अंत गुणहानि का प्रथम निषेक ऐसा = ४ | गु ३ – | गु २ | प ५ ə ə | २ और अंतनिषेक ऐसा = ४ | गु ३ – | गु २ | प ५ ə ə | २ $\frac{१}{गु}$ है । इनको जोड़कर आधा करके गच्छ *(गुणहानि आयाम)* से गुणा करनेपर अंत गुणहानि का सर्वद्रव्य ऐसा

$$= \frac{१}{\text{गु ३}} \;|\; \text{गु}$$
$$४ \;|\; \text{गु ३} - |\; \text{गु २} \;|\; \text{प}$$
$$५$$

यहां प्रथम गुणहानि के द्रव्यरूप अंतधन को गुणकार

$$= \frac{१}{\text{गु ३}} \;|\; \cancel{\text{गु}} \;|\; \cancel{२}$$
$$४ \;|\; \text{गु ३} - |\; \cancel{\text{गु}} \;|\; \cancel{२} \;|\; २$$
$$५$$

दो से गुणा करनेपर ऐसा अपवर्तन करनेपर ऐसा

$$= \frac{१}{\text{गु ३}}$$
$$४ \;|\; \text{गु ३} - |२$$
$$५$$

होता है । इसमें से पूर्वोक्त प्रकार से अंत गुणहानि के द्रव्यरूप आदिधन घटाकर एक कम गुणकार एक का भाग देनेपर ऊपर की सर्व गुणहानियों का

द्रव्य ऐसा $= \frac{१}{\text{गु ३}}$ $\quad \frac{१०}{\text{प}}$ होता है ।

$$४ \;|\; \text{गु ३} - |२ \;|\; \text{प}$$
$$५ \qquad\qquad ७ ७$$

[*विशेषार्थ :*

ऊपर की पहिली गुणहानि का द्रव्य $=$ $\frac{\text{प्रथम निषेक का द्रव्य} + \text{अंत निषेक का द्रव्य}}{२} \times$ गुणहानि आयाम

$$= \frac{\text{गु २}}{४ \;|\; \text{गु ३} - |\; \text{गु २}} + \frac{= \frac{१}{\text{गु}}}{४ \;|\; \text{गु ३} - |\; \text{गु २}}$$
$$५ \qquad\qquad\qquad ५$$
$$\text{२} \qquad\qquad\qquad \times \text{गु}$$

$$= \frac{१}{\text{गु ३}} \;|\; \text{गु}$$
$$४ \;|\; \text{गु ३} - |\; \text{गु २} \;|\; २$$
$$५$$

अंत गुणहानि का द्रव्य

$$\frac{= \text{गु}\,२ \quad\quad = \frac{१}{\text{गु}}}{४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,\text{गु}\,२\,|\,\text{प} \quad + \quad ४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,\text{गु}\,२\,|\,\text{प}}{५ \qquad\qquad ə\,ə\,२ \qquad ५ \qquad\qquad ə\,ə\,|\,२} \times \text{गु}$$

$$२$$

$$= \frac{१}{\text{गु}\,३} \;|\,\text{गु} \qquad \longrightarrow \qquad = \frac{१}{\text{गु}\,३} \;|\,\text{गु}$$
$$४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,\text{गु}\,२\,|\,\text{प} \;|\,\cancel{२} \qquad\qquad ४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,\text{गु}\,२\,|\,\text{प}$$
$$५ \qquad\qquad ə\,ə\,|\,\cancel{२} \qquad\qquad ५ \qquad\qquad ə\,ə$$

अंतधनं गुणगुणियं .....

[(प्रथम गुणहानि का द्रव्य × २) – (अंत गुणहानि का द्रव्य)] ÷ १

$$= \frac{१}{\text{गु}\,३} \;|\,\cancel{\text{गु}}\,\cancel{२} \qquad\qquad = \frac{१}{\text{गु}\,३} \;|\,\cancel{\text{गु}}$$
$$४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,\cancel{\text{गु}}\,\cancel{२}\,|\,२ \qquad\qquad ४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,\cancel{\text{गु}}\,२\,|\,\text{प}$$
$$५ \qquad\qquad ५ \qquad\qquad ə\,ə$$

समच्छेद करनेपर

$$= \frac{१}{\text{गु}\,३} \qquad\qquad \text{प} \qquad\qquad = \frac{१}{\text{गु}\,३}$$
$$४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,२\,|\,\text{प} \;|\,ə\,ə \qquad\qquad ४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,२\,|\,\text{प}$$
$$५ \qquad\qquad ə\,ə \qquad\qquad ५ \qquad\qquad ə\,ə$$

$$= \frac{१}{\text{गु}\,३} \qquad\qquad \frac{१ \cap}{\text{प}}$$
$$४\,|\,\text{गु}\,३ - |\,२\,|\,\text{प} \;|\,ə\,ə \qquad\qquad]$$
$$५ \qquad\qquad ə\,ə$$

इनकी रचना ऐसी जानना – यहां ऊपर की सर्व गुणहानियों का द्रव्य, नीचे की गुणहानियों का द्रव्य और ऋण का सर्वधनरूप तीन राशि ऐसी –

ऊपर का सर्वद्रव्य	नीचे का सर्वद्रव्य	ऋण का सर्वद्रव्य
$= \frac{१}{गु ३} \quad \frac{१ ०}{प}$ ४ | गु ३ – | २ | प | ० ० ५ ० ०	$= \frac{१}{गु ३} \quad \frac{१ ०}{प}$ ४ | गु ३ – | २ | प | ० ० ० ५ ० ० ०	$= \quad \frac{१ ०}{प}$ ४ | गु ३ – | प | ० ० ० ५ ० ० ०

इनमें **प** / **० ०** या **प** / **० ० ०** गुणकार में एक कम है, सो जिस संख्या का यह गुणकार था उसप्रमाण ऋणराशि नीचे स्थापितकर गुणकार में से एक कम को दूर करके धनराशि ऊपर स्थापित करनेपर निम्नप्रकार होता है –

[***विशेषार्थ*** *:* $\frac{१ ०}{२ ०}$ **ल** *लिखा होगा तो उसका अर्थ है* **२० ल – १ ल** *इसमें* **२० ल** *धनराशि और* **१ ल** *ऋणराशि को अलग-अलग लिखेंगे । उसीप्रकार* $\frac{१ ०}{प}$ / **० ०** *गुणक है उसको* **गुण्य × प** / **० ०** *धनराशि और* **गुण्य × १** *ऋणराशि ऐसी दो राशि करेंगे ।*]

नाम	ऊपर की	नीचे की	ऋण की
धनराशि	$= \frac{१}{गु ३} \quad \frac{प}{\cancel{० ०}}$ ४ | गु ३ – | २ | प | ० ० ५ ० ०	$= \frac{१}{गु ३} \quad \frac{प}{\cancel{० ० ०}}$ ४ | गु ३ – | २ | प | ० ० ० ५ ० ० ०	$= \quad \frac{प}{\cancel{० ० ०}}$ ४ | गु ३ – | प | ० ० ० ५ ० ० ०
ऋणराशि	$= \frac{१}{गु ३} \quad १$ ४ | गु ३ – | २ | प ५ ० ०	$= \frac{१}{गु ३} \quad १$ ४ | गु ३ – | २ | प ५ ० ० ०	$= १$ ४ | गु ३ – | प ५ ० ० ०

धनराशि में **प** / **० ०** और **प** / **० ० ०** का अपवर्तन करनेपर ऐसा होता है –

नाम	ऊपर की	नीचे की	ऋण की
धनराशि	$= \frac{१}{गु ३}$ ४ | गु ३ – | २ ५	$= \frac{१}{गु ३}$ ४ | गु ३ – | २ ५	= ४ | गु ३ – ५
ऋणराशि	$= \frac{१}{गु ३}$ ४ | गु ३ – | २ | प ५ ० ०	$= \frac{१}{गु ३}$ ४ | गु ३ – | २ | प ५ ० ० ०	= १ ४ | गु ३ – | प ५ ० ० ०

यहां ऊपर और नीचे की धनराशि *(जो अब समान है)* मिलानेपर ऐसा होता है $= \frac{१}{गु ३}$ ४ | गु ३ – | २ दो का अपवर्तन करनेपर ऐसा $= \frac{१}{गु ३}$ होता है । यहां ४ | गु ३ – ५ गुणकार में $\frac{१}{गु ३}$ एक अधिक है इसलिये इसकी दो राशियां बनायेंगे जो इसप्रकार हैं – $= \frac{गु ३}{४ \mid गु ३ -}$ + $= $ ४ \| गु ३ – ५ । इस दूसरी राशि के समान ऋण की धनराशि है, इसलिए उसको घटानेपर धनराशि ऐसी हुयी $= \frac{गु ३}{४ \mid गु ३ -}$ ५ ।

अब ऋण की ऋणराशि धन होती है, अन्य भागहार की समानता देखकर दो से समच्छेद करनेपर ऐसा $= $ ४ \| गु ३ – \| प २ ५ ० ० ० होता है । उसको नीचे की ऋणराशि में से घटाना । अन्य की समानता देखकर गु ३ के ऊपर एक अधिक था उसमें से दो घटानेपर $\frac{१०}{गु ३}$ हुआ और नीचे की अवशेष ऋणराशि

ऐसी रही $= \frac{१०}{गु ३}$ । यह राशि ऊपर की ऋणराशि $४ | गु ३ - | २ | प$ $५ \quad ə ə ə$

$= \frac{१}{गु ३}$ के असंख्यातवें भाग जानकर इसको मिलाने के लिये ऊपर $४ | गु ३ - | २ | प$ $५ \quad ə ə$

की ऋणराशि के ऊपर साधिक की ऐसी । संदृष्टि करनेपर ऐसा हुआ $| = \frac{१}{गु ३}$ । इसको घटाने के लिये तीनगुणा गुणहानि के आगे किंचित् $४ | गु ३ - | २ | प$ $५ \quad ə ə$

कम की ऐसी – संदृष्टि करनेपर ऐसा $= \frac{\cancel{गु ३}}{४ | \cancel{गु ३} - ५}$ होता है । अपवर्तन करनेपर

ऐसा $= \frac{४}{५}$ पर्याप्त त्रसराशिमात्र सर्वद्रव्य का प्रमाण आता है ।

[***विशेषार्थ*** : *धनराशि* $= \frac{गु ३}{४ | गु ३ - ५}$ *ऋणराशि* $= \frac{|}{४ | गु ३ - ५} \frac{१}{गु ३} | २ | प \quad ə ə$ *घटानेपर*

ऐसा $= \frac{\cancel{गु ३}}{४ | \cancel{गु ३} - ५}$ *अपवर्तन करनेपर* $= \frac{४}{५}$ *सर्वद्रव्य आता है ।*]

इसप्रकार जीवयवमध्य रचना कही । यहां यवमध्यरूप जो मध्य योगस्थान, उसके ऊपर और नीचे एक-एक निषेक में जितना-जितना प्रमाण कहा उतने-उतने जीव एक-एक योगस्थान के धारक लोक में जानना । पुनश्च जीव यवरचना के निषेकों की रचना ऐसी होती है –

ऊपर की गुणहानियां

नाम	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	मध्य गु.	अंत गुणहानि
अंत निषेक	= १/गु ४ | गु ३ - | गु २ ५	= १/गु ४ | गु ३ - | गु २ | २ ५	= १/गु ४ | गु ३ - | गु २ | २ | २ ५	= १/गु ४ | गु ३ - | गु २ | २ | २ | २ ५	० ० ०	= १/गु ४ | गु ३ - | गु २ | प ५ ३ ३ | २
मध्य निषेक	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	नाना	० ० ०
प्रथम निषेक	= गु २ ४ | गु ३ - | गु २ ५	= गु २ ४ | गु ३ - | गु २ | २ ५	= गु २ ४ | गु ३ - | गु २ | २ | २ ५	= गु २ ४ | गु ३ - | गु २ | २ | २ | २ ५	० ० ०	= ४ | गु ३ - | गु २ | प ५ ३ ३ | २

यहां ऊपर-ऊपर की गुणहानियों के अंतनिषेक और प्रथम निषेक लिखे हैं । अब इसके आगे नीचे की गुणहानियों के अंतनिषेक और प्रथम निषेक लिखते हैं । उनका प्रमाण ऊपर के निषेकों में से एक-एक चय घटानेपर आता है —

नीचे की गुणहानियां

नाम	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	मध्य गु.	अंत गुणहानि
अंत निषेक	= गु ४ | गु ३ - | गु २ ५	= गु ४ | गु ३ - | गु २ | २ ५	० ० ०	= गु ४ | गु ३ - | गु २ | प ५ ३ ३ ३ | २
मध्य निषेक	० ० ०	० ० ०	नाना	० ० ०
प्रथम निषेक	= १० / गु २ ४ | गु ३ - | गु २ ५	= १० / गु २ ४ | गु ३ - | गु २ | २ ५	० ० ०	= १० / गु २ ४ | गु ३ - | गु २ | प ५ ३ ३ ३ | २

चय और ऊपर के निषेक की अन्य सर्व समानता देखकर ऊपर के प्रथम निषेक में गुणकार ऐसा **गु २** उसके ऊपर एक चय घटाने के लिये एक कम करनेपर ऐसा $\frac{१०}{\text{गु २}}$ नीचे के प्रथम निषेक की संदृष्टि होती है । तथा ऊपर के अंत निषेक में गुणकार ऐसा $\frac{१}{\text{गु}}$ उसके ऊपर एक अधिक था उसको दूर करनेपर *(एक घटानेपर)* नीचे के अंत निषेक की संदृष्टि होती है । पुनश्च मध्य निषेकों के ग्रहण निमित्त बिंदियों

की संदृष्टि जानना । पुनश्च यहां ऊपर-ऊपर के अंत निषेक, प्रथम निषेक और नीचे-नीचे के प्रथम निषेक, अंत निषेक लिखकर बीच में मध्य निषेक के ग्रहण निमित्त बिंदी लिखकर यवाकार रचना करनेपर जीवयवरचना ऐसी होती है –

जीवयवरचना

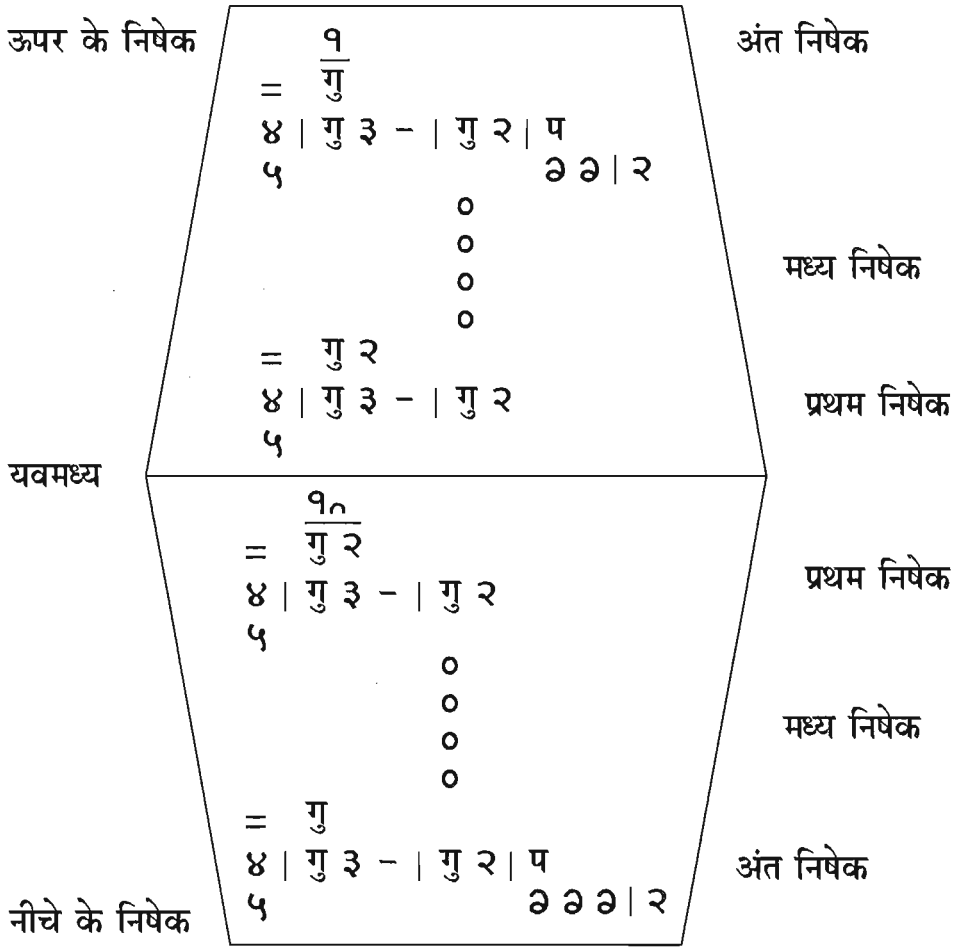

पुनश्च पर्याप्त त्रस का जघन्य योगस्थान जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग से गुणित जघन्य स्पर्धक मात्र ऐसा **व वि १६ | ४ | – ३** है । इस जघन्य योगस्थान से जो जघन्य समयप्रबद्ध बंधता है वह ऐसा **स** है । यहां जघन्यस्थान को प्रमाणराशि करके

समयप्रबद्ध को फलराशि करके, सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य स्पर्धक ऐसा $\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{\text{२}}{\text{ग}}$ बढ़नेपर एक-एक योगस्थान होता है इसलिए इसको इच्छाराशि

प्रमाण	फल	इच्छा
$\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{-}{\text{ग}}$	स	$\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{\text{२}}{\text{ग}}$ लब्धराशि ऐसी $\frac{\frac{\text{स}}{\text{ग}}\ \text{२}}{\text{ग}}$

करनेपर

इतना एक-एक योगस्थान प्रति समयप्रबद्ध अधिक बंधता है । यह वृद्धि का प्रमाण स्थान-स्थान प्रति एक, दो आदि गुणा होकर जघन्य योगस्थान दोगुणा होता है । वहां जघन्य समयप्रबद्ध भी दोगुणा होता है । पुनश्च वहां वैसी ही वृद्धि होते हुये जहां जघन्य योगस्थान चौगुणा होता है, वहां जघन्य समयप्रबद्ध भी चौगुणा होता है । इसी क्रम से अंत में जघन्य योगस्थान और जघन्य समयप्रबद्ध से पल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भागगुणा उत्कृष्ट योगस्थान और उत्कृष्ट समयप्रबद्ध होते हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: जघन्य योगस्थान* $\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{-}{\text{ग}}$ *उसमें वृद्धि* $\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{\text{२}}{\text{ग}}$ *होनेपर दूसरा योगस्थान होता है । इसी वृद्धि के क्रम से आगे-आगे के योगस्थान होते हैं । इसी को* $\frac{-}{\text{ग}} + \frac{\text{२}}{\text{ग}} \rightarrow \frac{\frac{\text{२}}{\text{ग}}}{\text{ग}}$ *ऐसा लिखेंगे ।*

त्रैराशिक ∵ $\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{-}{\text{ग}}$ ज. योगस्थान स ज. समयप्रबद्ध

∴ $\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{\text{२}}{\text{ग}}$ वृद्धि $\cancel{\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{\text{२}}{\text{ग}}}|\text{स}$ वृद्धि $\frac{\text{स}}{\frac{\text{ग}}{\text{२}}}$

$\cancel{\text{व वि १६}|\text{४}|\frac{-}{\text{ग}}}$

∴ समयप्रबद्ध का दूसरा स्थान $\text{स} + \frac{\text{स}}{\frac{\text{ग}}{\text{२}}} \rightarrow \cancel{\text{स}}\ \frac{\frac{\text{स}}{\frac{\text{ग}}{\text{२}}}\ \text{२}}{\text{ग}}$ $\frac{\frac{\text{स}}{\frac{\text{ग}}{\text{२}}}\ \text{२}}{\text{स}}$]

इसकी रचना —

योगस्थान	व वि १६।४।$\frac{-}{ə}$	$\frac{२}{ə}$	२।२ $\frac{ə}{ə}$	० ० ०	$\frac{-}{ə}$ २	$\frac{२}{ə}$ $\frac{-}{ə}$ २	२।२ $\frac{ə}{ə}$ $\frac{-}{ə}$ २
समयप्रबद्ध	स	स $\frac{२}{ə}$ $\frac{}{स}$	स २।२ $\frac{ə}{ə}$ $\frac{}{स}$	० ० ०	स २	स $\frac{२}{ə}$ $\frac{}{स}$ २	स २।२ $\frac{ə}{ə}$ $\frac{}{स}$ २

योगस्थान	० ० ०	$\frac{-}{ə}$ २।२	० ० ०	$\frac{-}{ə}$ २।२।२	० ० ०	$\frac{-छे}{ə ə}$
समयप्रबद्ध	० ० ०	स २।२	० ० ०	स २।२।२	० ० ०	स $\frac{छे}{ə}$

यहां जघन्य योगस्थान की संदृष्टि ऐसी $\frac{-}{ə}$, अधिक की उसके ऊपर और गुणकार की उसके आगे लिखना । मध्य भेदों की संदृष्टि बिंदी हैं । पुनश्च जघन्यस्थान ऐसा **व वि १६।४।$\frac{-}{ə}$** इसको अंतस्थान ऐसा **व वि १६।४।$\frac{-}{ə}$।$\frac{छे}{ə ə}$** उसमें से घटाने के लिये लघुसंदृष्टि ऐसी $\frac{-}{ə}$ उसके आगे गुणकार ऐसा $\frac{छे}{ə}$ उसमें से एक घटानेपर ऐसा $\frac{-}{ə}$ $\frac{१०}{छे}$ $\frac{}{ə ə}$, इसको वृद्धि का प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर ऐसा $\frac{-}{ə २ ə}$ । $\frac{१०}{छे}$ $\frac{}{ə}$ उसमें एक जोड़नेपर निरंतर योगस्थान होते हैं । वे श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र ऐसे $\frac{-}{ə}$ जानना । पुनश्च इन निरंतर योगस्थानों को असंख्यात का भाग देनेपर अंतरगत योगस्थान ऐसे हैं $\frac{-}{ə २ ə}$ । $\frac{१}{\frac{१०}{छे}}$ $\frac{}{ə ə}$ इनको असंख्यात का भाग देनेपर सांतर-निरंतर

योगस्थान ऐसे $\frac{१}{\frac{१}{\text{छे}}} - |$ । यहां प्रथम राशि को असंख्यात से समच्छेद करनेपर

प्रथम, द्वितीय राशि ऐसी $\frac{१}{\frac{१}{\text{छे}\ ə}} - |$, $\frac{१}{\frac{१}{\text{छे}}} - |$ इनको मिलाने

के लिये सर्व समान देखकर प्रथम राशि का गुणकार ऐसा ə, उसके ऊपर एक

अधिक की संदृष्टि करनेपर ऐसी $\frac{१}{\frac{१}{\text{छे}}\ \frac{१}{ə}} - |$ । यहां तीसरी राशि मिलाने की

गुणकार के ऊपर एक का असंख्यातवां भाग मिलाने के लिये किंचित् अधिक की

संदृष्टि ऐसी ▮ करनेपर सर्व योगस्थानों का प्रमाण ऐसा होता है $\frac{१'}{\frac{१}{\text{छे}}\ \frac{१}{ə}} - |$ । यहां

एक कम पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि इकतीस का अंक करनेपर

ऐसा $\frac{१'}{-\ ३१\ \frac{१}{ə}}$ होता है ।

[*विशेषार्थ :* *सर्व योगस्थान –*

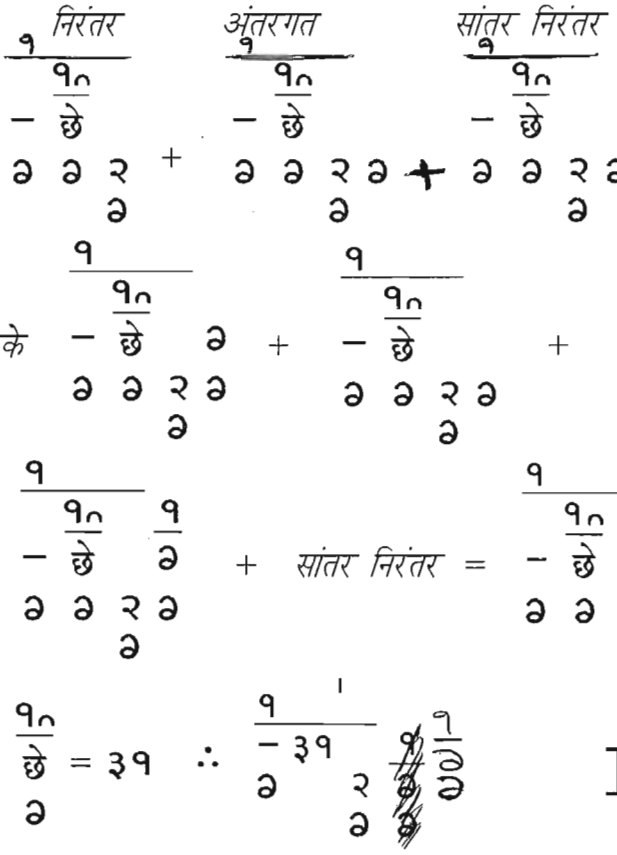

इतने असंख्यात लोकगुणा सर्व प्रकृति समूह ऐसा ≡ə≡ə२ है । कैसे ? वह कहते हैं –

ज्ञानावरण में असंख्यातलोक गुणित असंख्यातलोक श्रुत भेदों के आवरण ऐसे ≡ə≡ə, इतने ही मतिआवरण ≡ə≡ə हैं । पुनश्च घनांगुल के असंख्यातवें भाग से हीन लोक को सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करके एक अधिक करनेपर

देशावधि के भेदों के आवरण ऐसे $\equiv -\frac{१}{ə\,ə}$ ६।२ पुनश्च अग्निकायिक जीवों के अवगाहना-

भेदों से गुणित असंख्यात लोकमात्र अग्निकायिक प्रमाण परमावधि के भेदों के आवरण ऐसे हैं $\equiv \frac{१}{\frac{१०}{ə}}$ । सर्वावधि का आवरण एक है । मन:पर्यय के भेदों के आवरण असंख्यात कल्पमात्र **क ə** तथा केवलज्ञान का आवरण एक **।** सर्व मिलकर ज्ञानावरण ऐसे $\equiv ə \overset{।}{\equiv} ə | २$ हैं । यहां मति, श्रुत आवरण को मिलाकर अन्य के मिलाने की ऊपर किंचित् अधिक की ऐसी । संदृष्टि जानना ।

अब नामकर्म में कहते हैं –

नारकानुपूर्वी में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणित प्रतर रज्युप्रमाण क्षेत्र ऐसा $= \frac{२}{४९ ə}$ । इसको पूर्व शरीर अवगाहनामात्र घनांगुल के संख्यातवें भाग से गुणा करनेपर प्रथम भेद ऐसा $= \frac{२ ६}{४९ ə ॢ}$ तथा संख्यात घनांगुल से गुणित करनेपर अंतभेद ऐसा $= \frac{२ ६ ॢ}{४९ ə}$ । यहां अंत में से आदि घटाने के लिये अन्य हार समान देखकर संख्यात से समच्छेद करनेपर अंतभेद ऐसा $= \frac{२ ६ ॢ ॢ}{४९ ə ॢ}$ हुआ । इसके और आदि के अन्य समानता देखकर आगे के ऐसे **ॢ ॢ** गुणकार में से एक घटानेपर ऐसा $= \frac{२ ६ ॢ ॢ}{४९ ə ॢ}^{\frac{१}{१०}}$ इसमें एक जोड़नेपर नारकानुपूर्वी के सर्वभेद ऐसे $= \frac{२ ६ ॢ ॢ}{४९ ə ॢ}^{\frac{१}{१०}}$ होते हैं ।

पुनश्च तिर्यंचानुपूर्वी में क्षेत्र लोकप्रमाण ऐसा ≡, इसको पूर्व शरीर अवगाहना प्रमाण घनांगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर प्रथम भेद ऐसा $\equiv \frac{६}{ə}$, संख्यात

घनांगुल से गुणा करनेपर अंतभेद ऐसा $\equiv ६ \, ॒ \, ३$ होता है । अंत में से आदि घटाने के लिये अंत का असंख्यात से समच्छेद करके $\equiv ६ \, ॒ \, ३$ आगे के ऐसे $॒ \, ३$ गुणकार में से एक घटानेपर ऐसा $\equiv ६ \, ॒ \, ३^{१८}$ और इसमें एक जोड़नेपर तिर्यंचानुपूर्वी के सर्वभेदों का प्रमाण ऐसा $\equiv ६ \, ॒ \, ३^{१८}$ होता है ।

पुनश्च मनुष्यानुपूर्वी में पैंतालीस लाख वृत्त विष्कंभ *(गोलाकार का व्यास)* गुणित प्रतररज्जुमात्र क्षेत्र ऐसा $= ४५ \, ल$ इसको पूर्व शरीर अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करके प्रथमभेद ऐसा $= ४५ \, ल \, | \, ६$ और संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर अंतभेद ऐसा $= ४५ \, ल \, | \, ६ \, ॒$ होता है । अंत में से आदि घटाने के लिये अंत को असंख्यात से समच्छेद करके अन्य सब समान देखकर $॒ \, ३$ ऐसे गुणकार में से एक घटानेपर ऐसा $= ४५ \, ल \, | \, ६ \, ॒ \, ३^{१८}$ इसमें एक जोड़नेपर मनुष्यानुपूर्वी के सर्वभेदों का प्रमाण ऐसा $= ४५ \, ल \, | \, ६ \, ॒ \, ३^{१८}$ होता है ।

पुनश्च देवानुपूर्वी में क्षेत्र नौ सौ योजन गुणा रज्जुप्रतर प्रमाण ऐसा $= ९००$ इसको पूर्व शरीर अवगाहना घनांगुल के संख्यातवें भाग से गुणा करनेपर प्रथमभेद ऐसा

$=|९००|६$ तथा संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर अंतभेद ऐसा $=|९००|६\,\frac{ घ}{ घ}$ है । अंत में से आदि घटाने के लिये अंत को संख्यात से समच्छेद करके अन्य समान देखकर ऐसे $\frac{ घ}{ घ}$ गुणकार में से एक घटानेपर ऐसा $=|९००|६\,\frac{ घ}{ घ}\,\frac{१}{\frac{१८}{ घ}}$ होता है । इसमें एक अधिक करनेपर देवानुपूर्वी के सर्व भेद ऐसे $=|९००|६\,\frac{ घ}{ घ}\,\frac{१८}{ घ}$ होते हैं । इन आनुपूर्वी भेदों के मिलाने के लिये पूर्वोक्त ज्ञानावरण की उत्तरोत्तर प्रकृतियों की संदृष्टि के ऊपर किंचित् अधिक की संदृष्टि ऐसी | करनेपर सर्व प्रकृतिसमूह ऐसा $\equiv\overset{\shortparallel}{ə}\equiv ə २$ । अन्य उत्तरोत्तर प्रकृतियों का उपदेश यहां नहीं है ।

पुनश्च इनसे सर्व प्रकृतियों के स्थितिभेद असंख्यातगुणे हैं । कैसे ? वह कहते हैं —

जघन्यस्थिति संख्यात पल्यमात्र **प घ**, उत्कृष्ट इससे संख्यातगुणी **प घ घ** है । इसमें से जघन्य घटाने के लिये अन्य सर्व समान देखकर संख्यात गुणकार में से एक घटानेपर ऐसा $\text{प}\,\frac{१८}{ घ}$, इसमें एक जोड़नेपर स्थितिभेद ऐसे $\text{प}\,\frac{१}{\frac{१८}{ घ}}$ हैं । एक-एक प्रकृति के इतने स्थितिभेद हैं तो इतनी $\equiv\overset{\shortparallel}{ə}\equiv ə २$ प्रकृतियों के स्थितिभेद कितने होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धमात्र ऐसे $\equiv\overset{\shortparallel}{ə}\equiv ə २\,\text{प}\,\frac{१}{\frac{१८}{ घ}}$ सर्व प्रकृतियों के स्थितिभेद होते हैं ।

पुनश्च इनसे सर्व स्थितिबंधाध्यवसायस्थान असंख्यातगुणे हैं । कैसे ? वह कहते हैं —

एक प्रकृति स्थितिबंध के कारणभूत परिणाम असंख्यात लोकमात्र ऐसे $\equiv ə$ वह द्रव्य है । स्थितिभेद प्रमाणमात्र स्थिति ऐसी $प_{१/१०}^{१/१०}$ ।

[***विशेषार्थ*** *: यहां द्रव्य का अर्थ परमाणु या प्रदेश नहीं है, तथा स्थिति का अर्थ कर्म की स्थिति नहीं है । परंतु ये गणित के पारिभाषिक शब्द हैं ।*]

नानागुणहानि पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भागमात्र ऐसी $छे_{ə}$ तथा अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्य के असंख्यातवें भागमात्र ऐसी $प_{ə}$ है । स्थिति को नानागुणहानि का भाग देनेपर गुणहानि आयाम ऐसा $प_{१/१०}^{१/१०}$ इसको दो से गुणा करनेपर दोगुणहानि ऐसी $प_{छे_{ə}}^{१/१०} २$ । पुनश्च उन स्थितिभेदों में जघन्य स्थितिबंध को कारणभूत परिणाम सबसे थोड़े हैं तो भी असंख्यात लोकमात्र हैं वे ऐसे $\equiv ə$ *(इसको आदि कहेंगे)* । इनको गच्छ गुणहानि आयाम ऐसा **गु** उससे गुणा करनेपर आदिधन ऐसा $\equiv ə गु$ । पुनश्च एक-एक स्थिति प्रति बढ़नेरूप चय उसका प्रमाण प्रथम (आदि) को एक अधिक गुणहानि का भाग देनेपर ऐसा $\equiv ə_{१/गु}$ । पुनश्च एक कम गच्छ ऐसा $गु_{१/१०}$ उसका आधा ऐसा $गु_{२}^{१/१०}$ इसको चय से गुणा करनेपर $गु_{२}^{१/१०} \equiv ə_{१/गु}$ इसको गच्छ से गुणा करनेपर

चयधन ऐसा $\frac{१ ०}{\text{गु}} \equiv ə\ \text{गु}$ होता है । पुनश्च आदिधन और चयधन जोड़ने के लिये
$२\ \frac{१}{\text{गु}}$

समच्छेद किया हुआ आदिधन ऐसा $\equiv ə\ \text{गु} \mid \frac{१}{\text{गु}}\ २$ तथा आगे पीछे लिखकर चयधन
$\frac{१}{\text{गु}}\ २$

ऐसा $\equiv ə\ \text{गु} \mid \frac{१ ०}{\text{गु}}$ होता है । यहां एक अधिक, एक हीन को न गिनकर आदिधन के
$\frac{१}{\text{गु}}\ २$

दो गुणकार की जगह तीन का गुणकार करनेपर उनका जोड़ ऐसा $\equiv ə\ \text{गु} \mid \frac{१}{\text{गु}\ ३}$
$\frac{१}{\text{गु}}\ २$

प्रथम गुणहानि का द्रव्य होता है । पुनश्च गुणहानि-गुणहानि प्रति दोगुणा-दोगुणा होते हुये आधी अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी $\frac{\text{प}}{ə\ २}$ उससे प्रथम गुणहानि के द्रव्य को गुणा करनेपर

अंतगुणहानि का द्रव्य ऐसा $\equiv ə\ \text{गु} \mid \frac{१}{\text{गु}\ ३}\ \frac{\text{प}}{ə\ २}$ । इस अंतधन को गुणकार दो से
$\frac{१}{\text{गु}}\ २$

गुणा करनेपर ऐसा $\equiv ə\ \text{गु} \mid \frac{१}{\text{गु}\ ३}\ \frac{\text{प}\ \cancel{२}}{ə\ \cancel{२}}$ दो का अपवर्तन करनेपर ऐसा
$\frac{१}{\text{गु}}\ २$

$\equiv ə\ \text{गु} \mid \frac{१}{\text{गु}\ ३}\ \frac{\text{प}}{ə}$ इसमें से आदि अर्थात् प्रथम गुणहानि का द्रव्य घटाने के लिये
$\frac{१}{\text{गु}}\ २$

गुणकार $\frac{\text{प}}{ə}$ में से एक घटानेपर समस्त गुणहानियों का धन ऐसा $\equiv ə\ \text{गु} \mid \frac{१}{\text{गु}\ ३}\ \frac{१ ०}{\frac{\text{प}}{ə}}$
$\frac{१}{\text{गु}}\ २$

होता है ।

पुनश्च एक प्रकृति के स्थितिभेद ऐसे $\text{प}_{\text{१८}}^{\text{१}}$ इनके इतने $\equiv \text{ə}_{\text{१}}^{\text{गु}} \mid \frac{\text{१}}{\text{गु ३}} \frac{\text{१८}}{\text{प}}$ स्थितिबंधाध्यवसायस्थान होते हैं, तो इतने $\equiv \text{ə} \equiv \text{ə}_{\text{१}}^{\text{२}} \text{प}_{\text{१८}}^{\text{१}}$ स्थितिभेदों के कितने होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धमात्र सर्व स्थितिबंधाध्यवसायस्थान ऐसे $\equiv \text{ə} \equiv \text{ə}_{\text{१}}^{\text{२}} \equiv \text{ə}^{\text{गु}} \mid \frac{\text{१}}{\text{गु ३}} \frac{\text{१८}}{\text{प}}$ होते हैं ।

पुनश्च इनसे असंख्यात लोक गुणे अनुभागाध्यवसाय स्थान हैं । वह कहते हैं –

जघन्य स्थितिबंध संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायों के अनुभागाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकगुणित असंख्यात लोकमात्र ऐसे $\equiv \text{ə} \equiv \text{ə}$, वह द्रव्य जानना । जघन्य स्थितिबंध को कारणभूत स्थितिबंधाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकमात्र ऐसे $\equiv \text{ə}$ वह स्थिति जानना । दो बार असंख्यात से भाजित आवली मात्र नानागुणहानि ऐसी $\text{ə}_{\text{ə}}^{\text{२}}$ है । इसका भाग स्थिति को देनेपर गुणहानि आयाम ऐसा $\equiv \text{ə}_{\text{ə}}^{\text{२}}$ इसको दो से गुणा करनेपर दोगुणहानि ऐसी $\equiv \text{ə}_{\text{ə}}^{\text{२}}$ आवली के असंख्यातवें भागमात्र अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी $\text{२}_{\text{ə}}$ है ।

स्थितिबंध संबंधी

यहां जघन्य स्थितिबंधाध्यवसाय संबंधी अनुभागाध्यवसायस्थान सबसे थोड़े हैं, तथापि असंख्यात लोक गुणित असंख्यात लोकमात्र ऐसे $\equiv \text{ə} \equiv \text{ə}$ हैं । इसको मुख कहते हैं । इस मुख को गच्छ जो गुणहानि, उससे गुणा करनेपर आदिधन ऐसा

$\equiv$ए$\equiv$ए$_{\text{गु}}$ । इस मुख को एक अधिक गुणहानि का भाग देनेपर चय ऐसा $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}}$ होता है । पुनश्च एक कम गच्छ के आधे को चय से और गच्छ से गुणा करनेपर चयधन ऐसा $\frac{\text{१ऽ}}{\text{गु}}_{\text{२}} \equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}}$ गु होता है । पूर्वोक्त प्रकार से आदिधन और चयधन मिलानेपर प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}}$ गु + $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}}$ गु । $\frac{\text{१ऽ}}{\text{गु}}_{\text{२}}$

= $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}\ \text{२}}$ गु । $\frac{१}{\text{गु}\ \text{२}}$ + $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}\ \text{२}}$ गु । $\frac{\text{१ऽ}}{\text{गु}}$ = $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}\ \text{२}}$ गु । $\frac{१}{\text{गु}\ \text{३}}$ यह द्रव्य गुणहानि-गुणहानि प्रति दोगुणा होता है । अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा ऐसा $\frac{\text{गु}}{\text{ए}\ \text{२}}$ उससे प्रथम गुणहानि के द्रव्य को गुणा करनेपर अंत गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}\ \text{२}}$ गु । $\frac{१}{\text{गु}\ \text{३}}$ । $\frac{\text{२}}{\text{ए}\ \text{२}}$ । इस अंतधन को गुणकार दो से गुणा करनेपर ऐसा

$\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}\ \text{२}}$ गु । $\frac{१}{\text{गु}\ \text{३}}$ । $\frac{\text{२}}{\text{ए}\ \text{२}}$ । $\frac{\text{२}}{\text{२}}$ दो का अपवर्तन करनेपर ऐसा $\equiv$ए$\equiv$ए$_{\frac{१}{\text{गु}}\ \text{२}}$ गु । $\frac{१}{\text{गु}\ \text{३}}$ । $\frac{\text{२}}{\text{ए}}$ होता है, इसमें से आदि जो प्रथम गुणहानि का द्रव्य घटाने के लिये अन्य सर्व समान देखकर $\frac{\text{२}}{\text{ए}}$ गुणकार में एक घटानेपर सर्व गुणहानियों का द्रव्य ऐसा

$\equiv \partial \equiv \partial$ गु । $\frac{१}{\text{गु}}$ ३ । $\frac{१८}{२}$ ∂ पुनश्च एक स्थितिभेद के इतने अनुभागाध्यवसायस्थान होते हैं, $\frac{१}{\text{गु}}$ २

तो सर्व स्थितिभेदों के कितने होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर

प्रमाण	फल	इच्छा
१	$\equiv \partial \equiv \partial$ गु । $\frac{१}{\text{गु}}$ ३ । $\frac{१८}{२}$ ∂ $\frac{१}{\text{गु}}$ २	$\equiv \partial \equiv \partial$ २ प॰ $\frac{१}{\frac{१८}{गु}}$

लब्धराशिमात्र अनुभागाध्यवसाय ऐसे होते हैं –

$\equiv \partial \equiv \partial$ २ प॰ $\frac{१}{\frac{१८}{गु}}$ $\equiv \partial \equiv \partial$ गु । $\frac{१}{\text{गु}}$ ३ । $\frac{१८}{२}$ ∂ $\frac{१}{\text{गु}}$ २ पुनश्च इनसे अनंतगुणे कर्मपरमाणु हैं, वे

किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण ऐसे हैं **स१२–** । इसका स्वरूप दिखाने के लिये त्रिकोणरचना द्वारा अंकसंदृष्टिपूर्वक विशेष कथन टीका में किया है, वह जानना । वहां अधिक हीन गुणकार भागहारादि की संदृष्टि यथासंभव जानना । अथवा आगे कर्मस्थितिरचना अधिकार में वर्णन करेंगे, वहां त्रिकोणरचना के जोड़ का विशेष जानना ।

कर्मों के उदय वर्णन में –

निम्न रचना भूतबलि आचार्य की अपेक्षा है । यतिवृषभ आचार्य की अपेक्षा मिथ्यात्व, सासादन, सयोगी, अयोगी में विशेष है, वह टीका से जानना ।

उदयरचना				उदीरणारचना			
गुणस्थान	व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	गुणस्थान	व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय
अ	१२	१२	११०	अ	०	०	१२२
स	३०	४२	८०	स	३९	३९	८३
क्षी	१६	५७	६५	क्षी	१६	५४	६८
उ	२	५९	६३	उ	२	५६	६६
सू	१	६०	६२	सू	१	५७	६५
अ	६	६६	५६	अ	६	६३	५९
अ	६	७२	५०	अ	६	६९	५३
अ	४	७६	४६	अ	४	७३	४९
प्र	५	८१	४१	प्र	८	८१	४५
दे	८	८७	३५	दे	८	८७	३५
अ	१७	१०४	१८	अ	१७	१०४	१८
मि	१	१००	२२	मि	१	१००	२२
सा	९	१११	११	सा	९	१११	११
मि	५	११७	५	मि	५	११७	५

पुनश्च कर्मों के उदय वर्णन में चार कोठे समान करके प्रथम कोठे में विवक्षित गुणस्थान का नाम, द्वितीयादि कोठों में क्रम से व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय प्रकृतियों का प्रमाण लिखकर जितने गुणस्थान पाये जाते हैं, उनकी ऊपर-ऊपर रचना करनेपर उदयरचना होती है । अथवा पाये जानेवाले गुणस्थानों की पंक्ति समान करनेपर चार पंक्तियां नीचे-नीचे करनेपर रचना होती है । इसीप्रकार गुणस्थानों में व्युच्छित्ति, उदीरणा, अनुदीरणा की रचना होती है । इसीप्रकार मार्गणारचना में ऊपर या बाजू में मार्गणा का नाम लिखकर वहां पायी जानेवाली उदयप्रकृतियां लिखकर पाये जानेवाले गुणस्थानों के कथन अनुसार रचना जानना ।

पुनश्च **सत्ता-वर्णन** में भी उदयवत् पंक्तियां करके जैसे व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय लिखा था, वैसे व्युच्छित्ति, सत्त्व, असत्त्व प्रकृतियों का प्रमाण गुणस्थान, मार्गणास्थानों में लिखनेपर रचना होती है । यहां अनिवृत्तिकरण में नौ भागों की तथा अयोगी में पहले काल की और अंतसमय की जुदी रचना जानना ।

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	२	३	४	५	६	७	८	९	सू	उ	क्षी	स	अ	अ
०	०	०	१	१	०	८	०	१६	८	१	१	६	१	१	१	१	१	०	१६	०	७२	१३
१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१०१	१०१	८५	८५	१३
०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४७	६३	६३	१३५

यह रचना क्षायिक की अपेक्षा है । विशेष टीका से जानना । पुनश्च अनिवृत्तिकरण के भागों में और सूक्ष्मसाम्पराय में कर्मप्रकृति क्षपाने और उपशमाने के अनुक्रम की रचना —

क्षपणाविधान रचना

उपशमविधान रचना

यहां ऊपर सोलह आदि प्रकृतियों की संख्या और नाम के आदि अक्षरों द्वारा प्रकृति जानना । वहा उपशमरचना में क्रोधादि के आगे दो अंक लिखे हैं उससे अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोधादि जानना और मात्र क्रोधादि लिखे हैं उससे संज्वलन क्रोधादि जानना । पुनश्च माया की संदृष्टि द्वितीय अक्षररूप (या) जानना । पुनश्च इनके निषेक क्रम से हीनरूप हैं इसलिए यहां ऐसी △ संदृष्टि जानना । पुनश्च उच्छिष्टावली को जुदा दिखाने के लिये उनके बीच में लीक अर्थात् आडी रेखा A की संदृष्टि जानना ।

पुनश्च पुरुषवेद, संज्वलन - क्रोध, मान, माया, बादरलोभ के नवीन बंधे हुये ऐसे नवक समयप्रबद्ध, वे उन्हीं के क्षपण-उपशमन काल में क्षपित या उपशमित नहीं होते आगे संज्वलन क्रोध, मान, माया, बादरलोभ, सूक्ष्मलोभ के काल में क्षपित- उपशमित होते हैं, इसलिए उनको जुदा दिखाने के लिये बीच में ऐसी △ जुदी रचना जानना ।

अब विशेष **सत्ता अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां विवक्षित गुणस्थान में पाये जानेवाले बद्धायु-अबद्धायु के स्थानप्रमाण कोठे करके ऊपर प्रकृतियों का प्रमाण, नीचे भंगों का प्रमाण लिखनेपर रचना होती है । जैसे मिथ्यात्व गुणस्थान में निम्नप्रकार रचना होती है –

बद्धायु	१४६ १	१४५ ५	१४२ १	१४१ ५	१४० ५	१३९ ५	१३७ १	१३१ १	१२९ १	१२७ १
अबद्धायु	१४५ १	१४४ ४	१४१ १	१४० ४	१३९ ४	१३८ ४	१३६ ४	१३० २	१२९ पुनरुक्त	१२७ पुनरुक्त

इसीतरह अन्य गुणस्थानों में कथन अनुसार रचना जानना ।

अब **त्रिचूलिका अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां नौ प्रश्न चूलिका में प्रकृति आदि के नामों का आदि अक्षर और प्रमाण के अंक इत्यादिरूप सुगम रचना जानना ।

पुनश्च पंचभागहारचूलिका में मिथ्यात्व को प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) प्रकृति का अंतर्मुहूर्त तक अधःप्रवृत्त-संक्रमण है । द्विचरमकांडक तक उद्वेलना-संक्रमण है । चरमकांडक में गुण-संक्रमण है । अंतकाल में सर्व-संक्रमण है । उसकी संदृष्टि ऐसी –

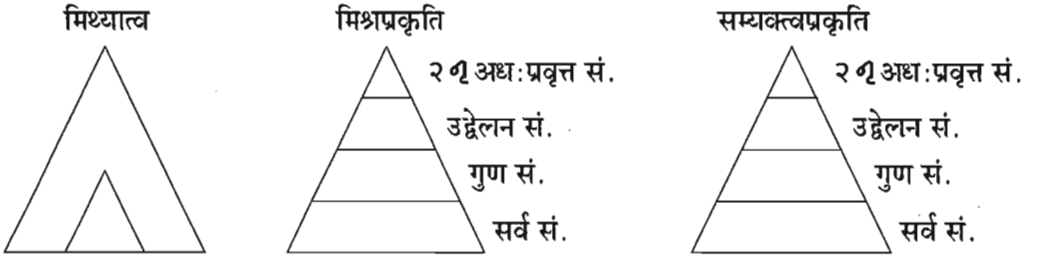

यहां मिथ्यात्वादिक के निषेक क्रमहीन हैं, इसलिए Δ ऐसी संदृष्टि की है । वहां मिथ्यात्व में से उच्छिष्टावली को घटाने के लिये जुदी संदृष्टि की है और मिश्र तथा सम्यक्त्वप्रकृति के अध:प्रवृत्त आदि भागहार लिखे हैं । अध:प्रवृत्त के काल की ऐसी **२η** संदृष्टि लिखी है, वह जानना ।

पुनश्च अल्पबहुत्व में सर्वसंक्रमण का प्रमाण एक; गुणसंक्रमण भागहार का चार बार असंख्यात से भाजित पल्य के अर्धच्छेदमात्र; अपकर्षण और उत्कर्षण भागहार तीन बार असंख्यात से भाजित पल्य के अर्धच्छेदमात्र; अध:प्रवृत्तसंक्रमण भागहार दो बार असंख्यात से भाजित पल्य के अर्धच्छेदमात्र; जघन्य योग से उत्कृष्ट योग का गुणकार एक बार असंख्यात से भाजित पल्य के अर्धच्छेदमात्र; कर्मस्थिति की नानागुणहानि पल्य की वर्गशलाका से हीन पल्य के अर्धच्छेदमात्र; पल्य का अर्धच्छेद; पल्य का वर्गमूल स्वकीय प्रमाणमात्र; गुणहानि आयाम संख्यात पल्यप्रमाण कर्मस्थिति को स्वकीय नानागुणहानि से भाजित करनेपर जो हो उतना, यहां चार बार कोटि से गुणित सात सौ पल्यवर्गमूल का वर्ग ऐसा **मू १ मू १ ७००$|$को ४** इनको परस्पर गुणा करनेपर संख्यात पल्य होते हैं ।

[***विशेषार्थ*** : *यहां* **७० कोडाकोडी सागर = ७० को २ × १० को २ पल्य = ७००$|$को ४$|$मू १ मू १ = पη**]

पुनश्च कर्मस्थिति की अन्योन्याभ्यस्तराशि अपनी वर्गशलाका से भाजित पल्यमात्र; पल्य स्वप्रमाणमात्र; कर्मस्थिति संख्यात पल्यमात्र; विद्यात-संक्रमण भागहार दो बार असंख्यात से भाजित सूच्यंगुल प्रमाण; उद्वेलन भागहार एक बार असंख्यात से भाजित सूच्यंगुल प्रमाण; अनुभाग की नानागुणहानि अनंत; उससे उसका गुणहानि आयाम अनंतगुणा; उससे डेढ़ गुणहानि डेढ़गुणा और दोगुणहानि दोगुणा; इससे *(अनुभाग की)* अन्योन्याभ्यस्त राशि अनंतगुणा जानना । ये क्रम से बहुप्रमाण वाले हैं, उनकी रचना –

नाम	सर्वसंक्रमण	गुणसंक्रमण	उत्क. अप.	अध:प्रवृत्त	योग गुणकार	स्थिति नानागुण.	पल्यच्छेद	पल्यमूल
प्रमाण	१	छे ə ə ə ə	छे ə ə ə	छे ə ə	छे ə	छे वेछे	छे	मू

स्थितिगुणहानि	अन्योन्या.	पल्य	कर्मस्थिति	विध्यात सं.	उद्वे.	अनु. नानागुण.	गुण.	डेढ़ गुण.	दो गुण	अन्योन्या.
प॥ छे ⌒ वछे	प व	प	प॥	२ ३ ३	२ ३	ख	ख ख	ख ख ३ २	ख ख २	ख ख २ ख

यहां सामान्योक्त से सर्व संदृष्टि जानना ।

अब **स्थानसमुत्कीर्तन** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं –

वहां कहीं गुणस्थान, प्रकृति, बंध, उदय, सत्त्व और भंग आदि के नाम के आदिअक्षररूप संदृष्टि होती है । कहीं प्रकृतियों का प्रमाण, कहीं भंगों का प्रमाण, कहीं एक ही कोठे में ऊपर-ऊपर प्रकृतियों का प्रमाण, नीचे प्रकृतियों का प्रमाण, कहीं स्थानों का प्रमाण इत्यादि प्रमाण के अंकों की संदृष्टि होती है । पुनश्च वहां यथासंभव ऊर्ध्वरूप और तिर्यक्रूप कोठे होते हैं । पुनश्च कहीं ऊपर के कोठे में विवक्षित गुणस्थान या मार्गणा का नाम और नीचे वहां पाये जानेवाले बंधादि के स्थानों का प्रमाण, नीचे एक-एक जुदा-जुदा स्थान लिखा है ।

पुनश्च आधार-आधेय के कथन में ऊपर आधारस्थान, नीचे वहां पाये जानेवाले आधेयस्थान और उनके नीचे वे जुदे-जुदे आधेयस्थान लिखनेपर रचना होती है । वहां सर्वत्र स्थानों की संदृष्टि जितनी प्रकृतियों के समूहरूप स्थान हो उतने का अंक जानना । जैसे, तेइस के स्थान की संदृष्टि ऐसी २३, इत्यादि अनेक प्रकार की रचना होती है । ये रचना सुगम है, टीका में कथन किया है उसके अनुसार रचना जान लेना । कथन पहले किया ही था, रचना सुगम है । इसलिए यहां विशेष प्रयोजन न होने से विस्तार के भय से रचना नहीं लिखी ।

पुनश्च मोह के कूटों की तथा भंगादि लाने के लिये त्रैराशिक की तथा नौवें गुणस्थान में वेद अपेक्षा मोह के बंधादि स्थानों की इत्यादि कितनी ही रचनायें टीका में लिखी हैं वहां से जानना ।

पुनश्च संस्कृत टीका में रचना की है उनमें आवरणदेशघादंतराय *(गाथा १८२)* इत्यादि गाथा के अर्थ में देशघाति-सर्वघाति प्रकृति शैलादि चार प्रकार और तीन प्रकार के अनुभागरूप परिणत होती है उनकी रचना अनुभागबंध में जैसी की है, वैसी यहां भी जानना, विशेष नहीं है ।

पुनश्च कषायों में नामकर्म के बंधस्थान कहे हैं, वहां कषायों के चार, चौदह, बीस स्थान हैं, उनकी रचना ऐसी —

चारपद	शिलाभेद तीव्रतर ≡ ७८ ९		पृथ्वीभेद तीव्र ≡ ७८ ९९							
चौदहपद	१		१	२	३			४	५	६
पदों में लेश्या	कृष्ण १११११	१११११	कृष्ण १११११	नीलयुत २२२२	कपोतयुत ३३३३	३३३३	३३३३	पीतयुत ४४४४	पद्मयुत ५५५५	शुक्लयुत ६६६६
बीसपद	०००० उ. कृ.	नरक १११११	नरक १११११	नरक १११११ उ. नी.	नरक १११११ उ. क.	नति २२२२	नतिम ३३३३	सर्व ४४४४ ज. पीत.	सर्व ४४४४ ज. प.	सर्व ४४४४ ज. शु.

धूलिराजी मंद ≡ ७८ ९९९								जलराजी मंदतर ≡ ७१ ९९९
६			५	४	३	२	२	१	१
कृष्णादि ६६६६	६६६६	६६६६	कृष्णहीन ५५५५	नीलहीन ४४४४	कपोतहीन ३३३३		पीतहीन २२२२	पद्महीन १११११	शुक्ल १११११११११
सर्व ४४४४	तिमदे ३३३३	मदे २२२२ ज. कृ.	दे १११११ ज. नी.	दे १११११ ज. क.	दे १११११ उ. पी.	०००० मध्यपद्म	०००० उ. प.	०००० मध्यशुक्ल	०००००००० उ. शु.

इस रचना का विशेष स्वरूप तो कषायमार्गणा अधिकार से जानना । इसमें ऊपर चार पद और उनके स्थान लिखे हैं । नीचे चौदह पदों में जितनी-जितनी लेश्या पायी जाती हैं उनके अंक लिखे हैं । नीचे बीस पदों में आयु के अबंध स्थानों में बिंदी लिखी है और जहां एक आदि आयु का बंध होता है वहां एक आदि अंक लिखे हैं । वहां बीस पदों में कहे हुये आयु के बंधाबंधरूप स्थान बहुत-बहुत पाये जाते हैं, इसलिए बहुत की संदृष्टि चार बार लिखना जानना । वहां कृष्ण का आयुअबंधरूप स्थान उत्कृष्ट जानना, मनुष्य, देव आयुबंधरूप स्थान जघन्य जानना । ऐसे ही अन्य लेश्या का जानना । अन्य संदृष्टि सुगम है ।

अब **आस्रव अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं —

वहां गुणस्थान, भंग, आस्रवादि के आदिअक्षररूप और आस्रव, भंग, ध्रुव गुण्य, अध्रुव गुणकार इत्यादि के प्रमाण के अंकरूप तथा एक ही कोठे में ऊपर आस्रव-स्थान

नीचे उनके भंगरूप सुगम संदृष्टि द्वारा रचना जानना । जैसे, गुणस्थानों में ऐसा –

	अ	०	०	०								
	स	१	७	१ १								
	क्षी	१	९	१ १								
१	उ	१	९	१ १								
१	सू	२	१०	२ १								
१	अ	२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	२ १	३ १	
१	अ	२	२२	५ १	६ १	७ १						
	अ	२	२२	५ १	६ १	७ १						
	प्र	२	२४	५ १	६ १	७ १						
	दे	३	३७	८ १	९ २	१० ३	११ ३	१२ ३	१३ २	१४ १		
	अ	३	४६	९ १	१० २	११ ३	१२ ३	१३ ३	१४ ३	१५ २	१६ १	
	मि	३	४३	९ १	१० २	११ ३	१२ ३	१३ ३	१४ ३	१५ २	१६ १	
	सा	३	५०	१० १	११ २	१२ ३	१३ ३	१४ ३	१५ ३	१६ २	१७ १	
	मि	४	५५	१० १	११ ३	१२ ५	१३ ६	१४ ६	१५ ६	१६ ६	१७ ५	१८ १

यहां गुणस्थानों के नाम, आगे मूल आस्रवों का प्रमाण, आगे उत्तरआस्रवों का प्रमाण, आगे वहां पाये जानेवाले आस्रवों के स्थान और वहीं पर उनके भंग लिखे हैं । इसतरह अन्य भी रचना यथासंभव जानना ।

अब **भाव अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां गुणस्थान, भाव, भंग और भंगों में प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंग इत्यादि के नाम के आदि अक्षररूप तथा भाव, भंग, गुण्य, गुणकार, क्षेप आदि के प्रमाण के अंकरूप आदि सुगम संदृष्टि द्वारा रचना जानना । वहां स्थान, गति, जाति, पद, प्रत्येक पद, गति में रचना कथन अनुसार जानना । वहां प्रत्येकपद रचना में भावों की रचना मिथ्यात्व में ऐसी –

कर्नाटकवृत्ति गाथा ८५७ से ८५९

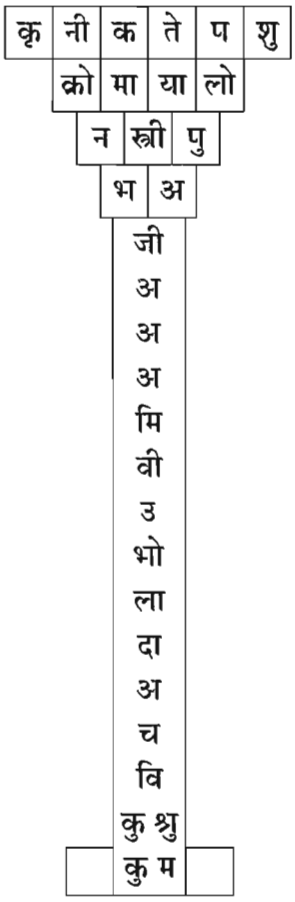

ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

यहां भंगों की रचना ऐसी –

अ	प्र. भं. १	द्वि. ४	त्रि. ६	च. ४	पं. १	एवं १६
च	प्र. भं. १	द्वि. ३	त्रि. ३	च. १	एवं ८	
वि	प्र. भं. १	द्वि. २	त्रि. १	एवं ४		
कु	प्र. भं. १	द्वि. १	एवं २			
कु	प्र. भं. १					

इसीतरह ऊपर-ऊपर पाये जानेवाले भंगों की रचना जानना । पुनश्च ये भंग ऐसे दोगुणा-दोगुणा बढ़ते हो वहां रचना मिथ्यादृष्टि में ऐसी —

कर्नाटकवृत्ति

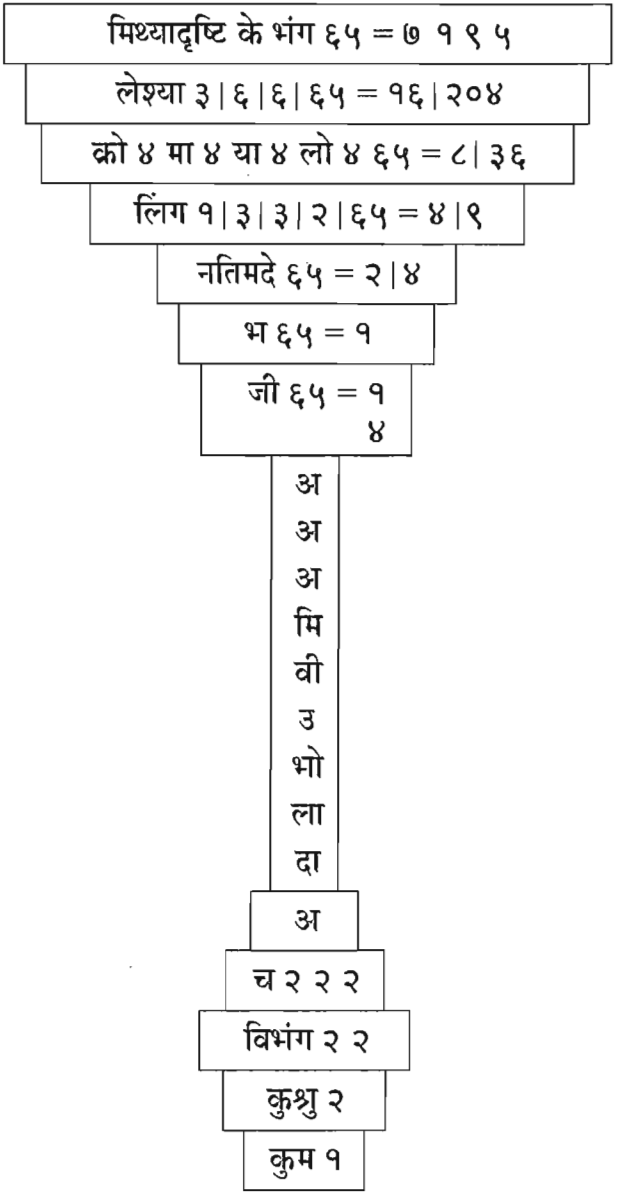

इसीतरह सर्व गुणस्थानों की रचना जानना । यहां संदृष्टि सुगम है । टीका में कथन किया है उसके अनुसार रचना का अर्थ जानना।

अब **त्रिकरण अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां सर्व संदृष्टि जैसे जीवकांड के गुणस्थानाधिकार में करणों के कथन में संदृष्टि कही है वैसे ही यहां भी जानना । विशेष है नहीं, इसलिए दूसरी बार नहीं लिखी है ।

अब **कर्मस्थिति रचना सद्भाव अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां आबाधा की संदृष्टि सुगम है और पहले कही है वह जानना । स्थिति में आबाधा और निषेकों की रचना ऐसी

पुनश्च कर्मस्थितिरचना में अंकसंदृष्टि द्वारा द्रव्यादि का प्रमाण और वहां रचना टीका में कही है, वह जानना । वहां गुणहानि में चय लाने के लिये एक कम गुणहानि का आधा ऐसा $\frac{१८}{२^{८}}$ उससे हीन दोगुणहानि १६ गुणित गुणहानि ८ मात्र प्रमाण ऐसा $८ \mid १६ - \frac{१८}{२^{८}}$, उससे भाजित अपना-अपना द्रव्यमात्र चय जानना । अन्य सुगम है ।

पुनश्च अर्थसंदृष्टि में द्रव्य उत्कृष्ट समयप्रबद्धमात्र ऐसा **स ७**, स्थिति संख्यात पल्यमात्र ऐसी **प ४**, स्थिति को नानागुणहानि का भाग देनेपर गुणहानि होती है । उसकी संदृष्टि ऐसी **गु**, उससे दोगुणी दोगुणहानि ऐसी **गु २** ये तो संदृष्टि सातों कर्मों की समान है । पुनश्च नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि लाने के लिये पल्य की वर्गशलाका आदि पल्य के प्रथम मूल तक द्विरूपवर्गधारा के स्थानरूप राशि और इन्हीं के अर्धच्छेद और इन्हीं की वर्गशलाका स्थापित करके तीन पंक्तियां ऐसी करना –

मू १	छे	व - १
	२	
मू २	छे	व - २
	२ २	
मू ३	छे	व - ३
	२ २ २	
०	०	०
०	०	०
०	०	०
		१
व व	व छे २	व व
व	व छे	व व

यहां प्रथम पंक्ति में पल्य की वर्गशलाका **व**, उसका वर्ग ऐसा **व व** ऐसे ही पूर्व-पूर्व का वर्ग होते-होते अंत में पल्य का तीसरा, दूसरा, पहला वर्गमूल जानना । दूसरी पंक्ति में वर्गशलाका के अर्धच्छेद ऐसे **व छे**, उनसे दोगुणे ऐसे **व छे २**, ऐसे ही दोगुणे-दोगुणे होते-होते अंत में तीन, दो, एक बार दो से भाजित पल्य के अर्धच्छेद जानना । पुनश्च तीसरी पंक्ति में वर्गशलाका की वर्गशलाका ऐसी **व व** उससे एक अधिक ऐसी $\frac{१}{\text{व व}}$ ऐसी एक-एक अधिक होते हुये अंत में तीन, दो, एक कम पल्य की वर्गशलाका जानना ।

यहां प्रथम पंक्तियों की राशियों को परस्पर गुणा करनेपर पल्य की वर्गशलाका से भाजित पल्यमात्र मिथ्यात्व की अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी $\text{प}^{\text{व}}$ । पुनश्च द्वितीय पंक्ति के राशियों को जोड़ने के लिये अंतधन ऐसा **छे**, दो से गुणा करनेपर ऐसा $\text{छे}_{२}^{२}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा **छे** इसमें से आदि ऐसा **व छे** घटानेपर मिथ्यात्व कर्म की नानागुणहानिराशि ऐसी $\text{छे}^{\frown}_{\text{वछे}}$ । अन्य को आगे कहेंगे ।

लघुसंदृष्टि अन्योन्याभ्यस्त की ऐसी **अ,** नानागुणहानि की ऐसी **ना** जानना ।

पुनश्च नानागुणहानि प्रमाणराशि, स्थिति फलराशि, एक शलाका इच्छाराशि करनेपर

प्र	फ	इ
छे ⌒ वछे	प गृ	श १

लब्धराशिमात्र गुणहानि आयाम ऐसा $\overset{\text{छे}\frown\text{वछे}}{\text{प गृ}}$ होता है । इससे दोगुणा दोगुणहानि ऐसी $\overset{\text{छे}\frown\text{वछे}}{\text{प गृ २}}$ ।

अब यहां रचना कहते हैं –

जघन्य समयप्रबद्ध से पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भागगुणा उत्कृष्ट समयप्रबद्ध ऐसा $\underset{\text{ञ}}{\text{स छे}}$ अपवर्तन करनेपर जघन्य समयप्रबद्ध से असंख्यातगुणा ऐसा **स ञ** इसको सात का भाग देनेपर मोह का ऐसा $\underset{७}{\text{स ञ}}$ इसको अनंत का भाग देनेपर सर्वघाति ऐसा $\underset{७\,\text{ख}}{\text{स ञ}}$ इसको सत्रह का भाग देनेपर मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य ऐसा $\underset{७\,|\,\text{ख}\,|\,१७}{\text{स ञ}}$ जानना । इसको एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी $\frac{\text{१ ऊ}}{\text{अ}}$ उसका भाग देनेपर अंतगुणहानि का द्रव्य ऐसा $\underset{७\,|\,\text{ख}\,|\,१७\,\frac{\text{१ ऊ}}{\text{अ}}}{\text{स ञ}}$ ।

अंत गुणहानि का द्रव्य	$\underset{७\,\|\,\text{ख}\,\|\,१७\,\frac{\text{१ ऊ}}{\text{अ}}}{\text{स ञ}}$
उपांत गुणहानि का द्रव्य	$\underset{७\,\|\,\text{ख}\,\|\,१७\,\frac{\text{१ ऊ}}{\text{अ}}}{\text{स ञ २}}$
मध्य गुणहानि का द्रव्य	० ० ०
द्वितीय गुणहानि का द्रव्य	$\underset{७\,\|\,\text{ख}\,\|\,१७\,\frac{\text{१ ऊ}}{\text{अ}}\,\|\,२}{\text{स ञ अ २}}$
प्रथम गुणहानि का द्रव्य	$\underset{७\,\|\,\text{ख}\,\|\,१७\,\frac{\text{१ ऊ}}{\text{अ}}\,२}{\text{स ञ अ}}$

यहां अंतगुणहानि को दो से गुणा करनेपर उपांत गुणहानि का तथा दो से भाजित अन्योन्याभ्यस्तराशि से गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का और इसी को दो का भाग देनेपर द्वितीय गुणहानि का द्रव्य होता है ऐसा जानना । मध्य ग्रहण हेतु बिंदी जानना ।

पुनश्च एक कम गुणहानिमात्र गच्छ ऐसा $\overline{\text{गु}}^{\text{१ ऊ}}$, उसका आधा ऐसा $\overline{\text{गु}}^{\text{१ ऊ}}_{\text{२}}$, इसको दोगुणहानि ऐसा **२ गु**, उसमें से घटानेपर एक अधिक डेढ़ गुणहानिमात्र ऐसा $\overline{\text{गु ३}}^{\text{१}}_{\text{२}}$ आता है । उससे गुणहानि को गुणा करके ऐसा $\text{गु}\,\overline{\text{गु ३}}^{\text{१}}_{\text{२}}$ इसका भाग अपने-अपने द्रव्य को देनेपर चय का प्रमाण होता है –

अंत गुणहानि का चय	स ə ७ | ख | १७ $\overline{\text{अ}}^{\text{१ ऊ}}$ $\text{गु}\,\overline{\text{गु ३}}^{\text{१}}_{\text{२}}$
उपांत गुणहानि का चय	स ə २ ७ | ख | १७ $\overline{\text{अ}}^{\text{१ ऊ}}$ $\text{गु}\,\overline{\text{गु ३}}^{\text{१}}_{\text{२}}$
मध्य गुणहानि का चय	० ० ०
द्वितीय गुणहानि का चय	स ə अ ७ | ख | १७ $\overline{\text{अ}}^{\text{१ ऊ}}$ २ | २ $\text{गु}\,\overline{\text{गु ३}}^{\text{१}}_{\text{२}}$
प्रथम गुणहानि का चय	स ə अ ७ | ख | १७ $\overline{\text{अ}}^{\text{१ ऊ}}$ २ | $\text{गु}\,\overline{\text{गु ३}}^{\text{१}}_{\text{२}}$

पुनश्च एक गुणहानि से गुणित एक कम गुणहानि के आधे से चय को गुणा करनेपर चयधन ऐसा —

अंत गुणहानि का चयधन	स ə गु $\frac{१८}{\text{गु}}$ २ ७ | ख | १७ $\frac{१८}{\text{अ}}$ | गु $\frac{१}{\text{गु ३}}$ २
उपांत गुणहानि का चयधन	स ə २ गु $\frac{१८}{\text{गु}}$ २ ७ | ख | १७ $\frac{१८}{\text{अ}}$ | गु $\frac{१}{\text{गु ३}}$ २
मध्य गुणहानि का चयधन	० ० ०
द्वितीय गुणहानि का चयधन	स ə अ गु $\frac{१८}{\text{गु}}$ २ ७ | ख | १७ $\frac{१८}{\text{अ}}$ | गु $\frac{१}{\text{गु ३}}$ | २ | २ २
प्रथम गुणहानि का चयधन	स ə अ गु $\frac{१८}{\text{गु}}$ २ ७ | ख | १७ $\frac{१८}{\text{अ}}$ | गु $\frac{१}{\text{गु ३}}$ | २ २

पुनश्च अपने-अपने गुणहानि के धन में से चयधन घटाकर अवशेष को गुणहानि का भाग देनेपर अधिक संकलन अपेक्षा आदि जो अंत का निषेक होता है । इससे प्रथम निषेक तक एक-एक चय अधिक जानना ।

यहां प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा स ७ अ इसके अंश और हार को

७|ख|१७ १० अ २

एक अधिक तीनगुणा गुणहानि से गुणा करनेपर ऐसा हुआ स ७ अ १ गु ३

७|ख|१७ १० अ २ १ गु ३

यहां अंश का गुणकार ऐसा १ गु ३ में जो एक अधिक है उसका प्रमाण ऐसा स ७ अ क्योंकि वह गुणकार इतने प्रमाण गुण्य का है । इसको जुदा

७|ख|१७ १० अ २ १ गु ३

स्थापितकर अवशेष रहा ऐसा स ७ अ गु ३ । पुनश्च घटाने योग्य चयधनरूप

७|ख|१७ १० अ २ १ गु ३

ऋणराशि ऐसी स ७ अ ग्रु १० गु यहां अंश और हार में गुणहानि गु

७|ख|१७ १० अ|२|२|ग्रु १ गु ३

२

था, उसका अपवर्तन करनेपर तथा भागहार का गुणकार दो का अंक और भागहार का भागहार दो का अंक इनका अपवर्तन करनेपर चयधन ऐसा स ७ अ १० गु

७|ख|१७ १० अ २ १ गु ३

होता है । *(गुणहानिद्रव्य — चयधन = आदिधन । आदिधन ÷ गु = आदिद्रव्य)* यहां गुणकार में गुणहानि के ऊपर एक कम है उसका प्रमाण ऐसा स ७ अ

७|ख|१७ १० अ २ १ गु ३

यह ऋण की ऋणराशि है इसलिए धन होती है इसलिए ऐसा ही प्रमाणरूप धन पहले जुदा रखा था, सो उसका और इसका जोड़ देनेपर ऐसा स ० अ २ ।

$$\text{७|ख|१७}\ \frac{\text{१ऊ}}{\text{अ}}\ \text{२}\ \frac{\text{१}}{\text{गु ३}}$$

पुनश्च यहां दो का गुणकार था उसको एक अधिक तिगुणा गुणहानिरूप भागहार का भागहार करनेपर ऐसा स ० अ क्योंकि जैसे भागहार का भागहार

$$\text{७|ख|१७}\ \frac{\text{१ऊ}}{\text{अ}}\ \text{२}\ \frac{\text{१}}{\text{गु ३}}\ \text{२}$$

राशि का गुणकार होता है वैसे ही राशि का गुणकार भागहार का भागहार होता है । ऐसा करनेपर अवशेष चयधनरूप ऋणराशि ऐसी स ० अ गु

$$\text{७|ख|१७}\ \frac{\text{१ऊ}}{\text{अ}}\ \text{२}\ \frac{\text{१}}{\text{गु ३}}$$

उसको अवशेष रही मूलराशि ऐसी स ० अ गु ३ उसमें से घटाने के लिये

$$\text{७|ख|१७}\ \frac{\text{१ऊ}}{\text{अ}}\ \text{२}\ \frac{\text{१}}{\text{गु ३}}$$

यहां अन्य सर्व समान देखकर मूलराशि का गुणकार तीन गुणहानि था । उसमें से एक गुणहानि घटानेपर वहां दोगुणहानि का गुणकार करनेपर ऐसा हुआ स ० अ गु २ यहां जो दो गुणकार है उसको एक अधिक तीनगुणा

$$\text{७|ख|१७}\ \frac{\text{१ऊ}}{\text{अ}}\ \text{२}\ \frac{\text{१}}{\text{गु ३}}$$

गुणहानिरूप भागहार का भागहार करनेपर ऐसा स ० अ गु होता है ।

$$\text{७|ख|१७}\ \frac{\text{१ऊ}}{\text{अ}}\ \text{२}\ \frac{\text{१}}{\text{गु ३}}\ \text{२}$$

जुदा स्थापित किया धन ऐसा स ० अ उसको मिलाने के लिये

$$\text{७|ख|१७}\ \frac{\text{१ऊ}}{\text{अ}}\ \text{२}\ \frac{\text{१}}{\text{गु ३}}\ \text{२}$$

अन्य समान देखकर गुणकाररूप गुणहानि के ऊपर एक अधिक करके ऐसा

$\mathbf{स\ ə\ अ\ \frac{१}{गु}}$ होता है । *(यह आदिधन है)* इसको गुणहानि का भाग

$\mathbf{७\ |ख|१७\ \frac{१०}{अ}\ २\ \frac{१}{गु\ ३}}$
$\mathbf{२}$

देनेपर अधिक संकलन की अपेक्षा आदिनिषेक ऐसा $\mathbf{स\ ə\ अ\ \frac{१}{गु}}$ हुआ ।

$\mathbf{७|ख|१७\ \frac{१०}{अ}\ २\ \frac{१}{गु\ ३}\ गु}$
$\mathbf{२}$

पुनश्च यहां एक कम गुणहानिमात्र चय ऐसे $\mathbf{स\ ə\ अ\ \frac{१०}{गु}}$ मिलाना । सो

$\mathbf{७|ख|१७\ \frac{१०}{अ}\ २\ \frac{१}{गु\ ३}\ गु}$
$\mathbf{२}$

अन्य सर्व समान देखकर गुणकार एक अधिक गुणहानि में एक कम गुणहानि मिलानेपर दोगुणहानि का गुणकार करनेपर अंत में निषेक ऐसा $\mathbf{स\ ə\ अ\ गु\ २}$ होता

$\mathbf{७|ख|१७\ \frac{१०}{अ}\ २\ \frac{१}{गु\ ३}\ गु}$
$\mathbf{२}$

है । इसतरह यह अधिक अनुक्रमसहित निषेकों की अपेक्षा वर्णन किया ।

पुनश्च हीन अनुक्रम सहित ऐसे जानना –

विवक्षित प्रकृति का द्रव्य स्वकीय उत्कृष्ट समयप्रबद्धमात्र ऐसा **स ə** इसको एक कम अन्योन्याभ्यस्त का भाग देनेपर अंतगुणहानि का द्रव्य ऐसा $\mathbf{स\ ə\ \frac{१०}{अ}}$ होता है । इसको आधे अन्योन्याभ्यस्त से गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\mathbf{स\ ə\ अ\ \frac{१०}{अ\ २}}$ इसको गुणहानि का भाग देनेपर मध्यधन ऐसा $\mathbf{स\ ə\ अ\ \frac{१०}{अ\ २\ गु}}$ । इसको एक कम गच्छ का आधा

ऐसा $\frac{१८}{\text{गु}_{२}}$ उससे हीन दोगुणहानि ऐसा $\frac{१}{\text{गु}_{२}^{३}}$ उसका भाग देनेपर चय का प्रमाण ऐसा $\frac{\text{स ə अ}}{\frac{१८}{\text{अ}_{२}\,\text{गु}}\,\frac{१}{\text{गु}_{२}^{३}}}$ होता है । इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक ऐसा $\frac{\text{स ə अ गु}_{२}}{\frac{१८}{\text{अ}_{२}\,\text{गु}}\,\frac{१}{\text{गु}_{२}^{३}}}$ होता है । ऊपर एक-एक चय घटते हुये एक अधिक गुणहानिगुणित चय प्रमाण अंत निषेक ऐसा $\frac{\text{स ə अ}\,\frac{१}{\text{गु}}}{\frac{१८}{\text{अ}_{२}\,\text{गु}}\,\frac{१}{\text{गु}_{२}^{३}}}$ होता है । ऐसे ही अन्य गुणहानियों में करना । उनकी रचना —

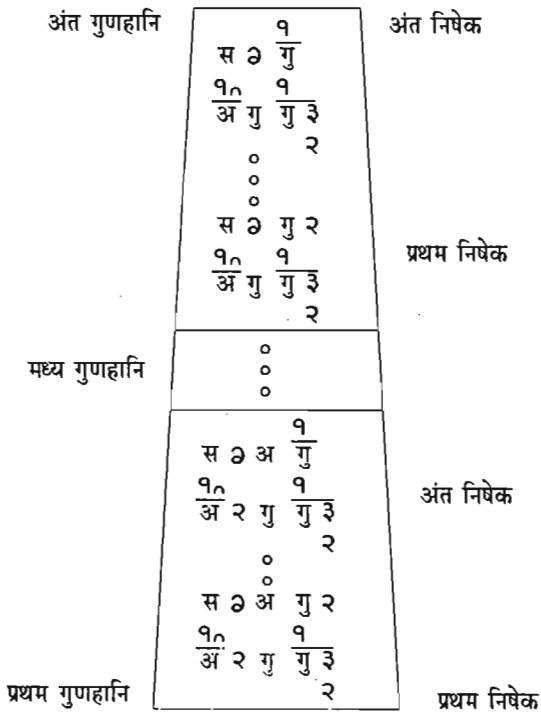

यहां अंत गुणहानि में भी अपने चय को दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक, एक अधिक गुणहानि से गुणा करनेपर अंत निषेक होता है ऐसा जानना । मध्य निषेक और मध्य गुणहानि के ग्रहण के लिये बीच में बिंदियों की संदृष्टि जानना । इसी प्रकार सातों कर्मों की रचना जानना ।

पुनश्च सर्व मूल और उत्तर प्रकृतियों की दोगुणहानि, गुणहानि समान है और नानागुणहानि समान नहीं है । उसका विशेष जानने के लिये पल्य की वर्गशलाका से लेकर पल्य के प्रथम वर्गमूल तक जो राशि उनके दोगुणे-दोगुणे अर्धच्छेदों को स्थापित करके ऊपर से तीन-तीन राशि जोड़नेपर आठ-आठ गुणा हीन होता है । वहां पल्य के प्रथम, द्वितीय, तृतीय मूलों के अर्धच्छेद ऐसे $\frac{\text{छे}}{२}$ $\frac{\text{छे}}{२|२}$ $\frac{\text{छे}}{२|२|२}$ हैं । यहां पल्य के अर्धच्छेदों की संदृष्टि ऐसी **छे** उसके भागहार जानना ।

इनका जोड़ देने के लिये यहां अंतधन ऐसा $\frac{\text{छे}}{२}$ दो से गुणा करनेपर ऐसा **छे २** अपवर्तन करनेपर ऐसा **छे** होता है । इसमें से आदि ऐसा $\frac{\text{छे}}{८}$ घटानेपर ऐसा $\frac{\text{छे}}{८}$ **७** जोड़ होता है । इसीप्रकार चौथे, पांचवें, छठवें मूल के अर्धच्छेद ऐसे $\frac{\text{छे}}{८|२}$ $\frac{\text{छे}}{८|२|२}$ $\frac{\text{छे}}{८|२|२|२}$

जोड़नेपर ऐसे $\frac{\text{छे}\ \mathbf{७}}{८|८|}$ होते हैं ।

इसीतरह उतरकर नीचे पल्य की वर्गशलाका के आठवें, सातवें, छठवें वर्ग के अर्धच्छेद ऐसे **व छे ८ ८ ४** होते हैं ।

व छे ८ ८ २

व छे ८ ८ १

यहां वर्गशलाका के अर्धच्छेदों की संदृष्टि ऐसी **व छे** उसके गुणकार जानना । इनको जोड़नेपर ऐसे **व छे ८ ८ ७** उसीके पांचवें, चौथे, तीसरे वर्ग के अर्धच्छेद ऐसे – **व छे ८ ४** जोड़नेपर ऐसे **व छे ८ ७** उसीके दूसरे, पहले वर्ग के और

व छे ८ २

व छे ८ १

वर्गशलाका के अर्धच्छेद ऐसे **व छे ४** जोड़नेपर **व छे ७** ऐसी ये जोड़ी हुयी राशि

व छे २

व छे १

उनकी सात पंक्तियां आगे-आगे ऐसी जानना ।

सात कर्मों की रचना

छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८	छे ७ ८
छे ७ ८ ८	छे ७ ८ ८	छे ७ ८ ८	छे ७ ८ ८	छे ७ ८ ८	छे ७ ८ ८	छे ७ ८ ८
छे ७ ८ ८ ८	छे ७ ८ ८ ८	छे ७ ८ ८ ८	छे ७ ८ ८ ८	छे ७ ८ ८ ८	छे ७ ८ ८ ८	छे ७ ८ ८ ८
० ०	० ०	० ०	० ०	० ०	० ०	० ०
व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८	व छे ७।८।८
व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८	व छे ७।८
व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७	व छे ७

यहां सर्वत्र सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाणराशि करके, अपना-अपना जोड़ फलराशि करके क्रम से सातों पंक्तियों में दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर कोडाकोडी सागर इच्छाराशि करनेपर लब्धराशि में सर्वत्र जोड़ने के लिये सात का भागहार और क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात का गुणकार होता है । यदि सात के

गुणकार से सात के भागहार का अपवर्तन करते हैं तो ऐसी रचना होती है — छे = पल्य के अर्धच्छेद, वछे = पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद

छे १ ८	छे २ ८	छे ३ ८	छे ४ ८	छे ५ ८	छे ६ ८	छे ७ ८
छे १ ८ ८	छे २ ८ ८	छे ३ ८ ८	छे ४ ८ ८	छे ५ ८ ८	छे ६ ८ ८	छे ७ ८ ८
छे १ ८ ८ ८	छे २ ८ ८ ८	छे ३ ८ ८ ८	छे ४ ८ ८ ८	छे ५ ८ ८ ८	छे ६ ८ ८ ८	छे ७ ८ ८ ८
० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०
व छे ८।८।१	व छे ८।८।२	व छे ८।८।३	व छे ८।८।४	व छे ८।८।५	व छे ८।८।६	व छे ८।८।७
व छे ८।१	व छे ८।२	व छे ८।३	व छे ८।४	व छे ८।५	व छे ८।६	व छे ८।७
व छे १	व छे २	व छे ३	व छे ४	व छे ५	व छे ६	व छे ७
१० को २	२० को २	३० को २	४० को २	५० को २	६० को २	७० को २

यहां प्रथम पंक्ति का जोड़ देने के लिये अंतधन ऐसा **छे १** आदि ऐसा **व छे** ८ यहां गुणकार ८ है । इसलिए अंतधन को गुणकार ८ से गुणा करनेपर ऐसा **छे १।८** ८ अपवर्तन करनेपर ऐसा **छे** उसमें से आदि ऐसा **व छे** घटानेपर ऐसा **छे वछे** इसको एक कम गुणकार सात का भाग देनेपर दस कोडाकोडी सागर स्थिति में नानागुणहानि ऐसा **छे वछे** यहां ऋण ऐसा **व छे** उसको जुदा स्थापित करनेपर ऐसा **छे** ७ ७ संदृष्टि के लिये ऊपर नीचे आठ से गुणा करनेपर ऐसा **छे ८** यहां गुणकार में ७ ८ से एक ऐसा **छे १** घटाकर जुदा स्थापित करके अवेशष ऐसा **छे ७** अपवर्तन ७ ८ ७ ८ करनेपर ऐसा **छे** इतनी बार दो को परस्पर गुणा करनेपर पल्य का तृतीय मूल हुआ ८ **मू ३** । जुदे रखे हुये धन में से ऋण घटाने के लिये किंचित् कम करनेपर ऐसा **छे १** — इतने दो को परस्पर गुणा करनेपर असंख्यात गुणित पल्य के पंचम मूल ७ ८

मू ५ ७ प्रमाण असंख्यात ऐसा **७**, उसका गुणकार करनेपर दस कोडाकोडी सागर स्थिति में अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी **मू ३ ७** हुयी ।

पुनश्च द्वितीय पंक्ति में अंतधन **छे २** को गुणकार आठ से गुणा करके अपवर्तन
८
करनेपर ऐसा **छे २** । उसमें से आदि ऐसा **व छे २** घटाने की किंचित् कम ऐसी **–** संदृष्टि करनेपर ऐसा होता है **छे २ –** । इसको एक कम गच्छ ७ का भाग देनेपर बीस कोडाकोडी सागरस्थिति में नानागुणहानि ऐसी **छे २ –** होती है ।
७

यहां ऊपर नीचे आठ से गुणा करके ऐसा **छे २ –|८** । इसमें से *(गुणकार ८ में*
७|८

से) एक जुदा रखकर अवशेष ऐसा **छे** १ **२ –|७** अपवर्तन करनेपर ऐसा **छे –**, इतने
७|८ ४ ४

दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर किंचित् कम द्वितीय मूल ऐसा **मू २ –** । जुदा रखा था उतने दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर असंख्यात हुआ, उसका गुणकार करनेपर बीस कोडाकोडी सागर स्थिति में अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी **मू २ –|७** ।

पुनश्च इसीतरह तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर कोडाकोडीसागर स्थिति में पूर्वोक्त प्रकार से तृतीयादि पंक्ति का जोड़ देनेपर क्रम से तीन, चार, पांच, छह, सात गुणा किंचित् कम पल्य के अर्धच्छेदों का सातवां भागमात्र नानागुणहानि होती है । पूर्वोक्त विधान से इतने दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर तृतीय मूल और असंख्यात से गुणित द्वितीय मूलप्रमाण; पुनश्च असंख्यात गुणित प्रथम मूलप्रमाण; पुनश्च तृतीय मूल और असंख्यात से गुणित प्रथम मूलप्रमाण; पुनश्च द्वितीय मूल और असंख्यात से गुणित प्रथम मूलप्रमाण; पुनश्च वर्गशलाका से भाजित पल्यप्रमाण ये उनकी क्रम से अन्योन्याभ्यस्तराशि होती हैं, उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	सा १० को २	सा २० को २	सा ३० को २	सा ४० को २	सा ५० को २	सा ६० को २	सा ७० को २
अन्योन्याभ्यस्त	मू ३ ə	मू २ – । ə	मू २ मू ३ – । ə	मू १ – । ə	मू १ मू ३ – । ə	मू १ मू २ – । ə	प व
नानागुणहानि	छे ⌒ वछे ७	छे २ – ७	छे ३ – ७	छे ४ – ७	छे ५ – ७	छे ६ – ७	(छे ⌒ वछे) ७ ७

पुनश्च कर्मस्थिति रचना में द्रव्यादि और निषेकादि का अंकसंदृष्टि द्वारा टीका में कथन किया है तथा त्रिकोणयंत्र लिखा है वह सर्व टीका से जानना । पुनश्च त्रिकोणयंत्र के जोड़ का विधान जैसे हीन-हीन संकलन विवक्षा से जीवकाण्ड के योगमार्गणा में किया है, वैसे यहां भी जानना, कुछ विशेष नहीं है, इसलिए यहां नहीं लिखा है ।

कर्मों की जघन्य स्थिति संख्यात पल्यमात्र ऐसी **प॰**, उत्कृष्ट स्थिति उससे संख्यातगुणी ऐसी **प॰॰** । उत्कृष्ट में से जघन्य घटाने के लिये अन्य सर्व समान देखकर आगे के संख्यात के गुणकार में से एक घटानेपर ऐसा $\mathbf{प॰}^{\mathbf{१८}}_{\mathbf{॰}}$ उसमें एक जोड़नेपर सर्व स्थिति के भेद ऐसे $\mathbf{प॰}^{\mathbf{१}}_{\mathbf{१८}}$ ये तो निरंतर स्थिति के भेद हैं । पुनश्च सम्यक्त्वादि के सन्मुख हुये जीव के सांतर स्थितिभेद संख्यात हजार **१०००॰** हैं । पुनश्च स्थितिबंधाध्यवसायस्थान आयुकर्म के असंख्यात लोकमात्र हैं । इससे नाम, गोत्र के पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे हैं । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय के पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे हैं । इससे मोह के पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे हैं । उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	आयु	नाम, गोत्र	ज्ञा. द. वे. अ.	मोह
प्रमाण	≡ə	≡ə। प ə	≡ə। प प ə ə	≡ə। प प प ə ə ə

पुनश्च मोहनीयकर्म के स्थितिबंधाध्यवसायों की रचना में द्रव्य तो अपना स्थितिबंधाध्यवसाय का प्रमाण जानना । स्थिति अपने स्थितिभेदों का प्रमाणमात्र ऐसी $\mathbf{प॰}^{\mathbf{१}}_{\mathbf{१८}}$ जानना । चय अधिक-अधिक संकलन अपेक्षा अपनी-अपनी गुणहानि के अंत

निषेक को दोगुणहानि का भाग देनेपर या प्रथम निषेक को एक अधिक गुणहानि का भाग देनेपर होता है । जैसे अंकसंदृष्टि से इस प्रकार है —

[***विशेषार्थ :***

प्रथम पद्धति : अंतनिषेक ÷ दोगुणहानि = चय

दूसरी पद्धति : प्रथमनिषेक ÷ एक अधिक गुणहानि = चय]

	प्र. गुणहानि	द्वि. गुणहानि	तृ. गुणहानि	च. गुणहानि	पं. गुणहानि	अंतगुणहानि
अंतनिषेक	१६ ८ | २	३२ ८ | २	६४ ८ | २	१२८ ८ | २	२५६ ८ | २	५१२ ८ | २
प्रथमनिषेक	९ १/८	१८ १/८	३६ १/८	७२ १/८	१४४ १/८	२८८ १/८
चय	१	२	४	८	१६	३२

यहां अधिक-अधिक संकलन अपेक्षा प्रथम गुणहानि का अंत निषेक सोलह उसको दोगुणा गुणहानि **(८ × २)** का भाग देनेपर एक आया अथवा प्रथम निषेक नौ, उसको एक अधिक गुणहानि **(८ + १)** का भाग देनेपर भी एक आया वही प्रथम गुणहानि में चय का प्रमाण जानना । आगे गुणहानि-गुणहानि प्रति दोगुणा-दोगुणा जानना । अर्थसंदृष्टि द्वारा आगे कहेंगे ।

पुनश्च यहां नानागुणहानि का प्रमाण स्थितिरचना में जो नानागुणहानि का प्रमाण ऐसा **छे ⌒ वछे** कहा था उसके असंख्यातवें भागमात्र ऐसा $\overset{\text{छे}}{\frown}{}_{\text{ञ}}\,\text{वछे}$ जानना ।

इसका भाग स्थिति को देनेपर गुणहानि आयाम का प्रमाण ऐसा $\frac{\text{१}}{\text{पनृनृ}^{\text{१८}}}$ जानना,

इसको दो से गुणा करके दोगुणहानि का प्रमाण ऐसा $\frac{१}{१०}$ पगृगृ २ जानना, अन्य कर्मों
छे वछे
९
की रचना आगे कहेंगे । आयु में विशेष है, वह कहते हैं –

आयुकर्म के सर्वजघन्य स्थितिबंध के कारणभूत स्थितिबंधाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ≡ ९, उससे द्वितीयादि स्थितिबंध के कारणभूत स्थान आवली के असंख्यातवें भाग २ गुणा क्रम से जानना । वहां अंकसंदृष्टि से ऐसा – स्थितिभेद सोलह - १६;
९
असंख्यातलोक का प्रमाण बाइस - २२; आवली के असंख्यातवें भाग का प्रमाण - ४; अनुकृष्टि गच्छ भी - ४ । पहले बाइस स्थापित करके ऊपर क्रम से एक, दो, तीन आदि एक-एक अधिक बार चार से गुणा करनेपर सोलह स्थितिभेदों में स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान होते हैं । इन जघन्यादि स्थितिभेदों के बंधाध्यवसायों में अनुकृष्टि रचना होती है –

स्थितिबंधाध्यवसायस्थान रचना

२२|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|४|
२२|४|४|४|४|
२२|४|४|४|
२२|४|४|
२२|४|
२२|

एक-एक स्थान में अनुकृष्टि के चार-चार खण्ड जानना । वहां प्रथम स्थान में सर्व द्रव्य बाइस, उसके प्रथमादि खण्डों में से चार, पांच, छह, सात प्रमाण जानना । दूसरे स्थान में द्रव्य एक बार चार से गुणित बाइस **२२|४**, इसको चार का भाग देकर एक भाग जुदा रखने के लिये गुणकार चार में से एक घटानेपर अवशेष ऐसा **२२|४−१** अंतखण्ड में देना । एक भाग के बाइस रहे उसमें से चार तो इस अंतखण्ड में अधिक करने | पांच, छह, सात, प्रथमादि खण्डों में देना । पुनश्च तीसरे स्थान में द्रव्य दो बार चारगुणा बाइस **२२|४|४|** उसका एकभाग ग्रहण करने के लिये अंत के चार के गुणकार में से एक घटाकर अवशेष ऐसा **२२|४|४−१** अंतखण्ड में देना । एक भाग का प्रमाण ऐसा **२२|४** इसके गुणकार-गुणक में से एक घटाकर अवशेष ऐसा **२२|४−१** उपांत खण्ड में देना । पुनश्च एकभाग के रहे बाइस इनमें से चार तो इसीमें, पांच इसके आगे के अंत खण्ड में, छह और सात प्रथम और द्वितीय खण्ड में देना । इसी क्रम से अपना सर्व द्रव्य होगा उसको चार का भाग देकर एकभाग घटाने के लिये अंत में जो चार का गुणकार है उसमें से एक घटाकर अवशेष अंतखण्ड में देना । वहां सर्वद्रव्य में जितनी बार बाइस को चार का गुणकार था उतनी बार वहां भी चार का गुणकार जानना । वहां अंत के चार के गुणकार में से एक घटाने के लिये आगे **−१** ऐसी संदृष्टि जानना । पुनश्च पश्चात् एक-एक भाग का उससे एक-एक बार कम चारगुणा बाइस रहता जायेगा, उस-उस का एक-एक भाग ग्रहण करने के लिये अंत के चार के गुणकार में से एक कम करने की आगे ऐसी **−१** संदृष्टि करके उपांतादि खण्डों में देना । ऐसा विधान प्रथम खण्ड तक करनेपर भी यदि अवशेष रहे तो पुनश्च अंतखण्डादि में उसीप्रकार क्रम से अधिक करना ।

इसप्रकार विधान करनेपर जहां एक बार चार का गुणकार रह जाये वहां उसके गुणकार में से एक घटाया उसका प्रमाण बाइस, उसमें से चार तो इसीके ऊपर अधिक करना और इसके आगे के खण्ड हो उनमें पांच, छह, सात देना, आगे खण्ड न हो तो प्रथमादि पहले खण्डों में देना ।

इस विधान से अंतखण्ड में सर्वद्रव्य पंद्रह बार चारगुणा बाइस ऐसा **२२।४।१५** *(१५ बार)* उसके अंत के गुणकार में से एक घटानेपर अवशेष ऐसा **२२।४।१५ – १** अंतखण्ड में देना । पुनश्च एक-एक भाग में से एक-एक भाग घटाकर तीसरे, दूसरे, पहले खण्ड में देना **२२।४।१४ – १; २२।४।१३ – १; २२।४।१२ – १** । पुनश्च इस पहले खण्ड में दिये हुये द्रव्य के एक-एक भाग में से एक-एक भाग घटाकर पुनश्च अंतादि खण्डों में अधिक करना – **२२।४।११ – १; २२।४।१० – १; २२।४।९ – १, २२।४।८ – १** । पुनश्च इस प्रथम खण्ड में दिये हुये द्रव्य के एक-एक भाग में से एक-एक भाग घटाकर पुनश्च अंतादि खण्डों में अधिक करना – **२२।४।७ – १; २२।४।६ – १; २२।४।५ – १; २२।४।४ – १** । पुनश्च इस प्रथम खण्ड में दिये हुये द्रव्य के एक-एक भाग में से एक-एक भाग घटाकर फिरसे अंतादि खण्डों में अधिक करना – **२२।४।३ – १; २२।४।२ – १; २२।४ – १**; यहां द्वितीय खण्ड में दिये हुये द्रव्य का एक भाग बाइस रहा इनमें से चार तो इसके ऊपर देना; पांच, छह इसके आगे के तीसरे, चौथे खण्ड में अधिक करना, अवशेष सात इसके पहले के प्रथम खण्ड में देना ।

इसतरह आयु में अनुकृष्टि खण्ड जानना । उनकी रचना –

नाम	सर्वद्रव्य प्रमाण	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	तृतीय खण्ड	चतुर्थ खण्ड
अंत स्थान	२२।४।१५	७ २२।४।४ – १ २२।४।८ – १ २२।४।१२ – १	४ २२।४ – १ २२।४।५ – १ २२।४।९ – १ २२।४।१३ – १	५ २२।४।२ – १ २२।४।६ – १ २२।४।१० – १ २२।४।१४ – १	६ २२।४।३ – १ २२।४।७ – १ २२।४।११ – १ २२।४।१५ – १
उपांत स्थान	२२।४।१४	६ २२।४।३ – १ २२।४।७– १ २२।४।११ – १	७ २२।४।४ – १ २२।४।८ – १ २२।४।१२ – १	४ २२।४ – १ २२।४।५ – १ २२।४।९ – १ २२।४।१३ – १	५ २२।४।२ – १ २२।४।६ – १ २२।४।१० – १ २२।४।१४ – १
मध्य स्थान	० ०	० ०	० ०	० ०	० ०

नाम	सर्वद्रव्य प्रमाण	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	तृतीय खण्ड	चतुर्थ खण्ड
आठवां स्थान	२२।४।७	७ २२।४।४−१	४ २२।४−१ २२।४।५−१	५ २२।४।२−१ २२।४।६−१	६ २२।४।३−१ २२।४।७−१
सातवां स्थान	२२।४।६	६ २२।४।३−१	७ २२।४।४−१	४ २२।४−१ २२।४।५−१	५ २२।४।२−१ २२।४।६−१
छठवां स्थान	२२।४।५	५ २२।४।२−१	६ २२।४।३−१	७ २२।४।४−१	४ २२।४−१ २२।४।५−१
पांचवां स्थान	२२।४।४	४ २२।४−१	५ २२।४।२−१	६ २२।४।३−१	७ २२।४।४−१
चौथा स्थान	२२।४।३	७	४ २२।४−१	५ २२।४।२−१	६ २२।४।३−१
तीसरा स्थान	२२।४।२	६	७	४ २२।४−१	५ २२।४।२−१
दूसरा स्थान	२२।४	५	६	७	४ २२।४−१
पहला स्थान	२२	४	५	६	७

यहां पहले तो सर्वद्रव्य लिखा, वहां जितनी बार बाइस को चार का गुणकार है उतना अंक चार के आगे लिखा हुआ जानना । उनके आगे अपने-अपने अनुकृष्टि खण्ड लिखे हैं । वहां पहले स्थान में खण्डों का प्रमाण ऐसा **४।५।६।७** पुनश्च इसके ऊपर जो अपने नीचे के द्वितीय, तृतीय, अंतखण्ड का प्रमाण वही ऊपर के प्रथम, द्वितीय, तृतीय खण्डों का प्रमाण जानना । पुनश्च अंतखण्ड का प्रमाण दूसरे स्थान में एक बार; तीसरे में दो बार; चौथे में तीन बार; पांचवें में चार बार, छठवें में पांच बार और एक बार; सातवें में छह बार और दो बार; आठवें में सात बार और तीन बार चार गुणा बाइस प्रमाण जानना । उन सब में अंत का चार का

गुणकार एक-एक कम जानना । पुनश्च उन अंत खण्डों में क्रम से चार, पांच, छह, सात, चार, पांच, छह की अधिकता जानना ।

इसीतरह नौवें आदि स्थान होकर उपांत पंद्रहवें स्थान के प्रथम खण्ड में ग्यारह, सात, तीन बार; दूसरे खण्ड में बारह, आठ, चार बार; तीसरे खण्ड में तेरह, नौ, पांच, एक बार; अंतखण्ड में चौदह, दस, छह, दो बार चारगुणा बाइस प्रमाण जानना। उन सबमें अंत के चार के गुणकार में से एक-एक कम जानना । और उन प्रथमादि खण्डों में छह, सात, चार, पांच की अधिकता जानना ।

पुनश्च अंतस्थान में पहला, दूसरा, तीसरा खण्ड तो उपांतस्थान के दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड के समान जानना । अंतखण्ड पंद्रह, ग्यारह, सात, तीन बार चारगुणा बाइस प्रमाण, वहां अंत के चार का गुणकार एक-एक कम, इनको जोड़कर उनमें छह अधिक करके होता है । सो यहां जितनी बार चार का गुणकार हो उतने का अंक चार के आगे जानना अथवा उतनी ही बार चार लिखना जानना और अंत के चार में से एक घटाने की सर्वत्र ऐसी **–१** संदृष्टि जानना । और अधिक का ऊपर लिखना जानना । इसतरह आयु के स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का विधान कहा ।

अब मोह का कहते हैं । वहां मोह की स्थितिरचना ऐसी —

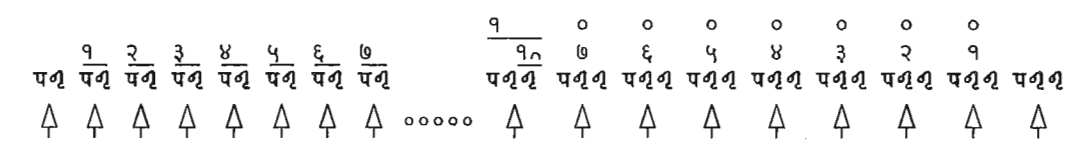

यहां स्थिति की ऐसी ४ संदृष्टि की । वहां प्रथम जघन्यस्थिति संख्यातपल्यमात्र आगे इससे एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात आदि एक-एक समय अधिक होते हुये अंत में सात, छह, पांच, चार, तीन, दो, एक समय कम उत्कृष्टस्थितिमात्र और उत्कृष्टस्थिति दो बार संख्यात गुणित पल्यप्रमाण जानना । बीच में सर्व स्थितिभेदों का प्रमाण लिखा हुआ जानना ।

सो यहां सर्व स्थितिभेदों का प्रमाण वह स्थिति, इसको कर्मस्थिति की नानागुणहानि के असंख्यातवें भागमात्र नानागुणहानि उसका भाग देनेपर गुणहानि आयाम और इससे

दोगुणा दोगुणहानि और पल्य के असंख्यातवें भागमात्र अन्योन्याभ्यस्तराशि और मोह के स्थितिबंधाध्यवसाय प्रमाण द्रव्य जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी – .

द्रव्य	स्थिति	दोगुणहानि	नानागुणहानि	अन्योन्याभ्यस्त
$\equiv \frac{ə \mid प\ प\ प}{ə\ ə\ ə}$	$\frac{१}{प\frac{१ ∩}{नृ}}$	$\frac{१}{प\frac{१ ∩}{नृ}\ २}$ छे ⌒ वछे ə	छे ⌒ वछे ə	प ə

यहां आदि अक्षररूप लघुसंदृष्टि अन्योन्याभ्यस्त की ऐसी **अ**; गुणहानि की ऐसी **गु** जानना । वहां द्रव्य को एक कम अन्योन्याभ्यस्त का भाग देनेपर अधिक-अधिक संकलन अपेक्षा प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\equiv \frac{ə\ प\ प\ प}{\frac{१ ∩}{अ}\ ə\ ə\ ə}$ है । हीन संकलन विवक्षा से जिसको अंतगुणहानि संज्ञा थी उसको यहां प्रथम गुणहानि कहा है । पुनश्च इससे द्वितीयादि गुणहानि में दोगुणा-दोगुणा होकर उसको आधे अन्योन्याभ्यस्तराशि से गुणा करनेपर अंतगुणहानि का द्रव्य ऐसा $\equiv \frac{ə\ प\ प\ प\ अ}{\frac{१ ∩}{अ}\ ə\ ə\ ə\ २}$ है । पुनश्च प्रथम गुणहानि के द्रव्य को गुणहानिमात्र गच्छ का भाग देनेपर मध्यधन ऐसा $\equiv \frac{ə\ प\ प\ प}{\frac{१ ∩}{अ}\ ə\ ə\ ə\ गु}$ इसको एक कम गच्छ का आधा ऐसा $\frac{१ ∩}{\frac{गु}{२}}$ उससे हीन दोगुणहानि ऐसा $\frac{१}{\frac{गु}{२}}$ है । यहां एक अधिक डेढ़ गुणहानि जानना ।

इसका भाग देनेपर चय ऐसा $\equiv \frac{ə\ प\ प\ प}{\frac{१ ∩}{अ}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \frac{१}{\frac{गु}{२}}}$ इसको अधिक संकलन

विवक्षा से एक अधिक गुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक ऐसा $\equiv \frac{\text{१ ०}}{\text{अ}} \; \text{ə प प प} \frac{\text{१}}{\text{गु}} \; \text{ə ə ə गु} \frac{\text{१}}{\text{गु}} \frac{\text{३}}{\text{२}}$ हीन संकलन विवक्षा से जिसको अंत निषेक संज्ञा थी उसको यहां प्रथम निषेक कहा है । पुनश्च द्वितीयादि निषेक एक-एक चय अधिक होकर एक कम गुणहानिमात्र चय बढ़नेपर दोगुणहानि गुणित चयमात्र अंत निषेक ऐसा $\equiv \frac{\text{१ ०}}{\text{अ}} \; \text{ə प प प गु २} \; \text{ə ə ə गु} \frac{\text{१}}{\text{गु}} \frac{\text{३}}{\text{२}}$ इसीतरह गुणहानि-गुणहानि प्रति दोगुणा-दोगुणा द्रव्य और चय होता है । अंत गुणहानि में द्रव्य को गुणहानि का भाग देकर मध्यधन ऐसा $\equiv \text{ə प प प अ}$ इसको एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर $\frac{\text{१ ०}}{\text{अ}} \; \text{गु ə ə ə २}$ चय ऐसा $\equiv \frac{\text{१ ०}}{\text{अ}} \; \text{ə प प प अ} \; \text{ə ə ə २ गु} \frac{\text{१}}{\text{गु}} \frac{\text{३}}{\text{२}}$ इसको एक अधिक गुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक ऐसा $\equiv \frac{\text{१ ०}}{\text{अ}} \; \text{ə प प प अ} \frac{\text{१}}{\text{गु}} \; \text{ə ə ə २ गु} \frac{\text{१}}{\text{गु}} \frac{\text{३}}{\text{२}}$ द्वितीयादि निषेक एक-एक चय अधिक होकर एक कम गुणहानिमात्र चय बढ़नेपर अंतनिषेक ऐसा होता है $\equiv \frac{\text{१ ०}}{\text{अ}} \; \text{ə प प प अ गु २} \; \text{ə ə ə २ गु} \mid \frac{\text{१}}{\text{गु}} \frac{\text{३}}{\text{२}}$ ।

इनकी रचना —

प्रथम गुणहानि			मध्य गुणहानि	अंत गुणहानि		
ज △ पृ	० ० ०	△	० ० ०	△	० ० ०	उ △ पृ पृ
प्रथम निषेक	मध्य निषेक	अंत निषेक	० ० ०	प्रथम निषेक	मध्य निषेक	अंत निषेक
≡ə। प प प प $\frac{१}{गु}$ ə ə ə $\frac{१०}{अ}$ गु $\frac{१}{गु}$ ३ २	० ० ०	≡ə। प प प प गु २ ə ə ə $\frac{१०}{अ}$ गु $\frac{१}{गु}$ ३ २	० ० ०	≡ə। प प प प अ $\frac{१}{गु}$ ə ə ə २ $\frac{१०}{अ}$ गु $\frac{१}{गु}$ ३ २	० ० ०	≡ə। प प प प अ गु २ ə ə ə २ $\frac{१०}{अ}$ गु $\frac{१}{गु}$ ३ २

यहां ऊपर स्थितियों की संदृष्टि लिखी है, आदि-अंत में जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण लिखा है । नीचे उन स्थितियों के कारणभूत स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के प्रथम और अंत गुणहानि के आदि-अंत निषेक लिखे हैं, मध्यनिषेक के ग्रहण के लिये बिंदियों की संदृष्टि है । वहां जघन्यस्थिति को कारण प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक जानना; उत्कृष्टस्थिति को कारण अंतगुणहानि का अंतनिषेक जानना । इसलिए उनको जघन्य-उत्कृष्टस्थिति के नीचे लिखा है, अवशेष मध्यस्थिति को कारण हैं इसलिए बीच में लिखे हैं । इस कथन का अंकसंदृष्टि द्वारा टीका में वर्णन किया है, वहां से जानना ।

पुनश्च यहां अनुकृष्टि विधान कहते हैं – $\frac{१}{पृ^{\frac{१०}{पृ}}}$ स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का गुणहानि आयाम ऐसा $\overset{छे}{\underset{ə}{\frown}}$ वछे इसको संख्यात का भाग देनेपर ऐसा $\frac{१}{पृ^{\frac{१०}{पृ}}}$ $\overset{छे}{\underset{ə}{\frown}}$ वछे पृ इसका अपवर्तन करनेपर पल्य का असंख्यातवां भागमात्र अनुकृष्टि गच्छ ऐसा $\frac{प}{ə}$ जानना । वहां जघन्य स्थितिबंध को कारण कषाय परिणाम ऐसे हैं ≡ə। प प प $\frac{१}{गु}$ ə ə ə $\frac{१०}{अ}$ गु $\frac{१}{गु}$ ३ २ इसको प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक की अनुकृष्टि

रचना में द्रव्य जानना । पुनश्च प्रथम गुणहानि का चय ऐसा $\equiv ə \mid \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}$ है, इसको

$$\frac{१∩}{अ} \quad \frac{१}{गु\ गु\ ३/२}$$

अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर अनुकृष्टि चय ऐसा $\equiv ə \mid \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}$ है । *(अनुकृष्टि*

$$\frac{१∩}{अ} \quad \frac{१}{गु\ गु\ ३/२}\ \frac{प}{ə}$$

चय = प्रथम गुणहानि का चय ÷ अनुकृष्टि गच्छ) पुनश्च एक कम गच्छ ऐसा $\frac{१∩}{\frac{प}{ə}}$

उसका आधा ऐसा $\frac{१∩}{\frac{प}{ə}\ २}$ इससे चय को गुणा करनेपर ऐसा $\equiv ə \mid \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{१∩}{\frac{प}{ə}\ २}$

$$\frac{१∩}{अ} \quad \frac{१}{गु\ गु\ ३/२}\ \frac{प}{ə}$$

इसको अनुकृष्टि गच्छ से गुणा करनेपर चयधन का प्रमाण ऐसा $\equiv ə \mid \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{१∩}{\frac{प}{ə}}\ \frac{प}{२/ə}$

$$\frac{१∩}{अ} \quad \frac{१}{गु\ गु\ ३/२}\ \frac{प}{ə}$$

$\left[\ \text{चयधन} = \text{चय} \times \frac{१∩}{\frac{\text{गच्छ}}{२}} \times \text{गच्छ}\ \right]$ यहां पल्य के असंख्यातवें भागमात्र भाज्य,

भागहार का अपवर्तन करनेपर $\equiv ə \mid \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{प}{ə}\ \frac{१∩}{\frac{प}{ə}\ २}$ होता है । इसको प्रथम निषेक

$$\frac{१∩}{अ} \quad \frac{१}{गु\ गु\ ३/२}$$

के द्रव्य में से घटाने के लिये *(प्रथम निषेक — चयधन = आदिधन)* इसके और उसके

अन्य समानता देखकर एक अधिक गुणहानिमात्र $\frac{१}{गु}$ गुणकार में से एक कम अनुकृष्टि गच्छ का आधा $\frac{\frac{१∩}{प}}{ə\ २}$ घटानेपर ऐसा $\frac{१}{गु} - \frac{\frac{१∩}{प}}{ə\ २}$ गुणकार होता है । यहां राशि के आगे ऐसी – संदृष्टि द्वारा ऋणराशि लिखी थी, सो चयधन रहित सर्वधन ऐसा $\equiv ə\ |\ \frac{प\ प\ प}{ə\ ə\ ə}\ \frac{१}{गु} - \frac{\frac{१∩}{प}}{ə\ २}$ हुआ *(आदिधन हुआ)* । इसको अनुकृष्टि गच्छ का भाग $\frac{१∩}{अ}\ \frac{१}{गु\ गु\ \frac{३}{२}}$ देनेपर प्रथमखण्ड ऐसा $\equiv ə\ |\ \frac{प\ प\ प}{ə\ ə\ ə}\ \frac{१}{गु} - \frac{\frac{१∩}{प}}{ə\ २}$ होता है । इससे एक-एक चय $\frac{१∩}{अ}\ \frac{१}{गु\ \frac{गु\ ३}{२}\ प}{ə}$ अधिक द्वितीयादि खण्ड होते हुये, एक कम अनुकृष्टि गच्छमात्र चय इनमें मिलानेपर अंतखण्ड होता है । इसलिए चय की और प्रथम खण्ड की अन्य समानता देखकर गुणकार एक अधिक गुणहानि $\frac{१}{गु}$ के ऊपर एक कम अनुकृष्टि गच्छ $\frac{१∩}{ə}$ होता है । उसकी अधिकता सहित पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक गुणहानिमात्र गुणकार हुआ, इसमें ऋण आगे लिखना । इसतरह अंतखण्ड ऐसा $\equiv ə\ |\ \frac{प\ प\ प}{ə\ ə\ ə}\ |\ \frac{१}{गु} - \frac{१∩}{ə}\ |\ \frac{१∩}{ə\ २}$ होता है । पुनश्च यहां गच्छ से गुणित प्रथम खण्ड $\frac{१∩}{अ}\ \frac{१}{गु\ \frac{गु\ ३}{२}\ प}{ə}$

प्रमाण आदिधन ऐसा $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \mid \frac{१}{गु} - \frac{\frac{१}{पo}}{ə\ २} \frac{प}{ə}$ । एक कम गच्छ का आधा, चय $\frac{\frac{१}{पo}}{अ} \quad गु \frac{१}{गु\ ३\ २} \frac{प}{ə}$ और गच्छ से गुणा करनेपर उत्तरधन *(चयधन)* ऐसा $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \mid \frac{\frac{१}{पo}}{ə\ २} \frac{प}{ə}$ होता $\frac{\frac{१}{पo}}{अ} \quad गु \frac{१}{गु\ ३\ २} \frac{प}{ə}$ है । यहां इनको जोड़ने के लिये *(आदिधन + उत्तरधन = सर्वधन)* अन्य समान देखकर आदिधन के गुणकार में ऐसा $\frac{\frac{१}{पo}}{ə\ २}$ कम था, उत्तरधन में ऐसा ही गुणकार था इसलिए इस कम का अभाव करना, पल्य का असंख्यातवां भाग भाज्य, भागहार में समान देखकर अपवर्तन करना ऐसा करनेपर मूल प्रथमनिषेकमात्र सर्वधन ऐसा $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \mid \frac{१}{गु}$ होता है । पुनश्च इसीतरह निषेक-निषेक प्रति अनुकृष्टि खण्डों $\frac{\frac{१}{पo}}{अ} \quad गु \frac{१}{गु\ ३\ २}$ की रचना जानना । वहां अंत निषेक में द्रव्य ऐसा $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प}\ गु\ २$ इसमें पूर्वोक्त $\frac{\frac{१}{पo}}{अ} \quad गु \frac{१}{गु\ ३\ २}$ प्रकार से अपवर्तन किया हुआ चयधन ऐसा $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प}\ \frac{\frac{१}{पo}}{ə\ २}$ घटानेपर आदिधन $\frac{\frac{१}{पo}}{अ} \quad गु \frac{१}{गु\ ३\ २}$

ऐसा $\equiv \frac{प}{०}|\frac{प}{०}\frac{प}{०}\frac{प}{०}|गु\ २ - \frac{१०}{\frac{प}{०}\ २}$ इसको अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर प्रथम

$\frac{१०}{अ}\quad गु\frac{१}{गु\ ३\ २}$

खण्ड ऐसा $\equiv \frac{प}{०}|\frac{प}{०}\frac{प}{०}\frac{प}{०}|गु\ २ - \frac{१०}{\frac{प}{०}\ २}$ होता है । पुनश्च एक-एक चय अधिक

$\frac{१०}{अ}\quad गु\frac{१}{गु\ ३\ \frac{प}{२}\ ०}$

होनेपर द्वितीयादि खण्ड होकर एक कम अनुकृष्टि गच्छप्रमाण चय अधिक होनेपर पूर्वोक्त प्रकार से अंतखण्ड ऐसा होता है $\equiv \frac{प}{०}|\frac{प}{०}\frac{प}{०}\frac{प}{०}|गु\ २ - \frac{१०}{\frac{प}{०}}|\frac{१०}{\frac{प}{०}\ २}$ ।

$\frac{१०}{अ}\quad गु\frac{१}{गु\ ३\ \frac{प}{२}\ ०}$

यहां प्रथम खण्डरूप मुख को गच्छ से गुणा करनेपर आदिधन ऐसा $\equiv \frac{प}{०}|\frac{प}{०}\frac{प}{०}\frac{प}{०}|गु\ २ - \frac{१०}{\frac{प}{०}\ २}|\frac{प}{०}$ । पुनश्च उत्तरधन लाने के लिये 'मुहभूमीजोगदले'

$\frac{१०}{अ}\quad गु\frac{१}{गु\ ३\ \frac{प}{२}\ ०}$

इत्यादि सूत्रद्वारा द्वितीय खण्ड में एक चय प्रमाण मुख ऐसा $\equiv \frac{प}{०}|\frac{प}{०}\frac{प}{०}\frac{प}{०}$,

$\frac{१०}{अ}\quad गु\frac{१}{गु\ ३\ \frac{प}{२}\ ०}$

अंतखण्ड में एक कम गच्छमात्र चयप्रमाण भूमि ऐसी $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \mid \underset{ə}{\overset{१ \cap}{प}}$ इन दोनों

$$\underset{अ}{\overset{१ \cap}{}} \quad \underset{गु}{} \overset{१}{\underset{गु}{}} \underset{२}{३} \underset{ə}{प}$$

का जोड़ ऐसा $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \mid \cancel{\underset{ə}{प}}$ इसको आधा करके गच्छ से गुणा करनेपर चयधन

$$\underset{अ}{\overset{१ \cap}{}} \quad \underset{गु}{} \overset{१}{\underset{गु}{}} \underset{२}{३} \cancel{\underset{ə}{प}}$$

ऐसा हुआ $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \quad \underset{२ ə}{\overset{१ \cap}{प}}$ । पुनश्च आदिधन, उत्तरधन को पूर्वोक्त प्रकार से

$$\underset{अ}{\overset{१ \cap}{}} \quad \underset{गु}{} \overset{१}{\underset{गु}{}} \underset{२}{३}$$

जोड़नेपर चरम निषेकमात्र मूलधन ऐसा $\equiv ə \mid \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \underset{ə}{प} \; गु \; २$ होता है । इसीतरह

$$\underset{अ}{\overset{१ \cap}{}} \quad \underset{गु}{} \overset{१}{\underset{गु}{}} \underset{२}{३}$$

अन्य गुणहानि में जानना ।

इनकी रचना —

इस रचना में क्रम से प्रथम गुणहानि के प्रथम खण्डों का प्रमाण लिखा है । वहां सर्वद्रव्य, प्रथमखण्ड और अंतखण्ड के प्रमाण का स्वरूप तो यहां लिखा ही है । पुनश्च द्वितीयादि खण्डों में एक-एक अनुकृष्टि चय क्रम से मिलाने के लिये चय की और प्रथम खण्ड की अन्य समानता देखकर जहां गुणकाररूप गुणहानि के ऊपर एक की अधिकता थी वहां दो, तीन, चार की अधिकता करनेपर द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ खण्ड होता है । गुणकार में ऋणराशि है, सो है ही ।

उसके ऊपर द्वितीय निषेक का द्रव्य और खण्ड लिखे हैं, वहां प्रथम निषेक के द्रव्य में एक ऊर्ध्वचय मिलाने के लिये ऊर्ध्वचय और प्रथम निषेक द्रव्य के अन्य समानता

देखकर गुणकार के ऊपर जहां एक की अधिकता थी वहां दो की अधिकता करनेपर द्वितीय निषेक का द्रव्य होता है ।

[***विशेषार्थ :***

१ ला निषेक = चय × एक अधिक गुणहानि आयाम = $\text{च}\frac{१}{\text{गु}}$

२ रा निषेक = १ ला निषेक + चय = $\text{च}\frac{१}{\text{गु}} + \text{च} = \text{च}\frac{२}{\text{गु}}$

३ रा निषेक = २ रा निषेक + चय = $\text{च}\frac{२}{\text{गु}} + \text{च} = \text{च}\frac{३}{\text{गु}}$

अंत निषेक = १ ला निषेक + एक कम गच्छप्रमाण चय =

$$\text{च}\frac{१}{\text{गु}} + \text{च}\frac{१०}{\text{गु}} = \text{च गु २} \quad]$$

पूर्वोक्त प्रकार से द्वितीय निषेक के प्रथमादि खण्ड प्रथम निषेक के प्रथमादि खण्डों से एक-एक चय अधिक हैं, इसलिए अन्य सर्व समान देखकर गुणकाररूप गुणहानि के ऊपर जो प्रथम निषेक के खण्डों में अधिकता थी उससे एक-एक अधिक की अधिकता करनेपर इसके खण्ड होते हैं । पुनश्च सबसे ऊपर अंतनिषेक के सर्वद्रव्य और खण्ड लिखे, वहां सर्वद्रव्य का प्रमाण तो पहले कहा था वह जानना । उसमें से पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरधन घटाकर अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर प्रथम खण्ड ऐसा

$\equiv \text{ə} \mid \frac{\text{प}}{\text{ə}} \frac{\text{प}}{\text{ə}} \frac{\text{प}}{\text{ə}} \mid \text{गु २} - \frac{१०}{\frac{\text{प}}{\text{ə २}}}$ होता है । इसमें एक-एक चय मिलाने के लिये

$\frac{१०}{\text{अ}} \quad \text{गु} \frac{१}{\text{गु}} \frac{\text{३ प}}{\text{२ ə}}$

गुणकाररूप दोगुणहानि के ऊपर एक, दो, तीन की अधिकता करनेपर द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ खण्ड होते हैं तथा एक कम अनुकृष्टि गच्छ की अधिकता करनेपर अंतखण्ड होता है ।

पुनश्च इसके नीचे उपांत निषेक के द्रव्य और खण्डों की रचना है ।

वहां अंतनिषेक के सर्वद्रव्य में से एक ऊर्ध्वचय घटाने के लिये अन्य समानता देखकर दोगुणहानि गुणकार में एक कम करनेपर उसका *(उपांत निषेक का)* द्रव्य होता है । यहां पूर्वोक्त विधान करनेपर अंतनिषेक के प्रथमादि खण्डों से इसके प्रथमादि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय से हीन हैं इसलिए यहां प्रथम खण्ड में दोगुणहानि गुणकार के ऊपर एक कम की; द्वितीय खण्ड में कुछ नहीं; तृतीय, चतुर्थ, अंत खण्ड में क्रम से एक, दो, दो कम अनुकृष्टि चय के अधिक की संदृष्टि जानना । यहां गुणहानि, दोगुणहानि के आगे गुणकार है इसलिए उसमें से अधिकहीन करनेपर उस गुणहानिमात्र अधिकहीन होते, वह तो है नहीं, आगे ऋणराशि है सो है ही, इसलिए गुणहानि और दोगुणहानि ही में हीन-अधिक किये हैं ।

पुनश्च इन प्रथमादि निषेकों के प्रथम खण्ड के आगे अनुकृष्टि गच्छ का गुणकार करनेपर इनके आदिधन जानना और उत्तरधन जो प्रथम निषेक के अनुकृष्टि विधान में कहा है वही सर्वत्र जानना । पुनश्च मध्य निषेक और मध्य खण्डों के ग्रहण निमित्त बीच में बिंदियों की संदृष्टि जानना । इसतरह प्रथम गुणहानि के निषेकों की रचना कही । अब इसको अंकसंदृष्टि द्वारा दिखाते हैं –

प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक नौ, अनुकृष्टि गच्छ चार, ऊर्ध्वचय एक को अनुकृष्टि गच्छ का भाग देनेपर अनुकृष्टिचय एक का चौथा भाग । वहां एक कम गच्छ का आधा ऐसा $\frac{३}{२}$ इसको चय और गच्छ से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{३}{२} \mid \frac{१}{४} \mid$, अपवर्तन करनेपर चयधन ऐसा $\frac{३}{२}$ इसको प्रथम निषेक के द्रव्य में से घटानेपर ऐसा $९ - \frac{३}{२}$ इसको चार का भाग देनेपर प्रथम खण्ड ऐसा $\frac{९ - \frac{३}{२}}{४}$ इसमें एक-एक चय मिलाने के लिये नीचे चार का भाग जानकर डेढ़ कम नौ में एक, दो, तीन की अधिकता करनेपर द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ खण्ड होता है ।

इसीतरह द्वितीय निषेक दस के खण्डों में डेढ़ कम नौ में एक, दो, तीन, चार की तथा तृतीय निषेक ग्यारह के खण्डों में दो, तीन, चार, पांच की तथा अंत निषेक सोलह के खण्डों में सात, एक अधिक सात, दो अधिक सात, तीन अधिक सात की अधिकता करके और सर्वत्र चार का भाग देनेपर खण्ड होते हैं । उनकी रचना –

नाम	सर्वद्रव्य	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	तृतीय खण्ड	चतुर्थ खण्ड
अंत निषेक	१६	७ ९ – ३ २ ४	१ ७ ९ – ३ २ ४	२ ७ ९ – ३ २ ४	३ ७ ९ – ३ २ ४
मध्य निषेक	० ०	० ०	० ०	० ०	० ०
तृतीय निषेक	११	२ ९ – ३ २ ४	३ ९ – ३ २ ४	४ ९ – ३ २ ४	५ ९ – ३ २ ४
द्वितीय निषेक	१०	१ ९ – ३ २ ४	२ ९ – ३ २ ४	३ ९ – ३ २ ४	४ ९ – ३ २ ४
प्रथम निषेक	९	९ – ३ २ ४	१ ९ – ३ २ ४	२ ९ – ३ २ ४	३ ९ – ३ २ ४

यहां चौथा भाग या आधा कहा है वह दृष्टांत दिखाने के लिये कहा है । दार्ष्टांत में महत् प्रमाण है, वहां आधा, चौथाई है नहीं । पुनश्च यदि स्वेच्छा अंकसंदृष्टि द्वारा रचना करेंगे तो निषेकों का प्रमाण और खण्डों की रचना जैसे टीका में गुणस्थानाधिकार में

अध:करण रचना की है, वैसे यहां भी जानना ।

पुनश्च जैसे यहां प्रथम गुणहानि की रचना की है, वैसे ही दोगुणा-दोगुणा प्रमाण सहित द्वितीयादि गुणहानियों की रचना जानना ।

पुनश्च जैसी मोह की रचना की है, वैसी ही अपने-अपने द्रव्यादि के अनुसार अवशेष छह कर्मों की रचना जानना ।

पुनश्च अनुभागबंधाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकगुणा असंख्यात लोकमात्र हैं, वे ऐसे ≡ə≡ə, वहां भी जघन्य स्थितिबंध को कारण जो स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के प्रथम निषेक प्रमाण परिणाम हैं, उन संबंधी जो अनुभागबंधाध्यवसायस्थान वे सबसे थोड़े हैं, वे उन प्रथम निषेकमात्र स्थितिबंधाध्यवसायस्थान जो अंकसंदृष्टि अपेक्षा ऐसे **९** हैं उनसे असंख्यात लोकगुणा ऐसे **९ ≡ə** है । यहां गुणहानि निषेकादि रचना कई आचार्यों के अभिप्राय से पायी जाती हैं, वह कहते हैं –

जघन्य स्थितिबंध को कारण प्रथम निषेकमात्र स्थिति-अनुभागाध्यवसायस्थान संबंधी जो अनुभागाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकगुणा असंख्यात लोकप्रमाण वह तो द्रव्य; प्रथम निषेकमात्र स्थितिबंधाध्यवसायस्थान वह तो स्थिति; दो बार असंख्यात से भाजित आवलीप्रमाण नानागुणहानि; इसका भाग स्थिति को देनेपर गुणहानि आयाम; इससे दोगुणा दोगुणहानि और एक बार असंख्यात से भाजित आवलीमात्र अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना । उनकी संदृष्टि –

द्रव्य	स्थिति	गुणहानि	दोगुणहानि	नानागुणहानि	अन्योन्याभ्यस्त
≡ə≡ə	९	९ २ ə ə	९ | २ २ ə ə	२ ə ə	२ ə

पुनश्च लघुसंदृष्टि गुणहानि की ऐसी **गु**, अन्योन्याभ्यस्तराशि की ऐसी **अ** जानना । वहां द्रव्य को एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देनेपर प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा ≡ə≡ə, इससे गुणहानि-गुणहानि प्रति दोगुणा-दोगुणा होकर प्रथम गुणहानि के

$\frac{१८}{अ}$

द्रव्य को आधे अन्योन्याभस्त से गुणा करनेपर अंतगुणहानि का द्रव्य ऐसा $\equiv \frac{१८}{अ} \equiv \frac{}{अ}$ ।

इन गुणहानियों के द्रव्य की रचना ऐसी –

अंत गुणहानि	मध्य गुणहानि	प्रथम गुणहानि
$\equiv \frac{१८}{अ} \equiv \frac{}{अ}$	०	$\equiv \frac{१८}{अ} \equiv \frac{}{अ}$
	०	
	०	

पुनश्च वहां प्रथम गुणहानि के द्रव्य को गुणहानि का भाग देनेपर मध्यधन ऐसा $\equiv \frac{१८}{अ} \equiv \frac{}{अ}$ इसको एक कम गुणहानि के आधे $\frac{१८}{गु}$ से हीन दोगुणहानि ऐसा $\frac{१}{गु\ ३}$ उसका भाग देनेपर वहां चय का प्रमाण ऐसा $\equiv \frac{१८}{अ} \equiv \frac{}{गु}$ इसको एक अधिक गुणहानि $\frac{१}{गु}$ से गुणा करनेपर प्रथम निषेक ऐसा $\equiv \frac{१८}{अ} \equiv \frac{}{गु}\ \frac{१}{गु}$ इससे एक-एक चय अधिक प्रथम गुणहानि के अंत तक जानना ।

पुनश्च गुणहानि-गुणहानि प्रति इससे आदिनिषेक और चय का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा जानना ।

इस रचना में नीचे प्रथम गुणहानि के चय को एक अधिक गुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक; दो अधिक गुणहानि से गुणा करके द्वितीय निषेक, दोगुणहानि से गुणा करके अंतनिषेक होता है, वह लिखा है । इसके ऊपर-ऊपर इसको दो से गुणा करके द्वितीय गुणहानि के; दो बार दो से गुणा करके तृतीय गुणहानि के; दो बार दो से भाजित अन्योन्याभ्यस्तराशि से गुणा करके उपांत गुणहानि के और एक बार दो से

भाजित अन्योन्याभ्यस्तराशि से गुणा करके अंत गुणहानि के निषेक लिखे हैं ।

पुनश्च मध्य गुणहानि और मध्य निषेकों के ग्रहण के लिये बीच में बिंदियों की संदृष्टि जानना ।

पुनश्च जिसप्रकार जघन्य स्थितिबंध को कारण स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के प्रथम निषेक में अनुभागाध्यवसायस्थानों की यह रचना कही है, उसीप्रकार यथासंभव द्वितीयादि उत्कृष्ट तक की स्थिति को कारण ऐसे द्वितीयादि अंत तक के निषेकों में रचना जानना ।

पुनश्च कितने ही आचार्यों के अभिप्राय से अनुभागबंधाध्यवसायस्थानों में गुणहानिरूप रचना नहीं है । यथायोग्य स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के निषेकों में जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट अनुभागाध्यवसायस्थान पाये जाते हैं । उनकी रचना ऐसी –

प१						प११
△ज ९	० ० ०	△उ १६	० ० ०	△ज २८८	० ० ०	△उ ५१२
≡अ≡अ	० ० ०	≡अ≡अ	० ० ०	≡अ≡अ	० ० ०	≡अ≡अ
ज	०	ज	ज	ज	ज	ज
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
उ	०	उ	उ	उ	०	उ

यहां जघन्यस्थिति ऐसी **प१**, उसको कारणभूत स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के प्रथम गुणहानि का जघन्य निषेक अंकसंदृष्टि अपेक्षा ऐसा **९** और यथायोग्य मध्यस्थिति को कारणभूत ऐसा उसका उत्कृष्ट निषेक ऐसा **१६** । पुनश्च अंतगुणहानि का यथायोग्य मध्यस्थिति को कारणभूत जघन्य निषेक ऐसा **२८८** और उत्कृष्टस्थिति ऐसी **प११** उसको कारणभूत उसका उत्कृष्ट निषेक ऐसा **५१२** । इनमें सामान्यता से अनुभागाध्यवसाय स्थान ऐसे **≡अ≡अ** पाये जाते हैं । वे जघन्य-मध्य-उत्कृष्ट यथासंभव जानना । यहां

स्थिति की संदृष्टि ऐसी △, जघन्य की ऐसी **ज**, उत्कृष्ट की ऐसी **उ** तथा मध्यनिषेक, मध्यगुणहानि, मध्यअनुभागाध्यवसाय के ग्रंहण निमित्त बीच में बिंदियों की संदृष्टि जानना ।

इति संदृष्टिस्वरूपं समाप्तं ।

इसप्रकार यहां संदृष्टियों का अर्थ और अर्थों की संदृष्टि का व्याख्यान किया है । वहां प्रथम तो सामान्य व्याख्यान किया है उसको जानो, पश्चात् श्री गोम्मटसार ग्रंथ में जो अर्थ कहे हैं उनकी संदृष्टि और संदृष्टियों के अर्थ कहे हैं उनके स्वरूप का व्याख्यान किया है उसको जानो । यहां मैंने मेरी बुद्धि से ग्रंथों से स्वरूप जानकर व्याख्यान किया है और मेरी बुद्धि मंद है इसलिए मैं जानता हूँ कि यहां कहीं कहीं भूल हुयी होगी उसका उपाय जानकर मैं विशेष सम्यग्ज्ञानी जनों से बिनती करता हूँ कि जहां अशुद्धता होगी वहां सुधारकर शुद्ध कीजिये । पुनश्च यहां अल्पज्ञानी जीवों के प्रति ऐसा आशीर्वाद और प्रेरणा देता हूँ कि इन अर्थ-संदृष्टियों के स्वरूप को जानकर पदार्थों के यथार्थ श्रद्धानपूर्वक सम्यग्ज्ञान को पाकर ज्ञानस्वरूप आत्मा में अचल-अनुभव दशा को प्राप्त हो ।

इदं संदृष्टिव्याख्यानमस्तु संदृष्टिज्ञप्तये ।
कृतं टोडरमल्लेन संशोध्यं च बहुश्रुते: ॥१॥
संदृष्ट्यर्थप्रमातार: स्वद्रव्यक्षेत्रकालकै: ।
भावैश्च मंगलं कुर्युराप्तागममुनीश्वरा: ॥२॥

इति संदृष्टिचूलिका समाप्ता ॥

॥ ॐ ॥